

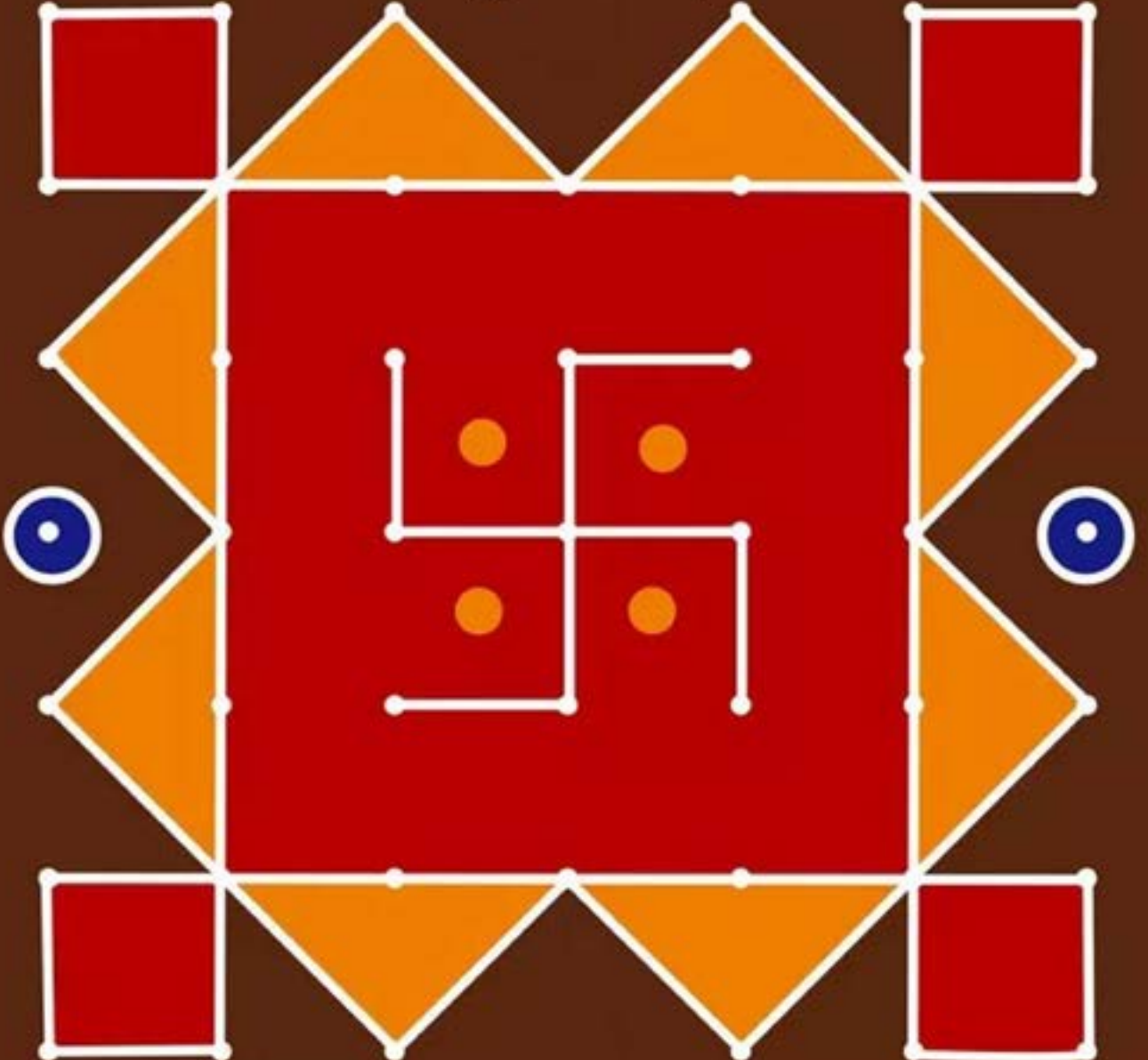


प्रतिध्वनि कला एवं
संस्कृति की

ISSN 2349 - 137X
Peer Reviewed Journal
UGC - CARE Listed (October 2021 to 10th February 2025)

आनन्द लोक

वर्ष-11, लोक संस्कृति-1, 2025
(जुलाई-दिसम्बर)



ISSN 2349-137X
Peer Reviewed Journal

अनहद लोक

(प्रतिध्वनि कला एवं संस्कृति की)

लोक संस्कृति

भाग- 1

वर्ष-11, विशेषांक-2025
(जुलाई - दिसम्बर)
(अर्धवार्षिक शोध पत्रिका)

सम्पादक

डॉ. मधु रानी शुक्ला

सम्पादक मण्डल

डॉ. मनीष कुमार मिश्रा,
डॉ. धनंजय चोपड़ा, डॉ. ज्योति सिन्हा

सह-सम्पादक

सुश्री शाम्भवी शुक्ला



व्यंजना

आर्ट एण्ड कल्चर सोसाइटी
109 डी/4, अबुबकरपुर, प्रीतम नगर, सुलेम सरांय
प्रयागराज - 211011

अनहद लोक

(प्रतिध्वनि कला एवं संस्कृति की)

सम्पादक : डॉ. मधु रानी शुक्ला
सम्पादक मण्डल : डॉ. मनीष कुमार मिश्रा, डॉ. धनंजय चोपड़ा, डॉ. ज्योति सिन्हा
सहायक सम्पादक : सुश्री शाम्भवी शुक्ला
मल्टीमीडिया सम्पादक : श्रेयस शुक्ला

प्रकाशक एवं वितरक :
व्यंजना (आर्ट एण्ड कल्चर सोसाइटी)
109 डी/4, अबुबकरपुर, प्रीतम नगर
सुलेम सराय, प्रयागराज - 211 001
मो. : 9838963188, 8419085095
ई-मेल : anhadlok.vyanjana@gmail.com
वेबसाइट : vyanjanasociety.com/anhad_lok

मूल्य : 300/- प्रति अंक, पोस्टल चार्ज अलग से
सदस्यता शुल्क
वार्षिक : 700/-
तीन वर्ष : 2,100/-
आजीवन : 15,000/-

संगीत नाटक अकादेमी के सहयोग से प्रकाशित

- © सर्वाधिकार सुरक्षित
- रचनाकारों के विचार मौलिक हैं
 - समस्त न्यायिक विवाद क्षेत्र इलाहाबाद न्यायालय होगा।

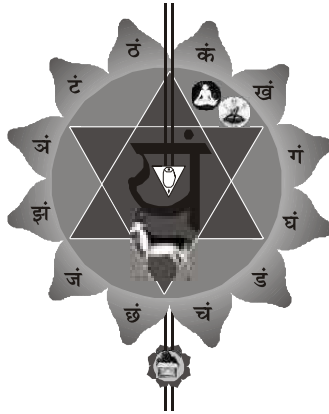
मुद्रक :
गोयल प्रिन्टर्स
73 A, गाड़ीवान टोला, प्रयागराज
फोन - 0532-2655513

मार्गदर्शन बोर्ड :

डॉ. सोनल मानसिंह, पं. विश्वमोहन भट्ट, प्रो. ऋत्विक् सान्याल, प्रो. चित्तरंजन ज्योतिषि, पं. रोनू मजुमदार, पं. विजय शंकर मिश्र, प्रो. दीप्ति ओमचारी भल्ला, प्रो. के. शशि कुमार, प्रो. (डॉ.) गुरप्रीत कौर, डॉ. राजेश मिश्रा

सहयोगी मण्डल :

प्रो. संगीता पंडित, प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या', प्रो. निशा झा, प्रो. प्रभा भारद्वाज, प्रो. अर्चना अंभोरे, डॉ. राम शंकर, डॉ. सुरेन्द्र कुमार, प्रो. भावना ग्रोवर, डॉ. स्नेहाशीष दास, डॉ. शान्ति महेश, डॉ. कल्पना दुबे, डॉ. बिन्दु के., डॉ. अभिसारिका प्रजापति, डॉ. मिठाई लाल





सम्पादकीय

अनहद लोक 'लोक संस्कृति विशेषांक' आप सभी के शुभ हाथों में सौंपते हुए अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव कर रही हूँ आपकी समीक्षाओं से निश्चित रूप में उत्साह का संचार होता रहा है भविष्य में भी इसी स्नेह की आकांक्षी रहूँगी।

भारतीय संस्कृति में लोक साहित्य और लोककलाओं का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। संस्कृति की पूर्णता लोक कलाओं के बिना संभव नहीं। लोक ही तो प्रधान अंग है, और इस लोक से ही संस्कृति की समृद्धि है। उस भारतभूमि में अनेक भाषाएं, बोलियाँ, रहन-सहन, खान-पान और वेशभूषा के साथ विविध संस्कारों की पवित्र परम्परायें पीढ़ियों से चली आ रही हैं। हर अँचल की रीति, चलन, प्रथा और परम्परायें पृथक-पृथक हैं और सभी में उनकी अपनी मौलिकतायें समाहित हैं सभी में आँचलिकता है जो उनकी अपनी निजता का बोध कराती है, अनेकता में एकता की ऐसी अद्भुत मिसाल अन्यत्र कहाँ?

लोक की प्रधानता स्वयं सिद्ध है यदि उसने मान्यता दे दी तो व्यक्ति महान हो गया, पूजनीय और वन्दनीय हो गया, लोक ने नकार दिया तो उसका अस्तित्व ही नहीं रहा। इसलिये लोक को छोड़कर किसी का भी अस्तित्व सुरक्षित नहीं। लोकरूचि लोकाचार, लोकरस, लोकानुराग, लोकमर्यादा या लोक अनुशासन इन शब्दों पर विचार करें तो बात स्पष्ट हो जाती है जब लोकानुराग होगा तभी लोकरूचि बनी रहेगी या जब लोकरूचि होगी तभी लोकानुराग जागेगा फिर लोकरस का संचार होगा, उसका स्वाद मिलेगा और फिर होगा लोकाचार का ज्ञान जिससे सबके भीतर से जिज्ञासा जन्मेगी तभी कुछ हासिल हो सकता है लोकाचार का ज्ञान ही मर्यादा है जिसे जानकर ही अनुशासित जीवन है वरना अन्त में शून्यता ही शून्यता होगी अन्धकार जैसी, अज्ञान के अंधकार जैसी इसलिये लोकरूचि और लोकानुराग जरूरी है बिना इसके लोक के मर्म को समझना एवं समझाना मुश्किल ही नहीं, असम्भव है।

भारतीय लोक संस्कृति दैनिक जीवन, रीति-रिवाजों, और परंपराओं का प्रतिबिंब हैं जो उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, और धार्मिक जीवन को दर्शाती है। ये स्थानीय ज्ञान, कौशल और प्रथाओं पर निर्भर होती हैं, जो विशेष समुदाय या क्षेत्र के लोगों द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी गतिशील होती हैं।

'लोक संस्कृति' लोकगीत, लोकगाथाओं, लोकनाट्यों, लोकचित्रों, लोकनृत्यों, लोककथाओं, विशिष्ट वेशभूषा, खानपान के साथ-साथ विभिन्न पारंपरिक कलाओं से समृद्ध हैं, जो लोगों की रचनात्मकता और भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम हैं। जो सामाजिक बंधन को मजबूत करने और समुदाय की एकता को

बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। साथ ही लोक संस्कृति सामाजिक मूल्यों और नैतिक सिद्धांतों के विकास में योगदान करती है, जो भारतीय ज्ञान परंपरा का भी एक महत्वपूर्ण पहलू है। अतः लोक संस्कृति, भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का अभिन्न अंग हैं। इनको संरक्षित और संवर्धित करना, भारत के गौरवशाली परंपराओं को जीवंत रखना है

इसी उद्देश्य से अनहद लोक शोध पत्रिका का यह विशेषांक भारतीय ज्ञान परंपरा में लोक संस्कृति, लोक साहित्य की विशेषता, लोक गीतों में साहित्य, लोक गीतों में भाषागत वैशिष्ट्य, लोक गीतों में परंपरा एवं नवाचार, लोक गाथाओं में ज्ञान तत्व, लोक गाथाओं में विविध कथा वस्तु, प्रचलित लोक गाथाएँ, विलुप्त होती लोक गाथाएँ, विविध लोक नाट्य, लोक नाट्य में भाषा वैशिष्ट्य, लोक नाट्यों में सांगीतिक वैशिष्ट्य, लोक संस्कृति एवं साहित्य, लोक संस्कृति एवं मनोविज्ञान, लोक गीतों में प्रकृति, लोक गीतों में पर्यावरण चेतना, भारतीय लोक संस्कृति एवं जनसंचार, भारतीय लोक संस्कृति में अध्यात्म, लोक चित्रों में परंपरा एवं नवाचार, चित्र कलाओं में लोक संस्कृति, लोक संस्कृति एवं लोक कथाएँ, लोक संस्कृति में अल्पना, रंगोली, भारतीय लोक भाषाओं का वैशिष्ट्य, लोक संस्कृति के खान-पान, लोक साहित्य में परंपरा एवं नवाचार, प्रमुख लोक नृत्य, लोक नृत्यों की परंपरा एवं नवाचार, फिल्मों में लोकसंस्कृति, सिनेमा में लोक गीत, कठपुतली कला आदि विषयों पर केंद्रित आलेखों का संकलन है जो निश्चित रूप से लोक संस्कृति के शोधार्थियों, अध्येयताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगा मैं समस्त विद्वतजनों तथा शोधार्थियों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अपने सारगर्भित लेखों से इस अंक को समृद्ध किया है। अंततः त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ, आपकी सकारात्मक प्रतिक्रियाओं की अपेक्षा रहेगी....

डॉ. मधु रानी शुक्ला

अनुक्रम

1. उत्तर प्रदेश के ऋतुगीत और लोकसंगीत परंपरा	विभा सिंह प्रो. रुचि गुप्ता	1
2. राग की समग्र स्पष्टता हेतु अतिआवश्यक तत्व : कण, मीढ़ एवं आंदोलन	रेशमा कुमारी प्रो. संगीता श्रीवास्तव	7
3. Innovation in Digital Adaptations of Folk Painting Traditions	Prof. Shubham Shiva	14
4. राजस्थानी लोक संस्कृति एवं साहित्य (विजयदान देथा की कहानियों के विशेष संदर्भ में)	कोमल मीणा प्रो. विपुल कुमार	17
5. Folk to Fiction : The Archetype of Savitri and Female Endurance in Manju Kapur's Custody	Dr. (Mrs.) B. Kavikashree	22
6. The Dissemination of Buddhist Thoughts : A Study of Wamandada Kardak's Folk Songs	Dr. Balande Chandoba Narsing	29
7. Chhattisgarhi Folk Culture and the Theatrical Adaptation in Habib Tanvir's "Charandas Chor"	Dr. A. Sharanbalaji	41
8. Folk Elements in The Sankirtanas of Sri Annamacharya	Dr. C.P.S. Madhuri	46
9. राजस्थानी परम्परागत छापा कला के सौन्दर्य में लोक कला का प्रभाव	डॉ. महेश सिंह अनन्त रत्न	55
10. असम का जनजातीय समाज में प्रचलित लोकाचार	डॉ. नूरजहाँ रहमतुल्लाह	62
11. Folk Customs in Tamilnadu	Dr. P. Priya	68
12. Sticks, Stories and Survival : The Heritage of Kathi Dance in Purulia District of West Bengal	Dr. Pounami Basu	73

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

— **vii** —

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

13. Nagpuri Jhumar and Sadani Lok Sangeet: Tradition, Transformation and Relevance in Indian Folk Culture *Dr. Rupa Sinha* 79
14. Folk Arts in Tamilnadu *Dr. T. Sankaranarayanan* 84
15. Contribution of Folk Narratives to the Thematic Presentation of Kathak Dance : A Cultural Study *Dr. Tripti Gupta* 89
16. Faith, Folklore and Modernity : The Role of Folk Healing in A Silence of Desire and Cultural Memory in The Nowhere Man *A. Sankavi*
Dr. M. Sudha Devi 97
17. परंपरा से आधुनिकता तक : वाराणसी की सार्वजनिक कला में लोक रूपांकनों का बदलता स्वरूप *अनंत रत्न*
डॉ. महेश सिंह 102
18. राजस्थान की फड़ चित्रकला में लोक संस्कृति एवं साहित्य *आँचल निषाद* 115
19. प्रमुख लोकनृत्य *अनीता मिश्रा*
डॉ. मधु सक्सेना 120
20. लोक संस्कृति में संगीत एवं नृत्य की भूमिका *अंजली वर्मा*
डॉ. सुरेन्द्र कुमार 126
21. Nature in Folk Songs *Anu Saxena*
Dr. Kaumudi Kshirasagar Barde 132
22. Dr. Urmil Kumar Thapliyal and the Revival of Nautanki in Modern Theatre *Ashish Dwivedi*
Dr. Charu Yadav 137
23. Rain Invoking Song (Boron Dahanir Ela) : Bishnupriya Manipuri Folk Song in North-East India *Ashu Kanti Sinha*
Dr. Rakesh Kumar 144
24. हिंदी सिनेमा जगत में महिला कलाकारों द्वारा गाए ब्रज के लोकगीत' *बेबी शर्मा*
संगीता श्रीवास्तव 149
25. चरकुला : घूंघट में कृष्ण भक्ति का सौंदर्य *भावना मिश्रा*
डॉ. महेश सिंह 153
26. Tradition and Innovation in Folk Literature : Ecological Memory and Mythical Survival in Vandana Singh's *Three Tales from Sky River* *Daisy Rani Doley* 159

27. मिथिला लोक कला में मत्स्य चित्रण ज्योति कुमारी
डा. लकी टॉक 166
28. प्रयागराज के भट्ट परिवार की तबला वादन की परम्परा की कुछ अमूल्य
'अविस्तारशील बंदिशें' (तबले की समपदी, अर्द्धसमपदी एवं कामिनी मिश्रा
विषमपदी तालों में) डॉ. ज्योति मिश्रा 170
29. इलाहाबाद के कलाकार बालादत्त पाण्डे के भावपूर्ण चित्रों का
भारतीय लोक संस्कृति व परम्परा की समृद्धि में योगदान कृष्ण जी मिश्र 175
30. Indian Folk Culture in Tamil and Sanskrit Literatures L.Suvetha
Dr. B. Sankareswari 181
31. Dimensions of Female Agency and Solidarity in Kerala's Lakshmi Nair U.
Thiruvathirakali Folk Tradition Dr. M. Angkayarkan Vinayakaselvi 187
32. Intersecting Identities, Social Hierarchy and Patriarchy Leena Stanley
in Indira Goswami's novel 'The Man from Chinnamasta' Dr. B. Sajeetha 194
33. Cultural Fragmentation and The Journey from
Folk Roots to Urban Displacement in M. Naveena Rani
V. S. Naipaul's *A House for Mr. Biswas* B. Anand Prasad 200
34. Echoes of Baul : Influence of West Bengal's
Folk Tradition on Hindi and Bengali Film Music Madhushree 205
35. लोकधुन से पर्दे तक : हिंदी सिनेमा में लोकगीतों की भूमिका मनीश जोशी 209
36. Cinematic Representation of Folk Culture :
A Study of Kantara (2022) Mira Mondal 212
37. राजस्थानी लोक संगीत की संगीतमय विरासत के
संरक्षक-संवर्धनकर्ता : कोमल कोठारी मोनिका भट्ट
डॉ. पूर्वी लुनियाल 218
38. The Grandmother as The Curator of Culture :
The Interpretation of Oral Tradition in Mr. Raja Ravi Shanker R.N.
Sudha Murty's Grandma Bag of Stories Dr. S. Nagalakshmi 223
39. Periodical Changes in Folk Dances Ms. Dhvani Bharatkumar Shah
of Gujarat Dr. Smruti Vaghela 229
40. Folk Elements in Rohinton Mistry's A Fine Balance Ms. Jaya Swathi G.
Dr. M. R. Chandran 240

41. An Analysis of Folk Narratives in Anita Nair's <i>The Better Man</i>	Ms. Nivetha M. Dr. S. Nagalakshmi	245
42. Breaking The Silence : Women Agents in Jodi Picoult's <i>Vanishing Acts</i> and Lal Behari Dey's <i>Folktales of Bengal</i>	Ms. Sabitha S. Dr. S. Nagalakshmi	250
43. अवध क्षेत्रीय लोकगीतों में समकालीन संगीत के तत्व और उनका सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य	कु. नम्रता लता डॉ. कुलविंदर सिंह	257
44. Transformation of Warrior Rituals into Communal Celebrations in Folk Dances	Niharika Joshi Dr. Mahesh Singh	264
45. Folk Music of Khandesh, Maharashtra	Nilesh Shrikantrao Khalikar	271
46. Folk Installation and Tradition : Shivaratri in Pabbar Valley, Himachal Pradesh	Nitika	277
47. भवप्रीतानंद के झुमुर गीतों में योग दर्शन की अन्वेषण	निवेदिता मण्डल	289
49. कुमाऊँनी लोक गाथाओं में प्रतिबिंबित नाथ पंथ : साधना एवं दर्शन	परिमुक्ता डॉ. राजेन्द्र कैड़ा	295
50. Cultural Continuities and Transformations : Folk Dance Influences in Bharatanatyam and Kathak	Parvathi P L	302
51. अवध के विभिन्न लोकोत्सवों में प्रचलित लोकगीत	प्रतीक्षा मिश्रा डॉ. सुरेन्द्र कुमार	308
52. निर्गुण परंपरा एवं लोक संस्कृति का अंतःसंबंध	प्रिया शर्मा डॉ. सुरेन्द्र कुमार	314
53. Anthropology Behind Indian Folk's Literature	R. Abishek Dr. B. Anand Prasad	320
54. भारतीय सिनेमा में लोकगीत	राकेश सुभाषभाई दवे	325
55. भारतीय लोककला परंपरा में प्रकृति का अंकन	रवि कुमार आंचल	330
56. Indian Folk Performing Arts (Gayan, Wadan, Nartan) as a Therapeutic Medium for Perimenopausal Women : An Analytical Study	Rudrapriya Ashtankar Dr. Vaikhari Wazalwar	338

57. Harvest Rhythms in Folk Dance : A Study About Kummi, Kolattam and Oyilattam of Tamil Nadu During Pongal	<i>Sahithya V. Dr. U. Bhawani</i>	344
58. Echoes of the Hills : Folk Culture and Identity in the works of Tamsula Ao	<i>Shiju R. Das Dr. N. Lakshmi Priya</i>	350
59. From Oral Traditions to Modern Narratives : The Folkloric Fabric of Sudha Murty's Literature	<i>Shinu R. Das Dr. Y. Vidya</i>	355
60. पारम्परिक भारतीय कलालोक से नवीन सृजन लोक में मनोवैज्ञानिक संवेगों की यात्रा	<i>शिवा देवी</i>	361
61. अष्टछापिय भक्त कवि सूरदास का संगीत चिन्तन : एक विवेचनात्मक अध्ययन	<i>स्नेहा प्रो. (डॉ.) रीना गुप्ता</i>	366
62. भारतीय चित्रकलाओं में लोक संस्कृति	<i>डॉ. पूनम</i>	373
63. लोक संस्कृति एवं साहित्य	<i>डॉ. अशोक कुमार</i>	378



उत्तर प्रदेश के ऋतुगीत और लोकसंगीत परंपरा

विभा सिंह

शोधार्थिनी-संगीत विभाग

साहू राम स्वरूप महिला महाविद्यालय, बरेली

महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड वि. वि., बरेली

प्रो. रुचि गुप्ता

शोध निर्देशिका एवं विभागाध्यक्ष - संगीत विभाग

साहू राम स्वरूप महिला महाविद्यालय, बरेली

महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड वि. वि., बरेली

शोध सारांश :

भारतीय संस्कृति की आत्मा उसके लोकजीवन में रची-बसी है। उत्तर भारत विशेषकर उत्तर प्रदेश का सांस्कृतिक परिदृश्य अत्यंत समृद्ध और विविधतापूर्ण है। यहाँ की बोली-बानी, परिधान, आहार और जीवनशैली जितनी विविध है, उतनी ही विविध और रंगीन इसकी लोकसंगीत परंपरा भी है। ऋतु के परिवर्तन को यहाँ केवल भौगोलिक या प्राकृतिक प्रक्रिया नहीं माना जाता, बल्कि इसे सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण अवसर माना जाता है। इसी से उपजे हैं ऋतुगीत- ऐसे गीत जो वर्षा, वसंत, शीत या ग्रीष्म की अनुभूतियों के साथ-साथ सामाजिक उत्सवों, कृषक जीवन और लोकमानस की भावनाओं को भी स्वर देते हैं। ऋतुचक्र के साथ गूँजने वाले ये लोकगीत सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक भावनाओं का भी प्रतीक हैं। लोकगीत और ऋतुगीत दोनों ही उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक पहचान हैं। इनकी परंपरा पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से हस्तांतरित होती रही है। ये गीत न केवल मनोरंजन का साधन रहे हैं, बल्कि सामूहिक श्रम, कृषि कार्य, पर्व-त्योहार और सामाजिक अवसरों पर सामंजस्य और एकता का माध्यम भी बने हैं।

इस शोधपत्र का उद्देश्य उत्तर प्रदेश की ऋतुगीत एवं लोकसंगीत परंपरा का ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अध्ययन करना है।

मुख्य शब्द :

लोकसंगीत , लोकभाषा , ऋतुचक्र, ऋतुगीत, सामाजिक व सांस्कृतिक आयाम

प्रस्तावना :

भारतीय संस्कृति की धरोहर में लोकसंगीत का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह केवल संगीत का रूप नहीं, बल्कि लोकजीवन की भावनाओं, अनुभूतियों और अनुभवों का वह सहज एवं सजीव दस्तावेज है, जिसमें जनमानस की आस्था, विश्वास, परंपरा और जीवनदर्शन प्रतिबिंबित होता है। लोकसंगीत की विशेषता यह है कि इसमें किसी कृत्रिमता, आडंबर या औपचारिकता

का स्थान नहीं होता। यह सीधे लोकहृदय से उपजता है और उसी की सादगी तथा सहजता में रचा-बसा रहता है।

भारतीय संस्कृति अपनी बहुलता और विविधता के लिए विश्वविख्यात है। लोकजीवन में परंपराएँ केवल ग्रंथों या मंदिरों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि जनता के दैनिक जीवन, पर्व-त्योहार, रीति-रिवाज

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

1

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

और लोकसंगीत में जीवंत रहती हैं। उत्तर प्रदेश, भारतीय उपमहाद्वीप के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक केंद्र के रूप में विख्यात है। इसका क्षेत्रफल और जनसंख्या अत्यधिक होने के कारण यहाँ अनेक भाषाएँ, बोलियाँ और सांस्कृतिक परंपराएँ पाई जाती हैं। उत्तर प्रदेश का भौगोलिक विस्तार गंगा-यमुना के मैदानों, बुंदेलखंड की शुष्क भूमि, ब्रजभूमि की उपजाऊ घाटियों और पूर्वी भोजपुरी क्षेत्र की नदियों के किनारे तक फैला हुआ है। यही भौगोलिक विविधता इसकी सांस्कृतिक धारा को भी विविध और समृद्ध बनाती है।

उत्तर प्रदेश के प्रत्येक क्षेत्र ने अपने **भौगोलिक और सांस्कृतिक परिवेश** के अनुसार लोकसंगीत का विकास किया। गंगा-जमुनी तहजीब की भूमि कहे जाने वाले इस प्रदेश की पहचान केवल राजनीतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक समृद्धि से भी होती है। यहाँ की लोकसंगीत परंपरा बहुरंगी है, जिसमें अवधी की मिठास, ब्रज की रसिकता, भोजपुरी की ओजस्विता, बुंदेली की वीरता और कन्नौजी की सहजता सब मिलकर अद्भुत संगीतिक लोकधरोहर का निर्माण करते हैं। उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक विविधता में भाषाई और बोलीगत विविधता का विशेष योगदान है। प्रमुख बोली और उनकी सांस्कृतिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं।

1. अवधी क्षेत्र (लखनऊ, फैजाबाद, सुल्तानपुर आदि)

- बोली : अवधी
- लोकगीत : कजरी, बिरहा, आल्हा
- विशेषता : वीरता, प्रेम और लोककथाओं पर आधारित गीत।

2. ब्रज क्षेत्र (मथुरा, वृंदावन, आगरा, एटा आदि) :

- बोली : ब्रजभाषा
- लोकगीत : रसिया, होली गीत, फाग

- विशेषता : राधा-कृष्ण के प्रेम और वसंत उत्सव से जुड़े गीत।

3. भोजपुरी क्षेत्र (वाराणसी, चम्पारण, पूर्वी उत्तर प्रदेश) :

- बोली : भोजपुरी
- लोकगीत : सोहर, चैती, बिदेसिया
- विशेषता : सामाजिक जीवन, श्रम, प्रवासी जीवन की पीड़ा।

4. बुंदेलखंड (झांसी, बांदा, चित्रकूट आदि) :

- बोली : बुंदेली
- लोकगीत : आल्हा, वीर रस प्रधान गीत
- विशेषता : वीरता, संघर्ष और ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण।

5. कन्नौज एवं बघेलखंड क्षेत्र :

- बोली : कन्नौजी, बघेली
- लोकगीत : बारहमासा, झूमर
- विशेषता : ऋतु परिवर्तन और कृषि जीवन पर आधारित गीत।

इस भाषाई और क्षेत्रीय विविधता ने उत्तर प्रदेश की लोकसंगीत परंपरा को न केवल समृद्ध किया, बल्कि इसे प्रत्येक क्षेत्र की सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान से जोड़ दिया।

लोकसंगीत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह जीवन के प्रत्येक अवसर और ऋतु के साथ जुड़ा हुआ है। यह जीवन के हर पड़ाव पर सक्रिय रहता है। जन्म के समय सोहर, विवाह में मंगलगीत, मृत्यु पर विलापगीत, श्रम के समय धुन और आल्हा, उत्सव पर फाग और कजरी ये सभी समाज को एक सूत्र में बाँधते हैं। जब किसान खेत में हल चलाता है, जब स्त्रियाँ कुएँ से पानी भरती हैं, जब गाँव में विवाह होता है, जब वर्षा की पहली बूँद धरती पर गिरती है, हर समय, हर अवसर पर गीत गाए जाते हैं। इन्हीं में

से एक महत्वपूर्ण श्रेणी है ऋतुगीत, जो ऋतु-परिवर्तन और उससे जुड़ी मानवीय संवेदनाओं की सामूहिक अभिव्यक्ति है।

ऋतुगीतों की परंपरा उत्तर प्रदेश में अत्यंत प्राचीन है। यहाँ की जलवायु और कृषि-आधारित जीवन पद्धति ने ऋतुगीतों को जन्म दिया। वर्षा का आना, फसल की बुआई और कटाई, वसंत का आगमन, ग्रीष्म की तपन या शीत की सिहरन, इन सबको लोकमानस ने गीतों में ढाला। इन गीतों में केवल प्रकृति का वर्णन ही नहीं है, बल्कि मानवीय संबंधों, भावनाओं और सामाजिकता की छवियाँ भी दिखाई देती हैं। हमारे भारत में छह ऋतुएं एवं बारह महीनों का विधान है। ये छह ऋतुएं हैं -

1. बसंत ऋतु (चैत्र-वैशाख या मार्च-अप्रैल)
2. ग्रीष्म ऋतु (ज्येष्ठ-आषाढ़ या मई-जून)
3. वर्षा ऋतु (श्रावण-भाद्रपद या जुलाई-अगस्त)
4. शरद ऋतु (आश्विन-कार्तिक या सितम्बर-अक्टूबर)
5. हेमंत ऋतु (अगहन-पौष या नवम्बर-दिसम्बर)
6. शिशिर ऋतु (माघ-फाल्गुन या जनवरी-फरवरी)

बसंत ऋतु (मार्च-अप्रैल) को रंगों, प्रेम और उत्सव की ऋतु कहा जाता है। इस समय लोकजीवन में होली और फाग जैसे उत्सव आते हैं। ब्रज क्षेत्र में वसंत ऋतु विशेष महत्व रखती है। इन गीतों में राधा-कृष्ण के प्रेम और लीला का वर्णन प्रमुख होता है। उदाहरण : रासलीला गीत, फाग गीत, वसंत पंचमी गीत। ये वसंत गीत युवाओं में प्रेम और सौहार्द बढ़ाने का माध्यम बनते हैं और सामाजिक मेलजोल और उत्सव में सामूहिक भागीदारी को प्रोत्साहित करते हैं।

ब्रज फाग का उदाहरण :

‘आजु ब्रज में खेलत फाग,
बरसन लागी रंग की झरी।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

**श्याम-संग राधा खेलत अबीर गुलाल,
गावत ग्वालिन, बाजत मृदंग झरी॥’**

ग्रीष्म ऋतु (मई-जून) में अत्यधिक गर्मी और तापमान बढ़ने से लोकजीवन प्रभावित होता है। इस समय गीतों में श्रम, तपन और विरह भाव अधिक दिखाई देता है। भोजपुरी और अवधी क्षेत्र में ग्रीष्म गीतों में खेतों में श्रमरत किसानों की थकान और उत्साह को दर्शाया जाता है। इन गीतों में अक्सर जल स्रोतों, नदी, कुआँ और छाया का उल्लेख मिलता है। ये गीत श्रम के समय उत्साह और मनोबल बनाए रखते हैं और कृषक समुदाय की आपसी मित्रता और सहयोग को प्रकट करते हैं।

अवधी श्रमगीत का उदाहरण : धान रोपाई का गीत

“रोपड़िया रोपड़िया करै खेसरिया,
आवा बहिनी मिलि गावा।,

मटिया मटिया भरि गावा गीतवा,
थके मनवा हरषावा॥”

वर्षा ऋतु (जुलाई -अगस्त) को लोकसंगीत में सबसे अधिक महत्व प्राप्त है। वर्षा की बूँदों से जीवन में नवजीवन और उत्साह का संचार होता है। वर्षा ऋतु के गीतों में सबसे प्रसिद्ध गीत हैं कजरी, जो स्त्रियों द्वारा गयी जाती हैं। कजरी गीतों में प्रेम, विरह और मेघों का वर्णन प्रमुख होता है। कजरी उत्तर प्रदेश और बिहार की लोकसंगीत परंपरा का अत्यंत लोकप्रिय ऋतु-गीत है। ‘कजरी’ शब्द ‘कजरा’ (अंजन, काजल) से निकला है, जो सावन की काली घटाओं और विरहिणी नायिका की उदासी का प्रतीक है। यह लोकगीत सामूहिकता, स्त्री-अनुभूति और ऋतु-आधारित भावनाओं को प्रकट करता है।

भोजपुरी कजरी का उदाहरण :

कजरी गावेले सखी सावनवा में,
नैना बहा देले नीर ।

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

घरे न आइल बिदेसिया सजनवा,
अंगना सूना भइल अधीर ॥

शरद ऋतु (सितंबर-अक्टूबर) में फसल कटाई और मौसम की ठंडक के आगमन के कारण गीतों में उत्सव, आनंद और आभार झलकता है। वर्षा के बाद का सौंदर्य, जब आसमान निर्मल होता है, खेतों में धान की फसल पकने लगती है, कमल खिलते हैं, और चाँदनी का सौंदर्य विशेष रूप से इन लोकगीतों में गाया जाता है। उत्तर प्रदेश की लोकसंस्कृति में शरद ऋतु के गीत ग्रामीण जीवन, कृषि, फसल, चाँदनी रातों और त्योहारों (जैसे कोजागरी पूर्णिमा, शरद पूर्णिमा) से जुड़े होते हैं।

धान की फसल पर अवधी शरद गीत का उदाहरण :

“धान पकल रे अँगनवा हरियर,
सुनि के मनवा हर्षाय रे।”

हेमंत ऋतु (नवम्बर-दिसम्बर) में गाए जाने वाले लोकगीत मुख्य रूप से ठंडी ऋतु की अनुभूतियों, कृषि कार्य, फसल की अवस्था और सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन से जुड़े होते हैं। उत्तर प्रदेश में हेमंत ऋतु के गीतों का विशेष महत्व है क्योंकि यह समय खेतों में गेहूँ, चना, मसूर जैसी रबी की फसलों के अंकुरित होने का होता है। ग्रामीण समाज इस समय की प्राकृतिक सुषमा, ठंडी हवाओं और घरेलू जीवन का चित्रण गीतों में करता है।

अवधी उदाहरण :

“पौष मास हेमन्त आयो, पाला पड़े खेतन मां।
घर-घर अलाव जराय रहे, जुड़ाई पाय गवनवा॥
गेहूँ के बाली हिलत देखी, मन हरषाय किसान।
गोधन चरत चरागाह में, बाजत बांसुरी तान॥”

शिशिर ऋतु (जनवरी-फरवरी) में ठंड के कारण लोकगीतों में सामूहिक जीवन, ऊष्मा और घर की गतिविधियाँ दिखाई देती हैं। भारत की ऋतुचक्र में शिशिर ऋतु का विशेष स्थान है। यह ऋतु शीत

का अंतिम और वसंत के आगमन का प्रारंभिक समय होता है। खेतों में गेहूँ, जौ, चना, मसूर आदि फसलें पकने लगती हैं। गाँवों में इस समय माघ स्नान, खरमास के व्रत, बसंत पंचमी और होली की तैयारियाँ दिखाई देती हैं। लोकमानस में यह ऋतु फसल की आशा, धार्मिक स्नान, तप-त्याग और उत्सव से जुड़ी है। इन्हीं भावनाओं को लोकगीतों में व्यक्त किया गया है। शिशिर ऋतु के लोकगीतों में ठिठुरन, आग तापना, पकती फसल की आशा, स्नान-दान की महिमा और होली की तैयारी की झलक मिलती है।

अवधी उदाहरण : यह गीत शिशिर की ठंड और स्नान-दान की परंपरा को दर्शाता है।

“माघ मास स्नान करि, दान करै सब गाँव।
ठंढी-ठंढी पवन चले, आगि तापत नाउँ॥”

उत्तर प्रदेश के ऋतुगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं हैं, बल्कि ये समाज की जीवन शैली, रीति-रिवाज, मान्यताओं और सांस्कृतिक विरासत के सशक्त दस्तावेज हैं। ये गीत लोकमानस की सामूहिक चेतना, पारस्परिक-सहयोग और जीवन-दर्शन को अभिव्यक्त करते हैं तथा भारतीय संस्कृति की आत्मा को जीवित रखते हैं। अतः इनके सामाजिक और सांस्कृतिक आयाम अत्यंत महत्वपूर्ण हैं :

सामाजिक आयाम :

सामूहिकता और मेलजोल : ये गीत सामूहिक कार्य और उत्सवों में समुदाय को जोड़ते हैं। फाग, कजरी, सावन या चैती के गीतों में स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चे सभी सम्मिलित होकर गाते हैं जिससे सामाजिक मेल सामूहिक चेतना और एकता का भाव प्रकट होता है।

स्त्री अभिव्यक्ति : अधिकांश ऋतुगीत स्त्रियों द्वारा गाए जाते हैं, जिससे उनकी भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम मिलता है। इन गीतों में स्त्रियों की पीड़ा, उनके सुख-दुःख, विरह और मिलन की आकांक्षा का जीवंत चित्र मिलता है। सावन-भादों के गीत विशेषकर स्त्रियों के भाव उजागर करते हैं।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

कृषि जीवन का चित्रण : ग्रामीण समाज की कृषि पर निर्भरता ऋतुगीतों में स्पष्ट झलकती है। ये गीत वर्षा की प्रतीक्षा, फसलों की बुआई और कटाई का उल्लास, किसान का परिश्रम आदि सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं को प्रकट करते हैं।

सामाजिक रीति-रिवाज और उत्सव-होली, दीपावली, तीज-त्यौहार, झूला या चैती के गीत केवल मनोरंजन नहीं करते बल्कि समाज के त्यौहारों और परम्पराओं को जीवित बनाये रखते हैं।

सांस्कृतिक आयाम :

लोक-भाषाओं का संरक्षण : ऋतुगीतों में लोकभाषाओं (अवधी, भोजपुरी, ब्रज, बुंदेली आदि) का प्रयोग होता है जिससे क्षेत्रीय संस्कृति सुरक्षित रहती है। इन बोलियों में गाए जाने वाली ऋतु गीत स्थानीय संस्कृति के साथ-साथ भाषाई विविधता को भी जीवित रखते हैं।

लोक-कलाओं का संवर्धन : इन गीतों के साथ नृत्य, वाद्ययंत्र और रंग-बिरंगे परिधान भी जुड़े होते हैं। इससे क्षेत्रीय कला व संस्कृति का विकास होता है। ये गीत ग्रामीण संस्कृति की जीवंतता और कलात्मकता के परिचायक हैं।

सांस्कृतिक निरन्तरता : ये गीत पीढ़ी दर पीढ़ी गाए जाते हैं और इस प्रकार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संस्कृति का हस्तांतरण होता है।

धार्मिक एवं आध्यात्मिक जुड़ाव : कई ऋतुगीतों में भगवान शिव, कृष्ण, राधा, राम आदि का स्मरण किया जाता है, इससे लोकजीवन धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी सशक्त होता है।

निष्कर्ष :

उत्तर प्रदेश की लोकसंगीत और ऋतुगीत परंपरा सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक पहचान और मानवीय भावनाओं का अभिन्न अंग है। यह राज्य की सांस्कृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक पहचान का एक अमूल्य

हिस्सा है। इन गीतों के माध्यम से समाज की मूल संरचना, ग्रामीण जीवनशैली और परंपरागत ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचरित होता रहा है। संरक्षण के अभाव में यह अमूल्य धरोहर धीरे-धीरे खोने का खतरा है। आज की तेजी से बदलती आधुनिक दुनिया में लोकसंगीत और ऋतुगीत अनेक खतरों का सामना कर रहे हैं। शहरीकरण और आधुनिक संगीत के प्रभाव ने पारंपरिक लोकगीतों को दबा दिया है। युवा पीढ़ी में मौखिक परंपरा को अपनाने की रुचि कम होती जा रही है व लोकगीत और गीत परंपरा का लिखित और रिकॉर्डेड रूप सीमित मात्रा में उपलब्ध है। अतः आवश्यक है कि सरकार, समाज और शैक्षिक संस्थान मिलकर इस सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण और संवर्धन सुनिश्चित करें क्योंकि उत्तर प्रदेश के ऋतुगीत और लोकसंगीत परंपरा लोकजीवन की आत्मा हैं। इनमें न केवल ऋतुचक्र की अभिव्यक्ति है, बल्कि सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना भी समाहित है। इन गीतों के माध्यम से लोकमानस अपनी भावनाओं, आशाओं और जीवन की विविधताओं को सहजता से व्यक्त करता है। अतः यह आवश्यक है कि इन लोकपरंपराओं को आधुनिक समाज में संरक्षित एवं प्रोत्साहित किया जाए जिससे आने वाली पीढ़ियाँ भी इस सांस्कृतिक निधि से लाभान्वित हो सकें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. श्रीवास्तव, जगदीश, उत्तर प्रदेश का लोकसंगीत, वाराणसी, भारती प्रकाशन, 2005
2. मिश्र, श्यामसुंदर, अवधी लोकगीत और संस्कृति, लखनऊ, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, 2010
3. सिंह, रामआसरे, भोजपुरी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, वाराणसी : राजकमल प्रकाशन, 2008
4. वाजपेयी, लक्ष्मणप्रसाद, ब्रज संस्कृति और लोकगीत, मथुरा : ब्रज अकादमी, 2002
5. वर्मा, रामसुधार, भारतीय लोकसंगीत-परंपरा और प्रवाह, नई दिल्ली, साहित्य भवन, 1999

6. पाण्डेय, हनुमानप्रसाद, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, नई दिल्ली-नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2006
7. शुक्ल, राधेश्याम, उत्तर प्रदेश के ऋतुगीत और उनका सांस्कृतिक स्वरूप, गोरखपुर, गोरखपुर विश्वविद्यालय, 2015
8. पाठक, रमेशचन्द्र, लोकधारा और भारतीय संस्कृति, दिल्ली, ज्ञानगंगा प्रकाशन, 2011
9. मिश्र, नीलकमल, उत्तर भारत की लोकपरंपराएँ, वाराणसी : हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2014
10. शर्मा, रमा, लोकगीतों में कृषि और ऋतुचक्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, 2009
11. चौधरी, अशोक, लोकगीत और भारतीय समाज, नई दिल्ली-प्रकाशन विभाग, 2016
12. सिंह, योगेंद्र, उत्तर प्रदेश की लोकबोलियाँ और गीत परंपरा, वाराणसी : लोकभारती, 2018



राग की समग्र स्पष्टता हेतु अतिआवश्यक तत्वः कण, मींड़ एवं आंदोलन

रेशमा कुमारी

शोधार्थी

दयानंद गर्ल्स पी. जी. कॉलेज, सिविल लाइंस,
कानपुर, उत्तर प्रदेश

प्रो. संगीता श्रीवास्तव

रिसर्च गाइड

विभागाध्यक्ष - संगीत विभाग
दयानंद गर्ल्स पी. जी. कॉलेज, सिविल लाइंस,
कानपुर, उत्तर प्रदेश

सारांश :

संपूर्ण संसार का सृजन परम पिता परमेश्वर ने अति सौंदर्यपूर्ण रूप से किया। चाहे वह प्रकृति हो, मनुष्य हो या फिर कला, ईश्वर ने हर वस्तु सुन्दर ही बनाई। हर वस्तु सौंदर्यात्मकता से, उपयोगिता के रूप में परिपूर्ण तो है किन्तु ईश्वर की अद्भुत कलाकृति इसमें निहित है कि यह संसार परिपूर्ण होते हुए भी परिवर्तनशील एवं विकासशील है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि कोई तालाब पूर्ण रूप से भरा हुआ है लेकिन फिर भी उसमें कितना ही जल भरते जाएं फिर भी जल उसमें समाता जाए। संगीत भी ईश्वर की ऐसी ही देन है जो स्वयं में सौंदर्यपूर्ण है फिर भी उसकी सौंदर्य वृद्धि मानव हृदय पल प्रति पल करता रहता है, चूंकि मानव हृदय भी तो उसी ईश्वर की कलाकृति है जिसने मानव हृदय को कलात्मक व भावपूर्ण बनाया है। कलाओं में श्रेष्ठ संगीत व संगीत में श्रेष्ठ राग संगीत। राग की साधना का पर्याय अगर ईश्वर की साधना कहें तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। संगीत साधक के लिए संगीत ही साधना का विषय है व राग ही सम्पूर्ण संसार व सम्पूर्ण जीवन होता है।

“स्वरां एवं विशिष्टा सन्निभाजो रक्तिमदृष्टाभ्युदयञ्च जनयन्तो जाति रित्युक्तः।

कोसो सन्निवेश इतिचेत् जातिलक्षणेन दशकेन भणति सन्निवेशः॥”

मतंग मुनि उपयुक्त परिभाषा द्वारा कहते हैं कि जब स्वर स्वयं विशिष्ट रूप धारण कर और सन्निवेशगत होकर रंजकता और अदृष्ट अभ्युदय की उत्पत्ति करते हैं तब वे जाति कहलाए जाते हैं। आज के संदर्भ में कहे तो वे ‘राग’ बन जाते हैं। स्वरों के विभिन्न प्रकारों से लगाव के कारण अनेकों राग उत्पन्न होते हैं व प्रत्येक राग अपनी विशिष्ट पहचान विकसित करते हैं।

“विचित्रवर्णालंकारो विशेषो यो ध्वनिरिह

ग्रहादि स्वर संदर्भो रञ्जको राग उच्यते॥”²

अर्थात्-“जिस ध्वनि की रचना में विचित्र अर्थात् विभिन्न वर्ण तथा अलंकार हो तथा जिसमें ग्रहादि स्वरों का संदर्भ हो और जो रंजक हो वह राग है।”³

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)



लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

“दशलक्षणलक्षितं गीतं राग शब्दाभिधेयम्”⁴

मतंग मुनि ने दस लक्षणों से समृद्ध गीत को राग कहा है। भरत मुनि द्वारा नाट्यशास्त्र के 28वें अध्याय में सर्वप्रथम जाति के दस लक्षणों के विषय में उल्लेख है जो राग के भी लक्षण माने गए यथा-

“दशकं जाति लक्षणम्-ग्रहांश तारमन्त्रवै च न्यासोडपन्यास।

एव च अल्पत्वं च ब हुत्वं षाडवौडुविते तथा॥”⁵

उपर्युक्त जाति के 10 लक्षणों - ग्रंह, अंश, न्यास, अपन्यास, अल्पतत्त्व, बहुत्व, षाडव तथा औडव में पं. शारंगदेव ने तीन लक्षण और समाहित किए-संन्यास, विन्यास एवं अंतर्माग। जाति के लक्षण रागों में लक्षित होने के साथ रागों को समृद्ध, सौंदर्यपूर्ण बनाने एवं रागों की स्पष्टता हेतु रागों में अन्य कुछ मुख्य तत्वों का भी प्रयोग होता है जिससे राग की निज पहचान स्पष्ट होती है।

मुख्य शब्दावली :

राग संगीत, आवश्यक तत्व, कण, मीड़, आंदोलन,

राग गायन में विशिष्ट अलंकरण तत्व जैसे, कण, मीड़, गमक खटका, मुर्की, आंदोलन आदि प्रयोग होते हैं। इन तत्वों के विभिन्न प्रयोगों व लगाव से राग की विशिष्ट पहचान विकसित होती है जिससे वह अन्य रागों से पृथक् दृष्टव्य होता है व राग की सौंदर्यवृद्धि भी होती है। इन्हीं तत्वों के विभिन्न प्रयोगों से किसी राग का स्वभाव अर्थात् चंचलता या गम्भीरता का भान भी लगाया जा सकता है। इस शोध-पत्र द्वारा गायकी अथवा राग के तीन मुख्य तत्व: कण, मीड़ व आंदोलनों के विभिन्न रागों में प्रयोग एवं महत्व पर विश्लेषणात्मक विवेचन करने का प्रयास किया जा रहा है।

कण स्वर :

किसी भी प्रमुख स्वर को उसके पूर्व अथवा परवर्ती स्वर के स्पर्श द्वारा अलंकृत करने पर उक्त स्पर्शित स्वर को ही कण स्वर कहा जाता है। यह एक अलंकारिक स्वर प्रयोग है। “कणों का प्रयोग राग गायन में बहुत महत्वपूर्ण होता है। कण सबसे महत्वपूर्ण अलंकारिक तत्व है जो रागों को स्पष्ट करने में व रागों को रंजक बनाने में सबसे बड़ी भूमिका निभाता है। कणों के प्रयोग से रागों को स्पष्ट रूप से सामने लाया जा सकता है।”⁶ निम्नलिखित उदाहरणार्थ

कुछ राग दिए गए हैं जिनमें कण प्रयोग उक्त राग की पहचान चिन्ह स्थापित हो गए हैं जो कि संगीत जगत के विभिन्न कलाकारों द्वारा गाया बजाया जाता है व सर्वसम्मत है :

अगर हम राग कल्याण (राग यमम) को बिना कणों के गाते हैं जैसे नि रे ग रे नि रे सा, नि रे ग मे प रे ग रे नि ध नि रे सा, तो ये राग के स्वर हो गए, राग की सजावट नहीं हुई, इसमें सुंदरता नहीं है क्योंकि इनमें कणों का प्रयोग नहीं हो रहा है। “कण से नहीं गाया जाए तो राग का प्रादुर्भाव या राग का स्पष्टीकरण ठीक से नहीं हो पाएगा। इन्हीं स्वर संगतियों में हम अगर कणों का प्रयोग करते हैं जैसे- नि रे ग सा ग रे, नि रे ग सा, इस प्रकार कणों के प्रयोग से यमन राग और अधिक स्पष्ट हो जाता है।”⁷ संगीतांजलि ग्रंथ में पं. ओंकार नाथ ठाकुर जी ने निम्न प्रकार से कल्याण राग में कण प्रयोग दिखाया है- नि ध नि रे सा व धमे नि ध नि रे सा, व पं. रामाश्रय झा जी ने प रे, व ग मे प रे सा, इस तरह से कहा है।

राग मारू बिहाग की मुख्य संगति नि सा ग रे सा में ऋषभ में यदि सा का कण ना लगाया जाए तो मारू बिहाग नहीं लगेगा व ‘नि ण ध निमे प ग, मे ग

‘सा’ संगति में भी धैवत पर सा का व तीव्र मध्यम पर नि के कण प्रयोग से मारू बिहाग का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है जो कि मारू बिहाग के समप्रकृतिक राग मार्ग बिहाग में प्रयोग नहीं होता। जिस कारण मारू बिहाग राग, मार्ग बिहाग से पृथक् दिखता है। पं. रामाश्रय झा ने अभिनव गीतांजलि में उल्लेख भी किया है कि “चूँकि मारू बिहाग में कल्याण अंग है अतः ऋषभ दीर्घ किया जाता है। जब भी ऋषभ लगाया जाता है तो स्पष्ट रूप से अथवा कण रूप से षड्ज पहले लगाकर फिर ऋषभ को गाया जाता है यथा- मे ग सा।”⁸ पं. नारायण लक्ष्मण गुणे जी ने भी अपने पुस्तक संगीत प्रवीण दर्शिका, भाग 1 में राग मारू बिहाग में रे पर सा का कण दिखाया है। राग मारू बिहाग की भाँति राग मधुवंती में भी ‘मे ग सा’ कहते समय रे पर सा का कण एवं ‘नि संधि मे प ग, मे ग सा’ राग का पहचान बन गया है जो कि इसके समप्रकृतिक राग, राग मुलतानी में प्रयोग नहीं होता है।

कान्हड़ा अंग में भी ‘गु स म सा’ कहते समय ऋषभ पर षड्ज का कण महत्वपूर्ण स्थान रखता है। राग नायकी कान्हड़ा में तार सां से नि गाते समय पहले पंचम को कण स्वरूप स्पर्श करते हैं तत्पश्चात् निषाद कहते हैं, यह कण प्रयोग नायकी कान्हड़ा की रंजकता बढ़ाता है व राग स्पष्ट करता है। राग मुलतानी में ‘नि सा गै’ कहते समय तीव्र मध्यम का कण गंधार में मुलतानी राग को स्पष्ट करता है।

राग आसावरी व राग जौनपुरी में सा रे म प का सीधा प्रयोग नहीं करेंगे। सा रे म प कहते समय रे पर म का कण प्रयोग के बिना आसावरी व जौनपुरी का स्पष्टीकरण पूर्ण रूप से नहीं हो पाएगा। राग जयजयवंती में रे गु रे सा, सा नि सा ध नि रे या प रे गाते समय रे पर शुद्ध गंधार का कण जयजयवंती की पहचान बन चुका है जो एक क्षण में राग स्पष्ट कर देता है। राग आभोगी कान्हड़ा में ‘म संधि स

सां’ राग कहते समय ध पर सां का जोरदार विशिष्ट कण उच्चारण आभोगी कान्हड़ा में जान पैदा कर देता है। “राग पूर्वी में नि सा रे ग मे ग म गै रे सा, शुद्ध मध्यम के बाद आने वाले गंधार पर ऋषभ का कण प्रयोग पूर्वी राग की मुख्य पहचान है जिसका प्रयोग पं. ओंकार नाथ ठाकुर जी की संगीतांजलि पुस्तक भाग-6 में भिन्न-भिन्न स्थानों में उल्लेखित है जो पूर्वी को राग परज से अलग करता है। हमीर राग में ग म संधि गाते समय धैवत पर निषाद का कण महत्वपूर्ण है। श्याम कल्याण में नि सारेमेप, गमपगमरे, रे नि सा गाते समय निषाद में गंधार का कण राग सोरठ की छाया दिखाता हुआ अति मधुर श्रव्य होता है। राग शंकरा गाते समय सा गै प, प गै सा, आरोह में गंधार पर पंचम का कण व अवरोह में गंधार पर ऋषभ का कण अति वैचित्र्यदायक व शंकरा को तुरंत स्पष्ट कर देने वाला है। कोई भी कलाकार इन कणों को गाए बिना रह नहीं सकेगा। स्वतः ही कण प्रयोग करने लगेगा, क्योंकि लगेगा अगर ऐसा नहीं किया जाएगा तो राग के साथ अन्याय होगा व राग में कुछ कमी लेकर गाया जा रहा है, ऐसा प्रतीत होगा।”⁹ इसलिए प्रत्येक रागों के जो विशिष्ट कण प्रयोग जो पूर्ववर्ती समय से चले आ रहे हैं, अपनी रंजकता व कण विशिष्टता से संगीत साधकों के समक्ष आज भी जीवित हैं।

मींड :

कुछ रागों की पहचान उनकी गम्भीरता में निहित होती है। मींड का प्रयोग ऐसे रागों को गम्भीर बनाता है। मींड भारतीय संगीत का एक विशिष्ट अलंकरण है। मींड उस क्रिया को कहते हैं, जिसमें एक स्वर को दूसरे स्वर तक अखण्डित रूप से खींचा जाता है। “एक स्वर के खत्म होते होते एक मुलायम मींड लेकर पहला स्वर दूसरे स्वर में ही विलीन हो जाता है। इन दो स्वरों के बीच जोड़ किस स्थान पर आया, ये पता ही नहीं लगता”¹⁰ जो गाने बजाने वाले से लेकर श्रोतागण सभी के मन को स्पर्श करते हुए

निकलती है। “मींड़ लेते हुए किसी स्वर को कितना दिखाया जाना है अर्थात् बीच के स्वर अथवा स्वरों को बिलकुल लुप्त कर देना है या थोड़ा छाया रूप में दिखाना है, इन बातों का ध्यान रागों के अनूकूल रखना अति आवश्यक है।”¹¹ मींड़ दो तरह से गाया-बजाया जाता है: साधारण मींड़-भीषण मींड़। सामान्य रूप से लगभग सभी रागों में मींड़ का प्रयोग किया जाता है। जिन रागों में मींड़ से ही गाने का प्रावधान है या मींड़ ही जिन रागों की विशेषता है, मींड़ से ही जो राग स्पष्ट होते हैं व मींड़ से जिन रागों की प्रकृति सामने आती है, ऐसे रागों में भीषण मींड़ अधिक प्रदर्शित होती है। जैसे राग पूरिया, शुद्ध कल्याण, बसंत, मियाँ मल्हार, मेघ मल्हार, सूर मल्हार, केदार, भटियार, राग भैरव आदि।

जैसे राग भैरव में मध्यम से ऋषभ तक मींड़ भैरवांग प्रदर्शित करती है। संगीतज्ञों में पं. ओंकारनाथ ठाकुर जी ने उल्लेख किया है- “ऋषभ पर न्यास करते समय मध्यम से गंभीरता पूर्वक मींड़ से गंधार को लेते हुए उतरना चाहिए। वहीं पर भैरव का भैरवत्व दृष्टिगोचर होगा।”¹² पं. विष्णु नारायण भातखण्डे जी ने भी मध्यम से ऋषभ की मींड़ को सुंदर कहा है। शुद्ध कल्याण में प मे ग गाते समय पंचम से गंधार आते समय तीव्र मध्यम मींड़ में दिखाना चाहिए व सां नि ध आते समय निषाद स्वर को मींड़ में लेना चाहिए। यही मींड़ अगर भूपाली राग में लेंगे तो प ग के मींड़ में तीव्र मध्यम व सां ध के मींड़ में निषाद नहीं दिखेगा जो शुद्ध कल्याण को भूपाली से अलग करता है।

राग बिहाग में गंधार से षड्ज आते समय ऋषभ को मींड़ में दिखाते हुए गाना, निषाद से पंचम आते हुए धैवत को मींड़ में प्रदर्शित करना बिहाग की पहचान है। पूरिया राग में मींड़ युक्त ‘नि मे ग’ कहते हुए पूरिया स्पष्ट होता है। राग पूरिया मींड़ प्रधान राग है जिस कारण यह राग, राग मारवा से भिन्न दिखता है क्योंकि मारवा मींड़ रहित राग है जिसमें खड़े स्वरों का प्रयोग होता है।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

“राग बसंत भी मींड़ युक्त गम्भीर राग है, यदि बसंत की सारी मींड़ निकालकर गाया जाए तो एकदम ‘परज’ दिखने लगेगा।”¹³ बसंत राग में ‘ध सां मे ध रे - सां, रे नि ध प’ कहते हुए तार सां से तीव्र मध्यम तक मींड़ से आना, ध से तार सप्तक के ऋषभ तक मींड़ खींचकर ले जाना बसंत व मींड़ युक्त रे नि ध प कहना राग की मुख्य पहचान में से एक है। बसंत का मींड़ युक्त स्वरूप इस राग को परज से भिन्न दिखाता है। पं. नारायण लक्ष्मण गुणे जी ने संगीत प्रभाकर दर्शिका में उल्लेख किया है- “यदि राग परज को विलम्बित और मींड़ युक्त गाया जाए तो एकदम बसन्त राग के पास आएगा अतः ऐसा न करने की सावधानी रखना चाहिए।”¹⁴

मियाँ मल्हार में शुद्ध निषाद से कोमल निषाद फिर कोमल निषाद से शुद्ध निषाद मींड़ से ही गायन होता है यहाँ तक कि कोमल नि से शुद्ध नि होते हुए सां तक मींड़ से ही चले जाते हैं। मियाँ मल्हार में ‘नि स ध नि सां’ का मींड़ युक्त प्रयोग होता है, यही संगति बहार में मींड़ रहित होती है। यदि मींड़ हटा देंगे तो बहार की इस संगति और मियाँ मल्हार की संगति में ज्यादा अंतर नहीं रह जाएगा।

सूर मल्हार में ‘(सां) नि म नि ध प’ मींड़ युक्त संगति कहते हैं तो सूर मल्हार अत्यंत शोभायमान हो जाता है। राग केदार में ‘मे प ध प - नि ध म’ संगति में मींड़ युक्त ध म अति मनमोहक प्रतीत होता है व केदार को तुरंत स्पष्ट कर देता है। राग भटियार में मध्य सा या तार सां से ‘सा नि ध प’ गाते समय धैवत से मध्यम की मींड़ में पंचम दिखाना अत्यंत माधुर्य भरा लगता है व ‘नि ध प, ध म, प ग, प ग रे सा, यह मींड़ युक्त संगति भी भटियार राग को अति मनमोहक व पूर्ण रूप से स्पष्ट कर देती है।

इस प्रकार मींड़, राग को और अधिक सुन्दर, गंभीर व गहरा करने में सहायक होता है। “मींड़ विनीत भावों को व्यक्त करती है। यह रक्ति, शोक, भक्ति और शांत आदि स्थायी भावों को संचारित होने

में सहायता करती है। यह विलम्बित लय की क्रिया है।”¹⁵

आंदोलन :

आंदोलन अलंकारिक तत्वों का वो भाग है जो केवल विशिष्ट रागों में ही प्रयोग होता है व उस राग की पहचान बन जाता है अर्थात् आंदोलन से ही राग की पहचान होने लगती है। जिस राग में जो स्वर आंदोलित होते हैं वे इतने आवश्यक हैं कि अगर आंदोलन नहीं किया तो राग ही नहीं बनेंगे। आंदोलन के लिए न्यूनतम दो बार आर्वतन घूमना चाहिए व अधिकतम 3, 4, 5 कितनी भी बार किया जा सकता है। दो या दो से अधिक बार आंदोलन होने वाले स्वर को अगले या पिछले स्वर से स्पर्श कराते हुए आवाज़ को गोल गोल निरंतर बिना आवाज़ टूटे घुमाने को आंदोलन कहते हैं। आंदोलन का साक्षात् उदाहरण है राग भैरव, राग दरबारी कान्हड़ा, राग मियां मल्हार, राग मेघ मल्हार आदि।

राग भैरव में अति कोमल ऋषभ और धैवत का आंदोलन भैरव राग की पहचान है। क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग-2 में पं. विष्णु नारायण भातखण्डे जी ने भी उल्लेख किया है “भैरव राग की सब विशेषता ‘रे, ध्र’ स्वरों पर निर्भर करती है। इन स्वरों के आंदोलन से यह राग अधिक रक्तिदायक होता है।”¹⁶ भैरव राग में अति कोमल ऋषभ को गंधार से स्पर्श कराते हुए आंदोलित किया जाता है। “जिसके कारण ऋषभ के आंदोलित उच्चारण में अल्प प्रमाण में गंधार स्वर का भी भास होता है। यथा स रे गs गs सा, व ग म रे रे गs गs सा। यह स्वर भैरव राग का संवादी एवं उक्त समूह रागांग वाचक स्वर समूह है अर्थात् पूर्वांग में भैरवांग को उत्पन्न करने का श्रेय आंदोलित अति कोमल ऋषभ को ही जाता है।”¹⁷ धैवत स्वर भैरव के उत्तरांग स्वरूप को स्पष्टता प्रदान करने में आंदोलित व वादित्व गुण से सुसज्जित होता है, “यथा ‘ग म नि ध्र नि ध्र नि ध्र प / नि ध्र नि ध्र नि ध्र नि सां अथवा सां नि ध्र नि ध्र नि ध्र प, इस प्रकार धैवत,

शुद्ध व कोमल निषाद के कण से युक्त आंदोलन रूप में प्रयोग होता है।”¹⁸ “कोमल निषाद का अल्प स्पर्श इस राग में ग्राह माना जाता है।”¹⁹ भैरव अंग के अन्य रागों में भी आंदोलन का प्रभाव रहता है जैसे अहीर भैरव में ऋषभ का आंदोलन, आनंद भैरव में ऋषभ का आंदोलन, नट भैरव में धैवत का आंदोलन आदि परिलक्षित होता है। रामकली राग की प्रकृति चंचल होने से रामकली में रे-ध्र का आंदोलन भी चंचलता से होता है।

अति कोमल गंधार व धैवत का आंदोलन व आंदोलित ‘गु गs गs म रे सा’ दरबारी कान्हड़ा की विशेषता है। संगीत प्रभाकर दर्शिका में पं. नारायण लक्ष्मण गुणे जी ने कहा है- “दरबारी कान्हड़ा में गंधार आंदोलित तथा अति कोमल लगता है। इस गंधार से ही दरबारी कान्हड़ा तुरंत पहचाना जाता है।”²⁰ “दरबारी में दो तरह से अति कोमल गंधार का आंदोलन होगा। पहला आंदोलन अति कोमल गंधार को आंदोलित करते समय ऋषभ स्वर से स्पर्श करते हुए आंदोलन करते हैं जिससे गंधार का अति कोमलत्व ऊभर के सामने आता है। दूसरा आंदोलन मध्यम स्वर से स्पर्श करते हुए किया जाता है जिससे आंदोलित अति कोमल गंधार युक्त ‘गु म रे सा’ स्वर संगति जो कान्हड़ा अंग है वो और अधिक स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रकार अतिकोमल धैवत का आंदोलन भी होता है। पहली बार पंचम से स्पर्श करते हुए 2 या 3 बार धैवत का आंदोलन किया जाता है फिर कोमल निषाद से स्पर्श कराते हुए आंदोलन करते हैं।”²¹ कान्हड़ा के अन्य प्रकारों में भी गंधार अथवा धैवत का आंदोलन दृष्टव्य होता है जैसे- अडाना कान्हड़ा में गंधार धैवत का आंदोलन चंचलता से किया जाता है। नायकी कान्हड़ा, आभोगी कान्हड़ा, शहाना कान्हड़ा, सूहा कान्हड़ा, सुघरई कान्हड़ा व काफी कान्हड़ा में गंधार का आंदोलन होता है। कौशी कान्हड़ा में गंधार कान्हड़ा अंग से व धैवत मालकौंस अंग से आंदोलित होते हैं।

राग मेघ मल्हार में 'म रे स स स प' स्वर संगति द्वारा ऋषभ का अति वैचित्र्यदायक आंदोलन मध्यम को स्पर्श करते हुए दिखाया जाता है। राग मियाँ मल्हार में कोमल गंधार का आंदोलन मध्यम से स्पर्श करते हुए किया जाता है व कोमल निषाद का आंदोलन धैवत से स्पर्श करते हुए किया जाता है। मियाँ की सारंग में भी धैवत स्पर्श करते हुए कोमल निषाद का आंदोलन दिखाया जाता है, यथा "म प नि ष नि ष नि प एवं म प नि ष नि सां, इस प्रकार मियाँ मल्हार की भाँति आंदोलन होता है। कुछ रागों में आंदोलन गम्भीरता से ना लेकर साधारण रूप से लिया जाता है जैसे राग मालकौश में कोमल गंधार, धैवत व निषाद का आंदोलन आवश्यक प्रतीत होता है लेकिन साधारण आंदोलन ही प्रयुक्त होता है। राग चंद्रकौश में भी कोमल गंधार व धैवत का साधारण आंदोलन प्रयुक्त होगा। इसी प्रकार राग बागेश्री में कोमल गंधार का आंदोलन साधारण रूप से प्रयोग होगा।

अतः मींड़ की ही भाँति आंदोलन द्वारा भी रागों में गम्भीरता, गहराई व रंजकता का सुंदर समन्वय होता है। आंदोलन द्वारा जिस प्रकार आंदोलित स्वर दूसरे स्वर को स्पर्श करते हुए आंदोलित होता है ऐसा प्रतीत होता है मानो एक स्वर दूसरे स्वर को मना रहा हो, अपने राग (धुन) में रागमय होने (रमने) के लिए पुकार रहा हो, ये लेखिका के भाव मात्र हैं।

निष्कर्ष :

राग एवं स्वरों की विस्तारशीलता एवं विविधता इतनी अधिक है कि इस शोध पत्र में सम्मिलित रागों के अतिरिक्त अन्य और राग भी अवश्य ही हैं जिनमें कण, मींड़ एवं आंदोलनों का प्रयोग अल्पता अथवा बहुतायत में राग के स्वरूप के अनुकूल प्राप्त होंगे व राग को और अधिक स्पष्ट करेंगे। अतः रागों की पहचान उस राग में प्रयोग होने वाले स्वरों (शुद्ध अथवा विकृत) से एवं उस राग की मुख्य स्वर संगतियों व मुख्य रागांगों से तो होती ही है किंतु इनके अतिरिक्त

भी जो गायकी तत्व या राग तत्व अमुक रागों में प्रयोग होते हैं उन रागों में ऐसे राग तत्व भी राग की पहचान अथवा मुख्य राग चिह्न बन जाते हैं। कह सकते हैं कि स्वर एवं राग अपने आप में सौंदर्यपूर्ण एवं भावपूर्ण तो हैं ही किंतु कण, मींड़ एवं आंदोलन राग के ऐसे तत्व हैं जो राग की सौंदर्यवृद्धि करने के साथ प्रत्येक राग को अपनी निज पहचान भी प्रदान करते हैं जिससे प्रत्येक राग अन्य रागों से भिन्न दिखाई पड़ता है। अर्थात् यही मुख्य तत्व एक राग को उसके समीपवर्ती राग से भी भिन्न बनाते हैं व पृथक रूप प्रदान करते हैं। अतः इन राग तत्वों द्वारा रागों को मुख्यतः चार प्रकार से फलीभूत कर सकते हैं :

- 1) राग स्पष्टीकरण करना
- 2) राग का सौंदर्यवर्धन करना
- 3) राग का स्वभाव स्पष्ट करना (गम्भीर अथवा चंचल)।
- 4) समान अथवा समप्राकृतिक रागों से पृथक करना।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. राजन, रेणु; हिंदुस्तानी संगीत में राग लक्षण; संस्करण 1996; प्रकाशक: राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली; पृष्ठ-9 (भरत कोष पृष्ठ-227 से उद्धृत)।
2. राजन, रेणु; हिंदुस्तानी संगीत में राग लक्षण; संस्करण 1996; प्रकाशक: राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली; पृष्ठ-29 (संगीतराज पाठ्य रत्नकोश संज्ञानाम्, तृतीय परीक्षणम्, पृष्ठ-14 से उद्धृत)।
3. राजन, रेणु; हिंदुस्तानी संगीत में राग लक्षण; संस्करण 1996; प्रकाशक: राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली; पृष्ठ-29।
4. वही; पृष्ठ-50; मतंग, बृहदेशी, 1975, पृ-25 से उद्धृत)।
5. वही; पृष्ठ-52; भरत, नाट्यशास्त्र, अध्याय-28, पृष्ठ-43 से उद्धृत)।
6. अवस्थी, श्री अजय प्रकाश; साक्षात्कार : संगीत शिक्षक एवं गुरु; दिनांक 12/08/25
7. वही;

8. झा, पं. रामाश्रय; अभिनव गीतांजलि, भाग-1; अष्टम् संस्करण; संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद; पृष्ठ-179।
9. अवस्थी, श्री अजय प्रकाश; साक्षात्कार, संगीत शिक्षक एवं गुरु; दिनांक-20/08/25
10. शर्मा, डॉ. स्वतंत्र; भारतीय संगीत : एक वैज्ञानिक विश्लेषण; प्रथम संस्करण-1986; टी. एन. भार्गव पब्लिकेशंस, इलाहाबाद ; पृष्ठ-268।
11. सक्सेना, डॉ. मधुबाला; ख्याल शैली का विकास; संस्करण 1985, विशाल पब्लिकेशन्स, कुरुक्षेत्र, पं.-118 (G.H. Ranade Hindustani Music, Pg-127 से उद्धृत)।
12. ठाकुर, पं. ओंकारनाथ; संगीतांजलि, भाग-3; पृष्ठ-1।
13. गुणे, पं. नारायण लक्ष्मण; संगीत प्रभाकर दर्शिका; संस्करण 2010; पाठक पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद; पृष्ठ-78।
14. बही; पृष्ठ-88।
15. मदन, डॉ. पन्ना लाल; संगीत शास्त्र विज्ञान; संस्करण-1991; अभिषेक पब्लिकेशन्स, चण्डीगढ़; पृष्ठ-12।
16. भातखण्डे, पं. विष्णु नारायण; क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग-2; संस्करण 2008 प्रकाशक: संगीत कार्यालय हाथरस; पृष्ठ-165।
17. झा, पं. रामाश्रय; अभिनव गीतांजलि, भाग-4; पंचम् संस्करण; संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद; पृष्ठ-3।
18. अवस्थी, श्री अजय प्रकाश; साक्षात्कार, संगीत शिक्षक एवं गुरु; दिनांक-25/08/25।
19. ठाकुर, पं. ओंकारनाथ; संगीतांजलि, भाग-3; पृष्ठ-2।
20. गुणे, पं. नारायण लक्ष्मण; संगीत प्रभाकर दर्शिका; संस्करण 2010; पाठक पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद; पृष्ठ-127।
21. अवस्थी, श्री अजय प्रकाश; साक्षात्कार, संगीत शिक्षक एवं गुरु; दिनांक-25/08/25।



Innovation in Digital Adaptations of Folk Painting Traditions

Prof. Shubham Shiva

*Incharge, Drawing and Painting Department
Dayanand Girls PG College, Kanpur*

This paper explores the transformation of Indian folk painting traditions in the digital age, with particular focus on how scroll-based and ritual art practices such as *Pattachitra*, *Patua* scrolls, *Madhubani*, *Warli* and *Aipan* are being adapted through digital media. While these practices historically thrived within local ritual, domestic, and performative contexts, they now exist in new digital forms: online archives, computer-aided design (CAD) adaptations, animation, virtual reality experiences and social media dissemination. Drawing upon recent field-based narratives and case studies. Digital tools simultaneously preserve and transform folk painting traditions. It argues that “digitization” is not a rupture but a negotiation of tradition and innovation, where artists, communities, and institutions actively shape the future of cultural heritage.

Indian folk painting traditions embody a deep connection between art, ritual, and community. They are not isolated aesthetic practices but part of living cultural ecosystems. Historically, *Pattachitra* scrolls narrated epics and devotional tales, *Madhubani* adorned walls and household spaces during rituals, *Warli* represented agricultural and social cycles, and *Aipan*

marked auspicious thresholds. These forms relied on handmade pigments, ritualized techniques, and embodied knowledge passed through families and communities.

Yet, as India entered the late twentieth and early twenty-first centuries, these traditions confronted new realities: shifting patronage, urbanization, globalization, and digital media. It was not just a technological change but a broader cultural negotiation. This paper traces how folk paintings are adapting to the digital domain-through social media, design software, digital archives, and immersive technologies-while also grappling with challenges of authenticity, intellectual property and cultural displacement.

Indian folk painting traditions have long emphasized continuity and ritual significance (Kramrisch, 1968; Archer, 1966). More recent studies highlight transitions from ritual to commodified contexts (Hauser, 1998, *Madhubani Art in the Marketplace*). In the digital humanities and cultural heritage fields, scholars such as Manovich and Bolter & Grusin argue that media transformations are acts of “remediation” where older forms are refashioned in new technologies. Applied

to folk art, digital adaptation becomes a form of cultural translation: preserving motifs but altering meanings.

Sharma (2016) documents the digitalization of Madhubani motifs for textile products through CAD. Mitra and Das (2025) analyse the role of folk motifs in social media campaigns for development discourse. Das Gupta (2022) shows how *Patua* scroll painters used digital circulation during COVID-19 to address public health. Meanwhile, projects like *Aipan VR* (Chaudhary et al., 2024) demonstrate immersive preservation strategies. Thus, the literature situates folk art's digital turn as both an opportunity and a site of contestation-raising questions of ownership, authenticity, and innovation.

In West Bengal, *Patua* artists traditionally combine scroll painting (*patachitra*) with sung narration (*patua gaan*). With the onset of COVID-19, their performance contexts-fairs, festivals and village gatherings-collapsed. To survive, artists created new scrolls depicting the virus, masks, and vaccination drives, circulating performances via WhatsApp, YouTube and Facebook (Das Gupta, 2022,). As one artist remarked: “Earlier we went to villages to sing and show our scrolls. Now my son records my song, and people watch on their phones. The audience is unseen, but larger.” (quoted in Zanatta et al. 61). This adaptation demonstrates both resilience and transformation: the traditional format (scroll and song) persists, but its medium and audience shift radically.

In another case - Madhubani art, originally painted on walls and ritual surfaces, has been adapted for global markets through textiles and prints. Sharma's 2016 study shows how motifs were digitized using CAD software, then printed on

sarees and kurtis. Respondents found these designs visually appealing and cost-effective, though critics note that handmade textures and ritual resonance are lost. The digitalization of Madhubani motifs illustrates how folk art enters fashion and consumer markets, raising intellectual property issues. Once motifs are digitalized, designers may appropriate them without artisan credit, risking the reduction of cultural heritage to decorative patterns.

Warli art, with its geometric human and animal figures, has become widely adapted for logos, advertisements, and app interfaces. Its minimalism suits digital media aesthetics. However, as one Warli painter from Dahanu region notes: “People like our drawings for packaging and websites, but they forget these are prayers for harvest and marriage.” This highlights the tension between symbolic meaning and aesthetic extraction. Digital use extends visibility but risks stripping cultural depth.

The Aipan art of Uttarakhand, traditionally practiced by women during auspicious occasions, faces decline as younger generations migrate. The *AipanVR* project (Chaudhary et al., 2024) documents motifs and contexts in a virtual reality environment, enabling users to experience the art interactively. This is an example of how digital technology is not merely a dissemination tool but an immersive pedagogy and preservation mechanism. Yet, critics caution that VR may “freeze” traditions into static forms, detaching them from their living social contexts.

These four case studies reveal convergent themes of :

Preservation through Innovation :

Digital adaptation ensures survival-*Patua* scrolls reach global audiences, Aipan art is preserved through VR.

Loss of Materiality and Context : Handmade textures, ritual functions and performative contexts are difficult to reproduce digitally.

Intellectual Property Concerns : Digital motifs are easily copied, raising questions of authorship and fair compensation (Sharma, 2016).

Cultural Hybridity : Hybridity (Bhabha) explains how tradition and innovation co-exist. Madhubani in CAD is neither fully “authentic” nor entirely “modern” but a hybrid form that negotiates both.

Unequal Digital Access : Not all artists have the means to digitize their work. Those with access to smartphones and networks thrive; others risk marginalization (Zanatta et al. 64).

Thus, the digitization is not a linear transition but a negotiation marked by gains, losses and ongoing debates. The digital transformation of Indian folk painting traditions reveals the resilience of living heritage. Far from disappearing, these art forms adapt to new media, reaching audiences unimaginable to earlier generations. Yet, this adaptation is fraught with ethical and cultural questions.

The challenge for scholars, policymakers and cultural institutions is to ensure that digital innovation does not strip these traditions of their depth. Instead, digital media must be harnessed in ways that amplify artisans’ voices, preserve contextual meaning and create sustainable futures for communities. Therefore, this journey of digitization is, therefore, not a rupture but

a rearticulation of tradition—one that demands careful balance between innovation and authenticity.

References :

1. Archer, W. G. *Madhubani Painting*. Faber and Faber, 1966.
2. Bhabha, Homi K. *The Location of Culture*. Routledge, 1994.
3. Bolter, Jay David, and Richard Grusin. *Remediation: Understanding New Media*. MIT Press, 1999.
4. Chaudhary, Nishant, et al. “AipanVR: A Virtual Reality Experience for Preserving Uttarakhand’s Traditional Art Form.” *arXiv preprint*, 2024.
5. Das Gupta, Sanjukta. “From ‘Folk’ to Digital: Transformation of Bengal Patachitra Art in the Times of Coronavirus.” *Nordic Journal of Law and Social Research*, no. 12, 2022, pp. 39–62.
6. Hauser, Beatrix. *Madhubani Art: A Tradition Transformed*. Arnold, 1998.
7. Kramrisch, Stella. *Indian Traditions of Art*. Oxford University Press, 1968.
8. Manovich, Lev. *The Language of New Media*. MIT Press, 2001.
9. Mitra, Sumana, and Abhishek Das. “From Folk Art to Social Media: The Evolution of Visual Communication in Development Discourse in India.” ResearchGate, 2025.
10. Sharma, Ekta. “Digitalization of Motifs Based on Indian Folk Paintings through CAD and Their Adaptation on Apparels Using Digital Printing Technique.” *Research Journal of Family, Community and Consumer Sciences*, vol. 4, no. 1, 2016, pp. 1–3.
11. Zanatta, Manuela, et al. “Facing the Pandemic: A Perspective on Patachitra Artists of Bengal.” *Arts*, vol. 10, no. 3, 2021, Article 61.



राजस्थानी लोक संस्कृति एवं साहित्य (विजयदान देथा की कहानियों के विशेष संदर्भ में)

कोमल मीणा

शोधार्थी, हिंदी अध्ययन विभाग,
गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, वड़ोदरा

प्रो. विपुल कुमार

हिंदी अध्ययन विभाग,
गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, वड़ोदरा

शोध सार :

अपनी संस्कृति एवं साहित्य पर अभिमान का भाव राष्ट्रीय भावना को बलवान बनाता है। राजस्थानी लोक संस्कृति एवं साहित्य भारतीय सांस्कृतिक विरासत का एक समृद्ध और विविधतापूर्ण पक्ष है, जिसमें लोक-कथाएँ, गीत, नृत्य, रीति-रिवाज और सामाजिक मूल्य गहराई से समाहित हैं। इस शोध में विशेष रूप से प्रसिद्ध साहित्यकार विजयदान देथा की कहानियों के माध्यम से राजस्थानी लोक संस्कृति की पड़ताल की गई है। देथा की रचनाएँ न केवल लोक जीवन की सजीव झलक प्रस्तुत करती हैं, बल्कि सामाजिक संरचना, स्त्री-पुरुष संबंध, नैतिकता और मानवीय संवेदनाओं को भी उजागर करती हैं।

उनकी कहानियाँ मौखिक परंपरा से प्रेरित होकर आधुनिक साहित्यिक रूप में ढली हैं, जो लोक भाषा की सहजता और प्रतीकात्मकता को बनाए रखते हुए पाठकों को गहरे सांस्कृतिक अनुभव से जोड़ती हैं। यह शोध विजयदान देथा की कहानियों में निहित लोक तत्वों, मिथकों, प्रतीकों और सामाजिक विमर्श का विश्लेषण करता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उनका साहित्य राजस्थानी लोक संस्कृति का जीवंत दस्तावेज है।

बीज शब्द :

लोक, लोक-संस्कृति, लोक-साहित्य, लोक नृत्य, वेशभूषा, मौखिक परंपरा, स्त्री विमर्श, लोक भाषा, सामाजिक मूल्य, राजस्थान की परम्पराएं

प्रस्तावना :

मरुधरा का इतिहास रियासतों, वीरगाथाओं और व्यापार मार्गों का संगम रहा है। गुप्त वंश, प्रतिहार वंश, चौहान वंश, राठौड़ वंश जैसे वंशों ने स्थापत्य, साहित्य और लोक कलाओं को विकसित किया। रेगिस्तान का कठोर वातावरण यहां के लोक जीवन को कठोर भी बनाता है और मधुर भी। राजस्थान का रेगिस्तानी क्षेत्र अत्यधिक गर्मी, पानी की कमी, रेत

के तूफान और कठिन जीवन परिस्थितियों से भरा है। इन परिस्थितियों ने वहाँ के लोगों को संघर्षशील, परिश्रमी और सहनशील बनाया। कठिन परिस्थितियों के बावजूद, वहाँ के लोग अपने जीवन को संगीत, नृत्य, लोकगीत और लोककथाओं से मधुर बना लेते हैं। जैन साधुओं, सूफी संतों, सूफी-भक्ति आंदोलन तथा विदेशी व्यापारीयों आदि ने राजस्थान की सांस्कृतिक

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

17

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

तस्वीर को और भी रंगीन बनाया। इस मेल-जोल ने लोक साहित्य को केवल शौर्यगाथा या प्रेमकथा तक सीमित नहीं होने दिया, बल्कि उसमें सामाजिक न्याय, भक्ति और जीवन दर्शन के तत्व भी समाहित कर दिए।

राजस्थान की लोक संस्कृति और साहित्य में पीढ़ियों से बसाए गए आदर्श, विश्वास और भावनाएँ जिंदा हैं। मरुस्थल के वीरानपन में अंकुरित हुई यह संस्कृति न केवल स्थानीय जीवन का कथ्य है, बल्कि भारतीय विविधता का अनमोल प्रतीक भी है। विजयदान देथा का जन्म 1 सितम्बर 1926 में जोधपुर, राजस्थान में हुआ और उनका निधन 10 नवम्बर 2013 को हुआ। इनकी कहानियों में अक्सर सामाजिक असमानता व संघर्ष, लैंगिक न्याय और स्त्री स्वराज, पारिवारिक बंधन और त्याग, धार्मिक आस्थाएँ बनाम कुरीतियाँ, प्रकृति-माध्यमी जीवन दर्शन जैसे विषय देखे जा सकते हैं। इसी लोक संस्कृति को अपनी कहानियों में संजोकर रखने का श्रेय विजयदान देथा को जाता है। देथा ने राजस्थान की लोक गाथाओं, कहावतों और लोकनाट्यों का गहन अध्ययन किया और उन्हें आधुनिक पाठकों के समक्ष जीवंत किया। इसी के साथ उन्होंने मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूंढाड़ी जैसी बोलियों का साहित्यिक रूपांतरण कर स्थानीय बोलियों को विस्तृत पटल पर प्रस्तुत किया। यही कारण है कि राजस्थानी लोक साहित्य एवं संस्कृति को समझने के लिए विजयदान देथा की कहानियों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

विश्लेषण :

राजस्थानी लोक-साहित्य एवं लोक-संस्कृति पर कहानीकार विजयदान देथा की कहानियों को आधार बनाकर विचार करने से पूर्व कुछ शब्दों जैसे 'लोक' के अर्थ को समझ लेना आवश्यक है। व्युत्पत्ति के आधार पर 'लोक' का शाब्दिक अर्थ 'देखने वाला' होता है। लोक विद्वान डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लोक की व्याख्या इस प्रकार करते हैं- 'आधुनिक सभ्यता से दूर अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली तथाकथित अशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को लोक

कहते हैं, जिनका आचार-विचार एवं जीवन परंपरायुक्त नियमों से नियंत्रित होता है। जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन स्थिति में वर्तमान हैं, उन्हें लोक कहते हैं।' इस प्रकार लोक सदैव प्रकृति के सानिध्य में रहा है, उसके अनुभव नाना प्रकार के हैं।

विजयदान देथा के साहित्यिक अध्ययन में लोक-साहित्य एक महत्वपूर्ण शब्द है। कुछ विद्वान लोक-साहित्य को बिना अक्षरों (लिपिबद्धता से तात्पर्य) का साहित्य कहते हैं। क्योंकि यह लोक में मौखिक रूप में विद्यमान रहा है। डॉ. सोहनदान चारण इस विषय पर लिखते हैं कि 'लोक की शाश्वत अभिव्यक्ति-परम्परा ही लोक-साहित्य है।' अर्थात् लोक प्रतिदिन जिस प्रकार का जीवन-यापन करता है, उसी की अभिव्यक्ति अनेक रूपों में करता है। मुख्यतः लोक-साहित्य गद्य और पद्य रूपों में पाया जाता है। जिन्हें लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोक नाट्य और मुक्तक सहित पाँच भागों में बाँट कर देखते हैं। यहाँ लोक कथा को केन्द्रित कर राजस्थानी लोक-साहित्य पर प्रकाश डाला गया है। इसका कारण है कि राजस्थानी लोक कथाएँ जोकि लोक में मौखिक रूप में विद्यमान थीं उन्हें लिपिबद्ध कर विजयदान देथा ने लिखित रूप में प्रस्तुत किया। लोक-साहित्य का दायरा झोपड़ी से लेकर राजमहल तक फैला हुआ है। उनके पात्र लोक में व्याप्त प्रकृति के सभी रूपों के साथ-साथ सामान्य जन से लेकर राजपुरुष तक मौजूद हैं। इन कहानियों में लोक के आचार-विचार, रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, व्रत-त्यौहार आदि का प्रतिबिम्ब सहज ही देखा जा सकता है। 'ठाकुर का भूत' कहानी में विजयदान देथा की कहानियों के पात्र वैविध्य को देख सकते हैं- 'चौधरी बहुत जल्दी अकड़ आ गई रे! यह तो सपने में भी नहीं सोचा था कि तू गाँव-मालिक को इतनी जल्दी भूल जायेगा! अभी तो मरे हुए तीन पखवाड़े भी पूरे नहीं हुए।' उक्त कथन में दो पात्र मनुष्य और भूत हैं।

अगला पारिभाषिक शब्द है 'लोक-संस्कृति'। लोक चिंतक श्री मिथिलेश कुमार मिश्र 'संस्कृति' पर विचार करते हुए कहते हैं कि- "संस्कृति उस प्रक्रिया या व्यवस्था का संभावित अभिधान है जो समाज के सदस्य के रूप में एक मानव द्वारा प्रदत्त ज्ञान, विश्वास, कला, कानून, रीति-रिवाज, चरित्र संबंधी नियम एवं इतर अंगों एवं आदतों को समन्वित करती है। अर्थात् संस्कृति मानवता के समक्ष जीवन-नियामक उच्च आदर्श एवं लक्ष्य प्रस्तुत करती है जो मानव जीवन में प्रविष्ट होकर उसे नियंत्रित एवं नियमित करते हैं।" सरल शब्दों में जीवन के लम्बे संघर्ष के दौरान मनुष्य ने जो भी अनुभव अर्जित किए उनके निष्कर्ष को संस्कृति कहा जाता है। राजस्थानी लोक संस्कृति बहुरंगी प्रकृति की है। इसमें लोक का परिवेश, आदर्श, परम्परा, लोकाचार, पहनावा, धर्म, पराक्रम, बलिदान आदि समाहित है। यहाँ के संगीत में मांड गायिकी (इन लोक गीतों को राजपूत महाराजों के मनोरंजन के लिए गाया जाता था, लेकिन अब ये लोकगीत राजस्थान की धरोहर है), पणिहारी गीत (तालाब किनारे पानी भरती महिलाओं के संघर्ष और आशा से जुड़ा गीत), लंगा-मंगणियार (परिवार के पुरुष वादक जोकि राग-रागिनी की समृद्ध परंपरा निभाते हैं) आदि शामिल हैं। इसी प्रकार यहाँ के नृत्य में चरित्र, लय और उत्साह का अद्भुत मेल दिखता है। घूमर (लहराते घाघरे में महिलाओं का निरंतर चकरीदार घूमना), कालबेलिया (सांप जैसी शारीरिक हलचल के साथ कथक नृत्य का लयताल), तेरह ताली (13 तलों पर महिलाएँ अटूट तालबद्ध होकर प्रस्तुति देती हैं) आदि राजस्थान के प्रमुख लोक नृत्य हैं। राजस्थान के मेले न केवल तीज-त्यौहार हैं, बल्कि सामाजिक मेलजोल का माध्यम भी हैं। इनमें गणगौर (गौरी या पार्वती की आराधना, विवाहिताओं की सुख-समृद्धि की कामना), हरीताली तीज (वर्षा ऋतु आराधना, झूला झूलकर वर्षा का स्वागत), पुष्कर मेला (ऊँट मेला, धार्मिक स्नान

और व्यापार का संगम), मरुधर महोत्सव (डेजर्ट फेस्टिवल) (जैसलमेर की रेत पर ऊँट दौड़ स्पर्धा व लोक प्रस्तुतियाँ) आदि महत्वपूर्ण हैं। राजस्थानी पोशाकों में रंगों, कढ़ाई और आभूषणों का मेल लोक को सौम्यता के साथ बांधे रखता है। यहाँ महिलाएँ घाघरा-चोली, ओढ़नी, आरशिया, बंधेज, लेहरिया आदि पहनती हैं; वहीं पुरुष अंगरखा, धोती-पाजामा, विविध रंगों की पगड़ी आदि को धारण करते हैं। विजयदान देथा अपनी कहानियों में लोक के पहनावे और रहन-सहन को इतनी सूक्ष्मता से वर्णित करते हैं कि उसका जीवंत चित्र मानस पटल पर उभर आता है। जैसे वे 'केचुली' कहानी में नौजवान गूजर की वेशभूषा का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि "ईसर की तरह तराशी हुई गोरी व मजबूत कद-काठी। टूल का बड़े छोगे वाला साफा। लाल किनारी वाली रेजी की धोती। मगजीदार अंगरखी, दुहरे पुट्टे। गले में कंठी, ताँती और देवजी का फूल। खालिस सोने की साँकलियाँ। हाथों में चाँदी के नाहरमुखी कड़े, पैरों में कसीदे की सुरंगी जूतियाँ। साफे तक लंबी लाठी, ताँबे के तारों से गुथी हुई। दोनों ओर चाँदी के बंध।" आभूषणों में बाजूबंद, पायल, गुरकिया, पीकूचा; चाँदी, शीशा और कांच का मेल आदि प्रमुख हैं। राजस्थान की हस्तकला वैश्विक स्तर पर ख्याति प्राप्त कर चुकी है। इसमें ब्लू पॉटरी (जयपुर की कोबाल्ट नीली मिट्टी की बर्तनों की परंपरा), थेवा कला (थेवा कला जटिल चित्रों को प्रस्तुत करती है, यह लगभग कांच पर सोने की चित्रकारी की तरह है और यह टांकला नामक कलम जैसे उपकरण की मदद से की जाती है।), मिनीयेचर पेंटिंग (शाही दरबारों की शैली, पारदर्शी रेखांकन) आदि शामिल है।

इसी प्रकार राजस्थान के लोग खाने के भी शौकीन रहे हैं। 'इस्टूखौ' कहानी में लक्खी बंजारे के घर आने पर उसके लिए विशेष भोजन का प्रबंध किया जाता है जिसका वर्णन विजयदान देथा ने इस प्रकार किया है- "जब भी कोई तनू मेहमान अपने घर

आया है, बगुली के थन से दूध के साथ मक्खन भी झरता है। इसी मक्खन के घी से मालपूए बनाऊँगी। दूध से गेहूँ के दलिये की खीर बनाऊँगी और मेरा बेटा इस्टूखा बनाएगा कैर-साँगरी का साग। दिल की बजाय उसके हाथों में भी जादू है। और मैं बनाऊँगी लहसुन और बांटें हुए कूमटियों की चटनी।” उक्त कथन राजस्थान के पारम्परिक खान-पान को इंगित करता है।

लोक संस्कृति में परिवार समाज की धुरी होता है। इस दृष्टि से ‘गोगा रो जीमण’ संयुक्त परिवार का एक उदाहरण प्रस्तुत करता है जिसमें बिज्जी ने वर्णन किया है- “किणी गांव में एक मातबर चौधरी रैवतो हो जिणरै बेटा तीन। दो परण्या अर छोटकियो कंवारो। भरी तरी गवाड़ी। लांठी खेती। वित्त मवेशी मोकळा। चौधरी बाबा रै सै बातां रा थाट। हरख कोड सूं सगळा तिंवार मनावै। बेटां-बहुवां नै पूछ-पूछ जीमण-तैवड़ करै। सगळा भेळा बैठ जीमै।” उक्त कथन समाज में संयुक्त परिवार की संरचना को दर्शाता है।

विजयदान देथा ने लोक के सामाजिक जीवन में प्रचलित प्रथाओं को भी कथा-साहित्य में प्रकट किया है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही परम्पराओं रीति-रिवाजों, प्रथाओं आदि के प्रति लोक के सामाजिक जीवन में अटूट आस्था एवं विश्वास नज़र आता है। प्रचलित प्रथाओं का लोक निःसंकोच तन-मन से निर्वाह करता हुआ कथा-साहित्य में दिखाई देता है। प्रथाओं के सहारे लोक सामाजिक कार्यों को पूरा करता है। लोक में प्रचलित बाल-विवाह प्रथा, बहु-विवाह प्रथा, दहेज प्रथा, नाता प्रथा, घूँघट प्रथा, गोद प्रथा आदि को कथा-साहित्य रेखांकित करता है। लोक के सामाजिक जीवन में बाल विवाह प्रथा की भूमिका महत्वपूर्ण नज़र आती है। इस प्रथा के द्वारा लोक सामाजिक संबंधों को बढ़ाता हुआ तथा कर्तव्यों का निर्वाह करता हुआ दिखाई देता है। बाल-विवाह प्रथा को विजयदान देथा की ‘दूरी’ कहानी व्यक्त करती है- ‘डोकरी तो आज हुई है। पर साठ बरस

पहले कुलाँचें भरती नंग-धडंग तोंदल छोकरी ब्याह के बाद पहली मर्तबा नया वेश पहनकर ससुराल की अजानी डगर खाना हुई, तब सचमुच वह आठ बरस की ही थी।’

लोक में जीवन यापन करने वाली जातियों व उनसे संबंधित व्यवसायों को भी विजयदान देथा की कहानियों में अभिव्यक्ति मिली है। कृषि, पशु-पालन, व्यापार आदि कार्यों में विशेष भूमिका निभाने वाली उच्चवर्ग से संबंधित जातियों को भी कहानियाँ व्यक्त करती हैं। कृषि, पशु-पालन से संबंध रखने वाली गूजर जाति को देथा की ‘केंचुली’ कहानी व्यक्त करती है- “उपयुक्त समय पर गूजर का गौना हुआ। गौने के साथ ही समूचे ठिकाने में यह बात हवा के साथ फैल गयी कि ऐसी खूबसूरत गूजरी न तो देखी न ही सुनी। साक्षात् ईसर-गणगौर की जोड़ी। मानो विधाता ने एक-दूसरे की खातिर ही इतनी कारीगरी की हो!” किसान के लिये कृषि और पशुपालन जीवन यापन तथा धन संचय करने का एक महत्वपूर्ण साधन है।

निष्कर्ष :

राजस्थानी लोक संस्कृति एवं साहित्य की विविधता में विजयदान देथा का योगदान अमर है। उनकी कहानियों ने मरुधरा की लोक संस्कृति को आधुनिक जनमानस तक पहुंचाया। संगीत, नृत्य, स्थापत्य, वस्त्र-कलाओं के साथ-साथ लोक साहित्य भी राजस्थान की पहचान हैं। देथा ने इन कहानियों को किताबों, रंगमंच और फिल्मों का रूप देकर विश्वव्यापी मान्यता दिलाई। आने वाली पीढ़ियों के लिए यही चुनौती है कि वे इस धरोहर को न केवल अपने स्मरण में रखें, बल्कि नए रूपों में उसे आगे बढ़ाएं।

इस प्रकार, विजयदान देथा की रचनाएँ राजस्थानी लोक साहित्य को एक नई दिशा देती हैं और यह सिद्ध करती हैं कि लोक संस्कृति केवल अतीत की धरोहर नहीं है, बल्कि वर्तमान की प्रेरणा भी है।

ग्रन्थ सूची :

1. लोक साहित्य की भूमिका, कृष्णदेव उपाध्याय, लोकभारती प्रकाशन, वर्ष-2014।
2. राजस्थानी लोक साहित्य का सैधान्तिक विवेचन, डॉ. सोहनदान चारण, राजस्थान साहित्य मंदिर प्रकाशन, वर्ष-1980।
3. छब्बीस कहानियाँ, विजयदान देथा, वाणी प्रकाशन, वर्ष-2020।
4. परिषद पत्रिका, अंक-1 से 4, वर्ष- 30/04/1997
5. त्रिवेणी, विजयदान देथा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन : नई दिल्ली, वर्ष- 2015।
6. बातों की बगिया भाग-8, विजयदान देथा, राजस्थानी ग्रंथागार, प्रथम संस्करण-2019।
7. विजयदान देथा की लोकप्रिय कहानियाँ, विजयदान देथा, प्रभात पेपरबैक्स, संस्करण- 2020।



Folk to Fiction : The Archetype of Savitri and Female Endurance in Manju Kapur's Custody

Dr. (Mrs.) B. Kavikashree

Assistant Professor of English
P.G. & Research Department of English
E. M. G. Yadava Women's College
(Affiliated to Madurai Kamaraj University)
Madurai-07, Tamil Nadu, India

Abstract :

Indian folklore and epics talk about Savitri as a symbol of endurance, sacrifice, and power. This image has had a huge impact on cultural ideas of what a woman should be like for a very long time. In Indian culture, the idea of an angry but devoted wife has stayed strong, and it has often been used to explain what a woman should do in a marriage and in the family. Folk expectations are brought up again in Manju Kapur's 2011 novel *Custody*, which takes place in modern-day India in cities where women have to deal with divorce, custody battles, infertility, and changes in their families. Shagun and Ishita, the two main female characters in the novel, are opposites of the Savitri ideal. Shagun tried to find a way to live with betrayal and social shame, while Ishita had to deal with personal lack and the shame of not having children. However, both of them fit into the story structure of endurance and silent persistence, which reminds us of the folk model and shows its flaws in a society that is quickly becoming more modernised. So, with this background, this paper, will discuss at how Kapur updates an Indian folk archetype for modern-day family stories and how her work differs from traditional forms. By putting *Custody* next to the theme of Savitri, the study will compare the endurance of the ideal of the suffering wife in *Custody* to that shown in oral and folk traditions in terms of how it applies to modern Indian women. In this way, the novel can be seen as a place where folk traditions and popular modern realism can mix. As a result, cultural archetypes still seem to have an effect on defining the female gender and shaping gendered imagery; they can still limit or define the gendered imagination. Further, the study tries to show how Kapur has changed the way folk patterns of endurance are shown by showing women in post-liberalized India who are torn between love, betrayal, and survival.

Keywords :

Savithri, ideal, family, modern women, cultural archetypes

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

22

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

Background of the Study :

The idea of a wife who suffers but stays strong has been a common theme in Indian myths, folklore, and oral history. Of all of these, the story of Savitri, whose strength and devotion help her bring her dead husband Yama back to life, is one of the most powerful cultural archetypes of women. To this day, this folk picture has shaped women's identities through the roles of sacrifice, patience and keeping the family together. Still, these archetypes are often reinterpreted and re-established based on the realities of the modern world since the rise of modern writing, especially that written by women. Manju Kapur, a famous Indian-English author, looks at these demands that were put on her through the lens of modern middle-class life in cities. Her 2011 novel, *Custody*, is about a marriage that falls apart, problems with child custody and the lives of women who deal with cheating, infertility, and becoming mothers. Kapur shows through characters like Shagun and Ishita how folk ideas about endurance still shape women's lives, even as social norms change. So, this work puts *Custody* in a bigger picture of how folk archetypes of perseverance are changing in modern household fiction, which shows how cultural heritage and personal choice are always at odds with each other.

Purpose of the Study :

The novel *Custody* by Manju Kapur will be looked at to see how it changes the folk archetype of Savitri, the patient and selfless wife. In particular, it looks at how Kapur's female characters deal with modern issues like divorce, infertility and child custody rights and how they either

follow or rebel against this set model of society. This is meant to show the similarities and differences between folklore and modern fiction in order to show how Kapur both criticises and updates the traditional stories of women who don't give up. This study is very important because it looks at *Custody* in terms of folk archetypes. The goal is to learn more about how cultural stories affect women's roles over time and how folk types change in literature, as well as how women are seen through changing cultural processes as seen through literature.

Research Methodology :

Literature and culture studies both are studied in this work in a way that is both qualitative and interpretative. To go into more detail about this claim, the main text, *Custody* (2011) by Manju Kapur, will be looked at in a close reading style to see how the female characters, especially Shagun and Ishita, either act out or subvert the folk element while admiring Savitri's endurance and sacrifices. Characterization, symbolism, and the repetition of themes will be used as literary tools to show how folk ideas still resonate in modern fiction. The study will use folk and mythological sources, like the story of Savitri and oral tradition that praises the struggling wife, to put these archetypal traits in context. A lot of secondary sources, like feminist criticism, folklore studies and critical work on Kapur, will be used to back up the analysis. The proposed method will help reach this goal by adding cultural and gender-related insights to the study of texts. It will also show how Kapur changes folk archetypes into subtle stories about women in modern India dealing with love, betrayal and survival.

Introduction :

Indian myths and epics praised the eternal image of Savitri, who became romanticized. She is now seen as the perfect example of a woman's strength, loyalty, and selfless love. The story of how she fights the god of death to bring her husband back to life has become part of the cultural consciousness, forming an archetype of a woman who is a victim and endures. This old-fashioned idea of the quiet, devoted wife is still strong, and for many, it tells women what roles they should play in marriage and in the family throughout their lives. But in India today, where things are changing quickly, the traditional values are put to the test by the problems that modern women face in the cities, where they have to deal with things like divorce, childlessness, and changes in the family structure.

Manju Kapur, an Indian author who is known all over the world for her novels, does a great job of dealing with this cultural legacy in her novel *Custody*. She looks at the traditional ideas of what a woman should be able to do in the dirty, emotional world of today's home. The novel *Custody* is about two women, Shagun and Ishita, who reflect and change different parts of the Savitri personality type through their appeals to it. In a child custody dispute, Shagun, the wronged wife, has to deal with social criticism and self-doubt in order to protect her children. Ishita, on the other hand, has to deal with a personal loss and the mental weight of not being able to have children. Kapur makes people aware of ideas that do not work and how they can affect women's lives through their different stories. Through comparing the timeless

story of endurance to the very real problems India is facing now that it has been liberalized, *Custody* becomes a very powerful intersection point between folklore and modern reality. It questions and recreates what it means to be a strong woman in a world that isn't nearly as epic as the ones in old stories.

Savitri the Archetype :

The image of Savitri is an important part of Indian folk art because it shows how strong women are through traits like endurance, loyalty, honesty and consistency. Based on the Mahabharata, the story is about a lady named Savitri who marries a prince named Satyavan, who is doomed to fail. Satyavan is doomed to die within a year, according to what the sage Narada told him. Savitri's choice is put to the ultimate test. Because she is spiritually disciplined and never gives up, she follows Yama, the god of death, and gets him into a logical argument with which she saves her husband's life. She is more than just a story about a devoted wife. It's a deep piece of writing that makes the idea of a woman being devoted so much that she'll even cross death seem beautiful. The devotion of Savitri is so strong that, as the scholar Wendy Doniger puts it, "Savitri's fidelity is so powerful that it can defeat even death". (Doniger, 2011, p. 288)

The figure of Savitri is so deeply rooted in culture that it is seen as the ideal woman, especially when she is married. Traditions, songs and festivals like Vat Purnima honour her story by remembering her success in the present. At this festival, married women fast and pray to the wife of the gods to make their husbands live long. She has become a living ideal because

of this popularization of icons. In the past, women were defined and centered around the values of selflessness, patience and keeping the family in balance. The archetype taught us that a woman's most powerful tool is not her physical strength or success in the outside world, but her inner strength and will to stick by her husband and family no matter what. This is made stronger by the stories and literature that tell of her fight against all odds. In many later versions of the story, for example, her desire to bring Satyavan back is a hard job that requires a lot of physical and mental strength. People pass down this picture of a good wife or woman from one generation to the next, and it still shapes social expectations and cultural ideas about what a good wife or woman should be. The strong attachment to the image shows a cultural belief that real femininity is linked to being able to go through unbearable pain for love and family. As scholar Uma Chakravarti states, "Savitri's story has been used to reinforce the subordinate position of women within patriarchal norms, framing their self-worth around their capacity to endure and sacrifice" (Chakravarti, 1993, p. 7). Without knowing about the author's family history and culture, it is impossible to understand how she deals with and changes these traditional ideas in her modern novels.

Contemporary Epic of Housewifery in Custody :

As a Modern Epic of Housewifery, Manju Kapur Custody re-enacts the epic fight of the Savitri myth, moving the big stakes out of the woods of mythology and into the dull but emotionally charged home life of modern cities. There is no longer a

direct fight with the god of death in this novel. Instead, there are more modern and less certain battles in the divorce court, the family hearth and the mind of the person. Kapur writes an epic for our time that is not so much about battles in the sky but about the intense and bitter truth of a marriage ending. In the story, the main conflict is Raman and Shagun's split up because of a bad custody fight over their two kids. This struggle, which is driven by deception and fighting urges, develops in a way that is reminiscent of the high emotional drama of traditional epics. It also finds a home in the complicated psychological and legal relationships that exist in modern middle-class life.

Kapur's brilliance lies in her ability to elevate this ordinary conflict to epic levels and give the characters' inner and outer struggles a touch of great importance. As Raman reflects on the disintegration of his marriage, he acknowledges the "slow, creeping death of love that was more terrifying than any sudden end" (Kapur, 2011, p. 57). This is another sad reminder of the myth's theme of death. One way to look at the fight over who gets the kids as the modern-day version of Savitri's fight over her husband's life is as a desperate, obsessive attempt to save an important part of herself and her whole self.

Another way this change is shown is by how much the novel focusses on the female characters Shagun and Ishita. They don't passively give up their lives; instead, they fight hard and not always in a clean way to stay alive and get in shape. Kapur says that Shagun's resolve is described as "an engine of pure spite and determination, fuelled by betrayal" (Kapur, 2011, p. 102).

In reality, this image is very different from the traditional stoicism of Savitri. It shows a much more complicated, flawed, and emotionally damaged view of female strength. The female continuation of the story, in which Ishita's husband openly supports and encourages her to have a child in a way that isn't the norm, is also a modernisation of the archetype because it shows that a woman's struggle to find her own inner, unique epos is just as much a story as it is a poem written with words instead of swords. Kapur shows that the hardest part of endurance isn't fighting the gods, but their own demons and the pressures of society. She does this by comparing the big myth of Savitri to small choices families make today.

Custody as a New Epic :

Manju Kapur's novel custody turns a normal family fight into a modern epic, by bringing the traditional folk tale to the Indian cityscape of today. A nasty divorce and custody fight is the main conflict in the novel Custody. It is like the epic quest but set in the present day. The people in Kapur's works don't fight someone like Yama; instead, they fight the law, social norms, and extreme betrayal of their own selves. By moving between the realistic landscapes of a war and the emotional chaos of a broken home, the novel shows that it is a domestic epic. For example, the story goes into great detail about how the breakup of Shagun and Raman's marriage affected their mental and emotional health. This gives the story the weight of an epic tale, where the biggest battles happen not just inside the house but also within each person. In a brilliant move, Kapur makes this ordinary setting into a very important

one when the fight over the children turns into a fight over identity and life.

Shagun : The Weak Wife in a new form :

Shagun is a very subtle and sophisticated take on the standard archetype of the wife who is suffering like Savitri. First, she fits the cliched victim role of having to deal with the shame of her husband Raman cheating on her with his coworker Ishita. In the beginning, her sadness and shame can be linked to the hurt part of the ideal folk, which basically makes her a part of Indian custom for the people who read it. That being said, Kapur breaks this part when he does not let Shagun be a passive victim. Her pain is not a passive acceptance of quiet; it is a violent and angry fight over her children. Her fight in court over who gets to keep control of her child is like Savitri's fight to get her husband back. Shagun is determined not because he is a tough person, but because he feels strongly that he has been wronged. The novel talks about how she has a strong desire to use her pain as a tool, which she sees as an angry and lack of care. This angry, almost spiteful search for justice for her children goes against the image of the calm, wise woman who puts others before herself. Shagun's character makes the point that modernity makes enduring more angry, violent and unpredictable because it comes from wanting to be free and be forgiven, not from quiet sacrifice for family loyalty. Her trip goes against the usual idea of what a woman should be like, showing that real woman power in the modern world is not always about hurting oneself, but also about standing up and fighting.

Ishita: Changing in the face of loss :

In *Custody*, the character of Ishita is a more in-depth version of the Savitri archetype. She shows that persistence is not an external struggle, but an inner one against loss and social rules. Ishita, on the other hand, is focused on her inability to have a child, while Shagun keeps working to have children. Due to the social stigma surrounding parenting, her situation is made even more dangerous by the fact that she is in a position where she has no way of protecting herself. She is going through a silent mental battle to get over her disappointment and grief over not having a child. The fact that she wants to date a married man and takes on the role of mother to Shagun's children show a new kind of endurance that is based on the need to find personal fulfilment and raise a family, rather than staying in a traditional marriage relationship. This is a modern version of the folk hero with a sword wound. As critic Vrinda Nabar points out "Ishita's search for motherhood becomes her own epic journey, a battle against biology and social stigma" (Nabar, 2013, p. 115). Women in modern India may be persistent out of a deep-seated need for self-respect and the chance to be a part of the family, even if it's not the traditional way of doing things.

Meeting of Modern Realism and Folk Realism :

Kapur's novel *Custody* can be seen as a good example of how folklore and modern realism can meet and interact, and how old-fashioned forms can affect and limit how gendered imaginations work. On the one hand, the novel shows how it

is similar to the story of Savitri. In their relationship, Shagun and Ishita both show how to be strong and how to endure challenges for the sake of family. This shows that the ideal female attitude of endurance has a big impact on culture. The novel shows how important it is for a woman to be strong-willed and able to deal with life's challenges in order to save the lives of those she cares about.

Still, Kapur was able to create a big departure from the folk model, which is a strong complaint. Unlike Savitri, whose love is miraculously blessed, this love goes the dirty route of giving in, and Shagun and Ishita are the ones who are left mentally bleeding the most. Instead of being a force from legend, betrayal is now something that people choose to do, and the novel shows how the ideal of a suffering wife is flawed in the real world. As a literary scholar, Meenakshi Mukherjee says, "Kapur's work subverts the simplistic, moralistic narratives of tradition by foregrounding the messiness and moral ambiguities of real life" (Mukherjee, 2012, p. 89). Incorporating the old idea of perseverance into the complicated divorce process of today, Kapur not only changes the archetype's role, but also asks whether it can still be used as specific advice for modern women dealing with love, betrayal, and survival.

Conclusion :

With the help of the brilliant retreading of the icon Savitri, Manju Kapur comes to a strong conclusion in her novel *Custody* about the state of female endurance in modern India. According to the novel, the folk ideal of the lasting wife is still

appealing, but trying to use it in modern life is a messy and difficult process. Kapur shows through characters like Shagun and Ishita that strong is no longer a passive act of righteousness but a strong fight for independence, autonomy, and survival in a world that does not always reward pure loyalty. This paper brings up the idea that women have to make up their own ideas of what it means to 'enduring', turning an old story into a painful internal fight to define themselves.

References :

1. Chakravarti, U. (1993). Rewriting history: The life and times of women in patriarchal India. Zubaan.
2. Doniger, W. (2011). The Hindus: An alternative history. Penguin Books.
3. Kapur, M. (2011). Custody. Random House India.
4. Mukherjee, M. (2012). The perils of being an English professor: Essays on Indian writing in English. Oxford University Press.
5. Nabar, V. (2013). Caste as women: The cultural construction of gender. Concept Publishing Company.



The Dissemination of Buddhist Thoughts : A Study of Wamandada Kardak's Folk Songs

Dr. Balande Chandoba Narsing

*Assistant Professor,
Department of English,
Mahatma Gandhi Central University, Bihar*

Abstract :

A work of art has the intrinsic potential to reflect upon the social surroundings and evoke human emotions. This is predominantly evident in the performance of songs and poetry, across time and space. Besides being entertainers, the role of artists in society is to foster social change by addressing contemporary issues. One such artist was Wamandada Kardak, a folk artist whose songs, in Marathi and Hindi, are not merely poetic or artistic expressions; they are means of conveying the message of Buddha and Dr Babasaheb Ambedkar, intended to transform society. Through this paper, an attempt is made to analyse some of Wamandada Kardak's songs that deal explicitly with Buddhist teachings and analyse the symbols, principles, and metaphors used to convey Buddha's teachings to the mostly illiterate masses in Maharashtra. The symbolism of trees, rivers, water and light that are present in the songs of Wamandada resembles Buddhist ideas of enlightenment and spiritual purification. Every symbol is a conduit between Buddhist philosophy and the socio-political vision of Ambedkar. This analysis will examine the contribution of Wamandada Kardak to the assimilation of Buddhist thoughts and the teachings of Babasaheb Ambedkar in his songs.

Keywords :

Ambedkarite Movement, Buddhist Teachings, Folk Songs, Buddhist Symbolism, Wamandada Kardak.

Introduction :

Wamandada Kardak, a Dalit *Shahir* (folk artist), a prominent cultural and literary figure from Maharashtra, is known for his earnest influence on the Dalit movement and his deep commitment to Buddhist philosophy. Wamandada was a follower of Dr Babasaheb Ambedkar, and his music

served as a way to incorporate the teachings of Buddhism, which was adapted by Ambedkar in 1956 as a step toward liberating the Dalit community under the oppression of caste systems. Being a symbol of Dalit liberation, the work of Wamandada Kardak perfectly blends with the tenets

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

29

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

laid down by Dr Ambedkar. Not only are the songs that Wamandada sings in Marathi and Hindi artistic expressions, but also carriers of social, spiritual and philosophical messages. His songs often embody the notions of liberty, equality, fraternity, and social justice espoused by Ambedkar, and weave with Buddhist beliefs of compassion, wisdom and moral uprightness. The works of Wamandada Draws from the teachings of Buddha, particularly the *Dhamma*, *Trisarana*, and *Panchsheel*, woven into the socio-political landscape of Dalits in post-colonial India. This paper aims to study how Wamandada's songs act as an intermediary between Ambedkarite Buddhism and the cultural aspirations of the Dalit community. Furthermore, the Buddhist symbols and signs present in his songs, analysing their significance in conveying the message of social transformation and spiritual awakening, will be discussed in the paper. The following songs in Marathi of Wamandada Kardak will be referred for the analysis: "The Saviour of India"* (तो भारताचा वाली), "A New Hue"* (नवा नूर), "The Blue Shawl of Equality"* (समतेची शाल निळी), "We Cast Aside the Robes Today"* (फेकिले वस्त्र आज), "Great Disciple"* (थोर चेला), "I Am the Carpet of Buddha"* (मी बुद्धाची पायघडी), "The *Treesaran* uplifts me"* (त्रिसरण उद्धारती), "There where Buddha is"* (जिथे बुद्ध आहे), "At Buddha's feet"* (बुद्धाच्या चरणी), "Amrapali" (आम्रपाली), "Build the Vihara"* (विहार बांधा), "The Dhamma That Bhim Bestowed"* (भीमाने जो दिला धम्म), "O, Traveller"* (वाटसरा). The paper has been divided into five parts, providing an in-depth examination of the musical outcome of Wamandada Kardak through the prism of Buddhist philosophy

and Ambedkarite ideas. The "Introduction" outlines Kardak's role as a cultural icon who viewed music as a tool to fight social ills in society, envisioning societal transformation. The next part, "Wamandada Kardak (1927–2004)", acquaints us with the biographical sketch of the versatile singer, Wamandada, who had to live in dire poverty throughout his life. The section, "The Influence of Buddhism on Wamandada Kardak", examines how Ambedkar's conversion inspired Kardak's music to incorporate Buddhist principles in his songs. Another section, "The Manifestation of Buddhist Thoughts in Wamandada's Songs", engages in discussing the themes and symbols in his song, reflecting values like love, compassion and equality. The "Conclusion" wraps up by enlisting the major points discussed in this paper.

Wamandada Kardak (1927–2004) :

Wamandada Kardak was a towering presence in Maharashtra's cultural scene. A poet, lyricist and singer, he became known for his passionate, socially conscious songs that spoke directly to the struggles of the oppressed, especially Dalits. His work Draws deeply from the ideas and spirit of Dr Babasaheb Ambedkar, making him a vital voice in the Dalit movement and a fierce advocate for social justice, equality, and the Buddhist path. He is regarded as the 'Mahasurya' (the great sun*) of the singers and 'the great hero of songwriters'* (Manohar, 2005a, p. 68; Manohar, 2005b, p. 72). The 'living history' of the Ambedkarite movement is spread across Maharashtra by Wamandada through his songs. He is seen as a 'reference book for the Ambedkarite movement' (Bhagat, 2018, p. v). Wamandada was born on August 15, 1922, in a humble family in the village of Deshwandi, in the

Sinnar taluka of Nashik district. From an early age, he faced the harsh realities of caste discrimination, poverty, and social inequality. Growing up in a society still deeply divided by caste, he became painfully aware of the everyday struggles of marginalised communities. Those experiences planted a seed of rebellion in him, which later grew into a distinctive form of protest art that spoke truth to power and offered hope to the Dalits. Wamandada's poetry and songs emerged as tools to combat caste oppression and advocate for the rights of the downtrodden. Wamandada's background played a crucial role in shaping his unique approach to social advocacy through art. Drawn to music from a young age, Wamandada was inspired by the songs of the local folk performers (tamasha artists). These songs enchanted him. He would often follow the tamasha performers, imitating their singing and playing small musical instruments in the troupe. As a child, he would play *Sambal*, a folk Drum, in the Dalit neighbourhood. His childhood was intertwined with the rhythm and melody of these songs (Kardak, 2010, pp. 5-6). Since there was no school in his village, he could not have any formal education. Along with his mother, Kardak migrated to Mumbai in search of work, where he began his journey by working in a coal yard. Later, he took on various odd jobs such as labouring in a mill, construction work, selling ice, fruits and even assisting his mother in breaking stones. Eventually, he secured a job at Tata Oil Mills, earning a modest salary, but this did not last long (Manohar, 2005b, p. 6). He began writing songs in 1943. Since his voice was sweet, his songs were well-received. He remained committed to the Ambedkarite movement throughout his life. He could not pay

proper attention to his family since he would go from village to village to spread the message of Dr Babasaheb Ambedkar through his songs. He was fighting tuberculosis from a young age. His health deteriorated, and he breathed his last on 15th May 2004 in Nashik.

“Vaman Dada's Bheem songs have not only provided entertainment to the masses but have also played a crucial role in disseminating Dr. Babasaheb Ambedkar's deep philosophical thoughts and teachings to the most marginalised Dalit-Buddhist communities in rural areas” (Garud, 2024). Kardak's music gave voice to the struggles of the Dalit community, their fight for equality and their demand for social justice. His music served as a unifying force for the movement, inspiring activists and encouraging greater participation. “The Ambedkarite movement found itself honoured in Wamandada's words and voice. The movement was walking hand-in-hand with Ambedkar himself through his music”* (Manohar, 2005a, p. 68). This statement metaphorically implies that Kardak's music was directly guided by Ambedkar's vision, translating his thoughts and aspirations into powerful musical expressions that served as a pillar to the Ambedkarite movement, intended to uplift the Dalit community and instil in them a sense of self-respect.

Wamandada Kardak was a die-hard follower of Dr. Babasaheb Ambedkar, who is the mastermind behind India's Constitution and the leading figure of the Dalit movement in India. Ambedkar's vision for a society based on equality and his unrelenting efforts to eliminate the caste system left an indelible mark on Wamandada's philosophy of thought. Not only did he embrace the ideologies of

Dr. Babasaheb Ambedkar, but he also emerged as an active cultural torchbearer who utilised his art to disseminate Dr. Babasaheb Ambedkar's concepts of equality, liberty and fraternity. He wrote songs that explained intricate political and philosophical concepts in very simple, easy-to-understand language, so much so that everyone in Maharashtra could understand them with ease. His acts tended to have a motivational aspect, encouraging the Dalit masses to revolt against the oppression of caste, acquire education and claim their rights. He praised Ambedkar's revolutionary thoughts, urging the oppressed to tread the path of Ambedkar and question the caste system with the aim of achieving self-respect and dignity. One of the key contributions of Wamandada to the Ambedkarite movement was that he utilised cultural expression as political and social mobilisation. His music was a potent declaration of resistance to the status quo. Wamandada's art became an extension of the vision of Dr Babasaheb Ambedkar, representing the struggle of the oppressed for justice and equality. Wamandada Kardak's lyrics and songs laid stress on the need for education, which was a major tenet of Ambedkar's philosophy. According to Ambedkar, education was the most effective weapon against caste discrimination and Wamandada also resonated with this idea in most of his songs. Through his songs, he inspired Dalits to adopt education as a tool of empowerment and free themselves from the bondage of caste dominance.

Dr. Babasaheb Ambedkar acknowledged the significance of the role of the *Shahirs* in awakening and enlightening the illiterate masses. He believed, "The political importance of one *shahir* is equal to

ten political leaders" (Guru, 2004, p. 20). Unfortunately, this recognition could not continue in the post-Ambedkar era. Wamandada played a crucial role in mobilising Dalit masses on significant issues, from the land struggles of 1959 and 1964 to critiques of globalisation. Despite his contributions, Wamandada found himself marginalised by Dalit political leaders who felt threatened by his intellectual influence. He recounts how these leaders, more focused on their own gains, neglected his work and the cultural activism that empowered Dalits (pp. 20-21). Wamandada said, "I used to offer different definition of democracy in my brief speech that usually preceded my actual singing. But the local political leaders would not like my acquiring an intellectual space as they felt threatened to lose their audience to me" (p. 20). Wamandada often portrayed Dr Babasaheb Ambedkar as a father figure who gave the dalit community a new sense of identity and purpose. In his songs, Dr. Babasaheb Ambedkar is often depicted as the guiding light who showed the way to freedom and equality. Wamandada's devotion to Dr. Babasaheb Ambedkar was not only intellectual but also deeply emotional, reflecting the profound impact Ambedkar had on his life and the lives of millions of dalits.

Influence of Buddhism on Wamandada Kardak :

After Ambedkar's historical conversion to Buddhism, Wamandada discovered an alternative path that influenced much of his artistic work. Dr. Babasaheb Ambedkar's conversion to Buddhism on October 14th, 1956, brought a revolutionary change in Indian society, but more so in the life of the dalit society. By converting to Buddhism, Ambedkar aimed to liberate Dalits from

the religious and social hierarchy of the Hindu caste system. He viewed Buddhism as a means of spiritual emancipation and social equality. His conversion was a clear-cut rejection of Hinduism, which historically legitimised the caste system, and the dawn of a new phase of Dalit consciousness and identity. Wamandada, enthusiastically, embraced Ambedkar's choice to embrace Buddhism and was an outspoken supporter of the Buddhist lifestyle. He saw that Buddhism, with its focus on compassion, non-violence and equality, had an ethical philosophy that was in consonance with the values of social justice for which Dr. Babasaheb Ambedkar had worked his entire life.

By drawing on buddhist principles, a number of Wamandada's works demonstrate the powerful influence of Buddhist teachings on his musical productions. His songs about Ambedkar's acceptance of Buddhism convey a sense of freedom, urging the Dalit people to follow Ambedkar's lead to accept Buddhism as a pathway to both religious and social freedom. Wamandada viewed Buddhism not only as a religion but as a revolutionary creed capable of brokering social change. To him, Dr. Babasaheb Ambedkar's acceptance of Buddhism was a banner proclaiming defiance against the injustices inherent in the caste system. Often, Wamandada's lyrics explore in *Dhamma* (Buddhist teachings) a force capable of healing wounds accumulated during centuries of caste suppression and discrimination. In his works of music, *peepal* (Bodhi) trees and Buddha's teachings serve as symbols of deliverance and renewal for Dalits. Wamandada's engagement with Buddhism went beyond his musical works. He was an active presence at cultural and religious events to promote Ambedkarite

Buddhism. He inspired dalits to accept Buddhism and reject Hinduism's hierarchical structure, sustaining dalit suppression across generations. Through them, he helped to foster a new dalit identity rooted in a spirit of dignity, self-respect and religious freedom.

By merging buddhism and Ambedkar's call for social justice, Wamandada's art became a powerful message to the dalit community, encouraging them toward a revolutionary transformation.

The Manifestation of Buddhist Thoughts in Wamandada's Songs :

Literature was the "important component of dalit culture in Maharashtra" during and post-Ambedkar era (Guru, 2004, p. 1). The mahar community is traditionally associated with singing, and in the Ambedkar era, old forms of publicity like the community bhajan came to be thematically reformulated (Rege, 2024). After Ambedkar's conversion, Ambedkarite artists in Maharashtra were required to explore a new set of themes and subjects different from their traditional art performances. "This conversion movement provided the context to the *kalapathak* which handled plots on the teaching of Buddha. Almost every *kalapathak* programme would start with Buddhist *Trisharan* and *Panchsheel* end with Buddhist Prayer as perceived by Ambedkar. Secondly, dalit writers like *Dinbandhu* handled other cultural forms to make Buddhist symbols integral parts of Dalit consciousness" (Guru, 2024, p. 22). This was the deliberate cultural change that the artists were bringing to their performances and literature.

Wamandada Kardak's songs hold a substantial legacy of Buddhist values

expressed through the ‘lived experiences’ of the marginalised communities he represents. His musical creations bring the core tenets of Buddhism, such as *Dhamma* (the teachings of Buddha), *Trisarana* (the Three Refuges) and *Panchsheel* (the Five Precepts) to life, offering the oppressed an alternative worldview rooted in compassion, equality and wisdom. In his songs, Wamandada weaves together spirituality, struggle, and salvation, reflecting the plight of the oppressed and offering Buddhism as a path to liberation. He not only celebrates the teachings of the Buddha and Dr. Babasaheb Ambedkar but also critiques the socio-religious norms that persistently marginalise communities. One of the central themes in his works is the idea of transformation, where individuals, communities, and society as a whole undergo moral and spiritual renewal through the path shown by Buddha and Dr. Babasaheb Ambedkar.

In the song “The Saviour of India” (तो भारताचा वाली), Wamandada recounts the historic mass conversion to Buddhism led by Dr. Babasaheb Ambedkar, capturing the significant shift in the lives of thousands of untouchables. The imagery of gathering “beneath the Bodhi tree”^{*} symbolises a return to the roots of enlightenment, while the phrase “he spoke words of wisdom in Pali”^{*} connects the contemporary struggle for equality with the timeless teachings of the Buddha (Kardak, 2024, p. 24). Just as “The Saviour of India” celebrates mass conversion, “A New Hue” reflects the ensuing transformation in the Dalit community’s spirit. Wamandada’s exploration of cultural identity is intricately woven into the fabric of his songs, particularly evident in “A New Hue” (नवा नूर). This song metaphorically represents the historical transition following the mass

conversion to Buddhism, using imagery of nature to reflect renewal and hope. This is exemplified by the line, “The land is coloured with a new hue”^{*} (25). The rhetorical framing of natural phenomena, ‘The river water dances’^{*} and ‘The thick forests tremble’^{*}, symbolises the inevitability and power of social change, echoing the revolutionary spirit of 1956 when millions renounced caste-based discrimination by embracing Buddhism. The lines, “A revolution rose with the dawn”^{*} and “Singing of revolution and love so pure”^{*} encapsulate the fervour of this movement, highlighting how Wamandada positions Buddhism as a catalyst for social rebirth (25). His use of water imagery conveys the essential quality of fluidity in the fight for equality, suggesting that societal transformation, like a river, is unstoppable and inherently nourishing to the community. The invocation of “Five lakh disciples bowed in prayer, together”^{*} signifies not just a collective action but a profound connection to identity and purpose, as communities unite under shared values found in Buddhism (25).

The song emphasises collective action and solidarity as people come together hand in hand to embrace a new identity rooted in compassion and justice. In “A New Hue” Wamandada channels the spirit of revolution, which finds a new expression in “The Blue Shawl of Equality” (समतेची शाल निळी), calling for the rejection of caste oppression. This song serves as a powerful metaphor for rejecting the oppressive structures of Hinduism and embracing the inclusive teachings of Buddhism. The call to “cast away the cloak of Hindu creed”^{*} signifies a break from divisive traditions, while the ‘blue shawl of equality’ symbolises the embrace of unity and brotherhood

found in Buddhist thought (Kardak, 2024, p. 32). He strongly critiques the caste system, describing it as “woven with threads of hate” and a “blind, crippled culture”* (32). This sharp imagery underscores the urgency of adopting a more humane and equitable framework, encouraging listeners to recognise the transformative power of Buddha’s teachings.

In the above song, Wamandada gives a call to embrace the ‘blue shawl’ of equality while casting aside the exclusionary casteist ‘robe’. Through the song, “We Cast Aside the Robes Today” (फेकिले वस्त्र आज), he heralds a historical moment marked by victory and liberation. The lyrics exclaim, “Never once did victory’s pride sway, The robes we have cast away today”* signalling the rejection of oppressive traditions and societal constraints that have historically marginalised communities (Kardak, 2024, p. 23). The invocation of “the Wheel of Dhamma that Bhim did fix”* signifies a profound commitment to the ethical and moral imperatives established by Dr. Babasaheb Ambedkar, as he introduces the *Dhamma* as a guiding principle for social justice and equity. Wamandada highlights the historic importance of October 14, 1956, as a transformative date when millions embraced Buddhism as a means of reclaiming dignity and identity. “What was ours, we’ve now regained”* captures the essence of renewal and the collective empowerment that comes with reclaiming one’s heritage and values (23). This reclamation process is woven through the notion of community strength, with “Millions chant *Trisarana*’s hymn”* symbolising unity in purpose and shared identity (23). Moreover, through his reference to *Vijayadashmi*, the victory over darkness theme resonates as a metaphor for societal liberation. The

acknowledgement that “The battle is won, Bhim stands victorious, the king of Dhamma”* cements Ambedkar’s legacy as a central force in the fight against the varna system, a reminder that the fight for social justice and equality is an ongoing struggle requiring continuous commitment and action. Through the triumphant melody, Wamandada expresses a significant moment in history where marginalised communities find their voice and agency, “The untouchables from their abyss are thrilled, freed from their chains unbound”* (23). This powerful message of liberation positions Wamandada’s music as a rallying cry, a reminder that the *Dhamma*’s teachings inspire strength in adversity.

As the Dalit community shed the symbolic robes of oppression, the song “Great Disciple” (शोर चेला) honours Dr. Babasaheb Ambedkar’s enduring influence and guidance. This song celebrates the legacy of Ambedkar, who championed Buddhism as a path to liberation for the oppressed. The song describes Babasaheb, a disciple of Gautama, as a beacon of hope, calling people to ‘board the boat’ of Gautama’s thought. This metaphor reflects the collective journey toward enlightenment and social justice. Wamandada highlights the pervasive impact of caste on society, stating, “The worm of caste infected the land”*, emphasising the need for a radical shift in consciousness. The line, “If not today, tomorrow for sure, Buddha in India will reappear”*, expresses hope for a future where Buddhist values of equality and compassion prevail (Gaikwad & Sagar, 2016, p. 263).

Wamandada’s musical composition operates as a spiritual weaving, where each thread represents fundamental Buddhist concepts such as compassion,

interconnectedness and the quest for enlightenment. In “I Am the Carpet of Buddha” (मी बुद्धाची पायघडी), Wamandada expresses the essence of surrender and humility. By referring to himself as the “carpet” of Buddha, he illustrates the Buddhist concept of selflessness and the willingness to serve the greater good without ego or pride. This declaration signifies a profound relationship between the self and the divine, where self-identification as the carpet does not diminish one’s identity but rather elevates it through devotion and service (Gaikwad & Sagar, 2016, p. 55). By invoking the “sacred wash from Yashodhara’s feet”*, Wamandada intricately binds personal growth with the collective memory of Buddha’s life and teachings, suggesting that spiritual wisdom flows from understanding one’s roots in both heritage and community. Furthermore, the song speaks to a transformational journey marked by liberation: “The chains of life have snapped, The cuffs that bound me, now unwrapped”* (55). This imagery resonates with the Buddhist notion of breaking free from *samsara*, the cycle of birth and rebirth, and emphasises the necessity of inner peace on the path to *nirvana*. Wamandada’s references to significant Buddhist locations, such as ‘Shravasti’, ‘Vaishali’ and ‘Lumbini’ ground his spirituality in historical truths, reminding listeners that the quest for enlightenment is not a solitary pursuit but a communal journey that honours the legacy of those who came before. The song reflects the dalit community’s journey of self-transformation.

In harmony with revolutionary themes, Wamandada’s later composition “The *Treesaran* uplifts me”* (त्रिसरण उद्धारती) revolves around Buddhism’s Five Precepts

or *Panchsheel* :

1. Non-violence
2. Truthfulness
3. Refraining from theft
4. Refraining from sexual excesses
5. Refraining from intoxicants.

Wamandada’s description of *Panchsheel* as a force of uplift serves as a call to moral responsibility and finds a profound connection in Dr. Babasaheb Ambedkar’s vision of a society built upon ethical foundations. The song emphasises that adhering to these precepts will lead to peace and harmony both personally and society-wide, but suggests a revolution to bring these ideals into India’s socio-political mainstream. Wamandada’s portrayal of *Panchsheel* as a guiding light in the fight for equality emphasises the importance of righteous conduct in both personal life and collective action. He suggests that the revolution for social justice is incomplete without an inner transformation, which is achieved by adhering to the precepts of non-violence, truth and compassion (Gaikwad & Sagar, 2016, p. 80).

Through the song “There Where Buddha Is” (जिथे बुद्ध आहे), Wamandada applauds the ideals of equality and compassion central to Buddhism. Wamandada emphasises the universalism of Buddha’s teachings, asserting that Buddha resides where equality flourishes. The song echoes the fundamental Buddhist belief that all beings are equal, irrespective of their birth or social standing. Wamandada’s portrayal of a society where “no man is deemed low or small”* and where “none are seen as weak at all”* aligns perfectly with Buddha’s rejection of caste hierarchies and Dr. Babasaheb Ambedkar’s fight for social

justice (Gaikwad & Sagar, 2016, p. 97). The assertion, “There is Buddha, Buddha is here,”* reinforces the notion of Buddha’s omnipresence in acts of kindness and community service. The song suggests that a true understanding of Buddhism transcends ritualistic practices and is manifested in the treatment of others. As he proclaims, “Where the battle for equality is sincere”*, Wamandada underscores that the essence of Buddha’s teachings is deeply rooted in the collective struggle for social justice (97). By associating Buddha with ideals of social justice, Wamandada uses the figure of Buddha as a symbol of resistance against oppression and as an embodiment of compassion and wisdom. This song ties the Buddhist concept of *Nirvana* with the Dalit quest for liberation, linking spiritual emancipation with social equity.

Wamandada’s other song, “At Buddha’s Feet” (बुद्धाच्या चरणी), seems an extension of the previous song “There Where Buddha Is”, expressing the essence of the notion of universal equality, saying “All humans are equal, no high, no low”* (Gaikwad & Sagar, 2016, p. 109). This line underscoring the democratic principles inherent in Buddhism sets the stage for an inclusive spiritual framework devoid of casteism and societal hierarchies. The affirmation that Buddha’s love is accessible to all, “My Gautama Buddha shares his love for all in every deed”* emphasises the core Buddhist tenet of compassion that transcends social divisions (109). Wamandada further solidifies his commitment to an egalitarian vision rooted in Buddhist philosophy. This bond extends to all members of society, validating the worth of every individual, regardless of their societal standing, whether the downtrodden, the shunned, or

those traditionally viewed as high caste. Wamandada emphasises the connection between societal malaise and the ethical failures of individuals, “Poverty and despair, the root of all demise”* (109). This line highlights how the abandonment of moral responsibilities contributes to widespread suffering. Consequently, he calls for urgent rectification, stating that those who ‘trample’ these issues will be instrumental in uplifting society, symbolised by the evocative line, “will lift Bharat to the skies”* (109).

The song, “Amrapali” (आम्रपाली), is a retelling of Amrapali’s transformation from a courtesan to a follower of Buddha. She renounces her past in the quest for spiritual enlightenment. The imagery of the peepal tree serves as a powerful metaphor for shelter and growth: “Under the peepal, peace she found”* (Gaikwad & Sagar, 2016, p. 90). The peepal tree, a symbol of enlightenment under which Amrapali finds her true path, echoes Buddha’s own spiritual awakening under the Bodhi tree. This symbol resonates within Buddhist teachings, emphasising the importance of community and refuge, a core aspect of the *Dhamma*. Amrapali’s trajectory from worldly attachments to recognising higher truths manifests the Buddhist quest for liberation from suffering. Wamandada uses Amrapali’s story to inspire the downtrodden to seek higher truths and follow a path of moral regeneration, much like how Dr. Babasaheb Ambedkar encouraged his followers to embrace Buddhism as a means of social and spiritual liberation. Amrapali’s renunciation of her past life is a metaphor for the dalit community’s rejection of caste oppression and their embrace of a new path of dignity and equality under Buddhist principles. The ‘treasure of morals’ that

Amrapali finds is symbolic of the *Panchsheel* and *Trisarana*, the ethical framework that Dr Babasaheb Ambedkar introduced to his followers as a way of life.

Building on the collective struggle for justice, the song “Build the Vihara” (विहार बांधा) shifts the focus toward the Buddhist institution, *Vihara*. Wamandada emphasises the importance of Buddhist institutions such as viharas (monasteries) as centres of spiritual growth and social unity in his song, “Build the Vihara”. He elaborates on the concept of community as a cornerstone of Buddhist practice. His recurring call to “build our vihara with love”^{*} serves not only as a literal invocation to create a sanctuary for meditation and reflection but also as a metaphor for constructing a shared space where diverse voices can come together. The vihara in this song represents more than a physical structure. It symbolises the creation of a new social order, one based on Buddhist ethics and fraternity. The line “Gather those broken pieces with care”^{*} emotionally captures the need for communal healing, suggesting that a collective acknowledgement of pain is essential for building a harmonious society (Gaikwad & Sagar, 2016, p. 112). This song asserts that the act of creating communal spaces is rooted in the very teachings of the Buddha, promoting unity and collective action as pathways to liberation. Wamandada’s emphasis on building viharas also underscores the collective responsibility of the community to foster spaces of learning and moral guidance, much like the viharas of ancient Buddhist India.

“The Dhamma That Bhim Bestowed” (भीमाने जो दिला धम्म), is a song that presents Buddha with motherly affection for the

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

downtrodden people. The line, “The Dhamma that Bhim bestowed, I must uphold with care,”^{*} establishes a solemn oath and the gravity of the spiritual and social responsibilities accompanying such teachings (Gaikwad & Sagar, 2016, p. 288). By invoking a personal commitment to sustain the *Dhamma*, Wamandada blurs the lines between the individual and the collective, suggesting that the act of upholding these principles is both a personal endeavour and a communal necessity. The song acknowledges the emotional bond between bhim and the marginalised voices of society, with lines like “Seeing the sorrow of the poor, Bhim’s tears began to flow”^{*} (288). Here, empathy is presented as the recognition of suffering to be a catalyst for action. By shedding tears alongside bhim, he positions himself within the narrative of social justice, advocating for a shared emotional and ethical responsibility in confronting inequality. The line “Let Buddha’s grace be with you and the tender mother’s love”^{*} intertwines maternal affection with spiritual guidance, suggesting an inherent connection between the nurturing aspect of compassion and the pursuit of truth as taught by both Buddha and Ambedkar (288).

The song, “O, Traveller” (वाटसर) invites listeners to pause and reflect, weaving imagery of historical Buddhist sites like Ajanta caves and the Bodhi tree into a powerful meditation on the journey of life. The line “O Traveller... stop for a while, stop just for a while”^{*} serves as an invitation to introspection and awareness, suggesting that life’s journey requires moments of stillness for genuine understanding and growth. The lyrics evoke a sense of communal experience “With Gautam’s songs, rest for a while”^{*} establishing a

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

shared cultural heritage that transcends individual contemplation and embraces collective enlightenment (Gaikwad & Sagar, 2016, p. 149). Wamandada's vision of the Bodhi tree, described as providing 'cool shade' and offering 'pure serenity', not only symbolises enlightenment but also represents a sanctuary for those seeking refuge from the chaos of everyday life. The tree stands as a testament to the historical and spiritual milestones in Buddhism, urging travellers to appreciate the wisdom of their forebears. The call to "serve the world and you'll atone"* is a powerful reminder of the interconnectedness in Buddhist thought, where actions reverberate in a cycle that demands responsibility towards others (149). Wamandada's invitation to 'Become truly human' resonates deeply as it encapsulates the essence of what it means to live a life aligned with *Dhammic* principles. He encourages listeners to embrace their humanity while striving for the virtues of compassion, kindness, and wisdom that define a true Buddhist practice.

Therefore, every song mentioned above of Wamandada Kardak is both an expression of a personal or collective experience and a request to society to be reborn and revitalised with Buddhist and Ambedkarite principles. His music is a very fine blend of Buddhist teachings with social and spiritual messages, and his songs give a lot of insight into equality, liberation and transformation. "The Saviour of India" is an enlightening and transformative work that highlights the mass conversion of Ambedkar to Buddhism as a ray of hope. The nature in "A New Hue" turns into the allegory of the new beginning and reawakening of a community, the spiritual and social one of the

Dalit community. In "The Blue Shawl of Equality", the author emphasises equality and brotherhood and promotes abandoning the hierarchies of caste by renouncing Buddhism. Likewise, the song "We Cast Aside the Robes Today" signifies freedom from oppression, symbolising the acceptance of Dhamma as a way to freedom. Other songs, such as "Great Disciple" and "I Am the Carpet of Buddha", glorify discipleship and selflessness and explain the willingness to submit to the teachings of Buddha and serve as a servant. The upliftment of morality and spirituality is the focus of "The *Treesaran* uplifts me", which is based on the principles of the Three Refuge (*Trisarana*). In both the songs, "There where Buddha is" and "At Buddha's Feet", compassion and equality resonate in the assertion of the universal availability of Buddha teachings. The theme of transformation and moral regeneration is discussed in the song "Amrapali", which narrates the path taken by a courtesan on the way to enlightenment. "Build the Vihara" demands that the community be united and reflect together, whereas the "Dhamma That Bhim Bestowed" focuses on responsibility and ethical living to carry on with the vision of Ambedkar. Finally, O, Traveller evokes reflection and connectedness, encouraging one to stop to internalise the wisdom of Buddhist teachings. These songs are the direct embodiment of the deepest fusion of Buddhist philosophy with the hopes of social and spiritual freedom.

Conclusion :

Wamandada's life and work were closely tied to the Ambedkarite movement and the Buddhist revival led by Dr. Babasaheb Ambedkar. Guided by Ambedkar's ideals, he used his songs and poetry to

champion social equality, education, and justice. Ambedkar's conversion to Buddhism deeply shaped Wamandada, inspiring him to urge the oppressed to find both spiritual and social liberation through Buddhism. His art speaks powerfully to Dalit communities even today, encouraging them to embody compassion and moral courage. His body of work stands as a testament to the vital role of art in societal transformation, echoing the call for empowerment and ethical living. His songs call for both reflection and action, inviting audiences to not only listen but to participate in the ongoing journey towards enlightenment and justice. Following the footsteps of Dr. Babasaheb Ambedkar, through vibrant Buddhist symbols and stirring messages, Wamandada brought ancient teachings to life, turning his creative work into an enduring legacy of hope and empowerment.

Note : An asterisk (*) is used to denote my translations.

References :

1. Bhagat, A. S. (2018). Sampadakiy-Lokkavi: Wamandada Kardak: Ek Adhayan. In *Ambedkar Chalvalicha Mahan Lokkavi: Wamandada Kardak* (The Greatest Folk Singer of Ambedkarite Movement: Wamandada Kardak*) (Ed.), Aacharya Suryakant Bhagat (pp. i-xvi). Utkarsh Prakashan.
2. Gaikwad, M. and Sagar J. (2016). (Eds). *Mahakawee Wamandada Kardak: Samagra Wangmaya, Khanda-3*. Aalok Sambodhi Prakashan.
3. Garud, M. (2024). Prastawana (Preface). In Waman Kardak, *Mohal*, Anand Prakashan.
4. Guru, G (2004). *Dalit Cultural Movement and Dialectics of Dalit Politics in Maharashtra*. Vikas Adhyayan KenDra Publication.
5. Kardak, W. (2010). *Majhya Jivnach Gaan: Aatmakatha*, (The Song of my Life*) (wording) by Ravichandra Hadasanakar, Shabdadan Prakashan.
6. Kardak, W. (2024). *Mohal*. Anand Prakashan.
7. Manohar, Y. (2005a). Tufanatil Wanwyache Zaad. *Satva Rutu Ashruncha* (pp. 68-72). Yugshakshi Prakashan.
8. Manohar, Y. (2005b). *Ambedkarwadi Mahagitkar: Wamandada Kardak*. Yugshakshi Prakashan.
9. Rege, S. (2008). Interrogating the Thesis of "Irrational Deification." *Economic and Political Weekly*, 43(7), 16–20. <http://www.jstor.org/stable/40277605>



Chhattisgarhi Folk Culture and the Theatrical Adaptation in Habib Tanvir's "Charandas Chor"

Dr. A. Sharanbalaji

*Assistant Professor of English
PG & Research Department of English
Saraswathi Narayanan College Perungudi,
Madurai, Tamil Nadu, India*

Abstract :

The Indian playwright Habib Tanvir is one of the most important writers of today. A new language was created in the theatre because of the folk practices he brought to modern drama. People really liked his play on "Charandas Chor", which is a great example of how to use local culture in new and interesting ways on a modern stage. Folk traditions are used in Chhattisgarhi. It also includes songs, idioms, a type of acting that is popular in the area, and telling stories. This paper looks at how Tanvir changes and adapts these customs in "Charandas Chor" to make a story that people from both the country and the city will enjoy. Tanvir brings the stories back to life by putting the folk figure Charandas in a theatre setting. Another social and political criticism of moral decline, cheating, and lack of honesty in people is also given. The play "Charandas Chor" is more realistic because it uses the Chhattisgarhi acting company, costumes, and music. It also shows the problems with high-class Indian theatre. This paper will also discuss about the ways that folk culture and modern dramaturgy are different and how they are the same. It also shows the new way Tanvir tries to bring together spoken history and written texts, as well as local expressions and global topics. "Charandas Chor" is an interesting piece of culture literature that not only keeps folktales alive but also makes a theatre of struggle and identity. This paper also talks about Tanvir's use of Chhattisgarhi folk customs in his play and Tanvir sets up an interesting example of interculturalism by recognizing the knowledge of a native people and starts a conversation about Indian play that had not been heard before.

Keywords :

Chhattisgarhi, folklore adaptation, modern dramaturgy, cultural, Indian theatre

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

41

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

Background of the study :

The history of Indian theatre is marked by clear periods of exchange between traditional theatre, popular theatre, and modern stagecraft. Folk traditions have been the main way that native people have kept their cultural memory, social ideals, and oratory alive. There are many practices in Chhattisgarh that have to do with telling stories, singing songs, and putting on shows like Nach and Pandavani. People can learn about the skill of folk theatre through these practices. Habib Tanvir, a modern Indian playwright, actor, and director, kept this word and tried to include Chhattisgarhi folk rituals in modern drama. He tried to use a lot of folk language, dialects music and acting style in his play “Charandas Chor” (1975). With the help of the character of Charandas, Tanvir turns an old folk story into a play that people all over the world can see. As it ties together country culture with today’s issues of morality, corruption, and justice, the play is more than just a retelling of a folktale. The study of this exchange shows how folklore can be changed a lot in the theatre setting to keep it real and add a social and political background.

Significance of the study :

Looking closely at the play “Charandas Chor” is important because it combines old and new ways of practices in theatre. Studying how Chhattisgarhi folk forms have been changed reveals how indigenous cultural forms have shaped national theatre ideas. This paper tries to show how Habib Tanvir has helped make local languages, actors, and customs acceptable in mainstream theatre, breaking the control of metropolitan and elite theatre practices. This paper will also demonstrate the modern theatre that uses folk practices

not only helps to protect intangible heritage, but also gives lesser-known minority groups a chance to express themselves. According to the study, folk tales are still useful for identifying common human interests.

Objective of the study :

The primary objective of this research is to examine how Habib Tanvir employs and adapts Chhattisgarhi folk traditions in his renowned play, “Charandas Chor”. It seeks to examine the transformation of folk elements, specifically oral narratives, dialect, music, costumes and performance style, into contemporary theatre while preserving its cultural character. This paper also tries to examine the function of Tanvir’s adaptation in the preservation of indigenous culture and as a critique of social and political ideas, particularly with morality, demise and ethics. Further, the study wants to show how “Charandas Chor” is an example of intercultural performance, which means that the folk heritage may still be important and useful in today’s world.

Research Methodology :

This paper will conduct a qualitative research study utilizing a textual and performance-oriented strategy. “Charandas Chor” by Habib Tanvir is selected as the primary text for analysis, accompanied by recordings, critiques and performance scripts, that are available. Tools from literary criticism, cultural studies and theatrical theories to figure out how the play uses Chhattisgarhi traditional traditions of oral stories, songs, dialects and performance styles are also used. A comparative method helps to show how tradition and modernity work together by showing how a folk item transforms from being told orally to being

performed on stage. Using secondary sources, such as scholarly publications, interviews with Tanvir and critical literature on Indian folk theatre, will give us both theoretical and contextual benefits. The paper will utilise performance theory and a postcolonial framework to elucidate the cultural and political dimensions of the play.

Shift in the history of Indian theatre :

“Charandas Chor” by Habib Tanvir has made a huge difference in the history of Indian drama. It’s been a trend, and it’s even created a new way to combine traditional folk theatre with modern tastes. This is one of Tanvir’s best pieces. It was first played in 1975, and it shows how smart he was for making a style that fits in with the local culture while also being easy for people from all over the world to understand. Tanvir took an oral tradition that goes back hundreds of years and brought it to life with Chhattisgarh’s unique culture. He changed it so that it was a deep social critique of modern society and an honour for native forms of art. This paper looks at how Tanvir used Chhattisgarhi folk material like performance style, music, language and moral philosophy in a new way to make a play that went beyond the high ideals of Indian theatre in cities, creating a new range of performances that are cross-cultural.

Tradition of Nacha :

Tanvir’s proposal for a play was to hire professionals to perform Nacha of Chhattisgarh. Nacha is an old form of folk dance-theater that is different because it is spontaneous, energetic, direct, and involves close contact with the audience. The actors who worked at the Naya Theatre, or Nacha, were not at all like other performers. They had been to a proscenium theatre, so they

were a raw and uncooked type of person on stage. No one told them to do it; they just did it because that’s how people in their culture did things.

Tanvir did not simply use Nacha for looks. He used its main ideas to build the play. For example, a gammat, which is a part of improvisational discussion and jokes, is an element of the Nacha performance, and Tanvir easily included it to the script of the play “Charandas Chor”. The players were free to show off their innate talent for clever conversation and repartee, and this is what made the performance appear more like a real conversation than an artificial one. M. L. Varadpande, a scholar, says that “Tanvir’s play becomes not just a performance of a script, but a re-enactment of the very spirit of Nacha itself, with its directness and satirical bite” (Varadpande, 1987, p. 112). Most of the actors could not read or write, and they learnt their lines by singing and reciting them, which tied them even more to the oral traditions that made up the play.

The physicality of the Nacha performers was also a big deal. Their moves were not modern or antiseptic in any way. They were pretty fluid and lots of energy, almost over the top, because that is how folk performances are. This let the stage be more theatrical by letting the story be told in a more unfettered way. The performers’ outfits, which were simple, bright, and adapted from local dress, made the play feel even more real and connected to the rural area of Chhattisgarh.

The Chhattisgarhi dialect: A linguistic revolution :

Tanvir was a very brave man to choose the Chhattisgarhi dialect as the language of his play when most Indian theatre was

done in Hindi or English. The play and its culture both did well because of this language-based decision. Tanvir did more than just add some local colour when he wrote in the native language; he made an indigenous dialect that had been ignored by mainstream culture for a long time. The rustic speech of Chhattisgarh, with its earthy humour, rustic beauty and distinctive phrases, turns out to be a guest of honour. It gave a sense of location and personality that no other language could do. It let people, especially those from rural areas, connect with the characters on a very intimate level. Language was not only a tool to talk to each other, but also a way to share cultural values, jokes, and different ways of seeing the world. Tanvir's insistence on the vernacular was a challenge to the dominance of city-based, elite theatre that looked to Western antecedents or classical Indian precedents. By promoting a perceived 'regional' dialect to the point where it could be used as an acceptable theatrical language, he showed that he did not care about the linguistic sophistication of a play. He also showed that the power and authenticity of any play depended less on how it talks and more on how it speaks truth and straight to its listeners. According to theatre critic Jyoti Deshpande observes that "Charandas Chor's success proved that the true language of Indian theatre was not a singular one, but a multitude of dialects, each with its own rhythm and soul" (Deshpande, 2005, p. 89).

The tale and emotional heart of music and song :

Music is a big part of Chhattisgarh's folk culture, and it is not just a background sound in "Charandas Chor". The order of the songs and musical improvisations in the play is what makes up the plot, gives

it emotional depth, and sends a political message. Tanvir added songs from Chhattisgarh's traditional music, religious songs from the Satnami religion, and new songs that fit the story. The performers and musicians in the show played the music live on stage. This direct interaction had a big effect on the audience. People usually utilized the songs in a chorus, to sum up a scene, to introduce a character, or to think about the moral implications of an event. For example, the songs that glorify Charandas are the same ones that make fun of the duplicity of individuals in authority. This is a clear sign that folk music can be used to criticize society.

The music placements were also very simple and natural, employing just classical instruments like the harmonium, dholak, and other percussion instruments instead of more complicated ones. This very simple style was a deliberate choice to go against the rich designs of urban stages and it helps to keep the play grounded and folk-inspired. Rustom Bharucha, a theatre scholar, says that "Tanvir's music is not a backdrop; it is the very pulse of the drama, embodying the rhythm of rural life and the simple truths of folk wisdom" (Bharucha, 1993, p. 210).

The Folk Hero and the Political and Social Commentary :

Charandas, the main character, is the perfect comic hero. He is a robber, yet he always does the right thing and has a strong sense of right and wrong. Tanvir changed this individual at least once by giving him the impression of a folk story from Rajasthan, but he also gave him the spirit of Chhattisgarhi, which made him a man who embodies the ideals and contrasts of the region. The Judaic redemption of the four vows of Charandas, never to lie, never

consume rich food, never ride in a chariot, and never accept an invitation to a palace, is not only a type of commerce in Hinduism, but a moral system that exposes the corruption and moral decay of the ruling caste. In the play, a thief is more honest than a monarch, priest or rich businessman. Inversion of moral order serves as a potent tool for social critique. The king, who represents political power, has been shown to be a fool who is easily charmed and cannot even tell good character from bad. The wealthy merchant and the priest are both greedy and hypocritical. Tanvir uses the simplicity of folk stories to show how the society is. This use of a folk hero to fight against power systems is familiar in many oral traditions, and Tanvir did a great job of bringing that idea to the stage today. He made complex socio-political ideas easier to understand by putting them in a simple, almost parable-like drama that a lot of people could enjoy. People would be able to laugh at how dumb the monarch was and at the same time realise how political his actions were. Tanvir is quite adept at writing plays that can both entertain and teach.

Conclusion :

Habib Tanvir's "Charandas Chor" is more than just a play; it's a cultural event that is fundamentally transforming Indian theatres. Tanvir's imaginative interpretations of Chhattisgarhi folk music in theatre allowed him to create a new language that bridged the gap between oral tradition and the written word, rural culture and urban people, local performance and global topics. He also showed that authenticity and availability are closely related and that

a theatre based on indigenous culture will be both artistically deep and commercially sound. The play's legacy is that it very radically validates the voices and traditions of those who are often left out. Tanvir went against the elitist traditions of Indian theatre by increasing the prominence of the Nacha performers, the Chhattisgarhi dialect, and the music tradition of the area. By doing this, he set an example of a really national but very regional sort of drama. "Charandas Chor" has an edge over other films because it reminds people that folklore is not just a product of the past; it is a living thing that can be used to make art that speaks to the present. It is a drama that shows many that the most real truths are sometimes found in the most unexpected stories and told by the simplest characters in the simplest ways.

References :

1. Bharucha, R. (1993). *Theatre and the world: Performance and the politics of culture*. Routledge.
2. Gupta, C. (2012). *Habib Tanvir: The theatre of the people*. Seagull Books.
3. Sharma, A. (2008). The voice of the rural: Chhattisgarhi folk traditions in Naya Theatre. *Journal of Indian Theatre*, 25(3), 45-62.
4. Tanvir, H. (2004). *Charandas Chor*. Translated by Anjum Katyal. Seagull Books.
5. Tanvir, H. (1993). My journey into folk theatre. In N. Kumar (Ed.), *Contemporary Indian theatre* (pp. 78-95). National School of Drama.
6. Varadpande, M. L. (1987). *History of Indian theatre*. Abhinav Publications.
7. Doordarshan National. (2023, October 17). Exclusive Interview with Writer & Director Habib Tanvir | DD Nostalgia. YouTube. <https://www.youtube.com/watch?v=MXDGhLgWR4k>



Folk Elements in The Sankirtanas of Sri Annamacharya

Dr. C.P.S. Madhuri

*Academic Consultant (Teaching Faculty)
Department of Performing Arts
Sri Venkateswara University, Tirupati*

Abstract :

Folk culture (Lok Sanskriti) has long formed the foundation of Indian literature and music, shaping devotional and aesthetic expression. In Telugu cultural history, the fifteenth-century saint-poet Sri Tallapaka Annamacharya (1408–1503) stands as the Toli Telugu Vāggeyakāra-the first known poet-composer in Telugu. Composing 32,000 sankirtanas in praise of Lord Venkateswara, he not only enriched bhakti literature but also gave poetic structure to diverse folk traditions.

Unlike earlier poets such as Palkuriki Somanatha (13th century), who merely alluded to folk genres, Annamacharya transformed oral traditions into organized poetic and musical forms. His sankirtanas incorporate jājara refrains, dampuḍu pāṭalu (grinding songs), chandamāma pāṭalu (children's songs) and uyyāla/lāli (lullabies), reflecting domestic and communal life. By weaving these forms into devotional art, he bridged folk and classical traditions, making bhakti accessible to all and elevating oral culture into enduring heritage.

This study examines these folk elements, showing how Annamacharya democratized devotion, preserved women's voices and enriched South India's literary and musical legacy.

Keywords :

Annamacharya, sankirtanas, folk culture, folk elements, classical-folk synthesis.

Objectives :

1. To identify and analyze folk genres reflected in Annamacharya's *sankirtanas*.
2. To examine how he gave poetic and musical structure to these folk forms.
3. To explore the interface between oral traditions and classical composition.
4. To assess the cultural and devotional significance of these elements.
5. To highlight their continuing relevance in contemporary performance and memory.

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

46

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

I. Introduction: A Visionary Bridge Between the Elite and the Populace :

South India's cultural heritage reflects a dynamic dialogue between folk and classical traditions. *Lok Sanskriti*-rooted in everyday work, domestic affection and communal celebration-served as the well-spring of literary and musical creativity. In Telugu regions, oral genres such as pounding songs, lullabies, festival chants, and playful refrains preserved collective memory and voiced the experiences of ordinary people, particularly women.

Earlier poets like Palkuriki Somanatha referenced such forms but did not integrate them into structured compositions. Sri Tallapaka Annamacharya, a visionary of the Vijayanagara era, redefined this relationship by giving poetic and musical frameworks to living folk traditions. Known as the *Toli Telugu Vāggeyakāra* and *Padakavita Pitāmaha*, he composed an immense corpus- about 14,000 of his 32,000 *sankirtanas* survive on copper plates at Tirumala.

Annamacharya's distinctive contribution lies in his conscious absorption of folk idioms into devotional expression. By incorporating *jājara* refrains, *dampuḍu pāṭalu*, *chandamāma pāṭalu*, *uyyāla/lāli*, and other native forms, he brought the voices of home, field and festival into *bhakti* music. These adaptations made devotion intimate and inclusive, allowing common people to see their daily lives reflected in divine art. This paper explores how Annamacharya's integration of folk elements transformed the cultural and devotional landscape of Telugu music and literature.

II. Folk Elements in Annamacharya Sankirtanas :

To understand Annamacharya's engagement with folk culture, it is essential to recognize the specific folk forms reflected in his *sankirtanas*. Rooted in labour, ritual, festivity and domestic life, these genres show how he transformed everyday songs into expressions of *bhakti*. The following table outlines major folk elements that he adapted and redefined in his compositions.

Folk Genre	Context in Folk Life	Annamacharya's Contribution
Mēlukolupu pāṭalu	Morning wake-up songs for deities or the community.	Turned into devotional wake-up songs (<i>suprabhātams</i>) for Lord Venkateswara
Jājara	Rhythmic filler in folk choruses; festive cry during Holi	Used as rhythmic refrains adding communal joy
Suvvi Pāṭalu / Dampuḍu Pāṭalu	Sung by women while pounding grain in mortars	Transformed work rhythms into metaphors of devotion
Kōlāṭa Pāṭalu	Songs sung during Merris-dance (<i>kōlāṭam</i>) in a circle in which sticks are struck together in harmony, performed in groups during festivals	Elevated communal dance songs into structured devotional compositions

Allō Nēreḷḷu	Moonlight songs sung by young girls	Adapted to express emerging devotion and surrender to the divine
Śobhāne Pāṭalu	Sung during auspicious occasions like marriages	Sanctified household songs into divine wedding hymns of Lord Venkateswara and Goddess Alamēlumanga
Tandanāna Pāṭalu	Chorus songs with “tandanāna” refrain	Used as rhythmic and unifying refrains
Gobbi Pāṭalu	Sung by girls during the Gobbi festival of Sankrānti	Integrated cultural festivities into devotional contexts
Kūgūgu Pāṭalu	Humorous or playful songs sung in groups	Brought humour and playfulness into the devotional fold
Tummeda Pāṭalu (Bumble-Bee Songs)	Songs ending with “Tummeda” (O Bee)	Used to convey <i>Madhura Bhakti</i> through bee imagery
Ēla Padālu	Folk narrative or dialogic songs on love or longing	Shaped into <i>sankirtanas</i> expressing divine yearning for ultimate union (<i>Madhura Bhakti</i>) with Lord Venkateswara
Chandamāma Pāṭalu	Playful songs on the moon for children	Adapted to devotional songs, depicting the deity as a divine child
Uyyāla / Lāli / Jōla	Cradle and Lullaby songs sung while rocking infants to sleep	Turned into sacred songs where devotees rock the cradle of God
Hārati Pāṭalu	Sung while offering <i>hārati</i> (lamp) to deities or during rituals	Incorporated as sacred lamp-offering songs in temple and domestic worship

Apart from the above-mentioned folk elements, other folk genres like - *Sōdi pāṭalu*, *Nivāli pāṭalu*, *Dhavaḷa gītālu*, *Sāsa mukhālu*, *Samvāda padālu*, *Chindulu*, *Chiluka padālu*, *Chāngu Bhaḷālu*, *Pendli pāṭalu* are reflected in Annamacharya Sankirtanas.

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

III. Lyrical and Rhythmic Integration: The Dynamics of Folk Forms

a) The Ritual Awakening: *Mēlukolupu Pāṭalu* (The Wake-Up Songs)

Illustrative Sankirtanas:

- Harikrishna *mēlukonu ādipurusha* (3-543)

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

● **Mēlukonavē bhūlalanādhīpa
bhōgiśayana (4-552)**

Folk Context : In Telugu homes, mēlukolupu songs are sung at dawn to awaken family members and household deities, filled with images of birdsong, morning rituals and the promise of a new day.

Spiritual Adaptation: Annamacharya transforms this domestic act into a devotional *suprabhātam*, awakening Lord Venkateswara with affection and reverence, making divine presence part of everyday life.

b) **The Ceremonial Play: Jājara Pāṭalu (The Festival Songs) :**

Illustrative Sankirtanas :

- **Jagaḍapu chanavula jājara (5-274)**
- **Vaḍala Vaḍala venṭa vasanthamu
Jaḍato challēru nīpai jājara jājara
jāja (26-18)**

Folk Context : The Jājara tradition in Telugu folk culture refers to songs sung during community festivals, especially during Vasanthamu (Holi). These songs are filled with joy, playfulness, and themes of love. The word *Jājara* itself means celebration, friendly teasing, or playful enactment. The songs reflect the lively spirit of the festival, describing the sprinkling of coloured water or *gulaal*, the use of fragrant musk and the cheerful atmosphere of the participants.

Spiritual Adaptation : In “Jagaḍapu Chanavula Jājara,” Annamacharya turns the lively, worldly celebration into a sacred *leela* (divine play) between Lord Venkateswara and his consorts. The playful quarrels and tender exchanges symbolize *śṛṅgāra Bhakti*—the divine love between devotee

and God—lifting ordinary romance to a spiritual level.

In another *sankirtana*, “Vāḍala Vāḍala Venṭa Vasanthamu,” he transforms the spring festival into a celebration of divine joy and renewal in the presence of Lord Venkateswara.

c) **The Auspicious Moment: Śōbhāne / Śōbhanapu Pāṭalu (The Wedding Songs)**

Illustrative Sankirtanas :

- **Śōbhanamē Śōbhanamē vaibhavamula pāvanamūrtiki (5-18)**
- **Nela mūḍu śōbhanālu nīku nataniki tagu (7-280)**
- **Chūḍaramma satulāla śōbāna pādaramma (26-246)**

Folk Context : Traditionally sung by women during weddings, *śōbhane* or *śōbhanapu pāṭalu* celebrate the bride and groom, blessing them with happiness and prosperity. These songs describe the bride’s beauty, the joyful mood and the wishes for a blissful married life.

Spiritual Adaptation : In Annamacharya’s *śōbhane* compositions, the Lord Himself is the bride-groom and His marriage with Alamelu Manga becomes the central motif. By casting the divine union in the familiar frame of a village wedding, Annamacharya elevates marital rituals and allows devotees to witness the cosmic marriage through the lens of everyday family celebration.

d) **The Women’s Festival: Gobbi Pāṭalu (Seasonal Festive Songs) :**

Illustrative Sankirtana :

- **Kolani dōpariki Gobbiḷḷō yadukula swāmikini Gobbiḷḷō (5-98)**

Folk Context : *Gobbi* songs are sung by young girls during the Gobbi festival, a ritual associated with Sankranti. They gather around a mound of cow dung decorated with flowers, singing songs of youthful joy, friendship and fertility.

Spiritual Adaptation: Annamacharya retains the playful mood of the *Gobbi* festival but aligns it with devotion. The gathering and singing become a collective offering to Lord Venkateswara. Using the lively refrain “Gobbiḷḷō Gobbiḷḷō,” the songs often describe Lord Krishna’s playful deeds, transforming a village ritual into a heartfelt expression of *bhakti*. Thus, Annamacharya sanctifies youthful celebration while preserving this distinctly female-centered cultural practice within the sacred canon.

e) The Narrative Dialogue: *Ela Padālu* (Conversational Songs) :

Illustrative Sankirtana :

- **Meḍalekki ninnu jūci – kūḍēnanē yāsa tōḍa (7-223)**

Folk Context : *Ela* songs often take the form of a dialogue or question–answer exchange, used in folk settings to narrate stories or explain situations in a lively, conversational manner depicting intense anguish of separation (*viraha*) of the beloved.

Spiritual Adaptation : Using the composition “**Meḍalekki Ninnu Jūci**” as a framework, Annamacharya adapted the folk lyrical *Ela Padam* to portray the devotee’s intense longing and sighs of separation (*Viraha*) after seeing Lord Venkateswara from afar, channelling this human anguish into the soul’s deepest desire for ultimate mystical union (*Madhura Bhakti*).

f) The Work Songs: *Suvvi / Dampuḍu Pāṭalu* (The Grinding Songs) :

The *Suvvi* songs or *Dampuḍu Pāṭalu* are rhythmic folk chants traditionally sung by women during communal laborious work, specifically while pounding grain with a mortar and pestle. The repetitive, rhythmic nature of the work naturally translates into a chant-like musical structure, often featuring the word ‘*Suvvi*’ in chorus.

Illustrative Sankirtana :

- ***Suvvī Suvvī Suvvāḷammā – navvucu Dēvaki nandanu ganiye (5-361)***
- ***Suvvī suvvī suvvī suvvani – sudatulu danchedarōlāla (5-353)***

Folk Context : The song utilizes the rhythmic call-and-response structure inherent in group work-songs. The lyrics of traditional *Suvvi* songs often described the attire of the women pounding, their delicate hands (*pallavapaanula*) and the jingling of their bracelets.

Spiritual Adaptation : Annamacharya employs the *Suvvi* rhythm not just for grain pounding, but to narrate the miraculous events surrounding the birth and escape of Lord Krishna from Kamsa’s prison. The rhythmic chorus serves to celebrate the spiritual victory.

He incorporated this genre into his *sankirtanas*, adapting its rhythmic structure to devotional content. In doing so, he sanctified the labour of pounding, transforming it into an act of *bhakti*. What was once a domestic or agricultural rhythm, became a sacred rhythm, aligning the ordinary with the divine.

This adaptation also highlights Annamacharya’s sensitivity to **women’s cultural voices**. By preserving the cadences of their

work-songs, he integrated female experience into the devotional mainstream, granting it visibility and dignity within literary tradition.

g) The Dance of Sticks : Kolāṭa Pāṭalu (Stick Dance Songs) :

Illustrative Sankirtanas :

- *Kōlalettukoni gōpālulunu dānu (4-288) (Reference of 'kōlalu' - dance sticks)*
- *Kāntalu valayapu kankaṇa ravamula nantanta kōlāṭamāḍaganu (Vāḍe vāḍe allarivāḍadivō) (19-343) (Description of 'Kōlāṭam' dance performance)*
- *Veṭṭi valapu challaku Vishnu mūrīti nātō (15-241) (Kirtana following the rhythmic patterns of Kolatam)*

Folk Context : *Kōlāṭam* is a popular folk dance in Telugu culture, performed during festivals and community gatherings, where participants-usually women and girls-dance in circles striking decorated sticks in rhythmic patterns. The songs that accompany this dance are simple, repetitive and emphasize collective energy, festivity and play.

Spiritual Adaptation : Annamacharya incorporated the *kōlāṭa* style into his *sankirtanas*, casting the rhythmic strikes and circular movement as symbolic of cosmic harmony and divine play. In his compositions, what was once a communal dance of festivity becomes an offering of rhythm and movement to Lord Venkateswara. By this adaptation, Annamacharya elevated a joyous folk pastime into a devotional act, showing that even playful dance could be a form of worship.

h) The Moonlit Comfort: Chandamāma Pāṭalu (Playful songs for children):

Illustrative Sankirtanas :

- *Chandamama Rāvo jābilli Rāvō*
- *Challanai kāyagadō chandamāma (5-228)*

Folk Context : In Indian culture, the moon (*Chandra*) is often affectionately referred to as *Mama* (maternal uncle). The traditional *Chandamāma Pāṭalu* (songs) are typically sung to amuse or soothe small children, often asking the moon to come and play or bring treats, placing the celestial object within the child's familial orbit.

Spiritual Adaptation : Annamacharya consciously utilized this established popular convention of addressing the Moon as an uncle and integrated it into his devotional lyrics, making the act of praising God as simple and familiar as singing to a child. In compositions such as *Chandamāma Rāvo jābilli Rāvō*, the soothing tone of the folk lullaby is sanctified, transforming domestic affection into an expression of bhakti. This choice underscores his commitment to making divine concepts accessible (*Desi* tradition).

i) The Domestic Intimacy : Lāli/Jōla-Uyyāla Pāṭalu (The Lullaby/Cradle Songs) :

The *Lāli* or *Jōla* is a delicate folk form sung by mothers to soothe infants to sleep, creating the most intimate bond possible in human experience and *Uyyāla Pāṭa* – the cradle song sung while rocking the infants to sleep. The syllables 'Jō', 'Lāli' and 'Uyyāla' are the characteristic markers of this genre.

Illustrative Sankirtanas :

- **Lālanuchu nūchēru lalanalirugadala (Annamacharya Charitra Peethika – p.61)**
- **Jō achyutananda jō jō Mukunda (Annamacharya Charitra Peethika – p.59)**
- **Uyyāla bālunūchedaru (5-246)**

Folk Context: The *Lāli / Jōla / Uyyāla Pāṭalu* (Lullaby Songs) are traditional Telugu folk tunes sung by mothers to put infants to sleep. This is famously sung today during the *Ēkanta Seva* (the Lord's night service) at Tirumala.

Spiritual Adaptation : By choosing the lullaby form, Annamacharya deliberately collapses the distance between the remote, majestic cosmic Lord and the human devotee. The song 'Jō achyutānanda' narrates the childhood mischievousness (*leelas*) of Lord Krishna-the thief among the cow-herd (*mandalaku donga*), the butter thief, and the one who sleeps in the milky ocean (*pāla vārāsi*). This transposition of the cosmic Vishnu into a domestic, approachable figure allows the devotee to forge a personal, affectionate relationship with the Divine, embodying the *Madhura Bhakti* tradition.

j) The Offering Song : *Hārati Pāṭalu* (Ritualistic light offering songs)

Illustrative Sankirtanas :

- **Anganalīrē āratulu (19-346)**
- **Ettarē āratulu iyyarē kānukalu (4-31)**

Folk Context : In village households, *hārati* songs accompany the ritual of offering a lighted lamp to family deities or honoured guests, signifying protection and blessing.

Spiritual Adaptation : Annamacharya elevates this household ritual by composing *hārati* songs to Lord Venkateswara. By formalizing the folk custom in structured poetry, he transformed a daily act into a temple tradition, connecting domestic worship with collective ritual at Tirumala.

IV. Cultural Significance :

Annamacharya's integration of folk elements was not incidental but central to his cultural vision. His works reveal a deliberate effort to draw sacred expression from the very fabric of daily life. This had several important implications:

1. **Democratization of Bhakti :** By using familiar folk idioms, Annamacharya made devotion accessible to people across caste, gender and educational backgrounds. The *sankirtanas* could be sung by lay-persons and scholars alike, ensuring that bhakti was truly a collective experience.
2. **Validation of Women's Voices :** Many of the folk forms Annamacharya employed-pounding songs, lullabies, cradle songs-originated in women's spaces. By incorporating them into sacred literature, he amplified the voices of women and preserved their cultural expressions in a formal canon.
3. **Bridge between Folk and Classical :** His *sankirtanas* stand at the intersection of oral tradition and classical refinement. The folk elements retained their spontaneity and relatability, while their placement within structured compositions ensured preservation and recognition.

4. **Cultural Continuity** : By formalizing folk idioms, Annamacharya safeguarded them against disappearance. His works ensured that these traditions lived on in temples, households, and performance contexts for centuries.

Thus, the folk elements in his compositions are not ornamental—they embody his vision of devotion as a way of life, resonating with both elite and lay audiences.

V. Conclusion :

Sri Annamacharya's *sankirtanas* reflect a vibrant fusion of folk and classical traditions in South India's cultural heritage. By integrating *jajara* refrains, *dampudu pāṭalu*, *chandamāma pāṭalu* and *uyyāla/lali* songs, he elevated the music of everyday life into sacred expression. Unlike earlier poets who merely referenced folk forms, Annamacharya gave them poetic and musical structure within a devotional framework.

As the *Toli Telugu Vaggeyakara*, he pioneered a synthesis that democratized devotion, celebrated women's cultural voices and bridged folk and classical idioms. Even after centuries, Annamacharya's *sankirtanas* continue to resonate as they reflect the people's rhythms, emotions, and values, sanctified through *bhakti*. Recognizing the folk elements in his works helps us see not only his artistic brilliance but also his cultural vision—the power to turn everyday songs into lasting expressions of faith and beauty.

References :

1. Acharya Ravva Srihari. (2012). *Annamayya Padakosam*. Tirumala Tirupati Devasthanams.

2. Annamacharya - Annamacharya Bhavana Vahini. (n.d.). *About Annamayya*. Retrieved September 10, 2025, from <https://www.annamayya.org/about-annamayya/>
3. Annamacharya - India! Her Glorious Spiritual Heritage!! (2018, October 29). Retrieved September 10, 2025, from <https://spiritual-heritage-of-india.blogspot.com/2018/10/annamacharya.html>
4. Annamacharya - Wikipedia. (n.d.). Retrieved September 10, 2025, from <https://en.wikipedia.org/wiki/Annamacharya>
5. Annamacharya Project - Tirumala Tirupati Devasthanams. (n.d.). Retrieved September 10, 2025, from <https://www.tirumala.org/RAAnnamacharyaProject.aspx>
6. *Annamacharya Sankeerthanams*. (n.d.). Tirumala Tirupati Devasthanams. Retrieved September 10, 2025, from <https://tirumala.org/AnnamacharyaSankeerthanams.aspx>
7. Balantrapu Rajanikantha Rao (1958). *Andhra Vaggeyakara Charitramu*. Visalandhra Publishing House.
8. *Chandamama Ravo*. (2006, November 26). Annamacharya Lyrics. <https://annamayya-lyrics.blogspot.com/2006/11/75chandamama-ravo.html>
9. Chandrasekhara, H. L. (1990). *Shri Annamacharya a Philosophical Study*. Vidyashankara Prakashana.
10. Gauripeddi Ramasubba Sarma (Ed.). (1998). *Adhyatma Sankirtanalu* (Vol. 3). Tirumala Tirupati Devasthanams.
11. Gauripeddi Ramasubba Sarma (Ed.). (1998). *Adhyatma Sankirtanalu* (Vol. 4). Tirumala Tirupati Devasthanams.
12. Gauripeddi Ramasubba Sarma (Ed.). (1998). *Srungara Sankirtanalu* (Vol. 5). Tirumala Tirupati Devasthanams.
13. Gauripeddi Ramasubba Sarma (Ed.). (1998). *Srungara Sankirtanalu* (Vol. 19). Tirumala Tirupati Devasthanams.

14. Gauripeddi Ramasubba Sarma (Ed.). (1998). *Srungara Sankirtanalu* (Vol. 26). Tirumala Tirupati Devasthanams.
15. Leelavathamma, P. (1986). *Annamayya Sankirtanallo Janapada Geya Phanitulu*. Ponna Publications.
16. Leelavathamma, P. (1993). *Padakavitha Vijayanthi*. Ponna Publications.
17. P. T. Jagannatha Rao (Ed.). (1998). *Adhyatma Sankirtanalu* (Vol. 15). Tirumala Tirupati Devasthanams.
18. Prabhakara Sastry, V. (2008). *Annamacharya Charitra Pithika*. Tirumala Tirupati Devasthanams.
19. Rallapalli Anantha Krishna Sarma (Ed.). (1998). *Srungara Sankirtanalu* (Vol. 7). Tirumala Tirupati Devasthanams.
20. *Philosophical concepts in the mystic songs of Sri Annamacharya*. (2018). Research Gate. https://www.researchgate.net/publication/328432320_Philosophical_Concepts_in_the_Mystic_Songs_of_Sri_Annamacharya
21. Vijayanagara musicological nonet - Wikipedia (n.d.). Retrieved September 10, 2025, from https://en.wikipedia.org/wiki/Vijayanagara_musicological_nonet.



राजस्थानी परम्परागत छापा कला के सौन्दर्य में लोक कला का प्रभाव

डॉ. महेश सिंह

सह आचार्य, चित्रकला विभाग,
दृश्य कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

अनन्त रत्न

शोध छात्र, चित्रकला विभाग,
दृश्य कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

सारांश :

रंग, आकार और ध्वनि ही मानव जीवन में सौन्दर्य के तीन पहलू हैं। रंग से आत्मा में आनन्द की अनुभूति होती है। आकार उस आनन्दानुभूति की प्रतिमा बनाता है, उस आनन्दानुभूति को एक रूप देता है जिससे उस भावना को रूप मिले। कपड़ों पर बने अलंकरण, तालपत्रों पर बने चित्र और अल्पना आदि रेखांकन भी मानव अनुभूतियों की ही अभिव्यक्ति है। मनुष्य हमेशा अपनी अभिव्यक्तियों को सुधारता रहा है, क्योंकि मनुष्य के मन में हमेशा यह रहता है कि इस अभिव्यक्ति को और अच्छा बनाये। उसमें एक रचनात्मक प्रवृत्ति होती है वही प्रवृत्ति इन चीजों में दिखलाई देती है। भारतीय स्त्री पुरुष दोनों रंगीन वस्त्र धारण करने के शौकीन थे। रंगों के संबन्ध में उनका ज्ञान इतना सुविकसित था कि वे ऋतु, दिन, उत्सव और मांगलिक प्रसंगों के अनुकूल वस्त्र पहनना पसंद करते थे। इनके लिये वे प्रकृति द्वारा प्रदत्त रंगों का प्रयोग करते थे। इन रंगों, अलंकरणों और रंगाई, छपाई व बेल-बुटो में लोक कला की महत्ता महसूस होती है। सांगानेरी ब्लॉक प्रिंटिंग में लोक प्रभाव इसकी आकृति, रंगों और शिल्प में बुनी सांस्कृतिक मान्यताओं में गहराई से दिखाई देता है।

मुख्य शब्द :

सौन्दर्य, अलंकरण, अभिव्यक्ति, बेल-बुटा, उत्सव, लोक कला।

परिचय :

सुन्दर और उपयोगी वस्त्रों का निर्माण भारत वर्ष की कला रही है। मनुष्य ने जब वस्त्र बनाना शुरू किया तभी उसको सजाने की बात भी उसके मस्तिष्क में आई ताकि वस्त्र सुन्दर लगें। इसके लिये उसने प्रकृति से प्राप्त वस्तुओं का प्रयोग किया जैसे ऊनी वस्त्र बुनते समय सफेद और काली भेड़ के ऊन को आपस में मिलाकर वस्त्र बुना जिससे कि दो रंगों का

प्रभाव उत्पन्न हुआ। इससे प्रभावित होकर उसके मस्तिष्क में धीरे - धीरे यह बात आई कि प्रकृति से प्राप्त रंगों का भी प्रयोग किया जा सकता है, जैसे उसने हरसिंगार के फूल को मसल कर पीला रंग तैयार किया। उसी प्रकार कुसुम के फूल से लाल और पीला (हल्दी जैसा पीला), अनार के छिलके से पीला, मदार की छाल से लाल, नील से नीला आदि रंग तैयार किये

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

55

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

होगें और अपने वस्त्रों को रंगों से सजाया।

ऐतिहासिक स्थिति :

भारत वर्ष में प्राचीन काल से ही रंगाई और छपाई का कार्य होता आ रहा है। प्राचीन साहित्य 'पाणिनी की अष्टाध्यायी', 'मनुस्मृति' आदि के आलेखों से स्पष्ट है कि उस समय रंगाई कला विकसित थी। भारत में रंगाई कला की प्राचीनता सिन्धु घाटी की खुदाई में प्राप्त एक लाल कपड़े के अवशेष से प्रमाणित होती है। प्राचीन संस्कृत साहित्य और भित्ति चित्रों से ज्ञात होता है।

अजन्ता के भित्ति चित्र तथा मध्ययुग के साहित्य एवं चित्रों से प्रमाणित है कि चुनरी और लहरिया के वस्त्र विभिन्न युगों में संपूर्ण उत्तर भारत में लोकप्रिय रहे हैं। इन वस्त्रों को तैयार करने में अत्यधिक परिश्रम, समय, अनुभव एवं कार्य कुशलता की आवश्यकता होती है। रंगाई के साथ-साथ धीरे-धीरे भांतदार कपड़ों का बनना भी शुरू हुआ जिसे ठप्पे द्वारा या दाबू विधि द्वारा छापा जाता था। सर्वप्रथम लोक जन जीवन से प्रभावित ज्यामितीय भांते बननी प्रारम्भ हुई तत्पश्चात् फूल-पत्ती के अलंकरण और अगले विकास क्रम में मानवाकृतियाँ पशु-पक्षी आदि बने। वैसे तो सारे भारत में छपाई होती आ रही है, पर कुछ क्षेत्र अधिक प्रसिद्ध हुए जैसे- कश्मीर, गोलकुण्डा, गुजरात, उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश। जिसमें राजस्थान का अपना अलग स्थान है। जिसका मुख्य कारण यहाँ की जलवायु, खनिज युक्त पानी, मिट्टी आदि है।

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार बाण द्वारा वर्णित छपे वस्त्रों की भांतों की झलक सारनाथ स्तूप के शिलाघटित आवरण के अलंकरण में देखी जा सकती है। भारतीय साहित्य कुमार संभव, हर्ष चरित, कादम्बरी आदि में अभिप्राय युक्त वस्त्रों के उल्लेख हैं जिनकी विद्वानों ने छपे हुए वस्त्रों से पहचान की है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में उल्लिखित

'फुटुक', 'पुष्पवट', 'हंस लक्षण युक्त दुकुल' तथा 'गोरोचन लिखित हंस मिथुन' (कादम्बरी) से छपे और चित्रित वस्त्रों का आभास मिलता है। यद्यपि भारतीय जलवायु के कारण प्राचीन वस्त्रों के उदाहरण अब उपलब्ध नहीं हैं पर साहित्य में वर्णित इन भांतों की लोकप्रियता बाद तक भी बनी रही।

सिन्धुघाटी सभ्यता के प्रमुख केन्द्र मोहनजोदड़ों की खुदाई में सफेद चूना पत्थर की ध्यानावस्थित साधु की प्रतिमा प्राप्त हुई है, इस पुरुष ने बायें कंधे के ऊपर से एक शॉल ओढ़ रखा है, जिस पर तीन पंखुड़ियों वाले फूल का अलंकरण बना है, जो इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि 3000 ई. पू. भी भारत में काष्ठ-ठप्पा छपाई की कला विद्यमान थी। (चित्र संख्या-4) इसके साथ ही अजन्ता के भित्तिचित्रों पर अंकित अभिप्राय युक्त वस्त्र भी छपे हुए प्रतीत होते हैं। जैसे- अजन्ता की गुफा संख्या-1 के महाजनक जातक वाले चित्र में तीन पुरुष आकृतियों में से एक को बतख के अलंकरण से युक्त ठप्पे से छपा जैकेट पहने हुए दर्शाया गया है। दूसरी पुरुष आकृति ने अलंकरण युक्त पारदर्शी परिधान पहना हुआ है।

भारत की विषम जलवायु के कारण यद्यपि लकड़ी के प्राचीन ठप्पों के अवशेष तो नहीं मिलते हैं परन्तु श्रीमती पुपुल जयकर पाँचवीं शती के पत्थर के ठप्पे का भी उल्लेख करती हैं। इन सब प्रमाणों से यह सुनिश्चित हो जाता है कि भारत में वस्त्रों को छापने की कला का विकास पाँचवीं शती ई. पूर्व हो चुका था। पश्चिमी चालुक्य शाक सोमेश्वर (1124-1138 ई.) ने मानसोल्लास में सूती, रेशमी और ऊनी कपड़ों पर विविध रंगों से बनाये जाने वाले लोक कला के अनुसार गोल, चकोर, बूँद और लहरदार अलंकरणों का विस्तार से वर्णन किया है जो पश्चिमी भारत के जैन लघुचित्रों में बनाये भांतदार वस्त्रों से समानता रखते हैं। सोमेश्वर द्वारा उल्लिखित 'चित्र कपर्दक' और 'चित्रपटीपट' आदि छपे या कलमकारी के कपड़े प्रतीत होते हैं।

अल फोस्तात मिस्त्र की पुरानी राजधानी थी और 969 ई. में फातिमिदों द्वारा कैरों की स्थापना के बाद ही इसका महत्व कम हुआ। राजनीतिक दृष्टि से नगर का महत्व कम हो गया, पर पुरानी कब्रों की वही प्रतिष्ठा बनी रही। यहीं खुदाई में भारत में छपी छोटों के नमूने मिले, कब्रों में ये वस्त्र मृत शरीर के साथ दफनाये गये थे। खुदाई के समय तो इन्हें भारतीय नहीं माना गया था, पर बाद में प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान स्व. आर. फिस्तर ने इन्हें गुजराती कहा। तत्पश्चात् श्री इर्विन और कुत्र मार्गरेट हॅल ने भी अपने तर्कों द्वारा श्री फिस्तर के सुझाव की पुष्टि की और इन्हें पश्चिमी भारतीय कहा।

फोस्तात से प्राप्त कपड़े के टुकड़ों का समय निर्धारित करने का एकमात्र उपलब्ध साधन कपड़े पर छपे अलंकरणों का तुलनात्मक विश्लेषण है। यह कार्य कुछ तो फिस्तर के द्वारा किया गया है और बाकी तुलनात्मक विश्लेषण इर्विन और हॉल द्वारा किया गया है। इन लेखकों ने इन वस्त्रालंकरणों का सम्बन्ध पन्द्रहवीं शताब्दी की अहमदाबाद की पत्थर की नक्काशीदार जालियों, सोलहवीं शताब्दी के पर्शियन पुस्तकों के आवरण के अलंकरणों एवं सत्रहवीं शताब्दी की इटालियन सिल्क से स्थापित किया। मिस्त्र के प्राचीन मकबरे से एक टूटा हुआ ठप्पा भी मिला है जो संभवत 10वीं शती पूर्व का है।

चित्र संख्या-1 के लिये ज्योतिन्द्र जैन द्वारा एक संभावना पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की गई है। उनका यह विश्वास है कि यह दृश्य राजा के ध्वस्त उद्यान में एक सूअर के शिकार की एक पौराणिक गुजराती लोक कला से संबंधित है। यह विषय गुजराती देवी माँ खोदीआर की पौराणिक कथा में पुनः प्रकट होता है एवं इस वस्त्रालंकरण का यहाँ विशिष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। यह कहना कठिन है कि ये कपड़े का टुकड़ा कोई गोलाकार लपेटे जाने वाले कपड़े का है जिस पर कि कथा लिखी जाती थी या फिर किसी शिक्षाप्रद प्रतीक का टुकड़ा है। संभव है कि पौराणिक

पशु का इसमें बना अलंकरण काफी लोकप्रिय था क्योंकि पंद्रहवीं शताब्दी के लघु चित्रों में बने वस्त्रों पर भी इस अलंकरण का अंकन देखा जा सकता है। (चित्र संख्या-2)



चित्र संख्या-1 : 15वीं से 17वीं शताब्दी के बीच भारत में छपा यह वस्त्र अल फोस्तात से प्राप्त हुआ है



चित्र संख्या-2 : पश्चिम भारतीय लघु चित्रण शैली में 15वीं शताब्दी में बने इस चित्र में स्त्री को शरीर के अधोभाग में पौराणिक पशु 'गजसिंह' के अलंकरण से युक्त वस्त्र पहने चित्रित किया गया है।

इससे प्रेरित और भी अलंकरण फोस्तात से प्राप्त वस्त्रों में देखे जा सकते हैं जिससे कि यह ज्ञात होता है कि इस तरह के वस्त्रों का व्यापार आम तौर पर प्रचलित था। मोटे बुने हुए सूती कपड़े पर अस्पष्ट छपाई की गई है। इन वस्त्रों पर छपी मानव आकृतियों

से यह ज्ञात होता है कि सम्भवतया ये वस्त्र इस्लामिक बाजार में व्यापार हेतु नहीं बनाये गये थे। सम्भव है कि ये वस्त्र पश्चिम भारत के बंदरगाह पर उपलब्ध थे एवं व्यक्तिगत रूप से किसी नाविक द्वारा मिश्र ले जाये गये थे।

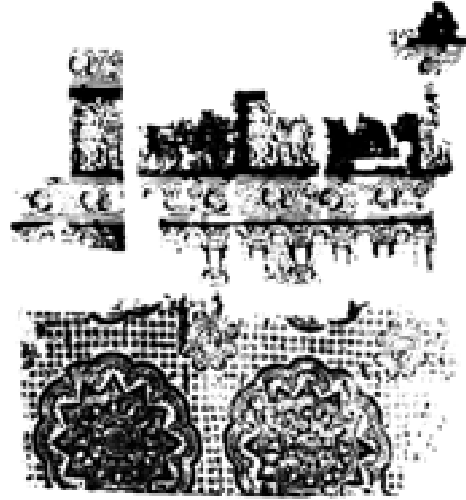
भारतीय छपे वस्त्र देश-विदेश के विभिन्न संग्रहालयों में बड़ी मात्रा में संग्रहित हैं, इनमें से कुछ प्रमुख वस्त्रों का यहाँ विवरण प्रस्तुत किया है जिनमें परम्परागत छपा कला के सौन्दर्य में लोक कला का प्रभाव दिखाई देता है।

1. एक कपड़े का टुकड़ा 13वीं शताब्दी में भारत में छपा यह वस्त्र अल फोस्तात से प्राप्त हुआ है। जिसकी लम्बाई-47 सेमी., चौड़ाई-56 सेमी. हैं जो टैक्सटाइल म्यूजियम, वाशिंगटन, डी. सी. में संग्रहित है। इस कपड़े की ठप्पे से छपाई की गई है एवं दाबू तकनीक का प्रयोग किया गया है। इसमें हल्के और गहरे नीले रंग से छपाई की गई है। इस पर मानवाकृति अलंकरणों की दो पंक्तियाँ बनी हुई हैं जिन्हें पुष्प बेल से विभक्त किया गया है। ऊपर की पंक्ति में तीन मानवों का एक बूटा बना है जिसे कि दोहराया गया है। इसमें दो स्त्रियों के मध्य एक पुरुष आकृति बनी है। चूंकि पुरुष आकृति ने हाथ में त्रिशूल लिया हुआ है अतः सम्भवतः यह शिव की आकृति है। नीचे की पंक्ति में स्त्री आकृति को आलों के मध्य में खड़ा बनाया गया है। (चित्र संख्या 3)

2. कपड़े का टुकड़ा : यह वस्त्र 13वीं शताब्दी में भारत में छपा है एवं अल फोस्तात में खुदाई में प्राप्त हुआ है। जिसकी लम्बाई - 69 सेमी., चौड़ाई - 30 सेमी. हैं जो टैक्सटाइल म्यूजियम, वाशिंगटन, डी. सी. में संग्रहित है।

रंग एवं तकनीक : इस सूती वस्त्र पर ठप्पा पद्धति से छपाई की गई है। इसमें लाल और

भूरे रंग का प्रयोग किया गया है। इसमें मध्य में बड़े-बड़े पुष्प अलंकरण बने हैं, जिसके चारों ओर आठ पत्तियों वाले छोटे पुष्प बने हैं, शेष बचे अंतराल को भरने के लिये बारीक पुष्पालंकरण बनाये गये हैं। (चित्र संख्या 4)



चित्र संख्या 3, 4

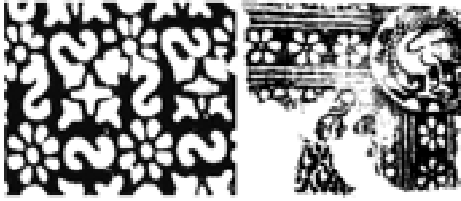
3. कपड़े का टुकड़ा : 15वीं शताब्दी में ठप्पे से छपा यह वस्त्र अल फोस्तात से प्राप्त हुआ है तथा यह वस्त्र पश्चिमी भारत में निर्मित माना जाता है। जिसकी लम्बाई - 16.2 से. मी., चौड़ाई - 10.8 सेमी. हैं जो कैलिको संग्रहालय, अहमदाबाद में संग्रहित है।

रंग एवं तकनीक : इस वस्त्र में नीले और सफेद रंग का प्रयोग किया गया है तथा यह दाबू पद्धति से छपा है। इसमें तीन तरह के अलंकरणों का प्रयोग किया गया है, ये हैं - फूल, एस आकार की बेल और तीन पत्ती का नमूना ये सभी एक क्रास के निशान के चारों ओर बने हैं। (चित्र संख्या 5)

4. कपड़े का टुकड़ा : यह सूती कपड़े का टुकड़ा 15वीं शताब्दी में भारत में छपा है एवं अल फोस्तात से खुदाई में प्राप्त हुआ है। जिसकी

लम्बाई - 17 सें. मी., चौड़ाई - 15 सें. मी. हैं जो टैक्सटाइल म्यूजियम, वाशिंगटन, डी. सी. में संग्रहित है।

रंग एवं तकनीक : इस सूती कपड़े पर ठप्पे से दाबू पद्धति में छपाई की गई है तथा छपाई में काले रंग का प्रयोग किया गया है। इसमें दो पट्टियों के मिलान पर एक वृत्त के मध्य पक्षी (मोर) का अलंकरण बना हुआ है। पट्टियों में छः पत्तियों वाले पुष्पों की पंक्ति बनी है जिसके दोनों ओर तीन पतली रेखाएँ खिंची हैं, इसके पश्चात् बड़े-बड़े बिन्दुओं की एक पंक्ति बनी है। वस्त्र के मध्य का भाग नष्ट हो चुका है। (चित्र संख्या 6)



चित्र संख्या 5, 6

इस प्रकार कैलिको संग्रहालय, अहमदाबाद और वाशिंगटन, डी. सी. के टैक्सटाइल संग्रहालय में फोस्तात से प्राप्त भारत में निर्मित वस्त्रों के टुकड़े बहुत बड़ी संख्या में संग्रहित हैं। ये वस्त्र उस युग की भारतीय रंगाई एवं छपाई कला का प्रतिनिधित्व करते हैं एवं भारतीय रंगाई और छपाई कला की प्राचीनता का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। स्पष्ट है कि भारतीय रंगे एवं छपे वस्त्रों की विदेशों में बहुत मांग रही है। ईसा पूर्व से ही यहाँ के रंगे एवं छपे वस्त्रों का निर्यात विदेशों को होता था वे अपनी विशिष्टता के कारण अन्य देशों से उत्कृष्ट माने जाते थे। पेरिप्लस (प्रथम शती ई.) के अनुसार भारतीय रंगे वस्त्रों का निर्यात एशिया एवं अफ्रीका के देशों को होता था, जहाँ वे अत्यधिक लोकप्रिय थे। (चित्र संख्या 7, 8)

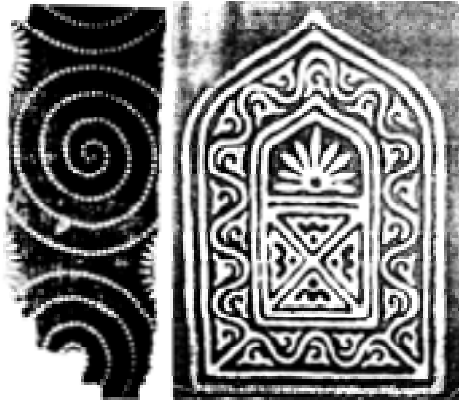
मुगल काल में अन्य कलाओं के समान छपाई कला को एक नई दिशा मिली। शाही कारखानों तथा अनहद-लोक ISSN : 2349-137X (जुलाई-दिसम्बर)

अन्य राजकीय संरक्षण प्राप्त केन्द्रों में मुगल दरबार की रूचि के अनुकूल पच्चीकारी के समान महीन और ईरानी ढंग के अलंकरणों का प्रयोग होने लगा। मसूलीपट्टम, बुरहानपुर, अहमदाबाद तथा पंजाब के अनेक छपाई केन्द्रों में इस ढंग के अलंकरणों का विकास हुआ। दूसरी ओर जो स्थान दरबारी प्रभाव से मुक्त थे वहाँ तथा नागरिक सभ्यता से अछूते गाँवों में परम्परागत ढंग से छपाई होती रही। आज भी अनेक गाँवों में दाबू पद्धति से छपाई होती है, जिसमें भारतीय छपाई का प्राचीन या मूलरूप देखा जा सकता है। वास्तव में दाबू पद्धति से छपाई का ढंग पुराना है जो मुसलमानों के यहाँ आने से शताब्दियों पूर्व ही विकसित हो चुका था। भारत में प्राचीन काल से प्रयुक्त यह पद्धति ही आधुनिक 'बाटिक' कला की जन्मदात्री है।

जयपुर के ही कारखाने जात अभिलेखों में न जाने कितने ही छीपों और रंगरेजों के नाम सुरक्षित हैं। सवाई जय सिंह द्वारा संस्थापित छत्तीस कारखानों में कम से कम चार वस्त्रों से सम्बद्ध थे, यथा-सीवन खाना, रंग खाना, छपा खाना। जहाँ क्रमशः कपड़े सिले, रंगे एवं छापे जाते थे और जहाँ बहुत कीमती कपड़े तैयार होते और सुरक्षित रखे जाते थे। 19वीं शती और विशेषकर उत्तरार्ध में राजस्थानी छीटें छपती रहीं पर उनके काम का स्तर बहुत गरि गयकारण था मांग में कमी, निर्यात कम हो गया क्योंकि औद्योगिक क्रांति के कारण यूरोप के बाजारों में मील के छपे कपड़े आने लगे। भारतीय उच्च वर्ग जो इन छीटों का मुख्य खरीददार था अब अत्यधिक विदेशी माल की ओर झुकने लगा। मध्यम और निम्न वर्ग के लिए जो कपड़ा छपता था उसकी छपाई होती रही। वहाँ कुछ नया करने की गुंजाइश नहीं थी। ऐसे कपड़ों की खपत के दूसरे केन्द्र मंदिर और धार्मिक-सामाजिक पर्व त्यौहार थे। इन क्षेत्रों में 19वीं शती में कुछ नयापन देखने में आता है। कारण-कलाकार, खरादी और छीपा मशीनी युग की नई-नई चीजें देख रहे थे, उदाहरण के लिए उन्होंने रेलगाड़ी देखी, यूरोपीय

अभिप्राय देखी तो उसे भी अपने अलंकरणों में शामिल कर लिया। धर्म की और अधिक झुकाव होने के कारण धार्मिक अवसरों पर बनने वाले दुपट्टों और परदों में ही इस युग के नए अलंकरण देखने में आते हैं। जयपुर राजमहल में नगर के संत-महंतों द्वारा प्रदत्त ऐसे दुपट्टों का विशाल भण्डार है जिनमें रूद्राक्ष धतूरे के फूल और फल, कनेर के फूलों, वैष्णव छाप, विष्णु पद, कमल फूल, बेल-पत्रों पर आधारित बीसियों अभिप्राय हैं। इन्हीं में रचनात्मक प्रतिभा व्यक्त हुई है।

इस क्षेत्र के छपे वस्त्रों के सर्वाधिक प्राचीनतम उदाहरण हमें मिश्र देश के अल फोस्तात नामक स्थान से मिले हैं, जिनका की पूर्व में विस्तार से वर्णन किया गया है। इनके अलावा विभिन्न संग्रहालयों में यहाँ छपे विभिन्न शताब्दियों के बहुत से वस्त्र सुरक्षित हैं, जिन्हें कि प्रमाणिक तोर पर राजस्थान में छपा माना गया है। यहाँ ऐसे कुछ प्रमुख वस्त्रों का विवरण देना भी उचित होगा क्योंकि ये वस्त्र राजस्थान की वस्त्र छपाई कला के इतिहास का पुख्ता प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।



चित्र संख्या 7, 8

इस प्रकार सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के लघु चित्रों के वस्त्रालंकरणों में फोस्तात के वस्त्रों से समानता दिखाई देती है। लघु चित्रों में जाल के मध्य ज्यामितीय आकारों, बड़ें वृत्तों, अंगूर की लताओं

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

इत्यादि अलंकरणों का विशेष रूप से प्रयोग किया गया है। इस प्रकार के एवं इससे मिलते जुलते अलंकरणों की आज भी गुजरात में स्थानीय बाजार की माँग हेतु छपाई की जाती है। सत्रहवीं शताब्दी में भारतीय फैशन की मुख्य धारा में फूलों एवं फलों के गुच्छों के अलंकरणों का प्रमुख स्थान था, किन्तु इस प्रकार के वस्त्रों का स्पष्ट रूप से मिश्र में व्यापार नहीं हुआ। हालांकि लाल सागर की तरफ से व्यापार एवं व्यवसाय जारी था, किन्तु संभव है कि केवल परम्परागत अलंकरणों एवं बनावट वाले वस्त्रों का ही व्यापार किया जा रहा था। मिश्र के इन स्थानों पर निरन्तर जारी विस्तृत पुरातात्विक उत्खनन से फोस्तात से प्राप्त वस्तुओं के काल निर्धारण में और भी अधिक स्पष्टता आई है एवं यहाँ से प्राप्त वस्त्रों की रंगाई एवं छपाई की तकनीक उस युग की भारतीय रंगाई एवं छपाई कला का प्रतिनिधित्व करती हैं।

सालू थे लाई जो साँगानेर रो म्हारा राज, चुड़लो थे लाई जो हस्ति दांत को सालू रो कोर देराय जो रे तोरे आव जो। उमराव बनवा जी सालू थे लायी जो साँगानेर रो।

लोक गीतों की नायिकाओं ने भी अपने नायकों के लिये साँगानेर के छापे का साफा मंगवाना ही संभवतः अधिक उपयुक्त माना है :

“छैल भंवर जी थाने मंगा दयूं साफो साँगानेर को।”
देराय जो रे तोरे आव जो। उमराव बनवा जी
सालू थे लायी जो साँगानेर रो।

लोक गीतों की नायिकाओं ने भी अपने नायकों के लिये साँगानेर के छापे का साफा मंगवाना ही संभवतः अधिक उपयुक्त माना है:-

“छैल भंवर जी थाने मंगा दयूं साफो साँगानेर को।”

एक समय था जब जाट, मीणा, गुर्जर जाति के छैल-छबीले और स्त्री प्रसंगों में आनन्द लेने वाले लोग प्रायः साँगानेरी छपाई के साफे गमछे और अशर्फी बेल की धोती धारण किया करते थे और

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

युवतियाँ उन छापों पर मर मिटती थीं। इसी से स्पष्ट होता है कि इस राजस्थानी परम्परागत छापा कला के सौन्दर्य में लोक कला का प्रभाव दिखाई देता है।

सन्दर्भ सूची :

1. साँगानेरी-छपाई; भाग-प्रथम, नेषलन क्राफ्ट इंस्टीट्यूट फॉर हैण्ड प्रिंटेड टैक्सटाइल्स, हस्त-शिल्प आयुक्त का कार्यालय, भारत सरकार, जयपुर 1985, पृ०-1
2. आषा भगत; राजस्थान, गुजरात एवं मध्यप्रदेश की छपाई कला का सर्वेक्षण, नई दिल्ली, 1995, पृ०-6, 7, 10
3. वासुदेव शरण अग्रवाल; हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, बिहार, 1953, पृ०-75
4. मोतीचन्द्र जैन; प्राचीन भारतीय वेषभूषा, प्रयाग, 1950, पृ०-159
5. सोमेश्वर विरचित अभिलाषितार्थ चिंतामणी; गोड़कर द्वारा संपादित, बड़ौदा, 1936, पृ०-296
6. जयसिंह नीरज, बी. एल. शर्मा; राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, जयपुर, 2004, पृ०-251
7. Mattiebelle Goitinger; Master Dyers to the World, Washington, D.C., 1982, P.-41.
8. John Irwin, Margaret Hall; Indian Painted and Printed Fabrics, Ahmedabad, 1971, P.-13.
9. देवकी आदिवासी; रंगे एवं छपे वस्त्र वाराणसी, 1976 पृ०-21
10. पूर्णिमा गहलोत, लोकगीत, जयपुर, 1971. पृ०-46
11. हरि महर्षि, राजस्थान के हस्तशिल्प, जयपुर, 1994, पृ०-95



असम का जनजातीय समाज में प्रचलित लोकाचार

डॉ. नूरजहाँ रहमातुल्लाह

हिंदी विभाग, कॉटन विश्वविद्यालय
पानबाजार, गुवाहाटी, असम

शोधसार :

पूर्वोत्तर भारत का जनजातीय समाज लोकचार और परंपराओं की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। लोक संस्कृति की चार मुख्य श्रेणियों में लोकाचार अन्यतम है। लोकाचार मूलतः लोकसंस्कृति का ही एक अंग है। पूर्वोत्तर भारत की विविध जनजातियाँ हैं- जैसे कि कार्बी, मिकिर, बोड़ो, तिवा, गारो, सोनवाल, कछारी, लालुंग आदि निवास करती हैं। इनकी जीवन शैली प्रकृति, कृषि और सामदायिक सहयोग पर आधारित है। वे प्रकृति के साथ अपने संबंधों को सुदृढ़ करते हैं। असम के जनजातीय समाज को प्राकृतिक चीजों से खुशियाँ मिलती हैं, उनका सहर्ष गुणगान और उनके अस्तित्व को खतरा महसूस हो उनके प्रति भय की भावनाओं से निर्मित कुछ विशेष नियमों से लोक संस्कृति व लोकाचार की बुनियाद खड़ी होती है। समाज में प्रचलित विभिन्न अनुष्ठान जैसे धार्मिक त्योहार, जन्म, मृत्यु तथा विवाह से संबंधित भिन्न विधियाँ व समारोह के साथ साथ मनोरंजन के लिए विविध खेल, उत्सव और चिकित्सा आदि के लिए लोकचिकित्सा आदि को लोकाचार कहा जाता है। यह लोकाचार परंपरागत तौर पर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलता ही जा रहा है। जैसे- शनि और मंगलवार के दिन नाखून और बालों का न काटना, बिल्ली को रास्ते पार होते देखने से गाड़ी चलना रोक देना, कृषि के लिए पेड़ पौधों की पूजा करना इत्यादि। असम का जनजातीय समाज अपने लोकाचारों के माध्यम से सामदायिक सहयोग, प्रकृति-निष्ठ जीवन और सांस्कृतिक विविधता को बनाए रखे हुए है।

बीज शब्द :

लोकाचार, लोक संस्कृति, कृषि, प्रकृति, जनजातीय।

प्रस्तावना :

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। जैसे साहित्य समाज का दर्पण है उसी तरह से समाज मानव जीवन का प्रतिछवि है। मानव सामाजिक प्राणी होने के कारण वे अपने प्रयोजानुसार कुछ विशेष नियम बनाए हैं। यह नियम किसी भी जगह लिपिबद्ध न होकर केवल मौखिक तरीके से एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी तक पहुँचते रहें। यह लोक संस्कृति किसी समाज समस्त

जनता की प्रतिनिधित्व करती है। लोक संस्कृति चार मुख्य में से लोकाचार अन्यतम है। लोकाचार का अर्थ समाज में प्रचलित रीति रिवाज। प्रत्येक समाज अपना कुछ अलग अलग रीति रिवाजों से बंधा हुआ है वे रीति-नियम सदियों से प्रचलित है।

‘लोकाचार’ शब्द का प्रयोग दो शब्दों से बना है- लोक और आचार। लोक का अर्थ है जनसाधारण,

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

मनुष्य, मानव और व्यावकता की दृष्टि से विश्व में समाज को समेट लेता है। उसी प्रकार आचार शब्द, आचरण, रीति-नियम, तौर-तरीका, आचार व्यवहार, चाल-चलन इत्यादि। अगर हम लोकाचार शब्द को लोक व्यवहार, शिष्टाचार, सामाजिक संबंधों से बन्धे हुए। और दूसरे अर्थ में कहा जाता है कि लोकाचार किसी विशेष जाती की रीति-नियम, उत्सव, त्यौहार, कार्य-कलाप इत्यादि। असम का लोकाचार एवं लोक संस्कृति भारत के अन्य राज्यों की तरह बहुत प्राचीन है। असम में अनेक जनगोष्ठियों का निवास स्थल है। सभी जनजातियों के अलग अलग लोक विश्वास है। असम में असमीया जाती मुख्य रूप में निवास करते हैं और उसी साथ अनेक जनजाती भी असम के निवासी है। असमीया लोगों के साथ साथ सभी जनगोष्ठी की अपना अपना रीति-नियम, जीवन शैली, रहन-सहन अलग अलग। असम के सामाजिक लोकाचार को मूलतः चार भागों में विभाजित किया गया है :

1. उत्सव अनुष्ठान
2. मनोरंजन व खेलकूद
3. लोक-औषधि
4. लोक धर्म

असम का जनजातीय समाज में अपने विशिष्ट परंपराओं, रीति-रिवाजों और सामाजिक आचारों के लिए प्रसिद्ध है। इनकी जीवन शैली, कृषि और सामदायिक सहयोग रूप से किया जाता है। लोकाचार लोगों के दैनंदिन जीवन की विविध गतिविधियों का समूह है, जो एक पीढ़ी दूसरे पीढ़ी चलता जा रहा है। यह एक सामाजिक लोकाचार है जिसमें किसी जाति की सांस्कृतिक विशेषता दिखाई देती है। उसी तरह से मनोरंजन के लिए हुए खेलकूद व्यक्ति की शारीरिक मानसिक और बौद्धिक विकास के साथ साथ लोगों में बंधत्व, देशप्रेम, एकता और विश्वास

की भावनाओं को सुदृढ़ करते। असम के समाज में अभी भी लोक औषधि मौजूद है। पशुओं के मांस, खून, चमड़ा आदि भी लोक औषधि की तरह आज भी असमिया समाज में परंपरागत रूप से प्रचलित है। असम में रहनेवाली विविध जनजातियों के बीच प्रचलित कुछ लोक विश्वास, जादू आदि के आधार पर ही धार्मिक लोकाचार की सृष्टि हुई है। असम की जनजातियों की लोकाचार इस प्रकार है :

सामाजिक जीवन और संगठन :

असम विभिन्न समाज और संस्कृतियों से परिपूर्ण है। लोकाचार को समाज समूह के लिए कल्याणकारी समझते हैं और इसको अपमान करने का मतलब सम्पूर्ण समाज को अपना करना होता है। लोकाचार में सामाजिक व्यवहार के साथ साथ एक व्यक्ति के व्यवहार भी निहित होते हैं। असम जनजीवन का सामाजिक जीवन और संगठन का लोकाचार उसकी विविध जनजातीय और गैर-जनजातीय परम्पराओं, रीति-रिवाजों और जीवन शैली में गहराई से जुड़ा हुआ है। यहाँ के समाज में प्रकृति, सामूहिकता और सांस्कृतिक उत्सव प्रमुख भूमिका निभाते हैं। असम का समाज मुख्यतः ग्रामीन और कृषिप्रधान है। असम के विभिन्न जनजातियों के बीच लोक एकता भाव दिखाई देता है। यहाँ जनजातियाँ बोड़ो, मिसिंग, कार्बी, तिवा, डिमासा और गैर जनजातीय में असमिया, बंगाली, मारवाड़ी सह अस्तित्व में रहते हैं। यहाँ हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई आदि आदिवासी धर्म-मान्यताएँ लोकाचार में धार्मिक-सांस्कृतिक मिश्रण से मेल खाती है। वैष्णव संप्रदाय का प्रवाह सामाजिक जीवन को गहराई से प्रभावित करता है। असम का त्योहारों में सभी जाति-जनजातीय मेल-जोल दिखाई देता है। बिहू सामाजिक जीवन की आत्मा है। इसके अतिरिक्त बोड़ों का बागरुम्बा, मिसिंग का 'अली-आये -लिगांग' सामूहिक जीवन का प्रतीक है।

जन्म सम्बन्धी लोकाचार :

असम के जाति-जनजातीय समाज में जन्म सम्बन्धी लोकाचार देखने को मिलते हैं। यहाँ के प्रमुख जनजातियों में जन्म सम्बन्धित विशेष नियम नहीं है, किन्तु इसका आशय यही भी नहीं कि ये नियमों से मुक्त है। जन्म से सम्बन्धित नियमों में से मांगलिक कार्यों में भाग लेना, कठोर परिश्रम से दूर रहने, जीवहत्या से विरत रहना। असमिया समाज गर्भवती महिला अपने बच्चे को सभी मुसीबतों से बचाने के लिए अनेक प्रयास करती है। बच्चे के जन्म के साथ नाम कीर्तन करना, मृत्यु के उपरान्त उस शव को न देखना, बच्चों को शाम के समय घर से बाहर न निकलना, नदी किनारे न जाना और माँ और बच्चे की सुरक्षा के लिए माँ के पास सरसों, कटारी रखना। अपने बच्चे को बुरी नजरों से बचाने के लिए काजल का काला टीका लगाना, बच्चे को लालमिर्च से नजर उतारना, गले में तबीज लगाना आदि। असमिया गर्भवती महिला गको गर्भधारण के समय गुरुवाणी सुनना, सबसे अच्छा व्यवहार करना और जीवहत्या से दूर रहना पड़ता है।

उसी तरह बोड़ो जनजाति में भी जिस घर में गर्भवती महिला रहती है उस घर के छत के ऊपर से एक टोकरी फेंकते हैं, कि उनका विश्वास है ऐसा करने से बच्चा आसानी से जन्म होता है। नवजात शिशु को पहला दिन नहाते समय ओरिस के पता, लहसून और दूध से नहाते हैं कि वे नवजात विजानु से मुक्त होता है। सर्दि, जुखाम से बचने के लिए नवजात शिशु के गरदन में ओरिस के जड़ पहना देता है। नवजात शिशु को सेहद खिलाते हैं। तिवा जनजाती में भी गर्भवती स्त्री के पति जीव-जन्तु, चिड़िया आदियों को हत्या नहीं कर सकते। अगर प्रथम संतान जन्म होने के बाद देहान्त हो जाता है, तो दूसरी संतान का जन्म होने के बाद उसे अजाति के पास बेचना चाहिए, उन लोगों का मान्यता है कि तभी संतान बच जाती है। संतान की मंगल कामना

के लिए कानों को छेद किया जाता है। माना जाता है सोते हुए संतान की माँ अपनी संतान से पीछे मुड़कर नहीं सो सकते हैं। ऐसा होने से संतान के अमंगल होता है।

कृषि सम्बन्धी लोकाचार :

असम कृषि प्रधान राज्य है। कृषि पर ही असम में रहने वाले सभी जनजातियाँ निर्भर करते हैं। असम के कृषि संबंधी लोकाचार असम की ग्रामीण संस्कृति जीवन-यापन और परम्पराओं का मूल हिस्सा है। असम की प्रमुख फसल चावल (धान) है। यहाँ खेती केवल आजीविका का साधन नहीं बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन से जुड़ा उत्सव और परंपरा भी है। असम की कृषि वर्षा और नदी की उर्वर भूमि पर आधारित है। आह, शाली और बोरो तीन प्रमुख धान की फसलें हैं। असम का सबसे बड़ा त्योहार बिहू खेती से जुड़ा हुआ है। रंगाली बिहू (बैसाख महीने) बोआई की शुरुआत का उत्सव है, उसे नृत्य गीत, वाद्य और खेलों में उल्लास मनाया जाता है। कंगाली बिहू (कार्तिक महीने) धान पकने से पहले का समय है, इस समय परिवार में सादगी और संयम के साथ फसल की प्रतीक्षा करता है। भोगाली बिहू (माघ माह) नई फसल के आगमन और अन्न समृद्धि का पर्व है, जिसमें सामूहिक भोज और मेड़ी ज्वलाकर अन्न का स्वागत करते हैं। असम में धान बोते समय किसान पारंपरिक मंत्रोच्चारण और गीत गीते, नई फसल कटाई से पहले देवताओं और पूर्वजों को अन्न अर्पित करने की परम्परा, चूल्हे की देवी, सर्प देवता की पूजा भी किया जाता है। जब किसी किसान का खेत बोनो या काँटने का समय आता है तो गाँव वाले मिलकर इस कार्य को सम्पन्न करते हैं और इसके बदले में गीत-भोज से उनका आदर किया जाता है। हल, बैल, कुदाल जैसे औजारों की पूजा खेत बोआई से पहले किया जाता है। बिहू के समय बैलों के लिए गोरु बिहू मनाया जाता है। जिसमें बैलों को हल्दी, तेल से मालिक करके स्नान कराया जाता है। महिलाएँ

धान रोपाई और धान कूटने (ढेकी में) के समय सामूहिक गीत गाते हैं। खेती करते समय अपने कष्ट को कम करने के लिए सामाहिक रूप से बिहू गीत और ओजापाली गीत गाये जाते हैं, कि श्रम कम हो जाय यह उन लोगों का मान्यता है।

उसी तरह से तिवा जनजाती के लोग, धान, जूट, नारियल, सुपारी-पान, केला, आलू आदि रोपण और कटाई में बहुत सारे लोकाचार है। वे लोग सप्ताह के एक दिन में ही फसल उगाने का काम करते हैं। तिवा जनजाति के लोग बुधवार को पवित्र मानते हैं। सप्ताह के शनिवार और मंगलवार में ह आहूधान की और दूसरे दिन शालिधान की रोपाई करते हैं। सूपारी का पेड़ तीन बार तक रोपण करने से ज्यादा सूपारी होते हैं, नारियल के पेड़ की जड़ में नमक देने से पैड़ छोटी अवस्था में ही फल देते हैं, सावन महीने में पान, बैसाग में नारियल रोपण करने से अच्छा फल मिलता है यह उनके लोकाचार है। बोड़ो समाज में जिस दिन धान की रोपीई होती है उसी दिन केले के पौध और आलू की पौधा भी खेत में रोपण करते हैं। वे लोगों का मानना है कि महिला यदि बाल खोलकर धान की रोपाई करते हैं तो धानों की ऊँचाई ज्यादा होता है। धान के पौधा रोपण करने की पहला दिन घर में मछली, आलू की और बांस की शाखाओं के सब्जी बनाकर खाते हैं। जिस दिन खेल में धान की रोपण का कार्य खत्म होते हैं उस दिन घर की महिलाएँ बाल खोलकर खेत के कीचड़ सिर पर लेकर आते हैं और व कीचड़ धान रखने वाले गोदाम में रख देते हैं। खेत से घर लौटते समय नृत्य करते करते घर लौटते हैं।

मृत्यु संबंधी लोकाचार :

असम के समाज में मृत्यु संबंधी लोकाचार परंपरागत आस्थाओं, धर्म, जातीय विविधताओं और सामुदायिक जीवन से गहराई से जुड़े हैं। असम लोगों की मान्यता है कि मृत्यु केवल जीवन का अन्त

नहीं है, बल्कि यह पूर्वजों और आत्मा से जुड़ाव का अवसर भी है। असम में हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध और विभिन्न जनजातीय समुदाय रहते हैं, इसलिए मृत्यु-संस्कार में विविधता भी दिखाई देता है। मृत्यु होने के बाद मृतक शरीर को स्नान कराकर सफेद वस्त्र पहनाए जाते हैं और चंदन, तुलसी-पत्ता आदि लगाया जाता है। भारत के सभी जगहों की तरह असम में भी असमिया हिन्दू समाज में शव का दाह-संस्कार करते हैं और मुस्लिम समाज में दफन की प्रथा है। जनजातीय समुदायों में (जैसे- बोड़ो, मिसिंग, कार्बी) में कुछ समूह दफन करते हैं तो कुछ दाह-संस्कार भी करते हैं। मृत्यु के बाद घर में 10-11 दिनों तक अपवित्र माना जाता है। इस समय रंगीन कपड़ा, उत्सव, संगीत और मांसाहारी भोजन वर्जित है। असमिया समाज में मृत्यु में ब्राह्मणों या पुरोहितों को आमंत्रित कर पिंडदान और तर्पण किया जाता है। अन्त में सामूहिक भोजन (पिण्ड भोज) रिश्तेदार और पड़ोसी एकत्र होकर मृतक की आत्मा की शान्ति हेतु भोजन करते हैं। तिवा समाज में शमशान का महादोष से ही हुआ था। तिवा समाज में विश्वास है कि अगर किसी व्यक्ति की मृत्यु होने में कष्ट होने से कहते हैं अपने जीवन में किया हुआ पापों को प्रायश्चित्त न करने के फलस्वरूप अपनी पसंद के भोजन ग्रहण करने की इच्छा से, किसी अपनों को फिर से देखने की खातिर और अपने सम्पत्तियों के ऊपर अत्यधिक मोह होने से जल्दी मृत्यु को प्राप्त न कर पाते हैं। वे लोग जब शमशान में मृत शव जला देने के बाद फिर देखने के लिए जाते हैं कि अगर शमशान में पैरों का निशान दिखाई दिया तो उसे अस्वाभाविक मृत्यु मानते हैं। युवक या युवती मृत्यु होने से केले के पेड़ काँटकर शरीर के सात बाँधकर मृत शव को जमीन में गड्ढा खोदकर गाड़ देते हैं। इस चेपात थोवा कहते हैं। उस गड्ढे में शव को रखने के बाद सर के तरफ विरिना (एक पेड़) पत्ता से छेद रख देता है। बोड़ो समाज में मृत शव को रखने के लिए एक बांस से एक चटाई

तैयार की जाती है। मृत शव को शमशान ले जाने से पहले अपने ही आंगन में पाँच-सात बार घुमाते हैं। अन्तिम संस्कार होने के बाद शमशान में एक मूर्ती छोड़ देते हैं। शमशान से लौटने के बाद नहाते हैं और फिर धान के पुआल और पत्थर से आग लगाकर लोहे को उस आग में छेककर वे गरम लोहा अपना शरीर को भी छेकते हैं और फिर करवा खाते हैं। वे मानते हैं कि करवा खाने से मृतक की आत्मा से रिस्ता टूट जाते हैं। आंगन के दक्षिण दिशा में एक गड्ढा खोदकर उसमें मृत आत्मा के लिए खाना डाल देते हैं। बोझो समाज में मृतक के लिए 'खेराई' पूजा किया जाता है, जिसमें गीत-संगीत और देवताओं का आह्वान किया जाता है। कार्बी समाज में मृतक को 'चिनो' नामक अनुष्ठान से स्मरण किया जाता है और सामुदायिक स्तर पर नृत्य गीत भी होता है। असमिया लोकमान्यताओं में पिशाचिनी आत्मा का उल्लेख है, जिससे बचने के लिए टोने-टोटके लिए जाते हैं और दीपदान और स्मरण गीत गाये जाते हैं। असम में मृत्यु संबंधी लोकाचार धार्मिक अनुष्ठानों, शोक-व्रक, श्राद्ध भोज और जनजातीय विशेष रीति-रिवाजों का मिश्रण है। यह केवल शोक का समय नहीं बल्कि सामुदायिक एक जुटना और पूर्वज-पूजा की परंपरा को भी प्रकट करता है।

असम में प्रचलित अन्य प्रमुख लोकाचार :

असम का सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन अत्यन्त समृद्ध और विविधापूर्ण है। यहाँ के लोगों का जीवन के हर चरण और सामूहिक जीवन में अनेक लोकाचार प्रचलित है। यह लोकाचार असम की लोकसंस्कृति विश्वास, त्यौहार का दर्पण है। असम में विवाह संबंधी लोकाचारों में असमिया समाज में विवाह से पहले दिन दुल्हन को घर में दुल्हा जुरोन भेजने की प्रथा है। जुरोन में दुल्हा के घर से दुल्हन के लिए वस्त्र, अलंकार और शृंगार की वस्तुएँ भेट की जाती है। जुरोन के दिन भी विवाह की तरह सजाया और दुल्हे के घर से आये हुए दुल्हन के रिश्तेदारों को भोजन

की व्यवस्था की जाती है। उसी दिन दुल्हन को दुल्हा के माँ या बड़ी बहन दुल्हन को वे लोग लाये हुए नया कपड़ा और सोने का अलंकार पहनाकर उसके मांग में सिन्दूर दिया जाता है। जुरोन से पहले नदी से महिलाएँ पानी लाकर दुल्हन के घर में दुल्हन को और दुल्हा के घर में दुल्हा को हल्दी, सरसों का तेल, नदी के पानी मिलकर नहलाते हैं। उसके पहले एक कोला (बाँस से बना हुआ) में एक विशेष हरी झाड़ (दुबरी बन) धान, चीनी, बेजोड़ पैसा, तुलसी का पत्ता, तेल इत्यादि से दोनों को बरते हैं। इसे टेल दिया कहा जाता है। विवाह के दिन दुल्हा बारात लेकर आते हैं और दुल्हा एक पारम्परिक छाता, मुँह को रोमास से धककर आते हैं। फिर दुल्हन के माँ के साथ अन्य महिलाएँ दुल्हे को कोले के साथ स्वागत करते हैं। विवाह के अवसर पर महिलाएँ पारंपरिक गीत गाती हैं और सामूहिक नृत्य होता है। विवाह के बाद सामूहिक भोज (आहुत विवाह भोज) होता है। माँ कामाख्या मंदिर में अम्बूबाची मेला प्रकृति और उर्वरता पूजा से जुड़ा विशेष उत्सव। बोरदुआ थान और नामघर परम्परा महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव द्वारा स्थापित सामूहिक पूजा स्थल है। आज भी असमिया समाज की सामूहिकता का प्रतीक है। असम में हस्तशिल्प की परम्परा है। बांस-बेल, रेशम (मूगा, एरी, पाट) मिट्टी के बर्तन आदि के साथ जुड़े सामाजिक रीति-रिवाज भी हैं। असम में लोकाचार जन्म से मृत्यु तक, कृषि से त्योहारों तक, दैनिक जीवन से धार्मिक सामुदायिक गतिविधियों तक फैले हुआ है। ये परंपराएँ असम की सामूहिकता, प्रकृति निष्ठ जीवन और सांस्कृतिक विविधता का परिचय देती हैं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि लोकाचार लोक संस्कृति का एक अन्यतम हिस्सा है। यह एक संस्कृति के कुछ नैतिकताओं और प्रथाओं का एक समूह है जो असम के समाज में पारंपरिक रूप से देखा जाता है। असम में अनेक जाति जनजातियों के मिश्रण का मिलन भूमि है। असम के लोगों में अपने अपने जाति-जनजाती की लोक संस्कृति और लोकाचार

अलग अलग होने के बाबजूद इन सबका मूल उद्देश्य समाज का उद्धार करना ही रहता है। वर्तमान समय के जीवन प्रणाली में लोकाचार के साथ चल पाना मुश्किल है। लेकिन फिर भी असम की लोकाचार असम की सभी जातिजनजातियों की शक्ति है और इससे बरकरार रखने की कौशिश करना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. डेका डॉ. पंकज कुमार, तिवा जनगोष्ठीय भाषा साहित्य-संस्कृति, पृ. -80

2. दत्ता दिव्यलता, जनगोष्ठीय साधू समग्र, गुवाहाटी, असम साहित्य सभा, 2018
3. राजवंशी परमानन्द, असमर जनजाति आरु संस्कृति, असम साहित्य सभा, 2011
4. सत्येन्द्र, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन (आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर) प्रथम संस्करण।
5. दास डॉ. नारायण, असमर संस्कृति-कोष, गुवाहाटी, त्रिनयन ग्राफिक ऑफसेट, 2011



Folk Customs in Tamilnadu

Dr. P. Priya

*Assistant Professor in Tamil
Sri Sath Guru Sangeetha Vidyalyayam College of Music
Madurai-02*

Introduction :

The expression of the way of life of the people living in a society is defined as Culture. The way of life encompasses the customs, beliefs, traditions, arts and literature of that society. To understand the culture of a community, its customs and beliefs serve as fundamental tools. A custom is a learned behavior. When an individual's actions are performed continuously by that person over time, it eventually develops into a custom. The practices of the rural people integrate all the culture, beliefs, arts, rituals, and social customs inherent to the inhabitants of a specific region. This article aims to identify and investigate these very practices.

Folklore – Explanation :

Folk literature acts as a mirror, reflecting the true civilization, culture, art, and literature of a nation. Folk literature and folk arts originated at the very moment human life appeared in this world. The discipline that studies the culture, beliefs, and literature of rural people is called Folklore. Literature, in general, serves to express the life and culture of every nation. The term “FOLK LORE” is a combination of

the two words, folk and lore. In the 19th century in European countries, the word folk referred to agricultural people, but later came to denote the rural people. The word ‘lore’ can be interpreted as ‘a compilation of traditional knowledge’ or ‘tradition/usage’. Therefore, “folk lore” signifies the knowledge of the rural people and refers to the study that investigates folk traditions (or folkways).

In the 19th century, the English scholar William John Thoms coined the term folk lore in 1846 as an alternative to the Latin phrase ‘popular antiquities’. He created the word specifically to denote the surviving relics found in the traditions of the agricultural class and in ancient cultures. This scholar wrote a letter to the journal ‘The Athenæum’ under the pseudonym “Ambrose Merton.” He stated that the term (folk lore) referred to human habits, customs, rituals, superstitions, proverbs, ballad narratives, and ancient traditions. In essence, he argued that folkloristics (Naattar Vazha-kaattriyal) is the study of ancient cultural remnants. Among the practices of these folk people, food, clothing, ornaments, arts, and beliefs play a significant role.

Food :

Food occupies a significant position in rural life. It is generally classified into two categories: Primary Foods and Side Dishes (or Secondary Foods). Staples like Soru (cooked rice/grains), Kanji (porridge), Kool (thick gruel), and Kali (thick mash) constitute the main meals. Smaller items like Idli, Dosai, Pittu, Kozhukkattai, Appam, Paniaram, Murukku, and Athirasam are also considered primary foods. Foods referred to as Palagaaram (snacks) and Patchanam (sweets/savories) are main food items used specifically during special occasions.

Grains like paddy (rice), Kambu (Pearl Millet), Kezhvaragu (Finger Millet), Chola (Sorghum), Varagu (Kodo Millet), Saamai (Little Millet), and Thina (Foxtail Millet) are the primary grains used for daily cooking. Among these types of grains, Kezhvaragu and Chola are consumed in larger quantities. In regions where groundnuts are cultivated in abundance, they also hold a primary place in the diet.

Foods that accompany the primary meal are called Side Dishes (Thunai Unavugal). These include Meats and Proteins: The meat of goat, chicken, pig, rat and monitor lizard (Udumbu), as well as fish, crab, dried fish (karuvaadu), and chicken eggs. Vegetables and Relishes: Vegetables like brinjal/eggplant (kaththirikkaai), Pomegranate (Mathulai), horse gram (kollu), pumpkin (poosanikkaai), and gooseberry (nellikkaai).

Preparations Various forms of preparation like Kuzhambu (curry), Sambaar (lentil stew), Vattal (dried vegetable fry), Poriyal (sautéed vegetables), Thuvaiyal

(thick chutney) and Oorukaai (pickle) serve as side dishes for the primary foods. Rural people consume various beverages to quench their thirst. Kanji Thanneer (rice gruel water), milk, buttermilk (Moor) and Toddy (Kal) are consumed frequently in daily life. Among Soru, Kool and Kali, Soru is considered the superior food. In villages, people often refer to Kambu Kool and Chola Kool not as Kool but as Soru (cooked staple), thus calling them Kambanj-choru and Chola Choru. A social hierarchy is sometimes implied based on the quality of rice used: Kundaan Sambaa, Siru Sambaa and Neettaanjchamba rice varieties are regarded as superior, while Kuruva (short-term) rice is often spoken of as inferior, a situation observed in rural areas. Foods such as Paarkaai (milk-sweetened and fried), ghee-fragrant brinjal, puffy Dosai, crispy Dosai, and fluffy, grain-like Pittu (steamed ground rice) gain distinction through their skilled preparation. Rural people cook meals tailored to their guests. They especially emphasize preparing “pasi-ketra kaappi” (food/refreshment appropriate for the guest’s hunger) for visitors. Furthermore, it is considered a mark of excellent feasting among these communities to observe the practice of the guests eating with a moderate amount of rice first and saving the most curry/meat: “Soru munna konjam vachchi kuththik kari michcham vachchi” (a little rice first, then reserving the curry/meat). Upon arrival, the priority is to offer the guests buttermilk (Moor) and water. Among these, Pathaneer (unfermented palm juice) serves as a suitable drink for the poor. Certain pairings of side dishes with the primary food are considered special. Examples include Kuzhambum Sorum (Curry and

Rice), Saarum Sorum (Gravy and Rice), Sudu Sorum Sudu Kuzhambum (Hot Rice and Hot Curry), and Appamum Vellamum (Appam and Jaggery). These simple combinations are found to be highly delicious by many rural people. Even those who struggle to find food in society enjoy these types of meals greatly.

Dress (Clothing) :

The clothing of rural people reflects their culture, tradition, and way of life. Folk people typically wear simple attire suited to their work. Literary evidence suggests that silk garments were in use since ancient times.

The essential garments for women are the saree (Pudavai) and the half-saree/shawl (Dhavani). Words like Selai and Seelai were also used to refer to these items. During festivals, women wear sarees of beauty, softness, and colour resembling flowers like Jasmine (Malligaipoo) and Chrysanthemum (Sevvanthipoo), as well as embroidered (pooppotta) sarees. It was also a custom that widows should not wear grand or ornate sarees, restricting themselves only to a white saree. For men, the dhoti (Vetti) and the shawl/towel (Thundu) hold primary importance. Ancient Tamils were not familiar with shirts; it was the Yavanas (Greeks or Western traders) who came to trade in the country who wore shirts. Generally, rural people have chosen clothing only in a simple manner. Folk songs indicate that young girls wore garments such as skirts (Paavaadai), light cloaks (Siththadaai) and half-sarees (Dhavani).

Beliefs (Nambikkaigal) :

When early nomadic man encountered the irregularities of nature, he was filled with

fear. Unable to comprehend how these irregularities arose, he began to think and speculate internally. This speculation eventually evolved into belief. Folk beliefs are those that are intertwined with the everyday customs of rural life.

Beliefs prevalent among the people include that it is a good omen to see a pregnant woman or a funeral procession when setting out on a journey, or to see a person returning with clothes soiled by clay. The belief in attaining Moksha (salvation/heaven) after death is also found among them, as illustrated by the following verses:

*“Uyir kailāsam pōkīratu
Uyir sivalōkam vaikuntham yamalōkam
pōkīratu”*

These lines assert that a person attains salvation after death. Furthermore, the beliefs of these people are sometimes observed to have connections with science. For instance, “Scientists say that if one sleeps with their head facing north, the magnetic force of the brain and the magnetic force of the earth will clash, which can cause damage to the brain.” They also perform the Valaikappu ceremony (baby shower) to promote the proper development of the child in the womb. The belief that God creates humankind and guides their lives towards positive progress is prevalent. A mindset exists that if one offers a vow to the deity during times of suffering, that suffering will be removed. They also believe that failing to fulfill a vow will result in divine displeasure (Saami Kutham), as expressed in the following verses revealing the people’s faith in Mariamman:

*“Āru kaḍan ninṇālum mārikkāḍan ākādu
Mārikkaḍan tīrtamaikku manakkavalai
tīrum ’mā”*

From the above points, one can understand that the lives of the rural folk are observed to be interwoven with belief just as they are aligned with nature.

Festivals (Thiruvizhaakkal) :

Festivals serve as a guide to foster cultural relationships and enhance the sense of unity. “When the month of Thai is born, the way is born” is a proverb often cited [Tai pirandal vazhi pirakkum]. In rural areas, people celebrate and enjoy the Pongal Festival. Furthermore, the profound celebration of Maattu Pongal (Cattle Pongal) by the people, as evidenced by the verses:

***“Poṅkalō poṅkal saṅkarām poṅkal
Paṭṭippalukku pāl pānai poṅkal
Poṅkalō poṅkal saṅkarām poṅkal”***

reveals the importance of cattle. To underscore this significance, the people bathe the cattle in the morning, cook Pongal and offer worship.

The festival of Thirukkāthigai is celebrated on the day of Kāthigai (the Tamil month) to worship Lord Muruga. In every village, a Sökkappanai (a temporary bonfire structure made of palm leaves) is erected in front of the temple. When the Sökkappanai is finally burned, the people sing the folk song:

***“Māvali māvali makā māvali
Ūru viḷaiya uḷḷamaḷai peyya
Nāḍu viḷaiya nallamaḷai peyya”***

After the burning is complete, people compete to retrieve the burnt palm sticks. This is because they hold the belief that if these sticks are planted in the paddy field, the rice crops will yield well.

From the foregoing points, it is evident that festivals are predominantly either

religious or vocation-related. Vocation-related festivals are intended to ensure the prosperity of the occupation, while religiously-oriented festivals serve to enhance unity among the people.

Worship (Vazhipaadugal) :

Worship practices pertaining to the divine are highly commendable in the lives of the rural people. The folk communities follow both Minor Deity Worship (Siru Deiva Vazhipaadu) and Major Deity Worship (Peru Deiva Vazhipaadu). Female deities are numerous among the folk gods, hence their worship has been widespread. The tradition of worshipping female deities exists both on the basis of the deity being the Mother (as the foundation for the birth of human life) and as the Virgin (Kanni) (based on the concept of an imperishable nature). Most Tamil gods, especially the folk deities, fall under the Minor Deity Worship category. Before and after the Sangam period, there was a custom of erecting Hero Stones (Nadukal) and worshipping them when a warrior died. The rural people worship not only minor deities like Mariamman, Kaalamman and Mutthaalamman but also major deities such as Lord Shiva, Lord Vishnu and Lord Murugan. A tradition exists of worshipping ancestors who served as guides during their lives and have since passed away, or virgins who died while still unmarried, as their Family Deity (Veettu Deivam). The rituals and worship methods for the minor deities are conducted as the village people desire, without adhering to any specific religious doctrines or Agama rules (temple construction and worship codes). The worship for minor deities is held once a year, once every two years or once every three

years. These festivals are held under various names such as Periya Kumbidu (Grand Worship), Saamik Kumbidu (God's Worship) and Oor Thiruvizhaa (Village Festival).

Games (Vilayaattukkal) :

Folk games are traditional forms of recreation intended to promote the physical health and happiness of the people. Men played games such as Kabaddi, Silambam (stick fighting), Jallikattu (bull-taming), Uriyadi (pot breaking), Valukku Maram (climbing a slippery pole), and Puliyattam (tiger dance). Kabaddi was typically played in the village public grounds (manthaigal) or on river sand. While playing this game, the players would sing a folk song:

*“Nāndhān vīraṇḍā
Nallamuthu pēraṇḍā
Vellic cilampeḍuththu
Vīlaiyāḍavāraṇḍā”*

(I am the hero / I am Nallamuthu's descendant / Taking the silver anklet / Come and play.) This game, which originated in the villages, has since spread worldwide and has achieved the distinction of being included in international competitions like the Olympics.

Women played indoor games such as Pallanguzhi, Thaayam (a dice game) and Thattamaalai (a kind of claps and twists game). Pallanguzhi is a game played by two people. The game is considered over if all the seeds (coins/shells) accumulated during the alternating turns become the property of a single player. Success in this

game depends on gaining experience, quick thinking, and numerical calculation. A game in which women dance in a circle is called Kummi. From the above discussion, it is evident that these games were designed primarily for the purpose of mental pleasure and leisure.

Conclusion :

The customs observed in rural areas are expressed through food, beliefs, festivals and games. Folk literature emerged alongside the advent of the human race in this world. Customs are essentially the inherent behavior established in an individual. Over time, this behavior transforms into a tradition. A person's customs change according to their birthplace and religion. These practices are interwoven into human life from birth until death.

This article affirms that the customs of the rural people undoubtedly serve as a treasure that proclaims our nation's antiquity, its actions that respect human emotions and the history of early humankind.

References :

1. S. Sakthivel, Naattupuraviyal Aaivu (Folklore Research), p. 209.
2. S. Shanmugasundaram, Naattupuraviyal (Folklore), p. 150.

Bibliography :

1. S. Sakthivel - Naattupuraviyal Aaivu (Folklore Research), Manivasagar Pathippagam, Chennai 108.
2. S. Shanmugasundaram - Naattupuraviyal (Folklore), Trust Publishers Kodambakkam, Chennai 05.



Sticks, Stories and Survival : The Heritage of Kathi Dance in Purulia District of West Bengal

Dr. Pounami Basu

(Ph.D. in Politics, United Kingdom)
Assistant Professor, School of Law,
Brainware University

Abstract :

West Bengal has a rich regional cultural legacy of folk music, dance, arts and crafts, which are an integral part of rural communities' daily lives. Folk dance is an essential part of India's intangible heritage and acts as a repository for traditional knowledge and cultural memory. Purulia district of West Bengal is the home of the richest collection of tribal dances. The 'Kathi dance' is one of the vanishing tribal dance forms that is in danger of extinction. A traditional folk dance of the Jangalmahal region, the 'Kathi Naach' or stick dance is performed by the Santal community and other indigenous communities, especially performed by a group of young men dressed as women begging for alms in villages, during the Durga Puja celebrations. The article explores the tradition of Kathi dance in rural Bengal, to understand its performance style, music, storytelling and interlinkages with mythology, martial heritage and rural livelihood. The dance embodies indigenous perspectives on Hindu mythology, particularly the Santal interpretation of the Hudur Durga narrative, which contrasts with mainstream representations of Goddess Durga and Mahishasura. This article explores the cultural meanings and lived experiences of Kathi dancers, positioning the dance as a repository of intangible cultural heritage that preserves indigenous technical knowledge while facing the threat of extinction in contemporary times.

Keywords :

Folk dance, Kathi dance, Santhal, Hindu mythology, Bengal

Introduction :

Loko Sanskriti of Bengal, or Bengali folk culture, is a diverse, challenging and complex field of academic research. The study of folk culture can draw from different fields and can be an area of research

within the academic disciplines of anthropology, sociology, literature, ethnography and gender studies. It encompasses various elements, including religion, customs, myths, music, dance, art and oral literature (A.

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

73

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

Bhattacharya, 1978). The rich cultural heritage of the state is reflected in its folk traditions, literature, music and arts, which not only binds different communities and tribal groups together but also becomes an important source of livelihood for these communities practicing these art forms. Folk music, dance, traditional handicrafts, pottery, wall painting, textiles and other art forms play an important role in the daily lives of Bengali rural communities and they draw inspiration from their life experiences and surroundings, which deeply influence their folk arts. Traditional storytelling, dancing, singing, celebrations, festivals, ceremonies, processions and social gatherings are common to different rural tribal and ethnic communities in Bengal, but there exist regional differences in customs, beliefs, traditions and rituals. Each community offers unique and distinctive traditions that enrich the cultural repertoire and beauty of not only the state of West Bengal but are also revered nationally and globally (Chakraborty, 1995).

Tribal music and dance are an important part of this rich folk culture and tradition and every tribal dance form has evolved over the years without losing its distinctive identity, style and appeal. Bengali folk dances have gained popularity as a traditional art form over the years, with each dance form telling a different story, whether it relates to religious beliefs, seasonal changes or historical events that shaped West Bengal's culture in its different styles, music and varied use of instruments. The dances cover a range of themes, from metaphorical to sociological and from ceremonial to satirical. They include odes, prayers, offerings and celebrations. The folk dances

are typically performed during festivals or to commemorate special occasions and these folk dances reflect local beliefs, faith, customs and traditions. Originally, the folk dances in the state of West Bengal were either to celebrate agricultural harvest or spiritual and religious events, with each dance form originating in the state having unique cultural significance and historical roots. Men, women and children from all communities participate in these folk dances in various ways.

The Purulia district is one of the oldest districts of West Bengal, which has a rich cultural heritage and is home to a wide variety of tribal dances. It has a deep cultural history, being part of the Vajrabhumi nationality, Jangal Mahals district and Manbhum district, but has changed over the years. There is a presence of mixed culture in Purulia as it has been a part of Bengal, Jharkhand and Orissa at different time periods, yet there remains a distinct tribal influence in its culture, local festivals and it is also evident in the archaeological findings in the area (Pramanik and Das, 2022). Among the various tribal folk dances found in Purulia district, the "Kathi dance" is one of the endangered tribal dance forms that risks extinction. Experiencing this dance offers more than just a glimpse of human artistic talent but is a fascinating journey that helps us understand the belief systems, shared understandings, shared practices of a community and their cultural values, skills, spiritual and philosophical ideas.

Kathi Dance: Traditions and Performance Styles :

A traditional folk dance of the Jangal Mahal region, the 'Kathi Naach' or stick

dance is performed by the Santal community and other indigenous communities, especially by the young males in these communities. The dance is performed during the Durga Puja celebration, which lasts from the sixth day (Shashthi) to the tenth day (Dashami), by groups of young males disguised as women begging for alms in villages, especially on the ninth and tenth days of the Puja (Ghosh and Mahato, 2021). It is an expressive folk-art form that showcases the culture unique to this region, as well as a display of a form of martial arts heritage through its movements and postures.

The songs tell the story of the villagers' everyday jobs and are traditionally performed by young men forming a group. Together with the rest of the troupe, the Kathi performers dance vivaciously on the rhythmic steps with wooden sticks or *lathis*. These musicians beat the wooden sticks in time with the melodies while holding them in their hands. These sticks significantly contribute to the dance by providing balance and a sense of speed. The performers keep on constantly rotating and stroking the sticks and pounding their feet while dancing. This dance has numerous versions, but the most captivating one is when a dancer emerges from the crowd and positions himself in the middle of the ring while constantly rotating and stroking his sticks, along with pounding his feet. The individual in the middle of the ring is seen to be the victim and the sticks used in the dance are regarded as the weapons, showcasing a form of martial art (Chakraborty, 2017). The performers continuously pounded the sticks in a rhythmic tone to accompany their deft demonstration of foot movements,

which is significant in Kathi dance. The dance movements and the folk music are repetitive in nature and the performances are prolonged to preserve the rhythm and balance. The dancers follow a rough circle outline in a variety of foot-thread poses and they keep on forming and reforming the circular patterns after pairing up with their right neighbors first and then with their left neighbors. Throughout the performance, the artist performs a variety of poses, including putting the head on the ground and arranging the body with the legs in a nearly complete circle. (Dey, 2012; Singh).

The Kathi dance incorporates a range of intriguing motions, some of which evoke a warlike feel. The participants make loud shouts similar to those used in combat while dancing. Some of the movements and postures make overt references to battle, demonstrating the strength and vitality of the male performers. In order to raise spirits during the combat, they usually yell in between performances. Throughout the entire performance, the posture is rigid, akin to that of a battle fighter. Occasionally, they gracefully spin in two concentric rings, each of which travels in a different direction. Additionally, the artists at this festival are also carrying lamps to lighten up the surroundings.

The "Lathi" element suggests that the dance may have come from or incorporated stick-fighting customs, indicating its association with martial arts. That moment is very powerful when a solo dancer emerges and positions himself in the middle of the circle and the rest of the group encircle and trap the performer, who poses as the victim who has to defend himself against the attack. While deftly stroking the sticks

and thudding his feet on the ground, the performer begins circling passionately at one spot. This section of the Kathi folk dance depicts a war scenario, with the victim in the middle and his sticks serving as the weapon for his defense, wherein he displays all his strength and vitality that a warrior would possess in combat

The costumes are also very distinct as dancers traditionally wear cotton dhotis and shirts made of leopard skin and their legs are adorned with large, bulky anklets. The rhythmic sound of the anklets complements the sticks, drums and music. With time, the costumes worn by Kathi performers have become more varied in styles, but the most common one is still a mix of cotton dhotis and shirts made from leopard skin, while cotton shirts and dhotis are also being frequently worn by performers these days (Bag, 2023; Singh).

The instruments used in such performances include the flute, boang, harmonica, hand cymbals (kartals) and the madol or tumdah. The traditional drum known as the madol is a necessary accompaniment for tribal dances (Chatterji, 2009). The Santals refer to it as Tumdak, which is roughly 60 cm long, has a somewhat conical shape and is composed of clay with a cylindrical body. A leather strap or string is used to hang the drum around the tumdah player's neck. It is made from dried gourd, bamboo and rope and the "bowang" or "buang" is a prehistoric one-stringed drone or fiddle that makes a deep, booming sound.

'Fadur Durga' Narrative and the Kathi Dance: The Neglected History :

The Santhal community has its own unique storytelling and oral tradition and

folklore about the Goddess Durga which is radically different from the mainstream Hindu mythological story of Goddess Durga or 'Shalti', who is the Mother Goddess, the slayer of the Mahisasura and saved the earth and heaven from the atrocities of the demon King of the Asura Community and established peace and justice for all. A few Santhal groups retell the story of the 'Fadur Durga' where the Asura king Mahishasur is depicted as a wronged hero and his downfall is seen as a tragic story of loss. The Kathi dance performers in some Santhal communities do not explicitly depict a depressing tale but view the myth of Mahishasura's defeat by Goddess Durga as a historical tragedy of the Asura community, representing the conflict between indigenous and Aryan cultures. Mahishasura, in the Hudur Durga or Fudur Durga narrative, was seen as a strong Santal monarch or commander, rather than a demon was seen as a representation and symbol of Santal pride and sovereignty, who reigned justly and cared for his people and their wellbeing. In Santal legend, the presence of Durga-who, according to Hindu mythology, was sent by the Gods to kill him-is seen as an upper-caste, alien imposition that shattered their native sovereignty. The unconventional retelling at the core of the Hudur-Durga myth, is a contrast to the popular Mahishasura narrative, is reflective of a depiction of a neglected history in which a Brahmanical, "foreign" Aryan goddess (Durga) betrayed and killed a local ruler, Mahishasura (Verma, 2017). But this cultural connection and alternative storytelling have been neglected and largely removed from research and literature on folk dance traditions in West Bengal, which needs further inquiry and consideration.

In the Santal version of the Durga myth, the goddess is viewed as an external force imposed upon tribal identity, while the Mahishasura is perceived as a native ancestor and local hero. This reinterpretation highlights the contradictions between dominant Hindu cultural narratives and indigenous worldviews, which are often sidelined. The reimagining of Durga and “Fudur Durga” critics argue, embodies a form of resistance against homogenizations, cultural assimilation and the broader process of Sanskritization. Yet, many other scholars, historians and political elites have dismissed this as a politicized reconstruction of tribal history. This story may be read in multiple ways- as a cultural legend, a critique of hegemonic dominance, or a myth of resistance. Yet this multiplicity of narratives and retellings has its own strengths and weaknesses. The lack of written sources, historical evidence of authentic recollection and overt reliance on oral traditions have led historians and scholars to question the ambiguity of *Hudur Durga* myth. This has resulted in debates over what constitutes ‘authentic traditions’ and ‘fabricated traditions’, often as a result of mythological reinterpretation shaped by collective memory and socio-political context. But it also establishes the necessity for further research to understand the deeper complexities surrounding tribal identity, cultural ownership and the negotiation of memory within a pluralistic society.

Survival Strategies: Preservation of the Kathi Dance :

The government and civil society organization need to adopt effective measures to prevent the extinction of ‘Kathi Naach’ and various other tribal dance forms of West Bengal. The government,

along with Universities and cultural institutions, can create digital repositories through audio-visual archiving, oral histories and ethnographic studies and initiate systematic documentation of endangered folk arts like Kathi Dance. The civil society organizations and local self-governments can organize community-led revival initiatives and programmes, such as community workshops, school cultural curricula and annual rural festivals, to promote local participation and ensure transmission of these skills from the artists to sustain inter-generational continuity. It is necessary to link the cultural art forms with sustainable tourism and eco-tourism to create employment and livelihoods for the present generation of performers and artists so that the indigenous cultural traditions can be sustained and preserved.

Conclusion :

The article looks at the style, costumes and musical instruments used in the performance of Kathi dance as a traditional folk-dance form of the Purulia district in West Bengal. The Purulia Kathi Dance can be seen as a performative expression of the *Hudur Durga* story and its fundamental resilience to cultural appropriation. The dance is symbolic of the collective memory of indigenous struggles and the assertion of tribal identity of the Santal community in Purulia district against the existing predominant mythological frameworks through stylized movement, rhythm and combat gestures reflecting its association with martial heritage. Mahishasura’s courage, strength and defiance in the Santal retelling are echoed by the martial motifs, especially the circular formations and combat-inspired stick movements.

The Kathi dance serves as both a folk ritual and a form of resistance. Where oral myths, social hierarchies and historical consciousness are constantly negotiated, turning religious festivals into a space of cultural reimagination and contestation. The article also identified necessary measures for the preservation of the tribal art forms through active government measures and community-led revival initiatives as these are part of the nation's intangible cultural heritage.

References :

1. Bag, L. (2023). A descriptive study of folk tourism elements in Purulia district. *Prajñābāridhi : Journal of Multidisciplinary Research*, 1 (1), 18-24. Retrieved from <https://www.collegetsm.in/college-journal/>
2. Bhattacharya, A. (1978). *Folklore of Bengal*. National Book Trust, India. ISBN: 978-81-237-4749-7
3. Chakraborty, B. (Ed.). (1995). *Bangiya Loke Sanskriti Kosh* [Board book]. Aporna Book Distributors.
4. Chakraborty, B. (Ed.). (2017). *Purulia-District Folk Culture Introduction Book* (Bengali). Kolkata: Lok Sanskriti O Adivasi Sanskriti Kendra. ISBN: 9788189956516
5. Chatterji, R. (2009). *Writing identities: Folklore and performative arts of Purulia, Bengal*. New Delhi: Indira Gandhi National Centre for the Arts & Aryan Books International. ISBN: 9788173053788
6. Dey, F. (2012). Folk culture of West Bengal. *Journal of Institute of Landscape Ecology and Ekistics*, 35 (1). ISSN: 09714170
7. Ghosh, S., & Mahato, S. (2021). Moral values in the light of Purulia's folk culture. *International Journal of Research Publication and Reviews*, 2(11), 652-654. Retrieved from <https://ijrpr.com/uploads/V2ISSUE11/IJRPR1812.pdf>
8. Paramanik, A. and Das, S. K. (2022). *Purulia Jelar Bismritapray Loko Sanskriti*. Prabha Prakashani.
9. Singh, M. (n.d.), Kathi dance- Unveiling the culture of West Bengal. *Auchitya*. Retrieved from <https://www.auchitya.com/kathi-folk-dance-unveiling-the-culture-of-west-bengal/>
10. Verma, S. (2017, November 13). Amidst people: From Durga to 'Hudur Durga'-The other side of the story. *India Fellow*. Retrieved from <https://indiafellow.org>



Nagpuri Jhumar and Sadani Lok Sangeet: Tradition, Transformation and Relevance in Indian Folk Culture

Dr. Rupa Sinha

*Associate Professor & Head,
Department of Music Chairperson,
Cultural Committee YBN University,
Ranchi, Jharkhand*

Abstract :

Indian folk culture is a living archive of traditions, emotions and community consciousness, passed down orally across generations. Among its many vibrant forms, Sadani Lok Sangeet of Jharkhand occupies a unique space as the musical heartbeat of the Sadan communities. At the centre of this tradition lies Nagpuri Jhumar, a rhythmic and lyrical folk form deeply intertwined with festivals, rituals, nature and the collective identity of the region. This paper explores Nagpuri Jhumar not only as a musical expression but also as a socio-cultural institution reflecting values of unity, spirituality, ecological awareness and oral literature. It investigates the linguistic peculiarities of Nagpuri folk songs, the diverse instruments used in performance and the ways in which this tradition connects to larger themes of Indian folk culture. The study also examines transformations caused by modernization, migration, cinema and mass media, while highlighting ongoing preservation efforts. By situating Nagpuri Jhumar within the larger canvas of Indian folk heritage, this paper argues for its recognition as both a regional cultural treasure and a vital contributor to the pluralistic ethos of Indian knowledge traditions.

Keywords :

*Folk culture, Nagpuri Jhumar, Sadani Lok Sangeet, Jharkhand, oral tradition,
Indian knowledge tradition, preservation.*

1. Introduction: Indian Folk Culture and Knowledge Tradition :

Folk culture in India is more than performance it is lived philosophy. Rooted in agrarian cycles, rituals, myths and festivals, folk traditions embody collective memory. They not only provide entertainment but also transmit ethical values, social codes, ecological wisdom and spiritual beliefs. Scholars have long recognized that

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

79

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

Indian classical music, drama and literature grew from folk forms (*desi sangeet* and *lok natya*), making folk traditions the very foundation of Indian aesthetics.

The Lok Sanskriti Conference 2025 emphasizes the role of folk culture in the Indian knowledge tradition. Folk songs and tales are repositories of indigenous epistemology, offering insights into how communities understood nature, spirituality, health and social bonding. Sadani Lok Sangeet, emerging from Jharkhand's Chotanagpur plateau, is a striking example where tradition and innovation, oral and performative modes, coalesce into an art form that reflects both the intimate life of villagers and universal human values.

Within this framework, *Nagpuri Jhumar* represents a form where rhythm, poetry and community merge. Its study offers a window into how folk music sustains identity, even in times of globalization.

2. Sadani Lok Sangeet : The Cultural Identity of Jharkhand :

Jharkhand, carved out of Bihar in 2000, is home to rich cultural diversity with Adivasi and Sadan communities living in close proximity. While tribal communities like Munda, Oraon, Ho and Santhal preserve their distinct traditions, the *Sadani* or Nagpuri-speaking groups developed their own folk corpus-known as *Sadani Lok Sangeet*.

Sadani Lok Sangeet reflects the lived experiences of agrarian life, marriage customs, festivals like **Sarhul**, **Karma**, **Jitiya** and **Sohrai**, as well as collective struggles and joys. Unlike classical music, which depends on structured training, Sadani music is learned informally in the

akhra (village performance ground).

The *akhra* functions as a cultural parliament, where music, dance and oral storytelling nurture social cohesion.

Within this repertoire, Nagpuri Jhumar stands out for its lyrical richness, rhythmic vitality and thematic versatility. It is both entertainment and education, weaving stories of love, devotion, bravery, ecological cycles and community ethics.

3. Nagpuri Jhumar : Origin, Musical Style and Themes :

Jhumar derives its name from the word “jhoom” (swaying movement), signifying rhythm and dance. Originating in the Chotanagpur plateau, it has been sung for centuries during agricultural work, weddings and festivals. The style is characterized by:

- **Call-and-response singing**, where one group leads and another responds.
- **Repetitive but evolving refrains**, making it participatory.
- **Themes rooted in daily life**, nature and emotions.

Thematically, Jhumar songs cover :

- **Nature and agriculture** : praising rains, harvests, or forests.
- **Love and separation** : often sung during festivals when lovers reunite or part.
- **Spirituality** : invoking deities like Sarna Dev, Goddess Durga, or local spirits.
- **Social satire and humor** : commenting on village politics, dowry or morality.

Jhumar is not monolithic; it has sub-genres such as **Mardani Jhumar** (male-dominated, martial rhythm), **Jani Jhumar**

(female-led, softer melodies) and **Bangla Jhumar** (influenced by Bengal's folk tradition). These variations show how Nagpuri Jhumar absorbed influences while retaining its distinct identity.

4. Linguistic and Literary Features of Nagpuri Folk Songs :

Language is central to folk culture and Nagpuri songs reflect the beauty of the Sadani tongue. Known as the "queen of songs," Nagpuri has a natural musicality with soft vowel sounds and rhythmic stress patterns.

Literary features include :

- **Metaphors drawn from nature :** rivers symbolize love's flow, the Mandar drum symbolizes heartbeat.
- **Proverbs and idioms :** embedding folk wisdom.
- **Oral narrative structure :** often unfinished or cyclic, allowing improvisation.
- **Communal authorship :** songs belong to the community, not individuals.

This literary richness places Nagpuri Jhumar within the broader framework of Indian oral literature, comparable to Rajasthani *Maand*, Bhojpuri *Biraha* or Punjabi *Tappa*.

5. Instruments and Performance Traditions :

Instruments are integral to Jhumar. They are not mere accompaniments but symbolic extensions of cultural life.

- **Percussion :** *Mandar, Dhol, Nagara, Dhak.*
- **String instruments :** *Tuhila, Kendra, Banam, Ektara.*

- **Wind instruments :** *Bansuri, Terio, Shehnai, Sankha.*

Each has ritual significance. For instance, the *Mandar* is indispensable in weddings and festivals, likened to the presence of a life partner. *Banam* (a bowed string instrument) embodies the soul's voice, while *Bansuri* symbolizes pastoral harmony.

Performances often take place in open courtyards or akhras, where villagers dance in circles, symbolizing unity. The synergy of song, dance and instrument creates a collective trance, dissolving individual boundaries into communal celebration.

6. Socio-Cultural and Ritual Significance :

Nagpuri Jhumar is inseparable from community rituals:

- **Birth :** beating utensils and Mandar to announce new life.
- **Marriage :** *Dumkach* and *Angnai* songs create festive bonding.
- **Festivals :** *Sarhul* (worship of trees), *Karma* (thanksgiving for harvest), *Sohrai* (cattle festival) and *Jitiya* (children's welfare) are incomplete without Jhumar.
- **Death rituals :** songs of mourning, reminding of life's cycle.

Thus, Jhumar functions as both sacred and secular art, marking every life stage of the community.

7. Nagpuri Folk in Modern Media and Cinema :

With the rise of digital media and regional cinema, Nagpuri Jhumar has found new platforms. Contemporary singers and groups have fused Jhumar with Bollywood-

style orchestration, reaching youth audiences. Films in Nagpuri and Khortha languages feature folk songs as cultural identifiers, while YouTube channels have made Jhumar globally accessible.

However, commercialization sometimes dilutes authenticity. Melodies are remixed and traditional instruments replaced by electronic beats. The challenge lies in balancing popularity with preservation of essence.

8. Environmental Awareness and Spirituality in Folk Songs :

Nagpuri songs often reflect ecological wisdom. Rivers, forests, rains and seasons are not mere backdrops but characters in the narrative. Sarhul songs worship the *Sal tree*, Karma songs thank the earth for fertility and monsoon songs invoke rain deities.

Spirituality is woven into this ecological consciousness. Nature is divine and humans are seen as custodians rather than exploiters. Such insights are invaluable in today's era of climate crisis, where indigenous traditions can guide sustainable living.

9. Challenges of Preservation in the Global Era :

Despite its richness, Nagpuri Jhumar faces existential threats :

- **Urban migration** reducing rural practitioners.
- **Loss of traditional instruments** like Tuhila and Banam.
- **Dominance of Bollywood and Western music** influencing youth tastes.
- **Lack of institutional support**, documentation and mainstream recognition.

As older generations pass away, oral transmission weakens. Without systematic efforts, many rare sub-genres risk extinction.

10. Efforts for Documentation, Revival and Institutional Recognition :

Encouragingly, there are initiatives underway :

- **Cultural activists** like **Padmashree Mukund Nayak** and **Mahabir Nayak** have popularized Nagpuri folk world-wide.
- **Academic research** in universities and cultural centers is documenting lyrics and instruments.
- **Government and NGOs** are organizing folk festivals, workshops and training programs.
- **Digital archiving projects** aim to record endangered songs.

For long-term survival, inclusion of Sadani Lok Sangeet in school curricula, recognition in national music syllabi and economic support to folk artists are crucial.

11. Conclusion :

Nagpuri Jhumar, as part of Sadani Lok Sangeet, is not just a regional folk form but a microcosm of Indian folk culture. It reflects the essence of life birth and death, labour and leisure, nature and spirituality, joy and sorrow. By studying it, one understands how folk traditions shape moral values, ecological ethics and collective identities.

In today's world of rapid modernization, preserving Nagpuri Jhumar is both a cultural and ethical responsibility. Its integration into cinema, education and digital media can ensure continuity, provided authenticity is safeguarded. As India celeb-

rates its folk heritage, Nagpuri Jhumar must be recognized as a living testimony of Jharkhand's contribution to the nation's cultural mosaic.

References :

1. **Ram dayal Singh Munda.** *Adim Sanskriti aur Jharkhand.* Ranchi: Tribal Research Centre, 1998.
2. **Mukund Nayak.** *Lok Geet aur Samaj.* Ranchi: Jharkhand Lok Kala Parishad, 2005.
3. **Giridhar Ram Ganjhu.** *Nagpuri Lok Sangeet: Parampara evam Vikas.* Ranchi: Central Institute of Indian Languages, 2010.
4. **W.G. Archer** *The Hill of Flutes: Life, Love and Poetry in Tribal India.* London: George Allen & Unwin, 1974.
5. **Kesari Kumar Singh.** *Nagpuri Bhasha aur Lokgeet.* Patna: Bihar Rashtrabhasha Parishad, 1995.
6. **R.K.Das** *Jharkhand ke Lok Nritya evam Sangeet: Ek Sanskritik Adhyayan.* New Delhi: National Book Trust, 2018.



Folk Arts in Tamilnadu

Dr. T. Sankaranarayanan

*Assistant Professor in Veena
Sri Sath Guru Sangeetha Vidyalayam
College of Music, Madurai-02*

Introduction :

Folk arts are the kind of arts that emerges from the lives of people. they are connected with nature and the emotions of people. they are being the living proof of showcasing ancient Tamil people's history and heritage. these arts relates with the aesthetics. they show knowledge of nature and in depth emotions. the aim of this research is, educating the younger generation of today's computerized world about the folk arts in order to develop the folk arts and the artists.

Folk Art – Explanation :

Arts refer to the diverse human activities that express skill, creativity and imagination, creating physical or conceptual works for aesthetic, emotional or informational purposes. common forms include visual arts, performing arts, literature and other discipline like film and decorative arts. the definition of art is dynamic and has evolved over time. folk arts being a happy source and a way of expression. these folk arts having a connection with religion and society. folk literature acts as a mirror, reflecting the true civilization, culture, art and literature of a nation. folk literature and folk arts originated at the very moment

human life appeared in this world. the discipline that studies the culture, beliefs and literature of rural people is called folklore. literature, in general, serves to express the life and culture of every nation. the term “folk lore” is a combination of the two words, folk and lore. in the 19th century in European countries, the word folk referred to agricultural people, but later came to denote the rural people. the word ‘lore’ can be interpreted as ‘a compilation of traditional knowledge’ or ‘tradition/usage’. therefore, “folk lore” signifies the knowledge of the rural people and refers to the study that investigates folk traditions (or folkways).

In the 19th century, the English scholar William John Thomas coined the term folk lore in 1846 as an alternative to the Latin phrase ‘popular antiquities’. he created the word specifically to denote the surviving relics found in the traditions of the agricultural class and in ancient cultures. this scholar wrote a letter to the journal ‘the athenæum’ under the pseudonym “Ambrose Merton.” he stated that the term (folk lore) referred to human habits, customs, rituals, superstitions, proverbs,

ballad narratives and ancient traditions. in essence, he argued that folkloristics (Naattaar Vazhakaattriyal) is the study of ancient cultural remnants. among the practices of these folk people, food, clothing, ornaments, arts and beliefs play a significant role.

Folk literature is deeply intertwined with the lives of people. folk songs are a means of expressing their experiences, professions, artistic pursuits and religious devotion. they are the lyrical heartbeat of rural life, a tapestry woven with the threads of daily joys, struggles and devotion. these songs can be categorized into various types, including lullabies, children's songs, love songs and professional songs. this article will explore these unique forms of folk music, which capture feelings of both joy and sorrow.

They also being a reflection of people's aesthetics. the notable folk arts are therukoothu. karagattam, villupattu, karagattam, kaniyaan aattam, oyil kummi, pulliyattam, thorpaavai koothu, silabattam.

Theru Koothu :

Koothu is symbol of our tradition and peak of our heritage. the developed version of therukoothu is today's drama. there is a saying

**“koothadi (performer) see the east
koolikaren (worker) see the west”**

Shows that the koothu was being performed till the sunrise. koothu has various categories. the general koothu varieties are Paavai koothu, theru koothu, marappavai koothu and thorpaavai koothu.

Theru koothu is being held in Tamil-nadu and Srilanka by Tamil speaking people. it is being performed at crowded places. they are an entertainment and a

medium to deliver traditions & social problems. therukoothu held by telling ancient stories with simple language in an open space. there are lots of themes and stories in therukoothu. ‘Viraada Paruvam’ is about praying for rain, ‘Sathiyavaan & Savithri’ is about praying to get children, ‘Meenakshi Kalyanam’ is about praying for marriage. Tamil people followed certain traditions in koothu too.

Karaga Aattam :

Karaga aattam is related with goddess Mariyamman. we can see the word ‘karagam’ in tholkaappiyam and puranaanooru.

**“Noolae Karagam Mukkoal
Manaiyae” (Thol Porul - 615)**

**“Neerara Variyaaga Karagathu”
(Aram. paa - 1)**

In Sangam literature it is called as ‘kuda koottam’. Karaga aattam is classified into two categories, such as ‘Sakthi Karagam’ and ‘aatta karagam’. sakthi karagam is taken by devotees who are fasting. they take a pot filled with water on their head. the top of the pot covered with thread tied coconut and neem leaves. with this the devotees walk around the temple and finish their fast. in the event of sakthi karagam there will be traditional drums, percussion instruments and joker dance (komaliyaattam). karagattam is called as ‘karaga chembu’ in thanjavur and ramana-thapuram, ‘karagattam’ in Madurai, ‘kumba aattam’ in thirunelveli.

Villuppaattu :

The greatest and oldest folk art is villuppaattu. it had originated in 14th century by a royal poet. vil, udukku, kudam, thaalam, kattai are the main instruments played in villuppaattu. there is also instruments like

pambai, urumi, thakkai, thandhubi which makes it total of 8 accompaniments. villuppaattu is also called as 'villadichaan paattu'. kumari and nellai districts are the home of villuppaattu. kavnagar subbu says that, hunters in the past, take rest under trees when they get tired. then, they made musical sounds by keeping the bow in their lap and pulling the bow string with the arrow. deivachilaiyaar telling the greatness of villuppaattu in the book 'viralividu thoothu'. mukkodar pallu also talk about the greatness of villuppaattu. villuppaattu starts with kaappu virutcham. then goes in the order of vinaayagar vanakkam, guruvadi, avaiyadakkam, history of nation's resources and ends with prayer. in the start villuppaattu was conducted in temple festivals. then it expands to general social events. N. S. Krishnan is the one who made everyone aware of this art. villuppaattu gave life to many folklore tales.

Kaniyaan Aattam :

There are seven members dance in kaniyaan aattam. it is also called as 'maguda aattam'. there is a saying in thirunelveli that there is no temple without kali aattam and kaniyaan aattam. in kaniyaan aattam there is a main singer, two people dressed as female, three people play magudam, one person is for thaalam. kaniyaan aattam is performed entirely by males.

Kaniyaan aattam starts at night 9'o clock and goes around morning 4'o clock. in between the performance mahabharata and Ramayana tales are also being told. this folk art usually performed with folk tales of gods like 'sudalaimaadan kathai', 'isakki-yamman kathai'. it is being conducted mostly in southern districts, especially thirunelveli and tucicorin.

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

Oyilaattam :

Oyil means beauty. this dance is hence the dance of beauty. traditionally, it is danced only males. oyilattam is a folk dance with origins in the Madurai region of tamilnadu. the dance has its origins in southern Tamil-nadu and is primarily performed in Madurai District. they wear flower wreaths in neck and ankle bells in both legs. they stand in opposite lines and dance with holding kerchifs in hands. it is mostly performed with Ramayana tales. but also the tales of pavalakkodi, Madurai veeran, murugan, siru thondar, valli marriage are also being performed in this art. there are certain restrictions in oyilaattam. people also dance in same line. there are thirteen variations in oyilaattam and all of them have different sub-types. each variation has different foot works. The song lines,

**“Therodum engal seerana Maduraiyilae
Ooraargal kondaadum oyilaattam”**

Are expressing the greatness of oyilaattam. if we look at India oyilaattam is vastly being performed in southern states. oyilattam is great piece of art. this dance is mainly enjoyed in village during festivals. this beautiful traditional dance form, on the whole portray the folk and mythological stories. oyilattam dance has unique dance steps that dancer execute on music. the colorful dresses and tied handkerchiefs give it individual look and pleasant to audiences.

Puliyattam :

Puliyattam is traditional folk art dance from Tamilnadu, India, where performers dress and move like tigers to mimic their predatory movements and ferocity. Puliyattam is dance where a person in tiger

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

costume and a person in hunter costume dancing together. this dance has a mix of, music and dances. it is being performed in “chariot festivals”. the persons with tiger role wears a tiger mask a knee length pant. with thiger skin pattern and an extension like tiger’s tail. he points his whole body with yellow paint and use black paint to draw black stripes on it. he dances with ankle bells on both legs.

The hunter ties a rope in his waist and a person holds its other end the person with hunter role dances like. he is hunting the tiger with gestures of hiding attacking and shooting the tiger with a gun. the puliyattam being performed alone or with “karadi yattam”

Thorpaavai Koothu :

Thol pavai koothu is type of puppetry that is unique to the Kanniyakumari district of Tamilnadu. thorpaavai koothu conducted by the shadows of leather dells. it called as “tholu bommalata” in andhra, **“thohalu momme aatta in mysore, and in different names in different regions. it being called in special names in various regions, like in kerala, it is called as “tholpavai koothu” or “ shadow show”¹** in an open stage a white screen tied up with lights and two people singing. a koothumadam is a separate 42 foot – long stage on which tholpavakoothu is performed

The stage has a screen, a piece of white cloth, behind which the puppets are held, the lighting is provided by 21 lamps lit in coconut halves or earthen lamps placed equidistantly on a specially constructed wooden beam called vilaku madam. the performance is accompanied by the

recitation of slokas and the performers are required to learn over 3000 of these before they perform. the recitation is accompanied by instruments such as chenda, maddalam, ezhupara, ilathalam, conch and cherukuzhal. tholpavakoothu like many traditional art forms has been facing the threat of extinction due to the arrival of alternate platforms of entertainment such as television and cinema and due to changing cultural values. rural people believe that if Ramayana, nallathangal story and Hari Chandra tales are being conducted in tholpaavai koothu, it will rain. this folk art first being held china. it came India through Indonesia. it is being held in India since 12th century protecting and cherishing these folk arts is useful for our future generation. artists of thorpaavai koothu, travels for 6 months to many places with their family, to conduct the show. they return to their home town often 6 months these artists are called as “nomad artists”.

Silambattam :

Silambattam is a sport with sticks and making them clash to produce sound. ‘Silambuthal’ means ‘making sound’ in Tamil. it is a self-defense and valour sport of Tamil people. it is also called ‘stick swirling’. it has many methods of handling includes hand movements, leg movements and body movements to defend ourselves from attacks. it has basics of defending the opponents attack and touching the opponents body with the stick. learning silambattam requires a minimum of six months. it needs two people for practice now a day both men and women learning and playing this. it is being held in temple festivals and rallies without fail. for example, it is being performed in Thiruvallur, Thiru-

nelveli, Kanyakumari, Thanjavur, Nagapattinam, Mayiladduthurai. in schools and colleges, there is practices, competitions and prize distributions are being help to encourage students to pursue silambattam, in order to develop this art.

Silambattam is an amazing exercise. when we swirl the stick, all the muscles and nerves of our body gets activated. this improves our strength, energy and body flexibility. it started as a self-defense and become as amazing art with its fine skills.

Conclusion :

Folk arts are a mirror that reflects the culture of our society. art is not only for entertainment. it also acting as a commu-

nication medium and an expression of our heritage. the folk arts which is one of their arts, having a connection with us and our land. so we can say that the folk arts are helpful for our mental and social development. let's take the folk arts and the folk artists towards the development path to make the world feel the greatness of our folk arts.

Scholarly Citations :

1. Ramaswamy – Thorpaavai kKoothu pg.485-488

Bibliography :

1. Sakthivel, S. Nāṭṭuppuraviyal āyvu Maṇivāsagar Pathippagam, Chennai 600018.



Contribution of Folk Narratives to the Thematic Presentation of Kathak Dance : A Cultural Study

Dr. Tripti Gupta

Department of Dance,
FPA The Maharaja Sayajirao
University of Baroda

Abstract :

Kathak, one of the eight classical dance traditions of India, is celebrated for its unique synthesis of storytelling, rhythm and expressive performance. Folk narratives (lokgathas) have significantly enriched Kathak's thematic repertoire, infusing it with layers of cultural memory and social meaning. These folk tales not only expand the range of stories and emotions depicted but also root Kathak firmly within the lived experiences of communities. This paper examines the contribution of folk narratives to the thematic presentation of Kathak through an analysis of historical background, regional traditions and performance practices. It also highlights the role of bhajan (devotional songs) as an important aspect of folk music in shaping the emotional and musical dimensions of Kathak. Drawing upon textual sources, performance examples and scholarly interpretations, the study argues that folk narratives sustain Kathak's vitality by linking it to social consciousness and cultural heritage.

Keywords :

*Kathak, Folk narratives, Indian classical dance, Bhajan, Storytelling,
Cultural heritage*

Introduction :

Kathak, deriving from the Sanskrit word katha (story) and kathakar (story-teller), is fundamentally a narrative dance tradition (Vatsyayan, 1997). Emerging in the temple courtyards of North India, Kathak began as a devotional practice for narrating episodes from the lives of Krishna, Rama and other deities. Over centuries, Kathak evolved from sacred

spaces to royal courts, absorbing influences from Persian and Mughal aesthetics while retaining its narrative essence. A key source of inspiration for Kathak has been the folk narratives of India-oral traditions of love, heroism, devotion and everyday life passed down through generations. These narratives not only enrich Kathak's themes but also foster a living dialogue

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

89

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

between classical dance and the communities from which these stories arise (Narayan, 2006). This paper explores how folk narratives shape the thematic presentation of Kathak, emphasizing their historical significance, musical adaptations and continuing relevance in contemporary performance.

History :

Kathak's earliest performances were rooted in temple rituals where dancers narrated stories from Hindu epics such as the Ramayana, Mahabharata and Bhagavata Purana. As Kathak moved from temples to the courts of the Mughals and regional kings, it incorporated Persian music, intricate footwork and refined gestures while maintaining its narrative character (Chakravorty, 2008).

During this evolution, folk narratives from regions like Braj, Awadh, Bundelkhand, Malwa, Rajasthan and Bihar entered the Kathak repertoire. Local fairs, festivals and oral storytelling traditions supplied a wealth of dramatic material-romantic sagas, heroic legends and devotional tales-that enriched the themes performed by Kathak dancers (Singh, 2014). These folk stories bridged the gap between sacred mythology and everyday life, making Kathak accessible and emotionally resonant.

Types of Folk Narratives in Kathak :

Indian folk literature offers a vast range of narratives, which can be broadly categorized as follows:

1. **Romantic Ballads** : Tales of eternal love and sacrifice such as Dhola-Maru, Heer-Ranjha and Sohni-Mahiwal capture the emotions of longing,

separation and reunion. These stories lend themselves to the [[Egra rasa (love sentiment) central to Kathak's expressive repertoire (Singh, 2014).

2. **Heroic Epics** : Legends like Pabuji, Alha-Udal and Prithviraj-Sanyogita celebrate valor, honor and sacrifice. Their dramatic action and intense rhythms inspire vigorous footwork and powerful spins that embody the *v+ra rasa* (heroic sentiment).
3. **Devotional Narratives** : Tales of saints and devotees-Meera, Surdas, Kabir and Chaitanya-emphasize spiritual love and surrender. Their profound simplicity allows for deep emotional expression through subtle abhinaya (facial and bodily expression).
4. **Socio-cultural Folk Tales** : Stories of village life, seasonal rituals and communal festivals depict everyday human experiences, providing themes of humor, compassion and social reflection.

These diverse narratives enable Kathak performers to explore a rich palette of emotions and characters, expanding the dance's expressive and dramatic range.

Bhajan and Folk Music in Kathak :

Folk music and bhajan (devotional songs) occupy a vital place in Kathak, complementing the storytelling tradition with melodic and lyrical depth. A bhajan is a form of devotional song expressing love for the divine, often performed in simple melodic structures that resonate with popular folk tunes. In Kathak, bhajans from Braj, Awadh and other regions-such as the Krishna songs of Meera, the lyrical verses of Surdas and the mystical couplets

of Kabir- are frequently used for pad abhinaya (expressive interpretation) (Narayan, 2006). For example, a dancer may bring to life Meera's famous bhajan "Payo Ji Maine Ram Ratan Dhan Payo" through delicate eye movements, hand gestures and nuanced footwork, evoking a profound devotional mood. The rhythmic patterns of bhajans naturally align with Kathak's tala cycles such as teentaal, *dadra* and *kaharwa*, allowing for seamless integration of music and movement. Bhajan-based performances often transcend religious boundaries, conveying universal messages of love, equality and spiritual liberation. A Kathak interpretation of Kabir's "Sach kahe toh maran dhaye" (Speak the truth even if death approaches) transforms the dance into a medium of social critique and moral reflection (Chakravorty, 2008).

Through bhajans, Kathak remains closely linked to folk traditions while enriching its emotional and musical dimensions.

Transformation of Folk Narratives in Performance :

The strength of Kathak lies in its abhinaya-the art of expressive storytelling through facial expressions, eye movements and intricate gestures. When a folk narrative is performed, the dancer employs these tools to personify characters and convey complex emotions (Walker, 2014). For instance, the love story of Dhola-Marui might be enacted through soft, circular movements to depict tender affection and longing, while the heroic exploits of Alha-Udal require brisk spins, sharp footwork and powerful drumbeats to communicate courage and combat. The narrative is not

merely recited but embodied, making the performance an immersive dramatic experience.

Rasa, Bhava and Characterization :

Folk narratives provide fertile ground for exploring classical aesthetic theories of *rasa* (emotional flavor) and *bhava* (emotion). Romantic tales invite [[Egra (love), heroic legends evoke v+ra (valor) and devotional stories inspire bhakti (devotion). Kathak dancers also portray varied archetypes of heroes (nayaka) and heroines (nayika), such as the independent heroine (svadhinapatika), the betrayed lover (vipralabdha), or the fearless warrior. These character types, drawn from folk narratives, enhance the dramatic impact and psychological complexity of Kathak performances (Devy, 2002).

Contemporary Innovations :

Modern Kathak artists have continued to adapt folk narratives to address contemporary social issues. Legendary performers such as Pandit Birju Maharaj, Kumudini Lakhia and Aditi Mangaldas have reinterpreted traditional stories to reflect themes of gender equality, environmental awareness and human rights (Chakravorty, 2008). For example, tales of rural women's struggles have been transformed into performances highlighting women's empowerment, while folk metaphors are used to comment on ecological conservation. These innovations demonstrate the enduring flexibility of folk narratives within Kathak.

Folk Narratives and Social Consciousness with kathak :

Folk narratives preserve collective memory and moral values, transmitting messages of love, courage, justice and spiri-

tual unity. Their integration into Kathak ensures that the dance remains not merely an aesthetic experience but also a medium of cultural dialogue and social awareness (Narayan, 2006). Performances based on Meera's devotional songs emphasize spiritual freedom and gender equality, while Kabir's bhajans advocate religious tolerance and social harmony. In this way, Kathak becomes a living bridge between tradition and modernity, art and activism.

Presentation of Folk Narratives through Gat Bhav in Kathak :

One of the most distinctive features of Kathak is the Gat Bhav segment, in which the dancer enacts a complete story or episode without verbal narration. Gat refers to a fixed rhythmic pattern of movement, while Bhav denotes the expressive enactment of characters, emotions and actions. This combination allows the performer to convey folk narratives with clarity and nuance through pure dance vocabulary.

When presenting a lokgatha, the dancer employs intricate footwork (tatkar), graceful spins (chakkar) and codified hand gestures (mudras) to illustrate key moments of the tale. For example, in depicting the love story of Dhola-Marua, the dancer may use subtle gat nikas (entry movements) to portray the heroine's secret journey, delicate wrist rotations to suggest the flutter of a scarf in the desert wind and quick spins to evoke the urgency of reunion. In a heroic ballad such as Alha-Udal, strong stamping patterns, forceful parans (rhythmic compositions) and angular postures create the mood of valor and combat.

The absence of spoken words in Gat Bhav heightens the role of abhinaya

(expression) and challenges the dancer to communicate the essence of the narrative through physical storytelling alone. This silent dramatization brings folk tales alive in a uniquely Kathak idiom, ensuring that regional legends remain accessible to diverse audiences while preserving the dance's classical aesthetic discipline.

Stories of Shiva and Krishna in Kavitta Form in Kathak :

Alongside Gat Bhav, the Kavitta is another important compositional form through which Kathak artists present mythological and folk narratives. A Kavitta is a rhythmic poetic verse that blends meaningful text with percussive syllables, enabling the dancer to express both narrative content and complex rhythmic patterns simultaneously.

Episodes from the lives of Lord Shiva and Lord Krishna are especially popular in Kavitta presentations. In a Shiva Kavitta, the dancer may recite and enact poetic lines describing the cosmic dance of Nataraja, combining powerful footwork (tatkar), dynamic spins and angular poses to suggest Shiva's tandava-the primordial dance of creation and destruction. Gestures of holding the damru (drum), placing the foot upon the demon Apasmara and the expressive use of eyes to depict both serenity and fierce energy allow the audience to experience Shiva's dual nature of destruction and compassion.

Similarly, Krishna Kavittas celebrate the playful and divine episodes of the Bhagavata Purana-the lifting of Govardhan hill, the stealing of butter, or the enchanting Raslila with the gopis. Through subtle abhinaya and rhythmic recitation of syllables like "ta thae tat," the dancer alternates

between portraying Krishna's mischievous childlike charm and his supreme divinity. The poetic cadence of the Kavitta allows the performer to shift fluidly between narration and pure rhythm, creating a dialogue between music, movement and mythology.

By incorporating Shiva and Krishna stories into Kavitta compositions, Kathak artists preserve the spiritual essence of these deities while demonstrating the dance's intricate interplay of literature, rhythm and expression.

Kathak Gharanas and Notable Exponents :

Kathak's evolution has been shaped by three principal gharanas-Lucknow, Jaipur and Banaras-each with unique stylistic features and legendary exponents who have preserved and expanded the tradition.

Lucknow Gharana: Known for its refined abhinaya (expressive storytelling), graceful movements and intricate nazakat (delicacy), the Lucknow style emphasizes subtle emotional interpretation of romantic and devotional themes. Notable exponents: Pandit Birju Maharaj, Shambhu Maharaj and Sitara Devi have carried this gharana's legacy forward, presenting folk narratives, bhajans and poetic compositions with unmatched sensitivity.

Jaipur Gharana : Celebrated for its vigorous footwork, dazzling tatkar (rhythmic footwork patterns) and complex rhythmic improvisations, the Jaipur style highlights the dance's pure technical brilliance and percussive energy. Notable exponents: Pandit Durga Lal, Rajendra Gangani and the legendary Sunder Prasad are among those who mastered the powerful dynamics

of this gharana while occasionally incorporating heroic folk tales and Shiva tandava themes.

Banaras Gharana : Distinguished by its blend of rhythmic virtuosity and spiritual depth, the Banaras style integrates elements of both Lucknow's expressiveness and Jaipur's rhythmic strength. Notable exponents: Sitara Devi, Krishna Kumar Dhar and others have used this gharana to present devotional bhajans, Krishna stories and folk-inspired Kavitta compositions.

Many contemporary artists-such as Kumudini Lakhia, Aditi Mangaldas and Malavika Mitra-draw inspiration from multiple gharanas, blending tradition and innovation. Their choreographies often feature folk narratives, Gat Bhav episodes and Kavitta compositions that connect Kathak to modern audiences while honoring its classical roots.

Practical presentation techniques (for performance & choreography)

- **Gat Bhav + Dramatic Structuring :** Structure a folk tale as a series of gats (short episodic scenes) that move the narrative forward (entry, conflict, climax, resolution). Use recurring rhythmic motifs to mark scenes so the audience senses transitions without words. Why it helps: Keeps the narrative compact and dance-driven- suitable for stage and festivals.
- **Use of Kavitta + Percussive Text :** For mythic or devotional episodes (Shiva's tandava, Krishna's raslila), compose Kavittas that combine meaningful lines with bols (spoken/percussive syllables) to merge narration and

rhythm. This strengthens both storytelling and laya interplay. World Music Institute+1.

- **Bhajan-led Pad Abhinaya :** Use bhajans (regional devotional songs) as anchors for emotional scenes- bhajans naturally align with teentaal/dadra/kaharwa and provide lyrical content for abhinaya. This is effective for devotional or moral themes. The Times of India+1.
- **Inter-genre Musical Adaptation :** Blend folk tunes and semi-classical forms (thumri, kajri) with classical accompaniment to create accessible soundscapes; maintain tala integrity while simplifying melodic lines for audience comprehension. Kuey.
- **Multimedia and Minimal Set :** Use projected visuals (landscape imagery, archival pictures, manuscript excerpts) to set context for a lokgatha while keeping the stage unencumbered to preserve Kathak's movement focus. This helps audiences unfamiliar with the tale follow plot and locale.
- **Physical-Textural Motifs :** Create recurring movement motifs (a scarf gesture, a shuffling foot motif for travel scenes, a raised arm for divine intervention) so audiences recognize characters/events non-verbally.

Here are some Kathak Productions Incorporating Folk Elements :

Several renowned Kathak exponents have drawn inspiration from folk songs (lokgeet), folk narratives (lokgatha), folk poets (lok kavi) and folk music traditions to create compelling productions that bridge

classical Kathak with living folk traditions. The following examples highlight this synergy:

Pandit Birju Maharaj – Govindam and Braj Bhav :

- **Source :** Braj folk poetry and bhajans of Surdas and Meera.
- **Presentation :** Used Braj **lokgeet** like “Jhoolat Radha” and Holi songs for pad-abhinaya; traditional folk rhythms such as **kaharwa** and **dadra** underlined his compositions.
- **Contribution :** Demonstrated how village festival music can seamlessly merge with Kathak's classical tala system.

Kumudini Lakhia – Dhabkar (“Heart-beat”)

- **Source :** Gujarati lokgeet and Garba folk rhythms.
- **Presentation :** Integrated live folk singers and dhol players with Kathak dancers, creating a contemporary production that retained the **Garba Taali** clapping patterns.
- **Contribution :** Highlighted Kathak's adaptability to regional folk idioms and collective community energy.

Aditi Mangaldas – Within & Timeless :

- **Source :** Folk poetry of Kabir and traditional **nirgun bhajans**.
- **Presentation :** Set Kathak movement to live singing of Kabir's dohe and rustic percussion, weaving philosophical folk texts into abstract choreography.
- **Contribution :** Used lok kavi (folk poets) to bridge classical Kathak with modern existential themes.

Shovana Narayan – Ganga – A River Story :

- **Source :** Bhojpuri and Awadhi *lokgeet*, folk tales of the river.
- **Presentation :** Included Bhojpuri boatmen's songs and Banarasi Kajri in her Kathak narrative about the cultural life along the Ganga.
- **Contribution :** Brought regional dialect songs to national stage with classical Kathak vocabulary.

Rani Khanam – Sufiana and Mystic Sufi Kathak :

- **Source :** Folk Sufi poetry (Bulleh Shah, Amir Khusro) and qawwali traditions.
- **Presentation :** Used live qawwali singing and folk Sufi compositions with Kathak spins (*chakkars*).
- **Contribution :** Showed the spiritual synergy between North-Indian folk-Sufi music and Kathak's rhythmic dynamism.

Rajendra Gangani (Jaipur Gharana) – Alha-Udal episodes :

- **Source :** Bundelkhandi heroic ballads (*lokgatha*).
- **Presentation :** Used vigorous *tatkar* and *parans* to embody the martial spirit of the Alha epic, performed to dholak and nagada patterns drawn from Bundelkhand folk music.
- **Contribution :** Preserved rare heroic folk narratives within the Jaipur gharana style.

Malavika Mitra – Krishna Gatha :

- **Source:** Bengali *kirtan* and village *pala gaan* (folk narrative singing).

- **Presentation :** Combined Kathak footwork with *pala gaan* singing ensembles to depict Krishna's childhood episodes.
- **Contribution :** Demonstrated inter-regional adaptation of Bengali folk devotional music.

Guru Rohini Bhate – Lokaranjan (Pune) :

- **Source :** Maharashtrian *lavani* and *powada* ballads.
- **Presentation :** Integrated Lavani's folk rhythms with Kathak's *teentaal* compositions, highlighting heroic tales of the Maratha era.
- **Contribution :** Created a dialogue between Kathak and Marathi folk theatre (*tamasha*).

These case studies reveal how contemporary choreographers preserve the authenticity of regional folk traditions while enriching Kathak's classical grammar and expanding its expressive range.

Conclusion :

This study demonstrates that folk narratives profoundly enrich the thematic presentation of Kathak dance by providing a reservoir of stories, emotions and moral insights. They connect Kathak to rural communities, sustain its narrative essence and keep it responsive to changing social-realities. Through the incorporation of bhajans and folk music, Kathak not only preserves cultural memory but also invites spiritual contemplation and collective reflection. The convergence of classical technique and folk creativity ensures that Kathak remains a dynamic art form-one

that celebrates India's diverse heritage while speaking to universal human concerns.

References :

1. Chakravorty, P. (2008). *Bells of change: Kathak dance, women and modernity in India*. Seagull Books.
2. Devy, G. N. (2002). *Indian literary criticism: Theory and interpretation*. Orient Longman.
3. Narayan, K. (2006). *Storytellers, saints and scoundrels: Folk narrative in Hindu religious teaching*. University of Pennsylvania Press.
4. Singh, J. (2014). Folk narratives and performing arts of North India. *Indian Folklore Research Journal*, 12(2), 45–62.
5. Vatsyayan, K. (1997). *Traditions of Indian classical dance*. Marg Publications.
6. Walker, M. (2014). Gesture and meaning in Kathak dance. *Asian Theatre Journal*, 31(1), 150–172.



Faith, Folklore and Modernity : The Role of Folk Healing in A Silence of Desire and Cultural Memory in The Nowhere Man

A. Sankavi

Part Time Ph.D. Research Scholar,
Research Department of English,
Sri S. Ramasamy Naidu Memorial College, Sattur;
Affiliated to Madurai Kamaraj University,
Madurai, TamilNadu

Dr. M. Sudha Devi

Assistant Professor & Research Supervisor,
Research Department of English,
Sri S. Ramasamy Naidu Memorial College, Sattur;
Affiliated to Madurai Kamaraj University,
Madurai, TamilNadu

Abstract :

This essay examines how faith, folklore and modernity interact in Kamala Markandaya's A Silence of Desire (1960) and The Nowhere Man (1972), emphasizing the important roles that folk traditions play as manifestations of spiritual resiliency and cultural identity. The Swami, a character in A Silence of Desire, stands in for India's surviving folk healing tradition, which opposes the predominance of Western medical science and rationalism. Markandaya illustrates the conflict between indigenous belief systems and the demands of modernization through Sarojini's faith and Dandekar's skepticism. As the diasporic protagonist Srinivas maintains his sense of self through folk-based rituals, dietary practices and silent devotion in an alien and racist British environment, the emphasis in The Nowhere Man moves from healing to remembrance. Here, folklore serves as a tool for cultural continuity and psychological survival while living in exile. This study's comparison of these two pieces shows how Markandaya reinterprets folklore as a fluid, adaptable force that unites tradition and modernity and offers moral and emotional stability in the face of social change. The essay comes to the conclusion that, in a fractured modern world, faith and folk memory are nevertheless enduring sources of meaning rather than being relics of the past.

Keywords :

Kamala Markandaya; Faith; Folklore; Modernity; Folk Healing; Cultural Memory; Diaspora; Postcolonial Identity; Indian English Fiction; Tradition and Modernity.

In the first generation of Indian English authors, Kamala Markandaya (1924–2004) played a pivotal role in navigating the intricate relationship between tradition

and modernity in an India that was quickly decolonizing. The conflicts between the Eastern traditions and the modernizing, rationalist impulses that accompanied

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

97

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

colonialism and its aftermath are a recurring theme in her literature. *A Silence of Desire* (1960) and *The Nowhere Man* (1972), two of her mid-career works, provide rich material for analyzing this negotiation from a religious and folkloric perspective.

Markandaya expands the definition of folklore to encompass popular spiritual practices, folk healing and the cultural memory of the homeland, yet folklore is commonly thought of as the collection of oral traditions or rural customs. The character of the Swami in *A Silence of Desire* symbolizes the ancient folk tradition of enchanting healers whose presence disturbs contemporary, middle-class reason. The invisible culture of India—its rituals, food habits and a silent spiritual discipline—is carried by the Indian immigrant Srinivas in *The Nowhere Man*. In the harsh post-war British climate, this intangible cultural memory proves to be a delicate yet essential resource.

This essay explores the roles that faith and folklore play in these two books: in *A Silence of Desire*, as a tool for resistance and healing and in *The Nowhere Man*, as a way to preserve memory and identity. Markandaya challenges a false dichotomy between tradition and modernity by contrasting these works, demonstrating the tenacity and flexibility of folk belief in both the Indian metropolis and the diaspora.

The setting of *A Silence of Desire* is urban, post-independence India, where people are keen to modernize yet still have strong ties to their traditional ways. The middle-class family resolving these conflicts is embodied by the main characters,

Dandekar and his wife Sarojini. As a civil official, Dandekar takes satisfaction in his order and reason. Sarojini seeks assistance from a local holy man, the Swami, rather than Western treatment due to an unexplained inside sickness. The “silence of desire” that serves as the title of the book is created by the secrecy surrounding her visits to the Swami; it is a silence of unsaid need as much as of concealed faith.

In addition to being a religious ascetic, the Swami is the personification of India’s traditional forms of physical and spiritual therapy, known as folk healing, which take place outside of official institutions. In India, folk healing frequently blends Ayurveda, ritual and the conviction that a holy person’s touch or words have healing power. Markandaya portrays the Swami as a compelling character whose presence provides solace and purpose to those who see the limitations of contemporary medicine, rather than as a charlatan or a miracle worker. Sarojini is drawn to the Swami more for psychological and spiritual comfort than for a medical cure. In this way, folk healing functions on several levels: as emotional support, as physical therapy and as a communal practice in which faith itself contributes to the healing.

Dandekar considers Sarojini’s belief in the Swami to be an insult to his contemporary, bureaucratic outlook. His first response is one of skepticism and jealousy; he worries about superstition as well as the idea that his wife’s love suggests a need he is unable to satisfy. Markandaya criticizes the conceit of a solely intellectual viewpoint that ignores the affective and symbolic aspects of healing via

Dandekar's struggle. Here, folk healing is more than just a holdover from the past; it is a narrative that challenges the clinical, sterile modernity that ignores the need for spiritual health in human beings.

Tradition and modernity are also mediated by the Swami. His approaches are straightforward and non-dogmatic; he does not demand mindless belief. Markandaya transforms the folk healer into a figure of quiet knowledge by portraying him as serene, kind and unthreatening. This personifies a syncretic Indian spirituality that can live with contemporary life. As a result, folk healing turns into a forum for discussion rather than a conflict between the traditional and the modern.

A Silence of Desire captures the dynamic of women's preservation and transmission of Indian folk traditions. Sarojini's recourse to the Swami is a reflection of her agency as well as the restricted ways in which women can express their spiritual or psychological demands. Her faith is an active decision to look for a therapeutic method that speaks to her inner existence rather than a passive act of acquiescence. In contrast to patriarchal presumptions that women's spirituality is merely superstition, Markandaya presents Sarojini as the keeper of folk faith in a contemporary marriage. The novel makes the argument that female agency manifests itself in folk belief, a field that is frequently disregarded by male rationalists but offers women a subtly empowering experience.

The Nowhere Man, which was published more than ten years later, takes place in post-war Britain and narrates the tale of Srinivas, an elderly Indian widower who has spent many years in England. He

used to live in a welcoming multicultural neighborhood, but as racial tensions rise in the 1970s, he finds himself growing more and more alone. His ambivalent status is indicated by the title: he does not entirely belong to either the India he left behind or the England where he currently resides.

The Nowhere Man does not feature a folk healer, in contrast to *A Silence of Desire*. Rather, the "folk" is cultural memory—the modest devotional routines, food patterns and traditions that Srinivas upholds. His recollection of Indian holidays, his vegetarian cuisine and his regular prayer recitation are not just eccentricities; they are acts of remembrance that preserve his native folk traditions. By maintaining identity in the face of cultural erasure, these activities serve as what anthropologists refer to as "portable tradition"—customs and beliefs that migrants retain across borders.

Srinivas's devotion to his Indian customs becomes a silent form of resistance in a setting where racism is on the rise. His folk customs uphold his dignity and heritage in the face of the local animosity he encounters, which culminates in violent attacks that aim to eradicate diversity. Markandaya demonstrates that folklore in this place is a survival tactic rather than a form of nostalgia. Cultural memory gives people psychological resilience against racism's dehumanizing effects.

The Nowhere Man is a tragedy of erosion, though. Srinivas's recollections are particularly moving because they are vanishing; he is cut off from both his chosen nation and his own India and the India of his childhood is a faint echo. He

is supported by folklore, but it is insufficient to shield him from the violence of marginalization. Markandaya encapsulates the paradoxical reality of diaspora: cultural memory serves as a reminder of loss as well as a lifeline.

The two novels are on how folk practices deal with modernity, even if their settings are distinct. In Britain, folk traditions face an aggressively secular and racially exclusive modernity, whereas in India, folk healing challenges the modernist confidence in science. When contemporary institutions like the legal system, medical system and bureaucracy are unable to meet the emotional or spiritual needs of people, folklore steps in to provide meaning.

The idea that folklore is stagnant or outdated is refuted by Markandaya's portrayal. An urban middle class can relate to the Swami's cure in *A Silence of Desire*; he is neither a fake nor a relic. In a similar vein, Srinivas's rituals are living acts of remembering that are tailored to the British context rather than being museum exhibits. According to Markandaya, folklore is resilient and dynamic, able to change its form in response to shifting historical conditions.

These folk customs are bound together by faith. Sarojini believe that healing through trust in the Swami transcends the realm of medicine. In the face of alienation, Srinivas finds identity affirmation in his belief in the importance of his traditions. According to Markandaya, faith-whether in a holy figure or in the routine activities of everyday life-is a necessary human reaction to loss and uncertainty rather than foolish superstition.

The ladies-Srinivas's late wife Vasantha and his neighbor Mrs. Pickering-highlight how women frequently maintain folk rituals, despite the fact that *The Nowhere Man* centers on an elderly male protagonist. Mrs. Pickering, despite being English, demonstrates understanding for the Indian home practices that Vasantha upheld prior to her passing. The relationship between gender and the maintenance of folk belief is furthered in both novels as women emerge as bearers of cultural continuity.

Both books are the result of a postcolonial imagination that is attempting to deal with the effects of colonialism. Following independence, India's drive for modernization frequently involved adopting Western ideas of advancement. This national sentiment is reflected in Dandekar's belief in bureaucratic logic. Sarojini's recourse to a folk healer, however, affirms the importance of native knowledge systems. The racism and xenophobia of the erstwhile imperial center are the other side of the colonial encounter that Srinivas faces in Britain. The imperial narrative that previously claimed to have civilized India is subtly criticized by his traditional memories. Thus, Markandaya challenges postcolonial modernity and colonial dominance through folklore.

Kamala Markandaya provides a thoughtful analysis of the enduring influence of folk belief in contemporary society through *A Silence of Desire* and *The Nowhere Man*. In the former, folk healing affirms the psychological and spiritual aspects of health while upending the complacency of contemporary rationalism. In the latter, an immigrant's cultural memory, as represented through folk practices,

serves as a barrier against racism and alienation.

Faith and folklore are dynamic forces that uphold both individual and collective identity throughout both novels, rather than being remnants of a bygone era. Markandaya acknowledges the limitations and difficulties of these traditions without romanticizing them. However, she demonstrates how folklore without adaptation runs the risk of becoming irrelevant, while modernity without it runs the risk of becoming spiritually impoverished.

Her worldview points to a more nuanced view of modernity that takes into account both the timeless strength of faith and the wisdom of traditional traditions. By shedding light on the function of folk healing and cultural memory, Markandaya encourages readers to view folklore as a live bridge connecting the past and present rather than as a passive inheritance.

References :

1. Bhatnagar, M. K. *Kamala Markandaya: A Critical Study of Her Novels*. New Delhi: Atlantic Publishers, 2002.
2. Chakravarty, Radha. *Feminism and Contemporary Indian Women Writers in English*. New Delhi: Routledge, 2008.
3. Dhawan, R. K., ed. *Indian Women Novelists: Set I, Vol. 3 – Kamala Markandaya*. New Delhi: Prestige Books, 1991.
4. Ghosh, Ranjana. *Kamala Markandaya: A Study in Her Novels*. New Delhi: Atlantic Publishers, 2003.
5. King, Bruce. *Modern Indian Poetry in English*. Delhi: Oxford University Press, 2001.
6. Naik, M. K. and Shyamala A. Narayan. *Indian English Literature 1980–2000: A Critical Survey*. New Delhi: Pencraft International, 2001.
7. Paranjape, Makarand. “The Coloniser, the Colonised and the Colonial: Reading Kamala Markandaya.” *Indian English Literature: 1947–1997*, edited by K. R. Srinivasa Iyengar, New Delhi: Sterling, 1999, pp. 146–160.
8. Singh, Krishna. *Culture and Identity: Indian Writing in English*. Jaipur: Book Enclave, 2004.
9. Sinha, Sunita. *Post-Colonial Women Writers: New Perspectives*. New Delhi: Atlantic Publishers, 2008.
10. Thakur, Manjula. “Tradition and Modernity in Kamala Markandaya’s Fiction.” *The Indian Journal of English Studies*, vol. 39, no. 2, 2002, pp. 56–64.



परंपरा से आधुनिकता तक : वाराणसी की सार्वजनिक कला में लोक रूपांकनों का बदलता स्वरूप

अनंत रत्न

शोध छात्र, दृश्य कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. महेश सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, दृश्य कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश :

यह शोध पत्र वाराणसी के शहरी परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक परिवर्तन का व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करता है: पारंपरिक लोक रूपांकनों का पवित्र एवं निजी क्षेत्रों की सीमाओं से निकलकर समकालीन सार्वजनिक कला में उल्लेखनीय पुनरुत्थान। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य इस प्रक्रिया में रूपांकनों के स्वरूप, अर्थ और महत्व में आए बहुआयामी परिवर्तनों की विस्तृत पड़ताल करना है। प्राचीन बनारसी साड़ियों के जटिल बेल-बूटे, पारंपरिक जालीदार डिज़ाइन और ऐतिहासिक मंदिरों के भव्य भित्ति-चित्रों में निहित गहन प्रतीक अब शहर की दीवारों, सार्वजनिक भवनों और गलियों में एक नवीन, समकालीन और आधुनिक स्वरूप धारण कर रहे हैं। सुव्यवस्थित गुणात्मक शोध प्रणाली का प्रयोग करते हुए, जिसमें विस्तृत दृश्य विश्लेषण, क्षेत्रीय अवलोकन और विविध द्वितीयक स्रोतों की गहन समीक्षा शामिल है, यह पत्र इस सांस्कृतिक परिवर्तन के शैलीगत (Stylistic), रचनात्मक (Compositional) और विषयगत (Thematic) आयामों को विस्तार से उजागर करता है। शोध का मूल तर्क यह स्थापित करता है कि यह उभरती हुई कलात्मक प्रवृत्ति मात्र शहरी सौंदर्यीकरण का सतही प्रयास नहीं है, बल्कि स्थानीय सांस्कृतिक पहचान, आधुनिक शहरी विकास की आकांक्षाओं और वैश्वीकरण की बढ़ती शक्तियों के बीच एक जटिल, बहुस्तरीय और सार्थक संवाद का प्रतिनिधित्व करती है। इस अध्ययन में इस महत्वपूर्ण परिवर्तन के पीछे कार्यरत विविध कारकों जैसे- सरकारी विकास पहलों, बढ़ते अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन के प्रभाव, स्थानीय युवा कलाकारों की नवोन्मेषी दृष्टि और सामुदायिक भागीदारी के प्रयासों - की भी विस्तृत विवेचना की गई है। निष्कर्षतः, यह गहन शोध यह स्थापित करता है कि सार्वजनिक कला के माध्यम से लोक रूपांकनों का यह नवीनीकृत और परिवर्तित स्वरूप वाराणसी की अमूल्य सांस्कृतिक विरासत को न केवल संरक्षित करने का एक सशक्त उपकरण है, बल्कि उसे 21वीं सदी के तेजी से बदलते समकालीन समाज और युवा पीढ़ी के लिए अधिक प्रासंगिक, आकर्षक और सुलभ बनाने का एक जीवंत, रचनात्मक और सामाजिक रूप से महत्वपूर्ण प्रयास भी है।

मुख्य शब्द :

सार्वजनिक कला, लोक रूपांकन, वाराणसी, स्ट्रीट आर्ट, सांस्कृतिक पहचान, शहरी सौंदर्यशास्त्र, परंपरा, आधुनिकता।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

102

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

1. भूमिका : वाराणसी का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य :

वाराणसी, जिसे प्राचीन काल से काशी और बनारस के पवित्र नामों से भी संबोधित किया जाता है, भारतीय संस्कृति की अनवरत प्रवाहित होती चेतना का एक जीवंत, गतिशील और ऊर्जावान प्रतीक है। इतिहास के स्वर्णिम पन्नों में सुवर्णाक्षरों में दर्ज यह प्राचीनतम बसा नगर, अपनी अद्वितीय आध्यात्मिक ऊर्जा, अलौकिक आभा और असीम सांस्कृतिक वैभव के लिए युगों-युगों से विश्व-प्रसिद्ध रहा है। सभ्यताओं का यह मूल स्थल अपने अनूठे सांस्कृतिक परिवेश और आध्यात्मिक महत्ता के कारण भारत के सांस्कृतिक मानचित्र पर सदैव विशिष्ट स्थान रखता है। इस नगर की बहुआयामी पहचान केवल एक धार्मिक स्थल के रूप में ही परिसीमित नहीं है, बल्कि सदियों से आध्यात्मिक साधना, गहन चिंतन और विविध ज्ञान परंपराओं के अद्वितीय केंद्र के रूप में भी स्थापित रही है, जहाँ विद्वानों, दार्शनिकों, कवियों, साधकों, और सृजनशील कलाकारों का निरंतर आगमन और आवागमन होता रहा है, जिन्होंने अपनी प्रतिभा और साधना से इस नगरी के वैचारिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को समृद्ध और विविधतापूर्ण बनाया है।

साथ ही, यह नगरी दृश्य और लोक कलाओं की एक अद्भुत, समृद्ध और अनूठी प्रयोगशाला के रूप में विश्व-प्रसिद्ध है, जहाँ सदियों से कलात्मक अभिव्यक्तियों का निरंतर विकास, नवोन्मेष और अभिनव प्रयोग होता रहा है। यह स्थान विविध कला रूपों के सहअस्तित्व, परस्पर संवाद और समन्वित विकास का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करता है। पवित्र और कल्याणकारी गंगा के पावन तटों पर बसे इस ऐतिहासिक और रहस्यमयी नगर में, कला और संस्कृति का ऐसा अद्भुत, अलौकिक और दिव्य संगम देखने को मिलता है, जिसमें सदियों पुरानी परंपराओं और आधुनिक नवाचारों का अनोखा, सुंदर और सौहार्दपूर्ण समन्वय सहज ही दिखाई देता है, जो इस नगरी की अनूठी पहचान और अद्भुत सांस्कृतिक वैभव को और अधिक समृद्ध बनाता है।

वाराणसी की सांस्कृतिक जीवन्तता इसकी विविध कला रूपों में प्रतिबिम्बित होती है, जिनमें भव्य और आकर्षक भित्ति चित्रकला, जिसमें सनातन पौराणिक कथाओं, रोचक लोककथाओं और गहन आध्यात्मिक अनुभूतियों का अत्यंत जीवंत और प्राणवान चित्रण प्रभावशाली रूप से मिलता है; अद्भुत सूक्ष्मता से परिपूर्ण मूर्तिशिल्प कला, जिसमें कठोर पत्थर और विभिन्न प्रकार की धातुओं में असीम जीवन-ऊर्जा का आभास प्रकट होता दिखाई देता है; अत्यंत परिष्कृत और कुशलतापूर्ण लोक-नक्काशी, जो स्थानीय लोगों के दैनिक जीवन-शैली, परंपरागत रीति-रिवाजों और सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का यथार्थ दर्पण प्रस्तुत करती है; गहन अध्यात्म से ओतप्रोत मंदिर स्थापत्य, जिसमें आकाश की अनंत ऊँचाइयों को छूती सुरम्य मीनारें और अत्यधिक जटिल एवं बारीक नक्काशीदार मनमोहक गुंबद अद्भुत रूप से शामिल हैं; और अत्यंत बारीक एवं सूक्ष्म शिल्प परंपराएँ, जिनमें कोमल रेशम, नरम मिट्टी और कठिन काठ पर कुशल कारीगरों द्वारा बनाई गई अतिशय नाजुक और मनोहारी कलाकृतियाँ विस्मयकारी रूप से समाहित हैं।

ये सभी विविध और बहुआयामी कला रूप हजारों वर्षों से निरंतर विकसित होते हुए धार्मिक, सामाजिक और लोक-सांस्कृतिक मूल्यों, आदर्शों और आस्थाओं का न केवल प्रभावशाली ढंग से वहन करती रही हैं, बल्कि उन्हें आगामी पीढ़ियों के लिए आवश्यक रूप से संरक्षित और महत्वपूर्ण रूप से संवर्धित भी करती रही हैं, जिससे यह सुदृढ़ता से सुनिश्चित होता है कि वाराणसी की अमूल्य और अद्वितीय सांस्कृतिक विरासत सदा अक्षुण्ण, अविकल और अनुप्राणित बनी रहे और आने वाली नवीन पीढ़ियों को निरंतर प्रेरित, उत्साहित और सकारात्मक रूप से प्रभावित करती रहे।

लोक रूपांकनों का गहन तात्पर्य उन विविध और बहुआयामी प्रतीकों, सजीव आकृतियों और रचनात्मक कलात्मक रूपों से है जो स्थानीय जनता के दैनिक जीवन, उनकी गहरी आस्थाओं, पौराणिक

मिथकों, सामूहिक उत्सवों और सामाजिक जीवन-मूल्यों का सशक्त और सार्थक प्रतिनिधित्व करते हैं। वाराणसी के सांस्कृतिक परिदृश्य में ये विविध रूपांकन-पवित्र गंगा, कल्याणकारी भोलेनाथ, ललित नटराज, रहस्यमयी नाग, पवित्रता के प्रतीक कमल, जीवन-ऊर्जा देने वाले सूर्य, शुभ बेलपत्र, समृद्धि का प्रतीक पान, जीवनदायिनी नौका, आनंददायक संगीत वाद्य, और भावपूर्ण लोकनृत्य आदि के अनेकानेक रूपों में - यहां के सार्वजनिक जीवन और कला दोनों क्षेत्रों में अतिशय गहराई और अर्थपूर्णता के साथ जुड़े रहे हैं और समकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं।

परंतु 21वीं सदी में यह दृश्य विरासत अब केवल धार्मिक या लोक-जीवन की परंपरा का दर्पण नहीं रही है; यह समकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य को एक नया आयाम प्रदान करते हुए विकसित हुई है। अब यह विरासत शहरी सौंदर्यीकरण, पहचान राजनीति, और आधुनिक कलाभाषा का सशक्त माध्यम बन चुकी है, जिसमें परंपरागत प्रतीकों को नवीन अर्थों और संदर्भों में पुनर्व्याख्यायित किया जा रहा है। नगरीय स्थापत्य से लेकर सार्वजनिक स्थलों तक, वाराणसी की लोक कला ने अपने मूल सांस्कृतिक मूल्यों को संरक्षित करते हुए भी समकालीन आवश्यकताओं और अभिव्यक्तियों को समाहित करने की अद्भुत क्षमता दिखाई है। यही गतिशील संक्रमण-परंपरा की जड़ों से आधुनिकता के विस्तार तक- इस शोध अध्ययन का मूल केंद्र और प्रेरणास्रोत है।

2. लोक रूपांकनों की परंपरा : प्रतीकों का सामाजिक और धार्मिक संदर्भ :

लोक रूपांकनों की जड़ें भारतीय समाज की गहन और व्यापक सामूहिक चेतना में निहित हैं, जिसमें पीढ़ियों के अनुभव, ज्ञान और आस्था का संगम है। वाराणसी के कुशल और परंपरागत लोक कलाकारों द्वारा सदियों से निरंतर विकसित की जा रही भित्तिचित्रों, सजावटी आलपनाओं और विविध

आकार-प्रकार की मूर्तियों में जीवंत और प्रभावशाली मिथकीय कथाओं का चित्रण, शक्तिशाली देवी-देवताओं के विभिन्न रूपों की अभिव्यक्ति तथा स्थानीय लोक जीवन के रंगारंग और भावपूर्ण उत्सवों की सजीव और मनमोहक झलक स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। ये कलाकृतियाँ मात्र सौंदर्यात्मक वस्तुएँ नहीं, बल्कि समुदाय की सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के जीवंत दस्तावेज़ हैं।

क) मिथकीय और धार्मिक प्रतीक : गंगा माँ, शिवलिंग, त्रिशूल, नाग, सूर्य, कमल आदि प्रतीक धार्मिक अर्थों से भरे हुए प्राचीन प्रतिरूप हैं, जो वाराणसी की सामूहिक चेतना का अभिन्न अंग बन चुके हैं। ये प्रतीक वाराणसी के लोक जीवन में गहराई से रचे-बसे हैं और सदियों से चली आ रही पीढ़ी-दर-पीढ़ी सांस्कृतिक विरासत का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन प्रतीकों का प्रयोग मात्र आस्था का प्रदर्शन या धार्मिक अनुष्ठानों का हिस्सा नहीं है, बल्कि सामाजिक समरसता, सामूहिक अस्मिता, पारिस्थितिक संतुलन और प्राकृतिक चक्र के प्रति गहन सम्मान और आदर का सशक्त और सार्थक संकेत भी है, जिसके माध्यम से लोक समुदाय अपने अस्तित्व की निरंतरता और सामूहिक कल्याण की आकांक्षा व्यक्त करता है।

ख) लोकसांस्कृतिक प्रतीक : नौका, मछुआरे, संगीत वाद्य, पान, मणिकर्णिका घाट आदि ऐसे प्रतीक हैं जो जीवन के उत्सव, मृत्यु के अनुष्ठान और सामाजिक निरंतरता का प्रतिनिधित्व करते हैं। वाराणसी के दैनिक जीवन में गहराई से समाहित ये प्रतीक स्थानीय जीवनशैली, आजीविका और सामूहिक अनुभवों के विभिन्न आयामों को दर्शाते हैं। नौका और मछुआरे गंगा नदी से जुड़े जीवनयापन और जलीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि संगीत वाद्य जैसे सितार, तबला और शहनाई शहर की समृद्ध

संगीत परंपरा को रेखांकित करते हैं। पान के पत्ते आतिथ्य और सामाजिक बंधन का प्रतीक हैं, और मणिकर्णिका घाट जीवन-मृत्यु के अनवरत चक्र का प्रतीक है, जहां अंतिम संस्कार की पवित्र अग्नि कभी बुझती नहीं है। ये सभी प्रतीक मिलकर वाराणसी के सांस्कृतिक ताने-बाने की जटिलता और उसकी आध्यात्मिक-सामाजिक प्रकृति को समग्रता में प्रस्तुत करते हैं।

ग) रंग और रेखा की परंपरा : लोक कला की रंग योजना सामान्यतः प्राकृतिक रंगों पर आधारित रही है- लाल, पीला, नीला और हरा रंग प्रतीकात्मक अर्थों से युक्त होते हैं। इन रंगों का चयन केवल सौंदर्यात्मक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि गहन सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और प्रतीकात्मक महत्व के आधार पर किया जाता है। उदाहरण के लिए, लाल रंग शक्ति, सौभाग्य और जीवन-ऊर्जा का प्रतिनिधित्व करता है, पीला ज्ञान और प्रकाश का, नीला अनंतता और शांति का तथा हरा प्रकृति और नवजीवन का संकेत देता है। रेखाएँ लयात्मक और प्रतीकात्मक होती हैं, जिनमें शैलीगत एकरूपता के साथ-साथ क्षेत्रीय विविधता भी मिलती है। वाराणसी की लोक चित्रकला में रेखाओं का प्रवाह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जो कभी सरल और सीधी होती हैं तो कभी जटिल और घुमावदार, जो न केवल कलाकार की कुशलता को प्रदर्शित करती हैं बल्कि जीवन के विविध आयामों और प्रकृति के चक्रीय स्वरूप का भी संकेत देती हैं। इन परंपरागत रेखांकन शैलियों में स्थानीय प्रभाव और व्यक्तिगत कलात्मक अभिव्यक्तियों का समावेश होता है, जिससे एक विशिष्ट पहचान बनती है जो वाराणसी की कला को अन्य क्षेत्रों से अलग करती है।

जैसा कि Bajpai (2018) ने अपने शोधपत्र में विस्तृत रूप से उल्लेख किया है, 'वाराणसी की दृश्य

परंपरा समय के साथ धर्म, लोकजीवन और शिल्पकला के त्रिवेणी संगम के रूप में विकसित हुई है, जिसमें प्राचीन आध्यात्मिक मूल्यों, स्थानीय लोक प्रथाओं और परिष्कृत कारीगरी का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। यह कलात्मक विकास न केवल स्थानीय सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है, बल्कि नगर के सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास की एक जीवंत और बहुआयामी गाथा भी प्रस्तुत करता है।'

3. सार्वजनिक कला का उद्भव : दीवारों से नगर तक :

सार्वजनिक कला (Public Art) की अवधारणा आधुनिक भारत में लगभग 20वीं सदी के उत्तरार्ध में एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में विकसित हुई। यह वह समय था जब स्वतंत्रता के पश्चात् राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान को नए सिरे से परिभाषित करने की प्रक्रिया में संलग्न था। इस कालखंड में भारतीय कलाकारों ने अपनी औपनिवेशिक विरासत से मुक्त होकर स्वदेशी कला-रूपों के पुनरुत्थान पर विशेष बल दिया और परंपरागत लोक कला को आधुनिक संदर्भों में पुनर्व्याख्यायित किया। शहरी परिदृश्य में भित्तिचित्रों, मूर्तिशिल्पों और अन्य दृश्य कलात्मक अभिव्यक्तियों को केवल सौंदर्यीकरण के उपकरणों के रूप में ही नहीं, बल्कि सामूहिक स्मृति के संरक्षण, सांस्कृतिक धरोहर के प्रलेखन, सामाजिक चेतना के प्रसार और सार्वजनिक संवाद के शक्तिशाली माध्यम के रूप में भी पहचाना जाने लगा था। यह अवधारणात्मक बदलाव अत्यंत महत्वपूर्ण था क्योंकि इसने पारंपरिक लोक कला रूपों को निजी और समुदायिक दायरे से निकालकर व्यापक सार्वजनिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने का कार्य किया, जिससे इन कला रूपों की पहुँच, प्रभाव और सामाजिक महत्व में अभूतपूर्व विस्तार हुआ।

वाराणसी में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से तीन प्रमुख अभिव्यक्तियों के माध्यम से अत्यंत सशक्त और विविधतापूर्ण रूप में सामने आई- प्रथम, 'घाटों

की ऐतिहासिक दीवारों' पर अंकित जीवन्त और रंग-संयोजनों से परिपूर्ण चित्रांकनों द्वारा, जो न केवल शहर के आध्यात्मिक इतिहास का समृद्ध दस्तावेजीकरण करते हैं बल्कि स्थानीय लोक-प्रतीकों और पौराणिक आख्यानों के माध्यम से सांस्कृतिक निरंतरता का भी संवहन करते हैं; द्वितीय, शहर की 'सड़कों और गलियों के भित्तिचित्रों' के माध्यम से, जिन्होंने विविध रंगों और आकृतियों के साथ दैनिक जीवन के साधारण और असाधारण दृश्यों को अमरता प्रदान की और लोक-जीवन के अनगिनत पहलुओं का सूक्ष्म चित्रण किया; और तृतीय, 'मूर्तिशिल्पिक स्थापत्य' के विस्तृत और बहुआयामी प्रयोगों के द्वारा, जिन्होंने सार्वजनिक स्थानों और चौराहों पर पौराणिक, धार्मिक और ऐतिहासिक प्रसंगों को पारंपरिक शिल्प-विधियों और आधुनिक दृष्टिकोणों के समन्वय से त्रिआयामी रूप में प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया।

मुख्य रूप :

1. **भित्तिचित्र (Murals) :** वाराणसी के प्राचीन घाटों की ऐतिहासिक दीवारों पर उकेरे गए जीवन्त और विस्तृत धार्मिक कथाओं के दृश्य, जिनमें पौराणिक आख्यान, देवी-देवताओं के विविध रूप और स्थानीय लोक प्रतीकों की समृद्ध, रंग-संयोजनों से परिपूर्ण कलात्मक प्रस्तुतियाँ शामिल हैं। ये अद्भुत भित्तिचित्र प्राचीन काल से चली आ रही धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं का सजीव चित्रण करते हैं, जिनमें गंगा के किनारे होने वाली प्रातःकालीन आरती से लेकर शिव-पार्वती के विवाह जैसी पौराणिक कथाओं तक का सूक्ष्म और विस्तृत चित्रांकन किया जाता है। कलाकारों द्वारा पारंपरिक प्राकृतिक रंगों और स्थानीय शैली का प्रयोग करते हुए निर्मित ये भव्य कलाकृतियाँ न केवल अत्यधिक सौंदर्यात्मक मूल्य रखती हैं, बल्कि काशी की जीवन्त सांस्कृतिक और आध्यात्मिक धरोहर का प्रामाणिक दस्तावेजीकरण भी करती हैं, जिसमें

स्थानीय लोक विश्वास, रीति-रिवाज, और सामाजिक-धार्मिक जीवन का अनूठा संगम दृष्टिगोचर होता है।

2. **मूर्तिशिल्प :** गंगा के पवित्र तटों पर विराजित शिव, नंदी और विविध लोकदेवताओं की भव्य और कलात्मक मूर्तियाँ, जो स्थानीय कुशल शिल्पकारों द्वारा सदियों से चली आ रही परंपरागत तकनीकों और समकालीन आधुनिक दृष्टिकोण के सुंदर समन्वय से निर्मित की जाती हैं। इन प्रतिमाओं की विशेषता यह है कि इनमें स्थानीय पत्थरों, धातुओं और मिट्टी जैसी प्राकृतिक सामग्रियों का उपयोग किया जाता है, जिन्हें विशिष्ट कारीगरी द्वारा जीवन्त रूप दिया जाता है। ये मनोरम मूर्तियाँ न केवल गहरी धार्मिक आस्था और सामूहिक विश्वास के प्रतीक हैं, बल्कि वाराणसी की समृद्ध और विविधतापूर्ण शिल्पकला परंपरा का एक जीवन्त और प्रेरणादायक उदाहरण भी हैं, जिनमें स्थानीय सौंदर्यबोध, पारंपरिक प्रतीकात्मकता और समकालीन कलात्मक संवेदनशीलता का अद्भुत और सुसंगत सम्मिश्रण देखने को मिलता है। प्रत्येक मूर्ति में कलाकार का व्यक्तिगत दृष्टिकोण और उनकी गहरी आध्यात्मिक अनुभूति भी परिलक्षित होती है, जो इन कलाकृतियों को मात्र पत्थर से कहीं अधिक, एक जीवन्त कथा का रूप प्रदान करती है।

3. **स्थापत्य कला :** वाराणसी के प्राचीन द्वारों, सार्वजनिक उद्यानों और विविध सामुदायिक स्थलों पर पारंपरिक लोक रूपांकनों का विस्तृत, व्यापक और बहुआयामी उपयोग दृष्टिगत होता है, जिसमें स्थानीय कलाकारों ने प्राचीन प्रतीकात्मक तत्वों का अत्यंत सूक्ष्म और कलात्मक समावेश किया है। इन कलाकृतियों में विशेष रूप से प्रयुक्त प्रतीक अपने गहन सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्व के लिए जाने जाते हैं, जैसे भारतीय संस्कृति में सौभाग्य, समृद्धि और वैवाहिक सुख

के सर्वमान्य प्रतीक पान-पत्ते, जिन्हें शुभ अवसरों और उत्सवों में विशेष महत्व दिया जाता है; दिव्य ज्ञान, आध्यात्मिक जागृति और पवित्रता का प्रतिनिधित्व करने वाले कमल, जो कीचड़ में उगकर भी अपनी शुद्धता बनाए रखने के कारण जीवन के उच्च आदर्शों का प्रतीक माना जाता है; प्राचीन भारतीय संस्कृति और धार्मिक परंपराओं में अत्यधिक पूजनीय और रहस्यमय शक्तियों के वाहक माने जाने वाले नाग, जिन्हें धरती के नीचे छिपे जल स्रोतों के संरक्षक और प्रकृति के गुप्त ज्ञान के प्रतीक के रूप में सम्मानित किया जाता है; और सृष्टि के अनंत नृत्य, ब्रह्मांडीय संतुलन, तथा निरंतर चलने वाले सृजन-स्थिति-संहार चक्र का दार्शनिक और आध्यात्मिक प्रतिनिधित्व करने वाली शिव की नटराज आकृति, जो जीवन के आवागमन और अनंत काल के प्रवाह का प्रतीक है। ये विविध और जटिल स्थापत्य कलात्मक अभिव्यक्तियाँ मात्र सौंदर्यात्मक आकर्षण के लिए नहीं, बल्कि गहन सांस्कृतिक, धार्मिक और दार्शनिक संदेश वहन करने वाली वाहिकाएँ हैं, जो वाराणसी की समृद्ध और बहुस्तरीय सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण करती हैं। इसके अतिरिक्त, ये कलाकृतियाँ स्थानीय लोक परंपराओं, पीढ़ियों से चली आ रही शिल्प विधाओं और पारंपरिक ज्ञान-प्रणालियों को आधुनिक शहरी परिदृश्य में न केवल जीवंत रखती हैं बल्कि उन्हें नवीन अर्थ और प्रासंगिकता प्रदान करके समकालीन समाज से एक सार्थक और गतिशील संवाद स्थापित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

त्रिपाठी एवं शर्मा (2022) के अनुसार, 'वाराणसी की सार्वजनिक कला में लोक सौंदर्यशास्त्र केवल सजावट नहीं, बल्कि सामाजिक आत्म-अभिव्यक्ति का माध्यम है। यह शहर के सामूहिक स्मृति-चिह्नों और सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करने

का एक सशक्त उपकरण है, जिसके माध्यम से विविध सामाजिक वर्ग अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं और शहरी परिदृश्य में अपनी जगह सुनिश्चित करते हैं। इस प्रकार, ये लोक कलात्मक अभिव्यक्तियाँ न केवल शहर के सौंदर्यबोध को परिभाषित करती हैं, बल्कि इसके सामाजिक-राजनीतिक इतिहास का भी एक महत्वपूर्ण दस्तावेज बनती हैं।'

4. आधुनिकता का प्रभाव : माध्यम, विषय और विचार का परिवर्तन :

आधुनिकता के साथ सार्वजनिक कला ने अपना परिवर्तित स्वरूप प्रकट किया है- लोक रूपांकन का क्षेत्र विस्तृत होकर आधुनिक संदर्भों में नवीन अर्थ धारण कर चुका है। ये रूपांकन अब केवल पारंपरिक धार्मिक प्रतीकों तक सीमित नहीं रहे हैं, बल्कि विकसित होकर सांस्कृतिक संवाद, समकालीन विमर्श और सामाजिक आलोचना के सशक्त एवं प्रभावशाली औज़ार बन गए हैं, जो समाज के विविध पहलुओं पर टिप्पणी करते हुए नागरिक चेतना को जागृत करने का कार्य कर रहे हैं। इस प्रकार, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में, ये लोक रूपांकन वाराणसी की समृद्ध कलात्मक परंपरा को नए आयामों में विकसित करते हुए, समकालीन सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य में सक्रिय भागीदारी निभाने लगे हैं।

1. नए माध्यम : आधुनिक शहरी परिदृश्य में स्ट्रीट आर्ट, डिजिटल ग्राफ़िटी, इंटरैक्टिव इंस्टॉलेशन आर्ट और प्रोजेक्शन मैपिंग जैसे समकालीन कलात्मक माध्यमों के उद्भव और विकास के साथ, वाराणसी की पारंपरिक लोक आकृतियाँ अपने मूल सार को संजोए हुए भी नवीन और समयानुकूल रूप में पुनर्जन्म ले रही हैं। इन आधुनिक और प्रौद्योगिकी-समर्थित प्लेटफॉर्म ने सदियों पुरानी कला शैलियों और परंपरागत अभिव्यक्ति विधाओं को वर्तमान सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों और समकालीन जीवन-मूल्यों

के परिप्रेक्ष्य में पुनर्व्याख्यायित और पुनर्प्रस्तुत करने का अभूतपूर्व अवसर प्रदान किया है, जिससे इन लोक कलाओं की प्रासंगिकता और अपील नई पीढ़ी के दर्शकों के लिए भी बनी रहती है।

- 'गंगा वॉल प्रोजेक्ट' (2019) ने स्थानीय कलाकारों और युवा प्रतिभाओं को पारंपरिक लोकशैली में आधुनिक विषयों- पर्यावरण संरक्षण, शहरी स्वच्छता अभियान, जल संसाधनों का संवहनीय प्रबंधन, नदी प्रदूषण की गंभीर समस्या, जैव विविधता का संरक्षण और महिला सशक्तिकरण जैसे ज्वलंत समकालीन मुद्दों- को रचनात्मक और प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने का सार्थक और महत्वपूर्ण अवसर प्रदान किया। इस बहुआयामी और समावेशी परियोजना ने न केवल कलात्मक अभिव्यक्ति और प्रयोगशीलता के लिए एक सशक्त और लोकतांत्रिक मंच उपलब्ध कराया, बल्कि सामुदायिक भागीदारी, सामूहिक कार्रवाई और सामाजिक जागरूकता के एक शक्तिशाली और परिवर्तनकारी उपकरण के रूप में भी कार्य किया, जिसने स्थानीय निवासियों, युवा पीढ़ी और आगंतुकों-पर्यटकों के बीच इन महत्वपूर्ण और अत्यावश्यक मुद्दों पर सार्थक संवाद और गंभीर बातचीत को प्रोत्साहित और संवर्धित किया।

2. **नए अर्थ :** पारंपरिक 'देव प्रतिमा' अब 'पर्यावरण चेतना' या 'नारीशक्ति' के रूप में पुनर्परिभाषित की जा रही हैं। इन परिवर्तित अर्थों के माध्यम से, प्राचीन सांस्कृतिक प्रतीकों और लोक-रूपांकनों को समकालीन सामाजिक मुद्दों, जन-आंदोलनों और वैश्विक चिंताओं से सार्थक और रचनात्मक तरीके से जोड़ा जा रहा है, जिससे इन चिर-

परिचित आकृतियों और प्रतीकों को नवीन संदर्भों में देखने और समझने का अवसर मिल रहा है। उदाहरण के लिए, माँ गंगा की पारंपरिक और पौराणिक छवि, जिसे सदियों से आध्यात्मिक शुद्धि और मोक्ष प्रदाता के रूप में पूजा जाता रहा है, अब जल संरक्षण, नदी पारिस्थितिकी संतुलन और पर्यावरण जागरूकता अभियानों के प्रभावशाली और प्रेरणादायक प्रतीक के रूप में उभर रही है, जबकि दुर्गा और काली जैसी शक्तिशाली देवियों के चित्रण, जो पारंपरिक रूप से बुराई पर अच्छाई की विजय का प्रतिनिधित्व करते थे, आज के आधुनिक नारी आंदोलनों, लैंगिक समानता की मांग और महिला सशक्तिकरण के आह्वान के सशक्त, जीवंत और प्रेरक प्रतीक बन गए हैं। यह गहन और बहुआयामी पुनर्व्याख्या न केवल इन प्राचीन लोक प्रतीकों और पौराणिक आख्यानों को आधुनिक सामाजिक-राजनीतिक सन्दर्भों में प्रासंगिक और जीवंत बनाए रखने का महत्वपूर्ण प्रयास है, बल्कि यह सांस्कृतिक विरासत और समकालीन चिंताओं के बीच एक सार्थक और संवादात्मक सेतु भी निर्मित करता है, जो परंपरा और आधुनिकता के बीच निरंतर चलने वाले सांस्कृतिक संवाद को और अधिक समृद्ध और गतिशील बनाता है।

3. **सांस्कृतिक मिश्रण (Hybridization) :** डिजिटल डिज़ाइन और लोक रूपांकनों का संयोजन एक नया, जटिल और बहुआयामी दृश्य व्याकरण निर्मित करता है, जिसमें पारंपरिक भारतीय कलात्मक तत्वों जैसे- मांडना, अल्पना, वर्ली चित्रकला और काशी की विशिष्ट शैलियों- को समकालीन दृश्य भाषा, डिजिटल माध्यमों और नवीन तकनीकी प्रयोगों के साथ सृजनात्मक रूप से मिश्रित किया जाता है। इस अद्वितीय और रचनात्मक संश्लेषण से उत्पन्न होने वाले

समन्वित कला रूप न केवल वाराणसी की समृद्ध, गहन और बहुस्तरीय सांस्कृतिक विरासत का सम्मान और संरक्षण करते हैं, बल्कि आधुनिक दर्शकों, विशेषकर युवा पीढ़ी और वैश्विक पर्यटकों के लिए इसे अधिक सुलभ, संवादात्मक और प्रासंगिक भी बनाते हैं। यह सांस्कृतिक और कलात्मक संगम विभिन्न पीढ़ियों, विचारधाराओं और सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के बीच एक सशक्त, गतिशील और समावेशी सेतु के रूप में कार्य करता है, जिससे प्राचीन परंपरागत कला रूप और उनके अंतर्निहित दार्शनिक मूल्य आधुनिक सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों में पुनर्जीवित, पुनर्व्याख्यायित और पुनःआविष्कृत होते हैं, तथा एक नवीन, समकालीन और प्रासंगिक अर्थवत्ता प्राप्त करते हैं।

कुमार (2021) के विस्तृत अध्ययन में वे एक महत्वपूर्ण अवलोकन प्रस्तुत करते हैं- 'बनारस की दीवारें अब केवल चित्रित सतहें नहीं, बल्कि जटिल सांस्कृतिक कोलाज बन गई हैं जहाँ अतीत और वर्तमान न केवल एक-दूसरे से संवाद करते हैं, बल्कि एक नई, समृद्ध और बहुआयामी कलात्मक भाषा का सृजन करते हैं। ये दीवारें शहर की सामूहिक स्मृति और सांस्कृतिक चेतना का जीवंत प्रतिबिंब हैं, जो परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु निर्माण का कार्य करती हैं।'

5. परंपरा और आधुनिकता का संवाद : निरंतरता और परिवर्तन :

लोक रूपांकनों की निरंतरता और परिवर्तन का विश्लेषण संस्कृति के बहुआयामी पक्षों और उनके विकासक्रम को गहराई से समझने के लिए तीन अलग-अलग परंतु परस्पर जुड़े और अन्योन्याश्रित स्तरों पर किया जा सकता है-

- 1) प्रतीकात्मक स्तर, जहाँ आकृतियों, प्रतिमाओं और चिह्नों के गहन, बहुस्तरीय और परिवर्तनशील अर्थों का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है, जो समय के साथ सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों के अनुरूप रूपांतरित होते रहे हैं।
- 2) माध्यमिक स्तर, जिसमें अभिव्यक्ति के विभिन्न साधनों, कलात्मक उपकरणों, प्राकृतिक एवं कृत्रिम सामग्री और पारंपरिक से लेकर समकालीन नवोन्मेषी तकनीकों का विस्तृत और तुलनात्मक विश्लेषण सम्मिलित है, जो कलाकारों के दृष्टिकोण और युग-विशेष की तकनीकी क्षमताओं को प्रतिबिंबित करते हैं।
- 3) सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर, जो इन कलाकृतियों के व्यापक सामुदायिक महत्व, ऐतिहासिक और समकालीन सन्दर्भों, सामूहिक स्मृति के निर्माण और संरक्षण, स्थानीय और राष्ट्रीय सांस्कृतिक पहचान के निर्धारण और पुनर्निर्धारण, तथा सामाजिक संरचनाओं और शक्ति-संबंधों के साथ जटिल और गतिशील अंतःक्रियाओं की गहन पड़ताल करता है।

स्तर	परंपरा	आधुनिकता
प्रतीकात्मक	धार्मिक, मिथकीय, लोक प्रतीक (जैसे त्रिशूल, नाग, गंगा, कमल, शंख) जो प्राचीन काल से आध्यात्मिक और सांस्कृतिक महत्व रखते हैं तथा सामूहिक चेतना में गहराई से समाहित हैं।	सामाजिक, पर्यावरणीय और नागरिक प्रतीक (जैसे स्वच्छ गंगा, महिला शक्ति, शिक्षा का प्रसार, पर्यावरण संरक्षण) जो समकालीन मुद्दों और सामूहिक आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करते हैं।

माध्यमिक	प्राकृतिक रंग, हाथ से भित्तिचित्र, पारंपरिक पिगमेंट, खनिज और वनस्पति आधारित रंजक, पत्थर और मिट्टी पर उकेरी गई कलाकृतियाँ, पारंपरिक लेप और बाँधने वाले माध्यम।	डिजिटल प्रिंट, स्प्रे पेंट, मिश्रित माध्यम, एक्रिलिक और सिंथेटिक रंग, फोटोग्राफी और प्रोजेक्शन आर्ट, इंटरैक्टिव इंस्टॉलेशन, नवीन और टिकाऊ सामग्रियों का प्रयोग।
सांस्कृतिक	अनुष्ठान और श्रद्धा, आध्यात्मिक साधना, धार्मिक अनुष्ठानों का अभिन्न अंग, पारम्परिक मूल्यों का संरक्षण और संवहन, गुरु-शिष्य परंपरा द्वारा ज्ञान का हस्तांतरण।	संवाद, आलोचना और सामाजिक भागीदारी, सामूहिक जागरूकता का प्रसार, समकालीन मुद्दों पर सार्वजनिक विमर्श, नागरिक अधिकारों और कर्तव्यों की अभिव्यक्ति, पर्यटन और आर्थिक विकास के साधन।

इस प्रकार लोक रूपांकनों की आत्मा संरक्षित रहते हुए भी उनका रूप और सन्दर्भ बदल गया है।

6. केस अध्ययन : गंगा वॉल प्रोजेक्ट, घाट म्यूरल्स और स्मार्ट सिटी इनिशिएटिव्स :

क) गंगा वॉल प्रोजेक्ट (2019) : यह महत्वाकांक्षी एवं बहुआयामी सांस्कृतिक परियोजना वाराणसी नगर निगम और स्थानीय प्रतिभाशाली कलाकारों के सामूहिक सहयोग एवं कलात्मक संकल्पना से आरंभ की गई थी। इस अभिनव एवं विस्तृत पहल के अंतर्गत, वाराणसी के ऐतिहासिक और पौराणिक महत्व के घाटों की प्राचीन और विशाल दीवारों पर पारंपरिक लोकशैली के सौंदर्यशास्त्रीय तत्वों का कुशलतापूर्वक उपयोग करते हुए समकालीन और सामाजिक महत्व के ज्वलंत विषयों जैसे- ‘स्वच्छ गंगा अभियान’, ‘पारिस्थितिकी और पर्यावरण संरक्षण’, ‘महिला सशक्तिकरण और लैंगिक समानता’- को अत्यंत सजीव, भावपूर्ण और प्रभावशाली कलात्मक रूप से चित्रित किया गया। इन व्यापक एवं विस्तृत भित्तिचित्रों में पारंपरिक रंग योजना, प्राचीन लोक प्रतीकों, और स्थानीय कला-तत्वों का आधुनिक सामाजिक संदेशों और समकालीन विषय-वस्तुओं के साथ अद्भुत, सार्थक और

मनोरम संगम देखने को मिलता है, जो परंपरा और आधुनिकता के बीच एक सुंदर और प्रभावशाली सेतु का निर्माण करता है।

ख) घाट म्यूरल्स : वाराणसी के प्रमुख घाटों- अस्सी घाट, दशाश्वमेध घाट और राजेन्द्र प्रसाद घाट पर निर्मित विशाल भित्तिचित्र कला के उत्कृष्ट और अनुपम नमूने हैं, जिनमें प्राचीन लोककथाओं, पौराणिक आख्यानों, धार्मिक प्रतीकों और समकालीन शहरी जीवन के विविध पहलुओं का अद्भुत और सुसंगत समन्वय देखने को मिलता है। ये भव्य और रंगीन चित्र न केवल स्थानीय कलाकारों की असाधारण कलात्मक प्रतिभा और दक्षता को प्रदर्शित करते हैं, बल्कि वाराणसी की समृद्ध और बहुआयामी सांस्कृतिक विरासत और आधुनिक गतिशील जीवनशैली के बीच एक सार्थक, गहरा और आत्मीय संवाद स्थापित करते हैं। इन विलक्षण और आकर्षक भित्तिचित्रों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें पारंपरिक लोककलात्मक तत्वों, प्राचीन प्रतीकों और देशज रचनात्मक अभिव्यक्तियों को नवीन शैलियों, समकालीन दृष्टिकोणों और आधुनिक तकनीकों के साथ सूक्ष्मता और सफलतापूर्वक मिश्रित किया गया है, जिससे एक ऐसा अनोखा और मनोमग्नकारी सौंदर्यबोध उभरता है जो

अतीत की गहराई, परंपराओं की समृद्धि और वर्तमान की गतिशीलता और चुनौतियों को एक साथ सहजता और सौंदर्यपूर्ण ढंग से समेटे हुए है।

ग) स्मार्ट सिटी आर्ट इनिशिएटिव : वाराणसी के व्यापक और महत्वाकांक्षी स्मार्ट सिटी मिशन के अंतर्गत क्रियान्वित की गई विविध कलात्मक पहलों ने परंपरागत लोक कला को आधुनिक शहरी ब्रांडिंग, सांस्कृतिक पहचान निर्माण और पर्यटन विकास रणनीति का एक अनिवार्य और महत्वपूर्ण अंग बना दिया है। इन सुनियोजित सरकारी परियोजनाओं ने एक ओर जहाँ स्थानीय कलाकारों, शिल्पकारों और हस्तकला विशेषज्ञों को अपनी प्राचीन कलात्मक विरासत और असाधारण प्रतिभा को सार्वजनिक मंच पर प्रदर्शित करने, अपनी कला को पुनर्जीवित करने और उससे पर्याप्त आर्थिक लाभ एवं सम्मान प्राप्त करने के नवीन और विस्तृत अवसर प्रदान किए हैं, वहीं इस समग्र प्रक्रिया ने अनेक जटिल, बहुआयामी और विचारोत्तेजक सांस्कृतिक, नैतिक और सामाजिक प्रश्न भी उठाए हैं। कुछ प्रभावशाली समीक्षकों, सांस्कृतिक विश्लेषकों और कला इतिहासकारों ने इस समकालीन प्रक्रिया को 'संस्थागत लोकसांस्कृतिककरण' की संज्ञा दी है- एक ऐसी सुनियोजित और सुव्यवस्थित प्रक्रिया जिसमें लोक कला की स्वाभाविक, स्वतःस्फूर्त और जैविक अभिव्यक्ति, रचनात्मक स्वतंत्रता और सांस्कृतिक स्वायत्तता को धीरे-धीरे कॉरपोरेट प्रायोजकों, बाजार की मांगों और सरकारी नीतिगत हितों एवं प्राथमिकताओं के अनुरूप परिवर्तित और पुनर्गठित कर दिया जाता है, जिससे उसकी मौलिक, अनूठी और स्वाभाविक सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान, प्रामाणिकता और आत्मिक गरिमा क्रमशः क्षीण, विकृत और प्रभावित हो सकती है। (चौधरी 2019)

7. विश्लेषण : लोक रूपांकन और पहचान राजनीति :

आधुनिक वाराणसी में लोक रूपांकनों का उपयोग अब केवल सौंदर्यात्मक या कलात्मक अभिव्यक्ति के सीमित दायरे तक ही सीमित नहीं रह गया है, बल्कि यह समकालीन शहरी पहचान और राजनीतिक-सांस्कृतिक प्रतीकवाद का एक अत्यंत महत्वपूर्ण, बहुआयामी और गहरा प्रभावशाली हिस्सा बन गया है। इन लोक रूपांकनों का सुनियोजित चयन, संरचनात्मक प्रस्तुतिकरण और सार्वजनिक प्रदर्शन अब पूर्णतः सचेत और विचारपूर्ण रूप से विशिष्ट सांस्कृतिक विचारधाराओं, सामाजिक-नैतिक आदर्शों और समकालीन राजनीतिक आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित और अभिव्यक्त करने के लिए किया जाता है। इस प्रक्रिया में, ये परंपरागत लोक प्रतीक और कलात्मक रूपांकन अपनी मौलिक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक जड़ों से जुड़े रहते हुए भी, वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों, चुनौतियों और आवश्यकताओं के अनुरूप पुनर्व्याख्यायित और पुनर्निर्मित होते जा रहे हैं, जिससे वे आधुनिक वाराणसी की अत्यंत जटिल, बहुस्तरीय और गतिशील सांस्कृतिक-राजनीतिक वास्तविकताओं के सशक्त, प्रामाणिक और सार्थक प्रतिबिंब बन गए हैं।

● 'गंगा माँ' का पर्यावरणीय प्रतीक बनना :

आधुनिक वाराणसी में गंगा नदी का प्रतीकात्मक चित्रण विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जहां इसका रूपांकन न केवल पारंपरिक धार्मिक प्रतीक के रूप में, बल्कि एक महत्वपूर्ण पर्यावरणीय संकेतक और जागरूकता का माध्यम बन गया है। वाराणसी की समकालीन सार्वजनिक कला में गंगा माँ के चित्रण अब प्रदूषण, नदी संरक्षण और पारिस्थितिकी संतुलन जैसे ज्वलंत मुद्दों से गहराई से जुड़कर एक नवीन और बहुआयामी अर्थ प्राप्त कर चुके हैं। इन कलाकृतियों में गंगा का प्रतिनिधित्व अब केवल पौराणिक देवी के

रूप में नहीं, बल्कि मानवीय क्रियाकलापों से संकटग्रस्त एक जीवंत पारिस्थितिकी तंत्र के रूप में भी किया जाता है, जिसमें नागरिक जिम्मेदारी और पर्यावरण संरक्षण का संदेश निहित है। विशेष रूप से, नगर के घाटों, सार्वजनिक दीवारों और सांस्कृतिक केंद्रों पर प्रदर्शित इन कलाकृतियों में गंगा को अक्सर प्रदूषण से संघर्षरत, फिर भी अपनी पवित्र प्रकृति और जीवनदायिनी शक्ति को बनाए रखने वाली शक्ति के रूप में दर्शाया जाता है, जिससे धार्मिक प्रतीक का समकालीन पर्यावरणीय पुनर्व्याख्यान हुआ है और स्थानीय समुदायों में नदी संरक्षण के प्रति एक नई चेतना और प्रतिबद्धता जागृत हुई है।

- 'बनारस पान' और 'साड़ी बुनाई' का स्थानीय पहचान के रूप में पुनर्प्रयोग - वाराणसी के आधुनिक सार्वजनिक कलाकृतियों में स्थानीय व्यापार और शिल्प के प्रतीक जैसे 'बनारस पान' के विशिष्ट आकार और 'बनारसी साड़ी' की जटिल बुनाई पैटर्न का सचेत और सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व से परिपूर्ण समावेश दिखाई देता है। ये पारंपरिक प्रतीक न केवल स्थानीय व्यवसायों और सदियों से विकसित होती आई कारीगरी परंपराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, बल्कि वाराणसी की विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान, सामूहिक स्मृतियों और आर्थिक-सामाजिक इतिहास के महत्वपूर्ण और अपरिहार्य संकेतक के रूप में भी कार्य करते हैं। विशेषकर, बनारसी पान का पत्ता अपने विलक्षण त्रिकोणीय आकार और सुगंधित स्वाद के साथ शहर के गली-मोहल्लों की जीवंत संस्कृति का प्रतीक बन चुका है, जबकि बनारसी साड़ी की सुनहरी और रजत जरी से अलंकृत बारीक बुनाई प्राचीन शिल्प कौशल और सौंदर्यबोध का अद्वितीय उदाहरण है। आधुनिक सार्वजनिक मूर्तिकला, भित्तिचित्र,

स्ट्रीट आर्ट और समकालीन कला प्रदर्शनियों में इन प्रतीकों का रचनात्मक और बहुस्तरीय पुनर्प्रयोग शहर की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को नए सामाजिक संदर्भों में पुनर्जीवित करने, नवीन अर्थ प्रदान करने और भावी पीढ़ियों के लिए संरक्षित करने का सार्थक और महत्वाकांक्षी प्रयास है।

- शहरी दीवारों पर 'शिव' या 'नटराज' की आकृतियाँ अब केवल धार्मिक प्रतीक मात्र नहीं रह गई हैं, बल्कि वे आधुनिक वाराणसी के सार्वजनिक कला परिदृश्य में सांस्कृतिक एकता और समन्वय का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन पौराणिक आकृतियों को आज विविध सामाजिक समूहों और समुदायों के बीच संवाद स्थापित करने, साझा सांस्कृतिक विरासत का जश्न मनाने और एक सामूहिक नागरिक पहचान के निर्माण के लिए रचनात्मक रूप से पुनर्व्याख्यायित किया जा रहा है। विशेष रूप से, ये पारंपरिक प्रतीक अब समकालीन कलात्मक अभिव्यक्ति और सामाजिक एकजुटता के माध्यम बन गए हैं। नगर के विभिन्न सार्वजनिक स्थलों पर दिखाई देने वाली शिव और नटराज की ये आकृतियाँ कलाकारों द्वारा अक्सर परंपरागत शास्त्रीय रूपांकनों से हटकर आधुनिक सौंदर्यबोध के साथ पुनर्निर्मित की जा रही हैं, जिसमें स्थानीय रंग-योजनाओं, समकालीन शैलियों और नवीन सामग्रियों का प्रयोग किया जाता है। इन कलाकृतियों में शिव को न केवल संहारक के रूप में, बल्कि सृजनात्मक ऊर्जा, सामाजिक परिवर्तन और आध्यात्मिक जागृति के प्रतीक के रूप में भी चित्रित किया जाता है। इसी प्रकार, नटराज की नृत्यरत मूर्तियाँ अब अपने पारंपरिक अर्थ के साथ-साथ शहरी जीवन की गतिशीलता, सांस्कृतिक विविधता और निरंतर परिवर्तनशील सामाजिक परिदृश्य का भी प्रतिनिधित्व करती हैं।

मुखर्जी (2018) अपने प्रमुख शोध प्रबंध में महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं- 'सार्वजनिक कला अब केवल दृश्य आनंद का साधन नहीं, बल्कि नागरिकता, स्मृति और पहचान के विमर्श का मंच है। यह समकालीन शहरी परिदृश्य में सामूहिक इतिहास, सांस्कृतिक मूल्यों और सामाजिक आकांक्षाओं का एक जीवंत संवाहक बन गई है, जो न केवल अतीत से जोड़ती है बल्कि भविष्य की कल्पनाओं को भी आकार देती है।'

8. निष्कर्ष : परंपरा और आधुनिकता का सांस्कृतिक संगम :

वाराणसी की सार्वजनिक कला में लोक रूपांकनों का बदलता स्वरूप परंपरा और आधुनिकता के बीच एक जीवंत, बहुआयामी और गतिशील संवाद की कहानी है, जो निरंतर विकसित होती और परिवर्तित होती रहती है। यह महत्वपूर्ण और अत्यंत रोचक संवाद कभी स्थिर नहीं रहता, बल्कि समय के साथ-साथ नए आयाम और अभिव्यक्तियाँ ग्रहण करता जाता है। यह प्राचीन नगरी अपनी हज़ारों वर्ष पुरानी सांस्कृतिक विरासत और पारंपरिक अभिव्यक्ति शैलियों को महत्व देते हुए भी आधुनिक समय की नवोन्मेषी और समकालीन कलात्मक अभिव्यक्तियों को सहजता से अपनाने में अद्वितीय रूप से सफल रही है। सदियों से चली आ रही कला परंपराओं और नवीन प्रयोगों का यह अनूठा मिश्रण वाराणसी को एक विशिष्ट सांस्कृतिक प्रयोगशाला के रूप में स्थापित करता है, जहाँ अतीत और वर्तमान, परंपरा और प्रयोग का सहअस्तित्व देखने को मिलता है। यहाँ की सार्वजनिक कला में दिखाई देने वाले लोक प्रतीक और रूपांकन न केवल अतीत का गौरवगान करते हैं, बल्कि वर्तमान सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों से भी सार्थक संवाद स्थापित करते हैं। ये प्रतीक और रूपांकन समकालीन जीवन की जटिलताओं, चुनौतियों और आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करते हुए भी अपनी ऐतिहासिक और पारंपरिक जड़ों से गहराई से जुड़े

रहते हैं। इस शहर में सदियों पुराने कलात्मक मूल्यों, पारंपरिक तकनीकों और पौराणिक प्रतीकों का संरक्षण और 21वीं सदी की नवीन दृष्टि, समकालीन विषयों एवं भविष्य की सांस्कृतिक आकांक्षाओं का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। यह समन्वय कभी भी यांत्रिक या कृत्रिम नहीं लगता, बल्कि एक स्वाभाविक और जैविक प्रक्रिया के रूप में विकसित होता है, जिसमें स्थानीय कलाकार, शिल्पकार और आम नागरिक सभी सक्रिय भागीदार बनते हैं। ये दोनों धाराएँ - परंपरागत और समकालीन - समानांतर रूप से प्रवाहित होती हुई एक-दूसरे से गहराई से प्रभावित और अंतर्संबंधित होती हैं, परन्तु फिर भी अपनी विशिष्ट पहचान, मौलिकता और सौंदर्यशास्त्रीय विशेषताओं को बनाए रखती हैं। इस प्रकार, वाराणसी की सार्वजनिक कला परिदृश्य में दिखाई देने वाला यह सांस्कृतिक संगम न केवल शहर की कलात्मक जीवंतता का प्रमाण है, बल्कि भारतीय संस्कृति की विशिष्ट विशेषता - परिवर्तन में निरंतरता और निरंतरता में परिवर्तन - का भी एक जीवंत उदाहरण है।

लोक कला अब केवल संग्रहालयों की दीवारों में कैद या पुस्तकों में चित्रित विरासत का निष्क्रिय अवशेष मात्र नहीं रह गई है, बल्कि वाराणसी की सड़कों, गलियों, घाटों और विविध सार्वजनिक स्थलों पर एक सक्रिय, जीवंत, सांस-लेती, गतिशील और निरंतर परिवर्तनशील शक्ति के रूप में उत्साहपूर्वक जीवित है- अपने समकालीन संदर्भों से जुड़े नवीन आकार-प्रकार, आधुनिक दृष्टिकोण, समृद्ध और बहुआयामी रंग-योजना तथा गहरे सामाजिक-सांस्कृतिक संदेशों के साथ। वाराणसी में लोक कला पारंपरिक सीमाओं और रूढ़ियों से मुक्त होकर, नगरीय परिदृश्य में एक नया जीवन प्राप्त कर रही है, जहाँ प्राचीन प्रतीक और रूपांकन आधुनिक शहरी संदर्भों में पुनर्जीवित और पुनर्व्याख्यायित किए जा रहे हैं। ये लोक रूपांकन न केवल सौंदर्यात्मक अनुभवों का साधन बन रहे हैं, बल्कि वे सामाजिक परिवर्तन, सांस्कृतिक पहचान

और सामूहिक स्मृति के महत्वपूर्ण वाहक भी बन गए हैं। इन लोक प्रतीकों और रूपांकनों का यह सृजनात्मक और जागरूक परिवर्तन हमारी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के अतीत और समकालीन सामाजिक चिंताओं, आधुनिक जीवनशैली एवं भविष्य की आकांक्षाओं के बीच एक सशक्त और अर्थपूर्ण सेतु का महत्वपूर्ण कार्य करता है, जिससे परंपरा और आधुनिकता का सार्थक समन्वय संभव होता है। यह समन्वय एक सहज, स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में विकसित हो रहा है, न कि किसी बाहरी या अधिरोपित आधुनिकीकरण के रूप में। वाराणसी के कलाकार और शिल्पी अपनी ऐतिहासिक जड़ों से प्रेरणा लेते हुए भी वर्तमान सामयिक विषयों, जैसे पर्यावरणीय चेतना, लैंगिक समानता, सामाजिक न्याय और डिजिटल क्रांति आदि को अपनी कलात्मक अभिव्यक्तियों में स्थान दे रहे हैं, जिससे परंपरा की निरंतरता के भीतर नवीनता और समकालीन प्रासंगिकता का संगम दृष्टिगोचर होता है।

आधुनिक वाराणसी यह प्रमाणित करती है कि परंपरा स्थिर नहीं होती; वह रूपांतरित होती है, और यही रूपांतरण संस्कृति की जीवन्तता का प्रमाण है। वाराणसी की धरती पर परंपराएँ जमी हुई अवधारणाएँ नहीं हैं, बल्कि वे समय के साथ प्रवाहित होने वाली नदी की तरह हैं, जो अपने मार्ग में नए आयाम ग्रहण करती जाती हैं। यहाँ की सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ इतिहास की जड़ों से पोषण पाते हुए भी समकालीन परिवेश के अनुरूप नए स्वरूप धारण करती हैं। इस प्रकार, परंपरा और आधुनिकता का यह अद्भुत संगम न केवल शहर की कलात्मक विविधता को समृद्ध करता है, बल्कि भारतीय संस्कृति की अनंत जीवंतता और अनुकूलनशीलता का भी प्रमाण प्रस्तुत करता

है, जिसमें परिवर्तन और निरंतरता एक साथ अस्तित्वमान रहते हैं।

संदर्भ सूची :

1. Singh, A. (2023). *Public Art and Cultural Memory in Varanasi*. Journal of Visual Culture Studies, 12(3), 145–168.
2. Tripathi, R. & Sharma, P. (2022). *Transformations of Folk Aesthetics in Urban Varanasi*. Indian Art Heritage Review, 8(2), 201–226.
3. Kumar, S. (2021). *From Ritual Walls to Urban Murals: Folk Motifs in Banaras Public Space*. Cultural Dynamics, 33(4), 512–539.
4. Ghosh, M. (2020). *The Visual Politics of Modernity in North Indian Sacred Cities*. South Asian Studies, 36(1), 57–80.
5. Pandey, R. (2020). *Folk Iconography and Religious Syncretism in Banaras Murals*. Visual Anthropology Review, 9(3), 122–149.
6. Chaudhary, S. (2019). *Reinventing Tradition: Street Art and Folk Symbols in Varanasi*. Art & Society Quarterly, 15(2), 99–120.
7. Bajpai, N. (2018). *Sacred Geography and Public Art in Kashi*. Asian Humanities Review, 11(2), 205–233.
8. Mukherjee, A. (2018). *Negotiating Tradition and Modernity in Indian Public Art*. International Journal of Art and Society, 14(1), 41–68.
9. Tiwari, P. (2017). *Urban Folk Aesthetics and Identity Politics in Banaras*. Journal of Urban Cultural Studies, 5(3), 187–214.
10. Sinha, R. (2016). *Banaras: Continuity and Change in the City of Light*. Cultural Heritage Studies, 7(1), 33–62.



राजस्थान की फड़ चित्रकला में लोक संस्कृति एवं साहित्य

आँचल निषाद

शोध छात्रा (चित्रकला विभाग)

छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

सारांश :

राजस्थान विभिन्न कलाओं से परिपूर्ण राज्य है, जिसमें चित्रकारी का एक महत्वपूर्ण स्थान है, जो कि क्षेत्रीय आधार पर विकसित है। फड़ चित्र का निर्माण सैकड़ों वर्षों पूर्व से किया जाता है। फड़ चित्र कला राजस्थान की एक पारम्परिक चित्रकला है, जो पूरे विश्व में भारत के गौरव का प्रतीक है। फड़ चित्रण भारतीय चित्रकला की एक महत्वपूर्ण शैली है, जो मुख्यतः राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, और महाराष्ट्र जैसे क्षेत्रों से जुड़ी हुई है। फड़ चित्रण आदिवासी और लोककला की परंपरा को जीवित रखते हुए न केवल 2D कला का उत्कृष्ट रूप है, बल्कि इसमें साहित्यिक संदर्भों और कथाओं का भी समावेश होता है। फड़ चित्र का प्रमुख उद्देश्य चित्रकारी के माध्यम से कथा, धर्म, संस्कृति और समाज को व्यक्त करना होता है। स्थानीय नायक-देवताओं के महाकाव्य जीवन को चित्रित करने वाले कपड़े पर बड़े पैमाने पर शैतिज चित्रों को लोकप्रिय रूप से फड़ चित्रकला के रूप में जाना जाता है। इन चित्रों में एक जटिल और पूर्ण विकसित लोक महाकाव्य कथा का प्रतिनिधित्व करने का विशाल कार्य है, जो यह प्रतिनिधित्व की एक बहुत ही विशिष्ट शैली के माध्यम से प्राप्त करता है, जो आकृतियों और चित्रात्मक घटनाओं से भरा होता है, ये पेंटिंग महाकाव्य कहानी कहने वाले प्रदर्शनों के लिए एक तरह की नाटकीय पृष्ठभूमि बनाती हैं।

बीज शब्द :

लोककथा, साहित्य, आकृति।

फड़ शब्द की उत्पत्ति संभवतः संस्कृत शब्द पट्ट से हुई है। जो चित्रकार परंपरागत रूप से फड़ चित्रकला के पेशे में लगे रहते हैं, उन्हें फड़ चित्रकार के रूप में जाना जाता है। चित्रों के मुख्य विषय दो प्रसिद्ध राजस्थानी नायकों-पाबूजी और देवनारायणजी के जीवन हैं, जिन्हें भगवान विष्णु और लक्ष्मण के अवतार के रूप में पूजा जाता है। प्रत्येक नायक-देवता का एक अलग कलाकार-पुजारी या भोपा होता है। भोपों के प्रदर्शनों की सूची में कुछ लोकप्रिय स्थानीय नायक-

देवताओं जैसे पाबूजी, देवजी, तेजाजी, गोगाजी, रामदेवजी के महाकाव्य शामिल हैं। फड़ में रामदेव जी, राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर के जीवन को भी दर्शाया गया है। इन रूपों की प्रतीकात्मकता एक विशिष्ट तरीके से विकसित हुई है। सभी फड़, चाहे वे किसी भी नायक-देवता को प्रस्तुत करते हों, उनमें निश्चित रूप से समानताएं होती हैं जबकि लोककथायाँ पूरे क्षेत्र में सामंजस्यपूर्ण रूप से वितरित की गई हैं, आकृति का पैमाना उस चरित्र की सामाजिक स्थिति

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

115

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

पर निर्भर करता है जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं और कहानी में उनकी भूमिकाएँ। एक और दिलचस्प विशेषता यह है कि चित्रों में आकृतियाँ दर्शकों का सामना नहीं करती हैं। बल्कि, वे एक-दूसरे का सामना करती हैं। ये चित्र जटिल कहानियों के कई प्रकरणों को समायोजित करने के लिए बहुत विस्तृत हैं।

फड़ चित्रकला की कहानियों का इतिहास :

फड़, ये एक ऐसी भारतीय लोक कला हैं जिसका इतिहास 700 साल से भी ज्यादा पुराना हैं फड़ एक लम्बे कपड़े पर बनाई चित्र-श्रृंखला होती हैं जिसके जरिये महाकाव्यों की कहानी सुनाई जाती हैं। इस कला की शुरुआत राजस्थान के शाहपुरा और भीलवाड़ा क्षेत्र से हुई थी। देवता देवनारायण एवं पाबूजी आदि के जीवन पर आधारित एवं उनकी शौर्य गाथाओं पर बनाने वाले पारम्परिक अनुष्ठानिक कुंडलित चित्र, फड़ चित्र कहलाते हैं। फड़ केवल एक चित्र भर नहीं माना जाता, यह अपने आप में देव स्वरूप है इसलिए इसे बनाने वाले चित्रकार और बाँचने वाले भोपा, दोनों ही इसे पवित्र मानते हैं। लोक देवताओं को समर्पित 'फड़' केवल धार्मिक वस्तु ही नहीं हैं, वरन लोक, नाट्य, वादन मौखिक साहित्य चित्रकला व लोकशर्म का एक सुन्दर संगम हैं, जो भारत के अतिरिक्त और कहीं इतने रूपों में नहीं मिलता। इस प्रकार फड़ चित्र अपने में छह लोक कलाओं को समेटे हुए हैं। लोक-गाथा, लोक-वादन। फड़ चित्रण एवं लोक संगीत के माध्यम से लोक गाथाओं को कलाकार द्वारा नृत्य एवं गायन शैली में प्रस्तुत किया जाता है। फड़ मुख्यतः राजस्थान की दो लोकप्रिय महाकाव्य परम्पराओं को दर्शाती हैं। अन्य देवताओं के लिए भी फड़ हैं, लेकिन ये दुर्लभ हैं। रामदेवजी की फड़, जो मारवाड़ के एक राजपूत नायक और संत थे, जिन्होंने जाति भेदभाव का विरोध किया था उन्हें भाम्बियों, मेघवाल, चमारों और अनुसूचित जाति के अन्य लोगों द्वारा सम्मानित किया जाता है। लेकिन सबसे लोकप्रिय पाबूजी राठौड़ के बारे में है, जो एक राजपूत सरदार थे, जिनके बड़े

भाई कोलू में शासन करते हैं। उन्हें रेबारी ऊंट-चरवाहों द्वारा भगवान राम के भाई लक्ष्मण के अवतार के रूप में पूजा जाता है। दूसरी कहानी चौबीस भाइयों (बागरावत) और भगवान देवनारायण के बारे में है। वे पशुपालक, किसानों और ग्रामीण शिल्पकारों के बीच लोकप्रिय हैं, जो आमतौर पर राजस्थान के पूर्वी भाग में रहते हैं। देवनारायण भगवान विष्णु के अवतार हैं वे सभी 'पशु नायक' हैं जिन्होंने समुदाय के मवेशियों को बचाया और परिणाम स्वरूप मारे गए। पशु नायकों को सामूहिक रूप से 'भोमियो' के रूप में जाना जाता है। केवल कुछ भोमियो शक्तिशाली देवता बन जाते हैं और उनके पंथ महाकाव्य और मंदिरों को विकसित करते हैं।

पहले फड़ पेंटिंग का काम जोशी समुदाय के लोग ही करते थे। ऐसा माना जाता है कि जयपुर में बनी फड़ पेंटिंग में वह जीवंतता और सौंदर्यबोध नहीं था जो भीलवाड़ा और शाहपुरा के जोशी परिवारों द्वारा बनाई गई पेंटिंग में था। शाहपुरा जोशी परिवार के 13वीं पीढ़ी के कलाकार अभिषेक जोशी अब अपने ऑनलाइन ई-लर्निंग कोर्स के माध्यम से फड़ पेंटिंग सिखाते हैं और कई कार्यशालाएँ भी चलाते हैं।

1960 में श्री लाल जोशी ने जोशी कला केंद्र नाम से एक स्कूल खोला, जहाँ विभिन्न जातियों के छात्रों को इस कला शैली को चित्रित करना सिखाया जाता था। स्कूल का नाम बाद में चित्रशाला हो गया। देवनारायण की फड़ और पाबूजी की फड़ इस कला के पारंपरिक रूप हैं। 1980 के दशक में श्री लाल जोशी और प्रदीप मुखर्जी ने इनमें क्रांतिकारी बदलाव किया। मुखर्जी की पेंटिंग रामचरितमानस, गीत गोविंद और कुमारसंभव की कहानियों पर आधारित हैं।

श्री लाल जोशी ने इस पारंपरिक भारतीय लोक कला के लिए नए विषयों की रचना की, जो देवनारायण महागाथा, हल्दीघाटी युद्ध और पद्मिनी के जौहर, महाराणा प्रताप, पृथ्वी राज चौहान, रानी हाड़ी, पद्मिनी, ढोला मारू, अमर सिंह राठौर, बुद्ध, महावीर के जीवन तथा गीतगोविंदम, रामायण, महाभारत और

कुमारसंभव के आख्यानों पर आधारित थे। पी. मुखर्जी ने रामचरितमानस के 108 लघु चित्र बनाए, जिनमें से प्रत्येक का माप 11"×8" था। प्रत्येक में 6 से 8 पैन्ल थे, जिनमें अलग-अलग दृश्य दर्शाए गए थे। यह पहली बार था जब इन तत्वों को भारतीय चित्रकला में शामिल किया गया था

फड़ चित्रण की डिजाइन :

फड़ चित्रों में दृश्य चित्रण विशिष्ट की शैली फड़ कलाकारों के लिए अद्वितीय है। रेखीय कहानी कहने के विपरीत, फड़ चित्रों में स्थान महाकाव्य भूगोल के अनुसार विभाजित किया गया है, जो एक प्रकार का महाकाव्य मानचित्र बनाता है। पात्रों की दिशा और स्थिति घटनाओं के अनुक्रम पर निर्भर करती है। अनिवार्य रूप से, संपूर्ण फड़ एक बड़े स्टोरीबोर्ड के रूप में कार्य करता है। जब कोई भोपा किसी विशिष्ट घटना का वर्णन करता है, तो वे संबंधित आकृति को इंगित करने के लिए एक उपयोगी तेल के दीपक का उपयोग करते हैं।

फड़ पेंटिंग में, भोपा भक्तों को पूरी पेंटिंग भेंट करता है, जबकि कावड़ या कावड़िया जैसी अन्य परंपराएं एक-एक करके दरवाजे खोलती हैं, जो देवी-देवताओं के अंतिम दर्शन में परिणत होती हैं। फड़ पेंटिंग के केंद्र में मुख्य पात्र को बड़े आकार में दिखाया जाता है, जबकि अन्य महत्वपूर्ण पात्र थोड़े छोटे होते हैं और मंदिर शैली में बनाए जाते हैं। मुख्य पात्रों के इर्द-गिर्द, चित्रकार घटनाओं पर आधारित कहानी को चित्रित करता है, अक्सर अलग-अलग दृश्यों को दर्शाने के लिए पात्रों को दोहराता है। उदाहरण के लिए, पाबूजी-की-फड़ में, पाबूजी की एक बड़ी छवि केंद्र में होती है, और उनके विवाह समारोह के दौरान, उन्हें अन्य महत्वपूर्ण पात्रों या वस्तुओं के साथ फिर से घोंड़े पर चित्रित किया जाता है। पहले के समय में फड़ में गोगा चौहान, पृथ्वीराज चौहान, अमर सिंह राठौर, तेजा जी और कई अन्य जैसे नायकों की कहानियों को दर्शाया जाता था। हालाँकि, समकालीन फड़ चित्रों में, फोकस बदल

गया है, और पाबूजी और देवनारायणदेवजी के जीवन की कहानियों को प्रमुखता से दर्शाया गया है। फड़ चित्रों में चित्रित कुछ पारंपरिक कहानियाँ इस प्रकार हैं। पाबूजी की कहानी, देवनारायण जी की कहानी, नारिकुंजर की कहानी, पंचतत्व का घोड़ा की कहानी, ढोला-मारू की कहानी, गण-गौर की कहानी, हाड़ी रानी की कहानी, हल्दी घाटी की कहानी, भगवान कृष्ण की कहानी, भगवान राम और सीता की कहानी, पृथ्वीराज चौहान की कहानी।

फड़ चित्रों में परिदृश्यों के चित्रण में, वन की स्थापना का प्रतिनिधित्व करने के लिए वनस्पति को जटिल रूप से तैयार किया जाता है। हाथी, घोड़े, ऊंट, मोर और सांप सहित विभिन्न जानवरों को भी कलाकृति में चित्रित किया गया है। फड़ चित्रों में पोशाक क्षेत्रीय परिधान से प्रेरणा लेती है। पुरुषों को एक घेरा, धोती, कलंगी के साथ पगड़ी और पारंपरिक जूते पहने हुए दिखाया गया है। दूसरी ओर, महिलाओं को चोली, घाघरा, ओढ़नी और अन्य क्षेत्रीय परिधानों से सजाया गया है। चित्रों में आकृतियाँ पारंपरिक आभूषणों जैसे कड़ा, चूड़ियाँ, बाजूबंद, झुमके और महिलाओं के लिए माँग-टीका से सुसज्जित हैं। चित्रों को एक पुष्प सीमा के साथ पूरा किया जाता है, और उन्हें एक सुसंगत और परिष्कृत रूप देने के लिए एक मोटा लाल किनारा जोड़ा जाता है। फड़ का यह अनूठा कला रूप साहित्य और कला का एक सामंजस्यपूर्ण समामेलन है।

शुरुआत में, फड़ चित्रों में विशेष रूप से वनस्पति और खनिज रंगों का इस्तेमाल किया जाता था, जो अपने स्थायी और जीवंत गुणों के लिए जाने जाते थे जो लंबे समय तक ज्वलंत बने रहते थे। हालाँकि, इन प्राकृतिक रंगों की कमी ने एक चुनौती पेश की, जो संभवतः शिल्प के विकास में बाधा उत्पन्न कर रही थी। जवाब में, कलाकारों को नवाचार करने के लिए मजबूर होना पड़ा, जिसके कारण जलरोधी मिट्टी के रंगों को अपनाया गया। ये रंग प्राकृतिक मिट्टी के रंगों को गोंद, पानी और नील के साथ

पीसकर बनाए जाते हैं। जबकि इस अनुकूलन ने कला रूप को जारी रखने की अनुमति दी, यह ध्यान देने योग्य है कि समकालीन समय में, सिंथेटिक रंगों ने भी फड़ चित्रों में प्रमुखता हासिल की है, जो शिल्प की गतिशील प्रकृति और बदलती सामग्रियों और प्राथमिकताओं के लिए इसके अनुकूलन को दर्शाता है।

चुनौतियाँ :

जोशी समुदाय में फड़ चित्रकला की कला को बहुत ही गुप्त रखा गया है, तथा इसकी तकनीक समुदाय के बाहर के लोगों को नहीं बताई जाती। समुदाय में बेटियों को यह कला नहीं सिखाई जाती थी, ताकि शादी के बाद इसकी शैली के बारे में लोगों को पता न चले। मूल चित्रों का आकार और सुगमतारू मूल फड़ चित्र प्रायः इतने बड़े होते हैं कि उन्हें आम लोग ले नहीं पाते या खरीद नहीं पाते। फड़ प्रदर्शन में घटती रुचि के कारण बोपाओं ने अन्य व्यवसाय अपना लिए हैं। उत्साह में इस कमी के कारण मूल फड़ चित्रों का निर्माण कम हो गया है। कुछ बोपा, पैसे बचाने के प्रयास में, स्वयं फड़ चित्र बनाने का प्रयास कर सकते हैं, जिससे कला की गुणवत्ता और प्रतिष्ठा प्रभावित हो सकती है। नए कलाकारों का प्रभाव मूल कलाकारों से सीखने वाले नए कलाकार शैली की अपने तरीके से व्याख्या और चित्रण कर सकते हैं, कभी-कभी उनमें उचित प्रशिक्षण और मौलिकता का अभाव होता है। सीमित बाजार पहुंच फड़ चित्रकलाएं अपने पवित्र अर्थ के कारण मुख्यधारा के बाजारों या घरों तक नहीं पहुंच पाई हैं, तथा इन्हें मुख्य रूप से कला संरक्षकों और प्रशंसकों द्वारा ही खरीदा जाता है। परिधानों पर प्रयोग का अभाव मधुबनी जैसे अन्य कला रूपों के विपरीत, फड़ चित्रकला में परिधानों पर प्रयोग नहीं किया जाता है, क्योंकि वे स्थानीय देवताओं या नायकों की लोककथाओं में गहराई से निहित होते हैं।

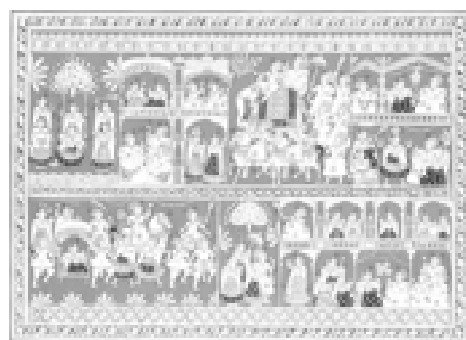
निष्कर्ष :

फड़ चित्रकला में राजस्थानी लोक जीवनों का

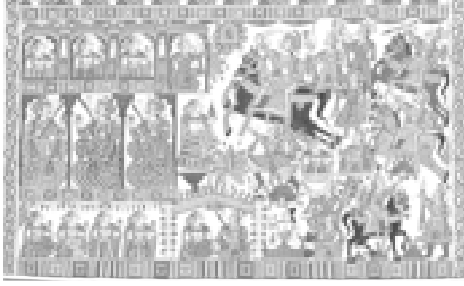
और वहाँ की परम्पराओं को चित्रित किया गया है, फड़ कलाकार पूर्व में यह कला अपने व अपने परिवार तक ही सीमित रखना चाहते थे। यह चित्रकारी किसी, अन्य परिवार में न जा सके इसलिए कलाकार अपने घर की कन्याओं को भी यह चित्रकारी नहीं सिखाते थे। प्राकृतिक रंगों से बनी फड़ कपड़े पर कलाकार द्वारा चित्रित की जाती है। फड़ चित्रण में साहित्यिक भूमिका एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू है, जो इसे केवल एक दृश्य कला नहीं, बल्कि एक साहित्यिक और सांस्कृतिक दस्तावेज भी बनाता है। फड़ चित्रों के माध्यम से न केवल धार्मिक, लोक और दार्शनिक साहित्य का प्रसार होता है, बल्कि यह समाज, संस्कृति और परंपराओं को संरक्षित करने का भी कार्य करता है। इस कला रूप में साहित्य और चित्रकला का अद्भुत समागम देखा जा सकता है, जो दोनों को एक नई दिशा और आयाम प्रदान करता है।



देवनारायण जी की फड़



फड़ पेंटिंग 'पाबूजी के विवाह' की कहानी दर्शाती है



पाबू जी की फड़



सन्दर्भ सूची :

1. वन्दना जोशी: मेवाड़ की लोक कला-फड़, उदयपुर, 2012, पृष्ठ सं-3
2. जयसिंह नीरज व भगवती लाल शर्मा, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, जयपुर, 1989, पृष्ठ सं-6
3. <https://gaatha.org/Craft-of-India/phad-painting-bhilwara/>
4. <https://indianfolkart.org/shop/rajasthani-phad-painting/>

चित्र सूची :

1. https://www.google.com/url?sa=i&url=https%3A%2F%2Fcommons.wikimedia.org%2Fwiki%2FFile%3AShri_Devnarayan_Bhagwan_the_imperialGurjar.jpg&psig
2. https://cdn.shopify.com/s/files/1/0849/4704/files/Pabuji_Ki_Vivaah.jpg?v=1529321262
3. <https://www.google.com/url?sa=i&url=https%3A%2F%2Fwww.memeraki.com%2Fproducts%2Fthe-story-of-pabuji-phad->
4. <https://www.facebook.com/photo/?fbid=3241582092556204&set=pcb.3241583095889437>



प्रमुख लोकनृत्य

अनीता मिश्रा

शोधार्थी

नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ. मधु सक्सेना

शोध निर्देशिका

विभागाध्यक्ष संगीत विभाग

नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, प्रयागराज

भारत की विविध संस्कृतियों और परम्पराओं का देश हैं भारतीय लोक एवं आदिवासी नृत्य वास्तव में सरल होते हैं और इन्हें मौसमों के आगमन, बच्चे के जन्म, शादी-ब्याह और त्योहारों के मौके पर अपनी खुशी जाहिर करने के लिए किया जाता है। लोक कला एक समूह या स्थान विशेष के लोगों का आम प्रदर्शन होता है। इसके प्रवर्तकों की पहचान समाप्त हो चुकी है, लेकिन वर्षों से इसकी शैली का संरक्षण किया जा रहा है।

ज्यादातर मौकों पर नर्तक/नर्तकियाँ खुद गाना गाते हैं। इनका साथ वाद्ययंत्रों से लैस कलाकार देते हैं। प्रत्येक लोक नृत्य का विशेष परिधान और लय होता है और कुछ परिधान तो गहनों और डिजाइनों के साथ बहुत ही रंगीन होते हैं।

लोक नृत्य देश की विविध संस्कृति और रीति-रिवाजों को दर्शाते हैं। देश के विभिन्न भागों में अनेक प्रकार के लोक नृत्य प्रचलित हैं। लोक नृत्य जीवंत और जीवन से भरपूर हैं। लोक नृत्य रूपों का विशेष महत्व है विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में क्योंकि वे मुख्यतः ग्रामीण समुदाय में दैनिक कार्यों और अनुष्ठानों को व्यक्त करते हैं। भारत में अधिकांश राष्ट्रीय नृत्यों की वेशभूषा राज्य की स्थानीय परंपरा के अनुसार बदलती रहती हैं। आदिवासी लोक नृत्य आदिवासी लोकगीतों से प्रेरित हैं। ये लोक नृत्य आमतौर पर विवाह, जन्म, राज्याभिषेक, नए घर या शहर में प्रवेश,

अतिथि का स्वागत, धार्मिक जुलूस, फसल कटाई आदि जैसे समारोहों के दौरान किए जाते हैं। कुछ नृत्य पुरुषों और महिलाओं द्वारा अलग-अलग किए जाते हैं, जबकि अन्य नृत्यों में पुरुषों और महिलाएँ एक साथ नृत्य करते हैं। इसके अलावा, यहाँ भारत के लोक रंगमंच को भी देखें।

लोक नृत्य क्या है?

भारत विविध संस्कृतियों और परम्पराओं के समृद्ध ताने-बाने से घिरा है, जो इसके सांस्कृतिक परिदृश्य को अत्यंत विशिष्ट बनाता है। इस विविधता का एक प्रमुख पहलू नृत्य के क्षेत्र में परिलक्षित होता है, जहाँ शास्त्रीय और लोक नृत्य भारत के दो प्रमुख और विशिष्ट नृत्य रूपों के रूप में उभर कर सामने आते हैं। शास्त्रीय और लोक नृत्यों के बीच मुख्य अन्तर उनकी उत्पत्ति में निहित हैं।

लोक नृत्य और शास्त्रीय नृत्य में अन्तर :

लोक नृत्य : ये सामान्य लोगों द्वारा किए जाने वाले नृत्य हैं और इनका संबंध रोजमर्रा के जीवन और सामाजिक उत्सवों से होता है।

शास्त्रीय नृत्य : ये पेशेवर नर्तकों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं और उनकी उत्पत्ति प्राचीन ग्रंथों जैसे 'नाट्य शास्त्र' से हुई है।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि शास्त्रीय नृत्य एक अनुशासित कला रूप हैं, जबकि लोक नृत्य

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

अधिक स्वाभाविक और समुदाय-आधारित होते हैं।

लोक नृत्य ऐसे पारंपरिक नृत्य होते हैं जो किसी क्षेत्र के आम लोगों के बीच उत्पन्न हुए हैं। ये किसी खास अवसर पर मनाए जाते हैं, जैसे कि फसल कटाई, विवाह या सामाजिक समारोह आदि।

लोक नृत्यों की विशेषताएँ :

लोक नृत्य आम लोगों के जीवन और भावनाओं को व्यक्त करने का एक माध्यम है।

ये नृत्य किसी विशेष समुदाय के त्योहारों, धार्मिक अनुष्ठानों और सामाजिक समारोहों से जुड़े होते हैं।

हर राज्य और क्षेत्र की अपनी अनूठी लोक नृत्य शैलियाँ होती हैं, जो उस क्षेत्र की संस्कृति और परम्पराओं का हिस्सा होती हैं।

लोक नृत्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से या परम्पराओं के माध्यम से सिखाए और संरक्षित किये जाते हैं।

लोक नृत्य में तबले का स्थान :

लोक नृत्य में तबला एक तालवाद्य के रूप में प्रयोग होता है जो लय-बद्ध आधार प्रदान करता है और नृत्य प्रदर्शन को समृद्ध करता है। विभिन्न लोक नृत्यों में तबला वादक लय की जटिलता को उजागर करने के लिए 'ठेका' (लय का मूल ढाँचा), 'तिहाई', 'लग्गी' और 'लड़ी' जैसी रचनाओं का प्रयोग करते हैं, जिससे प्रदर्शन और अधिक रंजक और आकर्षक बनता है।

लोक नृत्य में तबले की भूमिका :

तबला लयबद्ध ढाँचा तय करता है, जिससे नर्तक को ताल के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने में मदद मिलती है।

तबला वादक तबन की ध्वनि के माध्यम से नृत्य के भाव और भावनाओं को व्यक्त करते हैं।

तबला वादक नर्तक की गति और भाव को देखकर उसके अनुरूप वादन करता है, जिस नृत्य

और संगीत के बीच एक जीवंत और तालमेल भरा संबंध बनता है।

तबला वादक विभिन्न प्रकार के ताल चक्रों का प्रयोग करते हैं, जैसे कि कहरवा, रूपक, दादरा और तीनताल, जो लोक नृत्यों को एक विशिष्ट लय प्रदान करते हैं।

तबला वादक छोटी तिहाइयों, टुकड़ों, लग्गियों और लड़ियों का प्रयोग करके प्रदर्शनी को आकर्षित बनाते हैं, जिससे दर्शकों का मनोरंजन होता है।

उत्तर प्रदेश के प्रमुख लोक नृत्य :

उत्तर प्रदेश के प्रमुख लोक नृत्यों में चरकुला, रासलीला, नौटंकी, धोबिया, कजरी, पाई डंडा और कर्मा जैसे नृत्य शामिल हैं, ये नृत्य राज्य की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को दर्शाते हैं और विभिन्न अवसरों, धार्मिक आयोजनों पर प्रस्तुत किए जाते हैं।

चरकुला नृत्य (ब्रज क्षेत्र) : महिलाएँ सिर पर घी के दियों से भरे एक छिद्रदार बर्तन को संतुलित करके यह नृत्य करती हैं।

रासलीला (ब्रज क्षेत्र) : राधा और कृष्ण के प्रेम को दर्शाने वाला यह नृत्य भक्ति और प्रेम से ओत-प्रोत होता है।

धोबिया नृत्य (राज्य में धोबी समुदाय द्वारा) : यह नृत्य धोबी समुदाय के कलाकारों द्वारा किया जाता है।

कठघोड़वा नृत्य : यह एक प्रकार का नृत्य है जिसमें कलाकार एक नकली घोड़े पर बैठकर नृत्य करते हैं।

कर्मा नृत्य (सोनभद्र और मिर्जापुर के आदिवासी समूह) : यह नृत्य खखार आदिवासी समूहों द्वारा आयोजित किया जाता है।

पाई डण्डा नृत्य (बुंदेलखंड के अहीरों द्वारा) : अहीर समुदाय द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला यह नृत्य बुंदेलखंड क्षेत्र में किया जाता है।

नौटंकी (नाट्य रूप में) : यह उत्तर प्रदेश में सबसे मनोरंजक और लोकप्रिय नृत्य शैलियों में से एक है, जिसमें आकर्षक कहानी, नृत्य और संगीत का मिश्रण होता है।

छोलिया नृत्य : छोलिया नृत्य राजपूत जाति के लोगों द्वारा विवाहोत्सव पर किया जाता है।

छपेली नृत्य : छपेली नृत्य एक हाथ में रूमाल तथा दूसरे हाथ में दर्पण लेकर किया जाता है।

नटवरी नृत्य : नटवरी नृत्य पूर्वांचल क्षेत्र में अहीरों द्वारा किया जाता है। यह नृत्य गीत व नक्कारे के सुरों पर किया जाता है।

देवी नृत्य : देवी नृत्य अधिकांशतः बुंदेलखंड में ही प्रचलित है। इस लोक नृत्य में एक नर्तक देवी का स्वरूप धारण करता है शेष सभी नर्तक नृत्य करते हैं।

राई नृत्य : राई नृत्य बुंदेलखंड की महिलाओं द्वारा किया जाता है। यहाँ की महिलाएँ इस नृत्य को विशेषतः श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर करती हैं।

दीप नृत्य : बुंदेलखण्ड के अहीरों द्वारा अनेकानेक दीपकों को प्रज्वलित कर किसी धड़े, कलश अथवा थाल में रखकर प्रज्वलित दीपकों को सिर पर रखकर दीप नृत्य किया जाता है।

कार्तिक नृत्य : कार्तिक नृत्य बुंदेलखण्ड क्षेत्र में कार्तिक माह में नर्तकों द्वारा श्रीकृष्ण तथा गोपियों का रूप धरकर किया जाता है।

कलाबाज नृत्य : कलाबाज नृत्य अवध क्षेत्र में नर्तकों द्वारा किया जाता है। इस नृत्य में नर्तक मोरबाजा लेकर कच्ची घोड़ी पर बैठ कर नृत्य करते हैं।

मोरपंख व दीवारी नृत्य : बुंदेलखण्ड में दीपावली के दिन ढोल-नगाड़े की तान पर आकर्षक वेशभूषा के साथ मोरपंखधारी लठैत एक दूरे पर ताबड़तोड़ वार करते हुए मोरपंख व दीवारी नृत्य व खेल का प्रदर्शन करते हैं।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

ठडिया नृत्य : सोनभद्र व पड़ोसी जिलों में संतान की कामना पूरी होने पर ठडिया नृत्य का आयोजन सरस्वती के चरणों समर्पित होकर किया जाता है।

चौलर नृत्य : मिर्जापुर और सोनभद्र आदि जिलों में चौलर नृत्य अच्छी वर्षा तथा अच्छी फसल की कामना पूर्ति हेतु किया जाता है।

ढेढ़िया नृत्य : ढेढ़िया नृत्य का प्रचलन दो-आब क्षेत्र में है, जो प्रमुखतः फतेहपुर जिले में प्रचलित है। राम के लंका विजय के पश्चात वापस आने पर स्वागत किया जाता है।

ढरकहरी नृत्य : सोनभद्र की जनजातियों द्वारा ढरकहरी नृत्य का आयोजन किया जाता है।

उत्तर प्रदेश के अलावा भारत के अन्य राज्यों के प्रमुख लोक नृत्य :

भारत के लोक नृत्य विभिन्न राज्यों की जीवंत संस्कृति, परम्पराओं और विरासत को दर्शाते हैं। पंजाब के ऊर्जावान भांगड़ा से लेकर गुजरात के उत्सवी गरबा तक और राजस्थान के सुरुचिपूर्ण घूमर से लेकर असम के आनंदमय बिहू तक, ये नृत्य रूप भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की विधिता को दर्शाते हैं। हालाँकि भारत का कोई आधिकारिक रूप से घोषित राष्ट्रीय नृत्य नहीं है, फिर भी लावणी, छऊ, यक्षगान और रासलीला जैसे लोक नृत्य भारत की जीवंत परम्पराओं का अभिन्न अंग बने हुए हैं।

हिमाचल प्रदेश के लोक नृत्य :

झाली, छरही, किन्नौरी, नाती, मैंगेन, झाइंता, महासू, डांगी, झोड़ा, धामन, राक्षस, छपेली, चंबा, थाली, छड़ी नृत्य।

हिमाचल प्रदेश का डांगी नृत्य मुख्यतः महिला नर्तकियों द्वारा फसल के मौसम में देवी नैना देवी मंदिर में किया जाता है।

उत्तराखण्ड के लोक नृत्य :

गढ़वाली, झोड़ा, लंगवीर नृत्य, कजरी, बारादा

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

नती, रमोला, भोटिया, छपेली, पांडव नृत्य, चोलिया।

बराड़ा नाटी राज्य का एक प्रसिद्ध लोक नृत्य है जो मुख्य रूप से देहरादून जिले के जौनसार भावर क्षेत्र में किया जाता है।

पंजाब के लोक नृत्य :

भांगड़ा, धामन, गिद्धा, डैफ, झूमर, किक्कली, दंडास, जिंदुआ, मालवई गिद्धा।

पंजाब के अधिकांश लोक नृत्य जैसे भांगड़ा और डंडास पूरे देश में बहुत लोकप्रिय हैं। भांगड़ा राज्य का सबसे लोकप्रिय और सबसे पुराना लोक नृत्य है।

हरियाणा के लोक नृत्य :

खोरिया, रास लीला, सांग, झूमर, छठी, धमाल, गुगा, गागोरी, लूर, खोरिया, तीज, नृत्य, फाग, डाफ।

हरियाणा में नाच नृत्य को नाच के नाम से जाना जाता है। राज्य के किसान फसल कटाई से पहले और बाद में विभिन्न लोक नृत्यों का आयोजन करते हैं।

राजस्थान के लोक नृत्य :

घूमर, झूलन लीला, चारी, घापाल, सुडसिनी, गनागोर, झूमा, भवाई, गनागोर, पनिहारी, कालबेलिया।

राजस्थान का घूमन नृत्य राज्य और देश का सबसे लोकप्रिय लोक नृत्य है। इसे भील जनजाति द्वारा शुरू किया गया था।

गुजरात के लोक नृत्य :

गरबा, टिप्पानी, जुरिउन, डांडिया रास, भवाई, पधार नृत्य।

गुजरात का सबसे लोकप्रिय लोक नृत्य डांडिया रास है यह राज्य के सबसे प्रभावशाली नृत्य के रूपों में से एक है।

महाराष्ट्र के लोक नृत्य :

गफ़ा, कोली, नाकाटा, लावणी, तमाशा, पोवाड़ा, गौरीच, मौनी, दहिकाल दशावतार, लेज़िम, धनगरी गज।

लावणी महाराष्ट्र का सबसे प्रमुख लोक नृत्य है और इसे महिलाएँ ढोलक की थाप पर करती हैं।

मध्य प्रदेश के लोक नृत्य :

जवारा, ग्रिडा नृत्य, मांच, तेरताली, चरकुला, फूलपाती नृत्य, मटकी नृत्य, सोलालार्की, सेलाभदोनी।

मध्य प्रदेश भारत के विभिन्न जनजातीय समुदायों का निवास स्थान है। यह राज्य की समृद्ध सांस्कृतिक गाथा में योगदान देता है।

छत्तीसगढ़ के लोक नृत्य :

गौर मारिया, पंथी, राऊत नाचा, पंडवानी, वेदमती, कापालिक, चंदैनी, भरथरी चरित, गौड़ी, करमा, झूमर, डगला, पाली, तपाली, नवरानी, दिवारी, मुंडारी, झूमर।

छत्तीसगढ़ राज्य में बड़ी संख्या में जनजातियाँ निवास करती हैं। पंथी नृत्य सबसे महत्वपूर्ण लोक नृत्यों में से एक है।

झारखण्ड के लोक नृत्य :

सोहराई, मुंडा, दंगा, जट-जटिन, छौ, बिदेसिया, कर्मा, साराहुल, संथाल, हंटा, पाइका।

झारखण्ड राज्य के लोक और जनजातीय नृत्य राज्य की जीवंत और समृद्ध संस्कृति को अभिव्यक्त करते हैं। संथाल नृत्य भारत के सर्वश्रेष्ठ आदिवासी लोक नृत्यों में से एक है।

बिहार के लोक नृत्य :

पंवारिया, समा चकवा, बिदेसिया, जट-जटिन, बखो-बखैन, डोमकाच, फगुआ, जात्रा, पाइका।

बिहार का सबसे प्रसिद्ध लोकनाट्य बिदेसिया है जो मुख्यतः एक गीतात्मक नाटक है और विरह की पीड़ा से भरा है।

पश्चिम बंगाल के लोक नृत्य :

जात्रा, काठी, डोमनी, ढाली, अलकाप, संथाली, मारसिया, गंभीरा, कालिकापताडी, पुरुलिया छऊ, ब्रिता, तुसा।

पुरुलिया छऊ पश्चिम बंगाल के प्रसिद्ध लोक नृत्यों में से एक है। इस नृत्य का विषय रामायण और महाभारत से लिया गया है।

सिक्किम के लोक नृत्य :

सिंधी चाम, सिकमारी, ताशी यांगकु, चू फात, याक चाम।

सिक्किम राज्य की प्रत्येक जातीय जाति और जनजाति के अपने लोक नृत्य हैं। चू-फाट सिक्किम का एक प्रसिद्ध लोक नृत्य है।

मेघालय के लोक नृत्य :

बाला, नॉन्ग्रेम, लाहो, Ka Shad Suk Mynsiem, लाहू, बेहदीनखम।

लोक नृत्य पूर्वोत्तर राज्य मेघालय की संस्कृति के आवश्यक घटकों में से एक हैं खासी राज्य की बहुसंख्यक जनजाति है और उनका सबसे महत्वपूर्ण नृत्य नॉंग्रेम नृत्य है।

असम के लोक नृत्य :

बिहु, गोलिनी, झुमुरा होबजानाई, बागुरुम्बा, भोरताल नृत्य, देवधानी, जिकिर्स, बिछुआ, डोंगी, कालीगोपाल, नट पूजा, तबला चोंगली।

असम राज्य का सबसे लोकप्रिय लोक नृत्य बिहु है, जिसे बिहु उत्सव के दौरान युवा लड़के और लड़कियाँ प्रस्तुत करते हैं।

अरुणाचल प्रदेश के लोक नृत्य :

पोनुंग, बुइया, इदु मिशमी, सादिनुक्तसो, खम्पती, वांचो, पासी कोंगकी, बुइया, चलो, बारदो छम, पोपिर, का फिफाई।

अरुणाचल प्रदेश की संस्कृति बहुत विशिष्ट है क्योंकि इसमें लगभग 26 जनजातीय समुदाय रहते

हैं और नृत्य और संगीत उनके जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

नागालैंड के लोक नृत्य :

नूरालिम, चांगसांग, चांग लो, खैवा, बांस नृत्य, रंगमा, जेलियांग, मोन्यू आशो, मेलो फिटा, अकोक-खी, खुपीलीली, रुख्यो-शारू।

नागा संस्कृति में संगीत और नृत्य का बहुत महत्व है और कोई भी कार्यक्रम लोक नृत्य के बिना पूरा नहीं होता।

मणिपुर के लोक नृत्य :

थांग ता, नैट रैश, महा राश, राखाल, ढोल चोलोम, लाई हराओबा।

मणिपुर के प्रसिद्ध नृत्य रूपों में से एक ढोल चोलोम है, जिसे ड्रम नृत्य के नाम से भी जाना जाता है।

मिजोरम के लोक नृत्य :

चेराव, चेरोकन, खुअल्लम, जंगतालम, पखुपिला, खानतम, चैलम, सरलामकै।

मिजोरम में कई लोक नृत्य हैं चैराव नृत्य, जिसे बांस नृत्य के नाम से भी जाना जाता है, मिजो लोगों का सबसे प्रमुख, पारंपरिक और विशिष्ट नृत्य है।

त्रिपुरा के लोक नृत्य :

होजागिरी, झूम, मैमिता, मसाक सुमानी, लेबांग बूमानी, बिझू नृत्य, हाई-हक नृत्य, वांगला नृत्य, पदीशा, गजान, गरिया, चैराव।

उत्तरी राज्य त्रिपुरा की संस्कृति विभिन्न त्योहारों और समारोहों के इर्द-गिर्द घूमती है, जो विभिन्न नृत्यों और संगीत से चिह्नित होते हैं।

ओडिशा के लोक नृत्य :

रुक मार नाचा, दलखाई नृत्य, धुमुरा, पाइका, बाघा नाचा, गोटी पुआ, मुनारी, डंडा नाटा, मेधा नाचा।

ओडिशा राज्य का सबसे प्राचीन लोक नृत्य

डंडा नाटा है, जिसमें भक्त भगवान शिव को प्रसन्न करने के लिए अपने शरीर पर शारीरिक यातनाएँ देते हैं।

आंध्र प्रदेश के लोक नृत्य :

भामकलापम, आंध्र नाट्यम, दप्पू, विलासिनी नाट्य, वीर नाट्य, धीम्सा, गोब्बी, चिराताला भजन, कोलाट्ट, तप्पेटा गुंडलू, लम्बाडी, बुट्टा बोम्मालाटा, उरुमुलु, छड़ी, घंटा मर्दला, ओट्टम थेडल।

वीर नाट्यम आंध्र प्रदेश के सबसे पुराने लोक नृत्यों में से एक है और इसे कुरनूल, अनंतपुर और खम्मम जिलों के शैव मंदिरों में वीरमुस्ती समुदाय के पुरुषों द्वारा किया जाता है।

कर्नाटक के लोक नृत्य :

बयालट्टा, वीरगासे, डोल्लू कुनिथा, हुत्तर, लम्बी, सुग्गी कुनिथा, करगा, यक्षगान, भूत आराधना।

डोल्लू कुनिथा कर्नाटक का लोकप्रिय ढोल नृत्य है और इसे कुरुबा नामक चरवाहा समुदाय के पुरुष करते हैं।

गोवा के लोक नृत्य :

डुलपोड, कुन्नबी-गीत, फुगड़ी, मुसोल, ढालो, आमोन, शिगमो, तरंगमेल, गौफ, मुसल खेल, धनगर, दशावतार, दिवलयान नाच, मोरुलो, टोनायामेल, देखनी।

गोवा के कुन्नबी-गीत सबसे पुराने लोक नृत्यों में से एक है और इसका नाम आदिवासी समूह 'कुनबी' के नाम पर रखा गया है।

तेलंगाना के लोक नृत्य :

पेरिनि शिवतांडवम्, लम्बाडी, दप्पू नृत्य, गुसादी, ओग्गु कथा, थोलू बोम्मालता।

दप्पू नृत्य, जिसे दप्पू नृत्यम के नाम से भी जाना जाता है, दक्षिणी राज्य तेलंगाना का एक प्रसिद्ध लोक नृत्य है।

केरल के लोक नृत्य :

कूडियाट्टम, थेय्यम, थरयट्टम, ओप्पाना, Kaikottikali, तिरुवथिराकालि, चाक्क्यार कूथु, थदम्बु नृथम, चविट्टू नादकम, पढ़यनि, ओट्टमथुलाल।

ओणम उत्सव के दौरान महिलाओं के एक समूह द्वारा किया जाने वाला तिरुवथिराकाली नृत्य एक गोलाकार पैटर्न में किया जाता है।

तमिलनाडु के लोक नृत्य :

कुम्मी, कावडियाट्टम, देवरत्तम, कोलाट्टम, करकट्टम, मायिल अट्टम, ओयिलट्टम, पुलियाट्टम, पोडुक्कल कुथिराई अट्टम, पाम्पू अट्टम, बोम्बालट्टम, थेरु कूथु।

करकट्टम तमिलनाडु का सबसे प्रमुख लोक नृत्य है। यह देवी मरियम्मन को समर्पित है।

जम्मू और कश्मीर के लोक नृत्य :

रौफ, कूद डंडी नाच, हिकत, दमाली, मंदजस, दुम्हाल, कुद, डोगरी, बच्चा नगमा।

रौफ नृत्य एक प्रसिद्ध और प्राचीन लोक नृत्य है जो ईद, रमजान आदि जैसे त्योहारों के अवसरों पर और वसंत ऋतु के आगमन पर भी किया जाता है।



लोक संस्कृति में संगीत एवं नृत्य की भूमिका

अंजली वर्मा

शोध छात्रा

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

शोध निर्देशक, सह-आचार्य (गायन)

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश :

हमारा भारत अपनी अनादिकालीन संस्कृति, परम्परा और कलाओं की समृद्धता के लिए सम्पूर्ण विश्व बांगमय में सर्वश्रेष्ठतम माना जाता है, जिसके इतिहास को अगर देखें तो हमें यहाँ हजारों वर्षों से पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही प्राचीन काल से ही पुरातन परम्पराओं की अनेकानेक विविधताएँ यहाँ समृद्धता के साथ परिलक्षित होती हैं। यहाँ धर्म, कला, संगीत, नृत्य, साहित्य, वास्तुकला, रीति-रिवाज एवं जीवन के अनेकानेक मूल्यों के गहन समावेश दिखाई देता है। इस संस्कृति और परम्परा को समृद्ध एवं पूर्णता प्रदान करने में यहाँ की लोक संस्कृति और परम्परा की विशेष भूमिका होती है। लोक संस्कृति और परम्परा किसी भी समाज की जीवनधारा होती है जिसमें उसके रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, अचार-विचार, सुख-दुःख और तीज-त्योहार इत्यादि की झलक यहाँ दिखाई पड़ती है, यहाँ की लोक कलायें यहाँ के लोक जीवन की आत्मा को अभिव्यक्त करने की पूर्ण क्षमता रखती हैं। हमारी लोक संस्कृति सनातन संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें लोक संगीत एवं लोकनृत्य एक विशेष विधा के रूप में विद्यमान दिखाई देती है, जो साधारण एवं सरल वाद्ययंत्रों, सहज धुनों तथा सुन्दर भाव-भांगिमाओं के माध्यम से ग्रामीण जीवन की विभिन्न अभिव्यञ्जनाओं, आन्तरिक अभिव्यक्तियों, जीवन संघर्षों आदि को विशिष्ट स्वर लहरियों में पिरोकर प्रस्तुत करता है। ये कलाएँ न केवल मनोरंजन का साधन मात्र हैं बल्कि लोकजीवन के विभिन्न सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अनुभवों के प्रतिबिम्ब रूप में भी परिलक्षित होती हैं। यहाँ के संगीत में विभिन्न लोकगीत जैसे कजरी, छठ गीत, सावन गीत, सोहर, होरी, झूला, बिरहा, अल्हा (उत्तर प्रदेश, बिहार) मांड, भवाई (राजस्थान) गिद्धा, सुफियाना कलाम, टप्पे, माहिया ढोला (पंजाब प्रांत) तथा इसी प्रकार यहाँ के विभिन्न लोकनृत्य में भांगड़ा (पुरुषों द्वारा), गिद्धा (महिलाओं द्वारा), राजस्थान का घूमर, उत्तर प्रदेश का रासलीला तथा नौटंकी, झारखंड का छोरा नृत्य, उत्तराखंड का चाचरी नृत्य इत्यादि देखने को मिलते हैं।

मुख्य शब्द :

लोक, संस्कृति, लोकनृत्य, लोक संगीत, परम्परायें, जनसाधारण, लोककलायें।

प्रस्तावना :

भारतीय संस्कृति : भारत को एक विविधताओं से एक समृद्ध एवं गौवशाली संस्कृति का विकास का देश माना जाता है जिसकी भूमि पर हजारों वर्षों देखा जाता रहा है। भारतीय संस्कृति न केवल विश्व

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

126

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है, बल्कि यह अपनी जड़ों में आध्यात्मिकता, सहिष्णुता, एकता एवं बहुलता को समेटे हुए है जहाँ के विभिन्न क्षेत्रों की भिन्न-भिन्न भाषाएँ, परम्पराएँ एवं नई संस्कृति की झलक दिखाई देती है। भारतीय संस्कृति के विषय में मिस्टर डाडवेल ने लिखा है - “भारतीय संस्कृति महासमुद्र के समान है जिसमें अनेक नदियाँ आ आ कर विलीन होती रही हैं।”¹

धार्मिक विविधता : भारत को विभिन्न धर्मों की जन्मस्थली मानी जाती है जहाँ पर हिन्दू, बौद्ध, जैन एवं सिख धर्म उत्पन्न एवं पल्लवित हुए साथ ही, इस देश में इस्लाम, ईसाई, यहूदी और पारसी धर्मों को भी शरण दी तथा उन्हें पनपने का अवसर भी प्रदान किया। यही धार्मिक सहिष्णुता भारतीय संस्कृति की विशेषता मानी जाती है।

सांस्कृतिक विविधता : भारत में भाषाएँ, बोलियाँ, खान-पान, रहन-सहन, पहनावा, नृत्य, संगीत एवं उत्सवों की अनगिनत विविधताएँ देखने को मिलती हैं, जैसे- उत्तर भारत में होली, दिवाली, ईद क्रिसमस, दक्षिण भारत में पोंगल, ओणम, महाशिवरात्रि, पूर्व भारत में बिहू और दुर्गा पूजा तथा पश्चिम भारत में गणेश चतुर्थी, नवरात्रि इत्यादि जैसे पर्व बहुत ही हर्षोल्लास के साथ मनाए जाते रहे हैं।

वस्तुतः भारतीय संस्कृति केवल रीति-रिवाजों का संग्रह ही नहीं, बल्कि यह एक जीवनशैली भी है जिसके माध्यम से हमें शांति, संतुलन एवं समरसता देखने को मिलती है तथा भारत देश की संस्कृति की महानता इसी में प्रदर्शित होती है कि इसने विभिन्न वर्ग विशेष को अपनाया तथा “वसुधैव कुटुम्बकम्” का आदर्श प्रस्तुत किया।

अतः भौतिक उन्नति के द्वारा शरीर की भूख तो मिटाई जा सकती है किन्तु आत्मा की तृप्त के लिए मनुष्य अपनी आत्मिकता का जो विकास एवं उन्नति करता है, उसी को ‘संस्कृति’ कहा जाता है।²

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

लोक-संस्कृति की अवधारणा : संस्कृति मानव-जीवन के विभिन्न पहलुओं की अभिव्यक्ति के रूप में परिलक्षित होती है जिसके अन्तर्गत लोक-जीवन के सभी भौतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक मूल्य समाविष्ट रूप में देखने को मिलते हैं। प्रत्येक राष्ट्र तथा समाज की उत्कृष्ट संस्कृति की आधारशिला वहाँ के लोक-जीवन को माना जाता है जिसकी संस्कृति को लोक-संस्कृति के रूप में जाना जाता है, जो कि मानव को पीढ़ी-दर-पीढ़ी विरासत के रूप में हस्तांतरित होती चली आ रही है।

वस्तुतः लोक के मूल में कुछ नैतिक स्तर, धार्मिक संस्कार एवं विश्वास, सामाजिक नियम तथा अन्य सामाजिक क्रिया-कलाप देखने को मिलते हैं, जिन्हें लोक और संस्कृति की विशेष मान्यता प्राप्त होती है।³

लोक संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति : लोक संस्कृति शब्द मुख्यतः दो शब्दों के सम्मिश्रण से उद्भूत माना जाता है, जिसमें ‘लोक’ का अर्थ ग्रामीण जीवन में तथा ‘संस्कृति’ का अर्थ उस व्यवहार से लगाया जाता है जो कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती रही है। ‘लोक’ शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के ‘लोकदर्शने’ धातु से मानी जाती है, जिसका धातुज अर्थ ‘देखने वाला’ से तथा रूढ़िगत अर्थ ‘सामान्य लोग’ से लगाया जाता है।⁴

वहीं “संस्कृति” का अर्थ ‘सम्यक् कृति’ से लगाया जाता है जिसका उद्देश्य है - मनुष्य व्यक्तिशः ‘सम्यक्कृति’ करता रहे तथा सद्यः ‘संभूय कृति’ भी करे। यही सम्यक् कृति मानव को अति मानव बनाने में समर्थ भूमिका निभाती है।⁵

लोक-संस्कृति में संगीत : भारतीय संगीत को विश्व की सर्वप्राचीन संगीत परम्परा के रूप में जाना जाता है। भारतीय संगीत की निराकार छवि जहाँ एक ओर आत्मिक रूप में सम्पूर्ण विश्व की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है, वहीं दूसरी ओर हमारी संस्कृति की धरोहर के रूप में भी दिखाई देता

है। आज हम जिस प्रचलित हिन्दुस्तानी संगीत को देख पा रहे हैं, वह हमारे लोक संगीत की ही देन मानी जाती है, अतः लोक संगीत को शास्त्रीय संगीत की जननी कहा जाता है। लोक संगीत का जन्म भी मनुष्य के जन्म की ही भाँति प्राचीनतम काल से माना जाता रहा है, इसीलिए लोक गीत की ध्वनियों में लोक हृदय में उमड़ने वाली संवेदनाओं, सुख-दुःख, हर्ष विषाद, पीड़ा, प्रसन्नता यहाँ तक की लोक हृदय की धड़कनों का स्पन्दन भी परिलक्षित होता है तभी तो मनुष्य के जन्म से मृत्यु तक के हर संस्कार को लोक संगीत द्वारा अभिव्यक्त करने की प्रथा आज तक प्रचलन में देखने को मिलती है।

लोक संगीत में लोकगीत की अवधारणा : लोकगीत लोक-संगीत का प्रतिनिधित्वकर्ता के रूप में जाना जाता है, जिसे दो शब्दों के सम्मिश्रण से उद्भूत माना है। इसमें 'लोक' और 'गीत' का सामान्य अर्थ लगाया जाता है- लोगों अर्थात् जनसाधारण का गीत, जिसे विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के निवासियों द्वारा अपनी सांस्कृतिक आवश्यकताओं के आधार पर भिन्न-भिन्न अवसरों पर प्रयोग में लाते हुए देखा जाता है। लोकगीत की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें स्वाभाविक, स्वच्छंदता, सरलता से परिपूर्ण है। जिसमें लोक जीन की वास्तविकता के दर्शन प्राप्त होते हैं जिसका वर्गीकरण कुछ इस प्रकार से देखने को मिलता है। संस्कार गीत, जाति गीत, क्रिया गीत, ऋतु, धार्मिक गीत, सामयिक गीत इत्यादि गीतों के माध्यम से हमें तत्कालीन समाज का अच्छा ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है।⁵

हमारे लोक संगीत में लोकगीतों का अत्यधिक बृहद विस्तार देखने को मिलता है। अतः लोकगीतों की इन वृहदता को देखते हुए डॉक्टर रवि शंकर उपाध्याय जी ने इन्हें कुछ इस प्रकार से वर्गीकृत किया है :

1. संस्कार-सम्बन्धी गीत।
2. ऋतु-सम्बन्धी गीत।

3. व्रत-त्योहार-सम्बन्धी गीत।
4. जाति-सम्बन्धी गीत।
5. श्रम-सम्बन्धी गीत।
6. विविध गीत।

हमारी भारतीय संस्कृति में मुख्य रूप से 16 प्रकार के संस्कार माने जाते हैं तथा विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को 'संस्कार गीत' के नाम से जानते हैं। इसके अन्तर्गत सोहर, कजरी, बधाई गीत, मुण्डन गीत, विवाह गीत इत्यादि देखे जाते हैं। ऋतु-सम्बन्धी गीत में वे गीत पाये जाते हैं जो विभिन्न ऋतुओं में गाये बजाये जाते हैं तथा इनकी अभिव्यक्ति में विशेष ऋतु का आभास भी पाया जाता है, जैसे - होरी, चैती, कजरी, बारहमास इत्यादि।

व्रत-त्योहार सम्बन्धी गीत के अन्तर्गत व्रत-त्योहार-सम्बन्धी गीत ही देखने को मिलते हैं। जिनमें देवी-देवता तथा कर्मकाण्डों का वर्णन पाया जाता है। इसके अन्तर्गत नागपंचमी के गीत, दुर्गा पूजनोत्सव के गीत, समा चकिया, छठ गीत, कृष्ण जन्माष्टी इत्यादि देखने को मिलते हैं।

जाति सम्बन्धी गीत : इनमें वे गीत आते हैं जो जाति-विशेष में ही अधिक प्रचलित देखने को मिलते हैं, जैसे- 'आल्हा', 'विरह' आदि। विरह अहीर जाति की सर्वाधिक लोकप्रिय लोकगायन विधा के रूप में जानी जाती है जिसके सन्दर्भ में एक कहावत है भी सुनने को मिलती है- "केतनो अहिरा होई सुजान, विरहा छाड़ि श्रम-सम्बन्धी गीत के अन्तर्गत मुख्य रूप से श्रमिक वर्ग के लोग आते हैं जो प्रायः कार्य करते समय थकान को भुलाने कार्य में मन लगाने के लिए इन लोकगीतों का आश्रय लेते हैं। ये गीत अक्सर स्त्रियाँ गाते बजाते देखने को मिलते हैं, जिसके अन्तर्गत रोपनी, सोहनी, लावनी, जतसार, खेत रखवाली गीत इत्यादि पाये जाते हैं तथा विविध गीत के अन्तर्गत निर्गुन, पूर्वी, झूमर, अनाचारी आदि पाये जाते हैं।⁶

लोकगीतों का शास्त्रीय एवं फिल्म संगीत पर प्रभाव : लोक-गीतों की अपनी विशिष्ट मधुरता एवं रमणीयता होने के कारण इनकी कई विधाएँ, जैसे- होरी, चैती, कजरी, बारहमासा इत्यादि जैसे लोकगीत, शास्त्रीय ढंग में प्रस्तुत किये जाने लगे हैं, जिन्हें उपशास्त्रीय संगीत की श्रेणी में रखा जाता है, वहीं दूसरी ओर, इन लोकधुनों की मनमोहकता से प्रभावित होकर फिल्म संगीत ने भी इन्हें अत्यन्त बड़े पैमाने पर अपनाया है। ऐसी अनेकों फिल्मों के गीत देखने को मिलते हैं जिनकी धुने मूल रूप से पारंपरिक लोकगीतों से प्रेरित रही हैं⁷, उदाहरण स्वरूप :

1. होली खेले रघुवीरा अवध में - बागबान (2003) (होरी गीत पर आधारित)।
2. ओरी छोरी बात मोरी - लगान (2001) (भोजपुरी) लोकगीत पर आधारित)।
3. निंबुड़ा-निंबुड़ा - हम दिल दे चुके सनम (1999) (गवर्ई घूमर पर आधारित)।
4. मोरनी बागा मा बोले - लम्हे (1991) (राजस्थानी) घूमर पर आधारित)।

अतः यह स्पष्ट है कि लोकगीतों की रागात्मकता एवं सुरम्यता इतनी प्रभावशाली है कि इनकी समृद्धता न केवल लोक-संगीत में बल्कि शास्त्रीय एवं चलचित्र संगीत में भी सशक्त रूप से देखने को मिलती है। अपनी सहजता, स्वाभाविकता और माधुर्य गुणों के कारण ये लोकगीत प्राचीन काल से ही लोकजीवन की आत्मा में रचे-बचे हैं।

लोक संस्कृति में लोक नृत्य : लोकगीत, लोकवाद्य एवं लोकनृत्य इन तीनों के सम्मिश्रण को लोकसंगीत कहा जाता है जिसके अन्तर्गत लोकनृत्य के माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति और अधिक प्रभावी रूप से कार्य करते हुए दिखाई पड़ती है, क्योंकि इसमें, गायन वादन के साथ-साथ भाव भंगिमाओं का भी समावेश पाया जाता है।⁸ लोक नृत्य लोक समुदाय के सामूहिक आनंद, आस्था एवं जीवन-रस का प्रत्यक्ष दर्पण के रूप में परिलक्षित होता है। ये

नृत्य प्रायः विभिन्न महोत्सवों, त्योहारों, वैवाहिक अवसरों, फसल कटाई, धार्मिक अवसरों इत्यादि के उपलक्ष्य में आयोजित होते हुए देखने को मिलते हैं।

अतः लोक नृत्य के माध्यम से लोक अधिक आनंद को प्राप्त होते हैं। हमारे लोक संस्कृति में प्रयुक्त कुछ प्रमुख लोकनृत्य इस प्रकार से देखने को मिलते हैं :

बिदेसिया : बिदेसिया नृत्य-नाटक का एक लोकप्रिय नृत्य है जो 20वीं शताब्दी के आस-पास लोक रंग-मंच पर उत्पन्न माना जाता है जो कि बिहार की भोजपुरी भाषीय क्षेत्र में प्रचलित माना जाता है। भिखारी ठाकुर इस नृत्य रचना के निर्माता के रूप में जाने जाते हैं।

जट-जाटिन : मिथिला एवं कोशी क्षेत्र में जट-जाटिन नृत्य उत्तर बिहार के लोकप्रिय नृत्य में से एक माना जाता है, जिसे युगल नृत्य के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। इसमें जट-जाटिन का विषय रहता है, जिसमें गरीबी, प्रेम, दुःख, दर्द इत्यादि जैसे भावों का प्रदर्शन देखने को मिलता है। वस्तुतः जट-जाटिन प्रेम कहानी से उत्पन्न माना जाता है।

झिझिया : बिहार का झिझिया नृत्य एक लोक प्रसिद्ध लोक नृत्य माना जाता है। यह लोकनृत्य प्राकृतिक अनुष्ठान पर आधारित होता है जिसमें वर्षा के देवता इन्द्र को प्रसन्न करने की चेष्टा का वर्णन देखने को मिलता है।

सामा चकेवा : सामा चकेवा उत्सव कार्तिक शुक्ल पक्ष से 7 दिन बाद प्रारम्भ होता है। कई दिनों तक यह उत्सव मनाया जाता है तथा 9वें दिन बहन अपने भाईयों को धान की नई फसल का चूड़ा एवं दही खिलाकर मूर्तियों को तालाबों में विसर्जित कर देती हैं।

डोमकच : यह पारिवारिक प्रभावों से जुड़ा एक लोक नृत्य माना जाता है। इस घरेलू लोक नृत्य को मुख्यतः घर-आंगन एवं परिसर में देर-रात्रि तक महिलाओं द्वारा आयोजित करते हुए पाया जाता है।

इनमें बाह्य, परिहास के साथ-साथ ही हाव-भाव का प्रदर्शन भी देखने को मिलता है।

कजरी : इसका उद्गम उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर में गाया जाता है। इसका संगीत मानसून की ऋतु में पति के लम्बे समय तक बाहर रहने के विरह में डूबी नायिका के उदास भावों के रूप में जाना जाता है।⁹

लावणी : यह महाराष्ट्र का एक महिलाओं द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला पारंपरिक लोक नृत्य माना जाता है जो कि मुख्य रूप से ढोलक की थाप पर आधारित माना जाता है। ऐसा कहा जाता है कि इस लोक नृत्य ने 18वीं तथा 19वीं शताब्दी की मराठों की लड़ाई में थके हुए सैनिकों का मनोबल बढ़ाने में अपनी विशेष भूमिका प्रदान की है।

पोवाड़ा : पोवाड़ा नृत्य मराठी गाथागीत का एक भाग माना जाता है, जिसके अन्तर्गत मराठा नेता श्री छत्रपति शिवाजी के जीवन का दर्शन प्राप्त होता है।

धूमर नृत्य : यह लोक-नृत्य राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में स्त्रियों द्वारा गणगौर के अवसर पर प्रस्तुत करते हुए दिखाई देता है, इस नृत्य की विशेषता यह है कि इसका प्रदर्शन केवल हाथों द्वारा किया जाता है, इस नृत्य से पंजाब क्षेत्र में भाँगड़ा नृत्य की भी उत्पत्ति मानी जाती है।

झूमर नृत्य : यह लोकनृत्य राजस्थान के हड़ौती क्षेत्र में स्त्रियों द्वारा प्रस्तुत करते हुए देखने को मिलता है। इसी प्रकार से गुजरात के लोकप्रिय लोकनृत्य में भवई, डांडिया, गरबा, असम के लोकप्रिय नृत्य में बिहू, झुमरी, बागरूम्बा, अली लिंगण, हिमाचल प्रदेश के प्रमुख लोक नृत्य में नाटी, डांगी, कयांग, माला, राक्षस नृत्य इत्यादि छत्तीसगढ़ के प्रमुख लोक नृत्य में सैला, पंथी, राउत, नाचा, कर्नाटक के लोकप्रिय पारंपरिक नृत्य यक्षदान, कुनिथा, बीरगोस, बयालता इत्यादि देखने को मिलते हैं।¹⁰

अतः स्पष्ट है कि भारत के प्रत्येक राज्य की अपनी विशिष्ट लोकनृत्य परंपरा पायी जाती है, जो

वहाँ की संस्कृति, जीवनशैली, आस्था एवं विश्वास की झलक प्रस्तुत करते हुए देखने को मिलती है। इस प्रकार, भारतीय लोकनृत्य हमारी सांस्कृतिक विरासत की जीवंत अभिव्यक्ति है जो विविधता में एकता का सुंदर संदेश के रूप में परिलक्षित होती है।

लोकसंगीत एवं लोकनृत्य का संरक्षण एवं संवर्धन :

वर्तमान समय में जब पूरी दुनिया आधुनिकता और वैश्वीकरण के प्रभाव में तेरी से बदल रही है, तब हमारी पारंपरिक लोक संस्कृति में लोक संगीत एवं लोकनृत्य, अस्तित्व के संकट से गुजर रहे हैं। तकनीकी प्रगति, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव तथा बदलती जीवनशैली के कारण नई पीढ़ी आधुनिक मनोरंजन के साधनों की ओर आकृष्ट होती दिखाई दे रही है, जिसके कारण लोक कला की मूल आस्था धीरे-धीरे विलुप्त होती दिखाई दे रही है। ऐसी परिस्थिति में इन लोककलाओं का संरक्षण एवं संवर्धन न केवल सांस्कृतिक दृष्टि से, बल्कि सामाजिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से भी अत्यंत आवश्यक जान पड़ती है।

समाज की भूमिका : लोकसंगीत एवं लोकनृत्य के संरक्षण हेतु समाज की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ाव बनाए रखना चाहिए। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में लोककलाओं पर आधारित कार्यक्रम, उत्सव और प्रतियोगिताएँ आयोजित कर कलाकारों को प्रोत्साहन दिया जा सकता है। विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में लोककला को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाकर युवा पीढ़ी में रुचि जगाई जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त मीडिया तथा डिजिटल प्लेटफार्म के माध्यम से भी लोक कलाकारों के कार्यों को व्यापक स्तर पर प्रसारित किया जा सकता है।

प्रशासन की भूमिका : प्रशासन का दायित्व है कि वह लोक कलाकारों को आर्थिक, सामाजिक और संस्थागत सहायता प्रदान करे। सरकार को चाहिए

कि वह लोक कलाकारों के लिए विशेष अनुदान योजनाएँ, प्रशिक्षण केन्द्र और सांस्कृतिक संरक्षण हेतु संस्थान स्थापित करें। पर्यटन विभाग के माध्यम से लोकसंगीत और लोकनृत्य को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर प्रस्तुत किया जा सकता है, जिससे कलाकारों को पहचान और सम्मान दोनों मिल सके।

निष्कर्ष :

लोक संस्कृति किसी भी राष्ट्री की आत्मा का स्वरूप मानी जाती है, जो उस देश की सामाजिक संरचना, परम्परागत ज्ञान, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति एवं जीवन-मूल्यों को संयोजित रखने का कार्य करते हुए परिलक्षित होती है। लोकसंगीत एवं लोकनृत्य इस आत्मा रूपी लोकसंस्कृति को जीवंतता प्रदान करने की एक विशेष भूमिका निभाती है, जिनमें जनजीवन की अनुभूतियाँ, रीति-रिवाज, उत्सव तथा भावनात्मक एकता का स्वर गुंजायमान होता प्रतीत होता है। आधुनिकता एवं वैश्वीकरण के इस तीव्र परिवर्तनशील युग में जहाँ भौतिक प्रगति को अधिक महत्व दिया जा रहा है, वहीं लोक कलाओं का संरक्षण एवं संवर्धन भी सांस्कृतिक संतुलन बनाए रखने के लिए अत्यंत आवश्यक प्रतीत होता है।

इन लोक कलाओं का संरक्षण न केवल अतीत के गौरव को सहेजने का प्रयास ही है, बल्कि यह राष्ट्र की सांस्कृतिक अस्मिता को सुदृढ़ बनाये रखने तथा आने वाले पीढ़ियों को अपनी जड़ों से जोड़े रखने का माध्यम भी सिद्ध होता हुआ दिखाई देता है। इस दिशा में समाज एवं प्रशासन का संयुक्त सहयोग अत्यंत आवश्यक है। जब लोक कलाओं को शैक्षणिक संस्थानों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों, मीडिया

माध्यमों तथा सरकारी नीतियों के माध्यम से प्रोत्साहन मिलेगा, तभी यह परम्परा पुनर्जीवित होकर आधुनिक समाज में अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकेगी।

सन्दर्भ सूची :

1. त्यागी कविता, कौरवी प्रदेश की लोक संस्कृति, राधा पब्लिकेशन, 4378/4 बी, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण पृ. सं.-45।
2. वहीं, पुस्तक पृ. सं.-48।
3. लोक के विविध रंग, राष्ट्रीय संगोष्ठी, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, लोकस्मारिका 2020 पृ. सं.-18।
4. त्यागी कविता, कौरवी प्रदेश की लोक संस्कृति, राधा पब्लिकेशन, 4378/4 बी, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण पृ. सं.-48।
5. लोक के विविध रंग, राष्ट्रीय संगोष्ठी, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, लोकस्मारिका 2020, पृ. सं.-25।
6. लोक के विविध रंग, राष्ट्रीय संगोष्ठी, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, लोकस्मारिका 2020, पृ. सं.-124।
7. लोक के विविध रंग, राष्ट्रीय संगोष्ठी, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, लोकस्मारिका 2020, पृ. सं.-124।
8. लोक के विविध रंग, राष्ट्रीय संगोष्ठी, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, लोकस्मारिका 2020, पृ. सं.-363।
9. लोक के विविध रंग, राष्ट्रीय संगोष्ठी, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, लोकस्मारिका 2020, पृ. सं.-363।
10. भारतीय लोक कलाकार, महाराज सयाजीराओ, बड़ोदा विश्वविद्यालय, 2024ए पृ. सं.-13।



Nature in Folk Songs

Anu Saxena

*Research Scholar
College - Sita Bai Arts
Commerce and Science College,
Akola, Maharashtra*

Dr. Kaumudi Kshirasagar Barde

*Research Guide
College - Sita Bai Arts
Commerce and Science College,
Akola, Maharashtra*

Abstract :

Folk music is music of a common human being. Nature has been in existence ever since the world got created. Nature in it self has elements like mother Earth, Mountains, plants and trees, animals, birds, rivers etc. which are affecting and creating feelings and emotions inside lives of common rural people since many decades. As Indians have always been making sincere progressions to lead a very simple life, more connected and close to nature, this is the reason why mostly all Indian folk songs are based on Nature related themes and topics.

The entire life spent in the lap of nature, the people in those times knew all the aspects of nature, And were very deeply connected with nature too. The Seasons, Trees, Snow, Rains, birds, flowers, animals insects etc. the entire spectrum could be visible in the folk music. Through this research paper some different types of folk songs will be mentioned and discussed and also while studying these elements of nature, their effects on human beings will be explained and explored in brief.

Keywords :

Human beings, Nature, Folk Songs, Seasons, Elements, Culture, Traditions, Emotions.

Introduction :

‘Nature has its own music, own song, if only we have the time to listen and a heart to understand.’

‘Debasish Mridha’

Human beings and nature are each others partners in the world. Nature is alive and holds an integral part in the life of human beings. While coexisting with each other human beings and nature have understood how important they are for

maintaining each others boundaries and discipline. Human beings express their emotions about their different aspects of life when they see and get inspired by the beauty of nature. Nature holds in its arms many beautiful aspects eg. the dark blue sky, deep mystic oceans, the romantic rains, the fearless rivers, the strong determined mountains, the selfless trees and plants, the fragrant and delicate flowers, different seasons that bring in fresh emotions, the

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

132

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

gentle breeze, the variety of animals, birds and many other similar things. All these factors are nature's prime elements or factors which inspire and encourage humans to express their emotions in the form of folk music.

That's the reason the famous great musician 'Louis Armstrong' quotes ;

"All Music is Folk Music. I ain't never heard a horse sing a song."

This reiterates that any music which exists, is a human creation of emotions and expressions and its truly inspired by the surroundings, the nature or environment around them. This type of music is given the name of folk music, as its origin is the cultural, the geographical and the social structure in which the people live and spend their day to day life. This folk music is created to express and share amongst themselves the feelings of joy, happiness, sadness, celebrations etc as a community in a collective manner.

Nature's main elements which help in the creation of Folk music :

1. Different seasons and Weather related variety of folk songs :

A. Spring season / Basant ritu :

India being a multifaceted country, has variety of different states with different languages and culture. According to their vast culture and traditions they all celebrate spring season or basant ritu with full joy and have folk songs created in their own traditions and languages with different names as well. The spring season is full of new blossoms, the earth is all beautified with such bright flora and fauna, liveliness and happiness every where.

In Uttar Pradesh folk songs namely known as 'Chaiti' and 'Rasiya/hori' geet,

are sung to embrace the season. Bhakha is a regional folk song sung in jammu kashmir to express the new fresh season greetings. 'Baul' is a very famous bengal folk song sung in the spring season. Assamies very famous 'Bihu' folk songs are specially sung and danced to celebrate and welcome the spring season.

During Baisakhi, 'Bhangra' is so very popular in Punjab and it symbolises celebrations of the new harvest festive season. Same is 'Garba folk' which is also sung and danced in Navratri as well as to enjoy spring season. 'Faag' gayan is a very famous folk song sung in Madhya Pradesh to celebrate spring season at the time of holi. 'Suggi Habba' and 'Grama Devathe Habba' are most prominent folk songs which are sung to celebrated spring season and harvesting festive seasons in karnataka.

B. Monsoon season folk songs :

Monsoon is the time when the rains start pouring in all over india. It's all lush green every where and a very pleasant atmosphere of relief after the hot season. So new crops are grown and farmers are always looking out for good rains.

Many different states have folk songs which are created and enjoyed singing during monsoon season. Uttar Pradesh and Bihaar have very popular folk songs namely famous as 'Kajri' are sung during monsoon season. A very famous 'Kajri' sung by Pdt. Chhannulal Mishra ji is very popular ; 'Barsan lage bandariya room jhoom ke', which means that 'Its started raining very heavily'. Similarly in karnataka a very beautiful monsoon Song ; 'Mayadantha Male Bantana' specifying that 'The enchanting rain has come' is a very popular example of folk song sung during monsoon season. 'Pardana' folk

songs are also sung during the farming period in monsoon season in karnataka.

These monsoon Folk songs are generally based on the feelings of separation, longing of their beloved, any women addressing clouds as their messenger to give message to their beloved. These songs are very popular in the rainy season.

C. Agriculture related folk songs :

Farmers when working in the field, they spend their entire day working very hard in the fields under the harsh weather conditions and while working they entertain themselves by singing songs like 'gavai mala Galba Agahan ka mela, kheteve bhayela bhagwaan ho, gori jhuki jhuki kaate ri dhaan'. Which says that 'there is a fair for the season, but my crops and my fields are my god, so i continue doing my harvesting in the fields'.

These agricultural folk songs are based on the farmers describing about their crops, their day to day life in the village and some farmers describe about their emotions about longing to go home, as they have to be in the fields away from home for a very long time some times.

Rajasthani folk named 'Pankhida', and Maharashtra's folk named 'bhalaari' are sung by farmers working in the fields. Famous Assamies Folk songs 'Chaita and Karma' are farmer folk songs.

To embrace and celebrate the success of a good harvest the 'Cher Chera' chattisgarhi folk is sung by farmers.

2. Geographical elements like mountains, rivers, waterfalls etc. related variety of folk songs :

Rivers, streams, mountains, and other landscapes are considered very important aspects when it comes to creating folk music.

They hold a very religious and cultural thrust in the making.

A. Rivers :

Rivers in india are worshipped as goddesses. They are the prime reason of civilization in the entire world. The rivers can be a blessing and a provider, and some rivers are very harsh and aggressive eg. the Brahmaputra river etc. So folk songs are sung for rivers to specially describe them, to ask them to be soft and kind to the fishermen while they are in their boats fishing. Famous 'Bhatiyali' folk songs are sung by Bengal's boatmen, which are based on the lives of the fishermen and describe the beauty of the river. Same way in Maharashtra the 'Majhi' geet and 'Ovi' folk is sung by the fisherman describing their journey in the sea and also rejoicing and celebrating their good catch of the day.

The 'Bambuliya' is a famous Bundelkhandi folk song which is sung in the praise of the great Narmada river. The most holy river of India, 'Ganga' is worshipped each and every day and many folk songs are written and sung by famous folk artists in india. One of our very Famous Assamies folk singer and composer 'Shri Bhupen Hazarika' has sung a very beautiful song on the holy river ganga 'Ganga Behti Ho Kyun' which describes the deep hidden truths about river Ganga and its significance in our lives.

River Yamuna also holds a very mythological and spiritual significance with Hindu religion.

As its associated with Lord Krishna, who had spend his entire life in Mathura, Brindavan on the banks of river Yamuna. He used to play his flute and do Raas with all the Gopiyaan near the Yamuna river. So many famous folk songs are made and sung on the Yamuna river. eg

'Chalo man ganga yamuna teer.'

B. Mountains :

Mountains are the biggest symbols of the most tough and strong livelihood of people living in the mountains. They live a very hard life with new challenges and struggles while living in the mountains. The Himachali people sing very rhythmic and melodious folk songs based on the mountains in which they describe their very deep respect and compassion for these mountains and pray to them as their gods and goddesses. The folk songs are a clear reflection of their love for the beauty of these mountains and they sing folk songs on occasions like marriages and festivals.

Eg. folk songs types like Naati, Chhinj, Laman, 'Pahadi' folk geet are also very popular.

A very famous eg. of Pahadi folk song is a beautiful Himachali song 'Chamba kitni dur' is a very beautiful song which describes the geographic region and culture of a small village 'Chamba'.

'Chhopati' Garhwali folk song is also a very popular folk song sung in Uttarakhand.

3. Nature acts as an emblem and symbol :

Nature holds in its heart so many important elements like, different types of animals, plants, trees, birds which can create an environment and atmosphere to express and inspire human beings to bring out their deep down emotions in the form of beautiful folk music.

A. Different birds and animals :

Nature has so many beautiful birds such as the cuckoo bird (koyal) and the 'Papiha' who are considered the love birds,

they symbolise and evoke the feelings of love, joy and sometimes separation too. Beautiful folk songs are created and sung on this theme and concept.

Eg. 'Meetho meetho bol Papiha' a Rajasthani folk and 'koyal ke Boli Sun ke' a Bhojpuri traditional folk song. These folk lines very clearly show how the inner emotions are expressed through these folk songs with metaphors like 'koyal' and 'Papiha'.

'Morni /peacock' is a very popular Bird used as a symbol of love in Indian folk songs.

Peacocks are love birds who dance in happiness when it rains, when a beloved is longing to meet his/her loved one, many folk songs are sung to express these feelings.

Eg. a very famous Himachali folk song, 'Amma Pochdi dubali itni tu kiya ker aayi ho',

A very beautiful conversation between a mother and her daughter about love and how a peacock is mentioned in the song with a hidden deep meaning.

B. Trees, flowers and flying insects :

Beautiful Mother Nature holds in its arms such majestic trees, flowers and insects eg. 'Bhawra' which are all examples of love, sustainability, delicateness and magical creation of God. All these elements are very beautifully crafted and made instruments to create beautiful folk songs by human beings.

A very famous Rajasthani folk song 'Nimbooda Nimbooda' is a very beautifully composed folk song which is a very apt example of how a lemon is being used as a metaphor by the newly wed wife who asks her husband to bring small, less riped

lemons for her, which she desires to use as a protection for evil eye.

Another very beautiful example of a Rajasthani folk song which is considered as a welcoming iconic folk song anywhere in India to welcome guests ; 'Kesariya Baalam, Padharo Mhare Des'. The 'kesariya' is a very rare flower which has some unique qualities in it like its fragrance, beauty and it symbolises courage and good health. So a woman while welcoming her warrior husband she addresses her husband as 'kesariya Baalam' in which all her inner feelings for her husband are expressed through this wonderful folk song.

4. Holistic Knowledge related folk Songs :

Folk songs created and sung hold a very vital component of our traditional culture which is being passed down to generations by generations through word of mouth, orally. These folk songs are sharing the old historical stories, cultural values. Also these folk songs are transferring wisdom and knowledge about our past culture, our environment very effectively and effortlessly to the community and building a gap.

Conclusion :

Folk songs are a chain which can connect dots from ancient to today's culture. The most important factor is when folk songs sung together in families on different occasions like marriages, child

birth, festivals, they bring in a sense and feeling of community and sharing and make relationships stronger. Many folk songs teach the value of how to respect and love nature and appreciate it. They teach lessons on discipline and social responsibilities towards the society in a very natural manner.

In today's fast paced society the generation Z is running after materialistic pleasures of life and they don't have the time and patience to enjoy small joys of life, e.g. sitting with family and enjoying festivals, celebrating occasions together. Traditions and cultural values are needing more and more attention. Through promoting folk culture, creating ample environment for folk songs on different occasions, Indian rich cultural heritage and tradition will remain secure and sustained till infinity.

Bibliography :

1. Folk Songs on Nature
2. Clouds, droughts and other elements of nature recur in Rajasthan's folk songs
3. Folk music | Definition, History, Artists, Songs, Bands, Instruments, & Facts | Britannica
4. Folk Music of India, Characteristics, List of Indian Folk Songs, UPSC Notes!
5. https://www.shodh.net/phocadownload/vol-14-issue-1-2/Shodh_Sandhan_Vol_14_Issue_1_2_Dr_Rohini_Tripodi.pdf
6. Folk Songs on Nature
7. View of A Folkloristic Study on the Folk Songs That Reflect Nature
8. The Songs of Spring



Dr. Urmil Kumar Thapliyal and the Revival of Nautanki in Modern Theatre

Ashish Dwivedi

Research Scholar

Department of Performing and Fine Arts
Central University of Punjab, Bathinda,
Punjab-151401, India

Dr. Charu Yadav

Assistant Professor

Department of Performing and Fine Arts
Central University of Punjab, Bathinda,
Punjab-151401, India

Abstract :

This paper examines the theatrical legacy of Dr. Urmil Kumar Thapliyal, one of Lucknow's most influential theatre directors, whose contributions span acting, direction, playwriting, satire, and scenography innovation. Drawing on primary sources, including interviews with his family members, alongside secondary materials such as books, journals, and archival records, this study explores how Thapliyal revitalized Nautanki and integrated it into urban proscenium contexts without erasing its indigenous aesthetics. The paper argues that Thapliyal's practice represents a unique model of cultural negotiation, where folk traditions and modern theatre techniques coexist to produce socially resonant and aesthetically hybrid performances. His directorial experiments and pedagogical interventions not only revived a declining form but also redefined the possibilities of regional theatre in post-independence India. By situating his contributions within the broader discourse on folk-modern synthesis in Indian theatre, the paper highlights Thapliyal's position as a custodian of tradition and a reformist innovator.

Keywords :

Urmil Kumar Thapliyal, Nautanki, Lucknow Theatre, Folk Theatre, Modern Hindi Theatre, Cultural Revival.

Introduction :

The city of Lucknow has long been a crucible of theatrical innovation, from the Nawabi patronage of Wajid Ali Shah in the nineteenth century to the flourishing of Parsi and Hindi theatre in the twentieth century. Within this evolving cultural landscape, Dr. Urmil Kumar Thapliyal emerged

as one of the most influential directors of modern Hindi theatre, a versatile artist-director, playwright, satirist, designer, and musician. Thapliyal not only enriched the proscenium stage of Lucknow but also revitalized the folk traditions of North India, particularly Nautanki.

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

137

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

Despite his stature, Thapliyal's contributions have received limited scholarly attention. Most accounts of Hindi theatre history focus on metropolitan figures such as Habib Tanvir, Shyamanand Jalan, and Safdar Hashmi, while regional practitioners like Thapliyal remain underrepresented. This study addresses that gap by critically examining his practice through the lens of folk-modern synthesis. His extensive engagement with Nautanki, a semi-operatic folk form characterized by music, satire, and popular appeal (Hansen, 1992), is of particular significance. At a time when the rise of cinema and television was eroding Nautanki's mass base, Thapliyal's experiments preserved its core while adapting it for contemporary urban audiences.

Methodologically, this paper combines primary and secondary sources. Interviews with Thapliyal's family members provide rare personal insights into his working methods, while published plays, reviews, and archival records situate his career within broader theatrical currents. Secondary scholarship on folk theatre (Hansen, 1992; Chaudhary, 2014) and Lucknow's cultural history further frames his interventions. This introduction positions Thapliyal not simply as a regional director but as a reformist innovator whose blending of folk traditions and modern stagecraft offers a unique model of cultural negotiation.

Biographical Background :

Dr. Urmil Kumar Thapliyal was born on June 2, 1943, into a family with literary and performative traditions. His grandfather, Shri Bhavani Dutt Sati Thapliyal,

was a pioneering playwright in the Garhwali dialect and this legacy of vernacular expression shaped Urmil's early exposure to language and performance. Although the family migrated from Garhwali to Lucknow, the cultural memory of the hills remained a subtle influence on his creative imagination. This dual grounding of vernacular heritage and urban modernity would later inform his theatre practice, where the intimacy of folk idioms coexisted with the rigor of proscenium staging.

Dr. Urmil Kumar Thapliyal was a distinguished theatre director, actor, writer and composer whose multifaceted contributions played a pivotal role in modernizing dialectical theatrical forms such as Nautanki, *Swang*, and *Bhagat*. He occupies a unique and enduring place in literature, art, and theatre. A recipient of some of the most prestigious honours, including the Central Sangeet Natak Akademi Award (Figure 1), the Uttar Pradesh Sangeet Natak Akademi Award and the Uttar Pradesh Hindi Sansthan Award, Dr. Thapliyal's career is marked by both artistic excellence and cultural innovation.



Figure-1 : Dr. Urmil Kumar Thapliyal receiving the Central Sangeet Natak Akademi Award.

Note :- (Photo courtesy of his family)

A poet, satirist, theatre designer, short story writer, playwright, lyricist, musician, and senior theatre director, Dr. Thapliyal's creative vision was rooted in tradition yet dynamically attuned to contemporary performance contexts. One of his most significant achievements was the revival and urban adaptation of Nautanki, often referred to as the "opera of North India". Nautanki combines music, dance, and melodrama to narrate tales ranging from romances to historical epics (Hansen, 1992). By the mid-twentieth century, however, Nautanki had begun to lose its mass appeal due to the spread of cinema. Dr Urmil Kumar Thapliyal modernized Nautanki to appeal to metropolitan audiences while carefully preserving its original aesthetic and performative structure. He worked in close collaboration with legendary Nautanki practitioners such as Gulab Bai, Kamlesh Lata, Master Pyare and Giriraj Kishore, ensuring that his innovations remained anchored in authentic practice.

In addition to his stage work, Dr. Thapliyal wrote and directed numerous plays for Akashvani (All India Radio) and Doordarshan, and represented Uttar Pradesh in various cultural tours organized by the state government. He earned a Ph.D. in dialect plays, reflecting his deep scholarly engagement with folk performance traditions. Under a Senior Fellowship from the Union Ministry of Culture, he compiled an unprecedented collection of Nautanki music scripts, safeguarding this oral tradition for future generations. Three of his plays have been published and several hundred performances of his directed works have been staged across India. Through innovative experiments and the integration of folk theatrical styles, Dr. Thapliyal

enriched Hindi theatre profoundly, restoring the fading Nautanki tradition and developing its urban form without compromising its original essence. (Joshi, 2017)

This synthesis of personal heritage, urban exposure and folk apprenticeship enabled Thapliyal to develop a unique artistic identity. His choice of satire as a recurring mode in both writing and direction reflected a deep connection with folk traditions such as Nautanki, Swang, and Bhagat, where humor and irony function as vehicles of social critique (Chaudhary, 2014). Rather than positioning himself only as a director of plays, Thapliyal consciously cultivated the persona of a cultural mediator, bridging regional forms with national discourses.

Theatrical Journey and the Revival of Nautanki :

An acute awareness of theatre shaped Thapliyal's theatrical practice as both a cultural inheritance and a contemporary social tool. Over five decades, he directed more than 150 plays ranging from historical dramas to musicals and dialect-based experiments. His oeuvre demonstrates consistent dialogue between *lokadharmi* (folk/people's theatre) and *natyadharmi* (stylized/classical theatre) modes, as described in the *Natyashastra*. Rather than privileging one over the other, Thapliyal blended them to construct aesthetically rich and socially resonant performances.

Dr. Urmil Kumar Thapliyal's most significant contributions to Hindi theatre lie in his revitalization of the Nautanki form, giving it a contemporary resonance while carefully preserving its traditional structure and performance aesthetics.

Traditionally performed in open-air settings and accompanied by harmonium, nagara, and sarangi, Nautanki relies heavily on song-dialogues (bahr-e-tavil) and exaggerated acting styles (Hansen, 1992; Katyal, 2017). By the mid-20th century, the form had declined due to the expansion of cinema and changing audience tastes. Thapliyal, however, perceived Nautanki not as an obsolete relic but as a flexible dramaturgical resource.

In the plays he wrote and directed, he made extensive use of folk performance styles, particularly Nautanki, as both a dramaturgical framework and a performative strategy. Beyond the stage, he regularly wrote drama columns for newspapers, using this platform to engage critically with theatrical developments and to experiment with dramatic forms. His understanding of performance extended beyond practice into theory; he systematically studied drama science, enabling him to weave everyday events into compelling theatrical narratives. (Ghildiyal, 2021)

A distinctive hallmark of his practice was his ability to integrate current events into his productions. News headlines from the morning papers often found their way into the evening's performances, making his theatre deeply responsive to the socio-political moment. Among his many works, one notable example is the play he wrote and directed on the life of the legendary Nautanki performer Gulab Bai, thereby acknowledging and preserving the contributions of pioneering female artists in this folk tradition. Reflecting on his approach to adapting folk theatre for urban contexts, he once remarked, "If a village

man wakes up at the crowing of a cock, a city man needs an alarm. I have tried to fit the crowing of the cock into the alarm clock in my drama."

For Thapliyal, Nautanki could serve as a powerful tool for experimental and modern theatre, but only under specific conditions. As he explained, "Nautanki can be used in experimental theater only when the director with modern theater awareness is familiar with the soul and essence of the drama, and on the other hand, enthusiasm for modern consciousness is aroused among the professional drama artists. There cannot be any third option." This philosophy resonated with the work of Habib Tanvir, whose collaborations with Chhattisgarhi folk artists had demonstrated decades earlier how traditional forms could be integrated into contemporary performance without losing their integrity. (Thapliyal, 2000)

Every director develops a distinctive creative process and presentational approach and Thapliyal's was marked by clarity, simplicity, and intuitive precision. His productions were free from unnecessary complexity, creating performances that were both accessible and artistically sophisticated. He considered the folk style understood as the *lokadharmi* mode, the counterpart to *natyadharmi* described in the *Natyasastra*, particularly effective for reaching general and discerning audiences. His directorial vision was characterized by a fluid interplay between music, comedy, and design, which he employed even within serious dramatic narratives to create a rich theatrical experience.

As a designer and actor, Thapliyal paid meticulous attention to stage movement and spatial composition. Actors' positions for standing, sitting, walking and performing actions were determined through their intuitive direction or by allowing performers a degree of creative autonomy. His approach fostered a collaborative environment, where performers of both major and minor roles were guided with care and without coercion, reflecting his pedagogical sensibility and his deep understanding of performance craft.

Among his many productions, *Harish Channar Ki Ladai* (Figure-2) stands out as one of his most acclaimed and frequently performed plays, where he employed the "grammar of Nautanki" including musical interludes, chorus-like narrations and satirical couplets while embedding contemporary narratives of corruption and social struggle. This hybrid strategy allowed audiences to engage with urgent issues through a form they recognized culturally, thereby affirming Nautanki's relevance in a modern urban context. Praised for both its innovative direction and its compelling narrative, the production has been staged more than a hundred times across India, representing Lucknow theatre on major national platforms such as *Bharat Rang Mahotsav* (National School of Drama, Nandikar Natya Mahotsav(kolkata), Delhi International Arts festival, *Rashtriya Lok Natya Utsav* (Delhi), *Rang Sangam Natya Samaroh* (Delhi) and *Paschim Kshetra Natya Samaroh* (Goa), among others. Developed under the Central Sangeet Natak Akademi's "Young Director Promotion Scheme", the Akademi committee selected the play for national presentation that year.

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

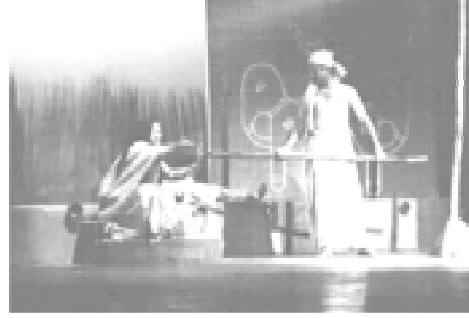


Figure-2 : *Play Harish Channar ki Ladai*, directed by Dr. Urmil Kumar Thapliyal.

Note : (Photograph courtesy of his family)

For this production, Thapliyal received the Bhartendu Harishchandra Puraskar from the Uttar Pradesh Hindi Sansthan in 2001 and later, in recognition of his broader contributions to Hindi literature and theatre, he was honoured with the Kala Bhushan Samman by the Government of Uttar Pradesh in 2008. Reflecting on the play's structure, Thapliyal observed, "*This drama has only the grammar of Nautanki and the music of Nautanki (Kanpur and Hathras). The story is from today, so it became more acceptable.*" His ability to blend the formal elements of traditional Nautanki- its music, rhythm and dramaturgical devices-with contemporary themes exemplifies his hybrid theatrical vision, where the folk and the modern coexisted in dynamic dialogue.

Directional Style and Design Aesthetics :

Unlike many of his contemporaries who pursued psychological realism, Thapliyal cultivated a style marked by clarity, accessibility and a conscious avoidance of density. Family members recall his rehearsals as collaborative spaces where actors were encouraged to discover their blocking and gestures, fostering discipline and creative freedom (Personal Interview, April 2024).

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11 , 2025)
Peer-Reviewed Journal

His scenography often drew from folk motifs, costumes and props elements aligned with Ahirya abhinaya of the Natyashastra yet adapted them to modern stages without diminishing their vernacular energy.

Family accounts recall how the rehearsals were filled with singing and rhythmic improvisation, actors often practicing with harmonium and nagara to preserve Nautanki's sonic vitality (Personal Interview, April 2024). The production's touring success across India underscored its dual achievement: it was culturally recognizable to North Indian audiences yet thematically urgent for contemporary times. This balance of folk form and social relevance epitomizes Thapliyal's model of theatre as both inheritance and intervention.

This design sensibility was particularly evident in his use of music. In several productions, he reworked traditional Nautanki ragas to suit contemporary lyrics, thereby preserving the sonic identity of the form while making it accessible to younger audiences (Chaudhary, 2014). Such choices positioned him as a director and a cultural archivist, ensuring continuity between tradition and modernity.

Range of Productions and Recognition :

The breadth of Thapliyal's work extended beyond Nautanki. Productions such as Andha Yug, Yahudi ki Ladki, and Kanupriya revealed his ability to handle classical and modern texts with equal sensitivity. However, even in these works, folk idioms remained present, whether through song interludes, the inclusion of comic sutradhars or the stylized use of chorus. His play Harish Channar ki Ladai became emblematic of this style, touring nationally and earning both the Bhartendu

Harishchandra Puraskar and recognition under the Sangeet Natak Akademi's Young Director Promotion Scheme. (Joshi, 2021)

Through his theatre group Darpan and collaborations with institutions like the Bhartendu Natya Akademi and Uttar Pradesh Sangeet Natak Akademi, Thapliyal also established a pedagogical legacy. His workshops introduced students and young actors to the performance logic of Nautanki its rhythm, improvisation, and heightened emotionality thereby ensuring its survival in institutional contexts. This educational contribution is especially critical in Lucknow, where proscenium-based drama often overshadows folk traditions.

Conclusion :

Dr. Urmil Kumar Thapliyal's career embodies the paradoxes and possibilities of modern Indian theatre. Rooted in the cultural soil of Uttar Pradesh, he worked at the intersection of folk vitality and institutional modernity. His revival of Nautanki through productions such as Harish Channar ki Ladai demonstrated that folk performance was not merely an archival curiosity but a living resource capable of addressing corruption, inequality and political cynicism in late 20th-century India. In this respect, his work paralleled Habib Tanvir and Bansi Kaul, situating him firmly within the lineage of Indian directors who reimagined folk traditions for contemporary critique.

Critically, his legacy lies in resisting binaries: between lokadharmi and natyadharmi, folk and modern, tradition and reform. By blending improvisational singing, stylized gesture and proscenium discipline, he offered a model of theatre that was accessible without being simplistic,

socially urgent without being propagandistic. This hybridity continues to resonate in contemporary debates on how Indian theatre can honor its traditions while engaging with global modernity.

Remembered by his family as a director of simplicity and clarity, and by his students as a mentor who emphasized rhythm, satire and collaboration, Thapliyal's contribution transcends individual productions. It lies in his cultural vision: that theatre, whether in the form of Nautanki or modern drama, must remain a mirror (darpan) of its time. For scholars of theatre and practitioners invested in folk-modern synthesis, his work offers a critical archive of strategies, successes and ongoing questions about how theatre sustains relevance in a rapidly changing cultural landscape.

References :

1. Bhattacharya, S. (2011). *Habib Tanvir and folk theatre innovations*. New Delhi: Oxford University Press.
2. Chaudhary, R. (2014). Musical innovations in contemporary Nautanki. *Journal of Indian Theatre Studies*, 9(2), 45–62.
3. Ghildiyal, U. (2021, September). Regional reporter ki Jeevani shakti. *Regional Reporter*, 14(6), 5.
4. Hansen, K. (1992). *Stages of desire: Nautanki and North Indian folk theatre*. New Delhi: Sage.
5. Joshi, K. H. (2017). *Kalā yatra*. Almora: Mohan Upreti Lok Sanskriti Kala Evam Vigyaan Shodh Samiti.
6. Joshi, N. (2021, September). Sohanlal se Urmil tak. *Regional Reporter*, 14 (6), 12–16.
7. Katyal, A. (2017). *Nautanki: Performance, music, and modernity*. Delhi: Routledge.
8. Personal Interview with Thapliyal Family. (2024, April). Lucknow.
9. Thapliyal, U. K. (2000). Ateetjeevi bhavishya ka vartmaan. In R. N. Bohre & V. Pandit (Eds.), *Loknatya Nautanki: Kuch prashn* (pp. 11–14). Lucknow: Uttar Pradesh Sangeet Natak Akademi.



Rain Invoking Song (Boron Dahanir Ela): Bishnupriya Manipuri Folk Song in North-East India

Ashu Kanti Sinha

Research Scholar

Department of Instrumental Music (Flute)

Faculty of Performing Arts BHU, Varanasi

Dr. Rakesh Kumar

Supervisor

Department of Instrumental Music (Flute)

Faculty of Performing Arts BHU, Varanasi

Keywords :

Bishnupriya Manipuri, Boron Dahanir Ela, rain-invoking song, North-East India, oral tradition, folklore, ritual performance, ecology, Sorarel, cultural identity.

Introduction :

The rich mosaic of India's folk traditions has long reflected the intimate relationship between human communities, their environment and their spiritual imagination. Among these traditions, the Bishnupriya Manipuri folk song Boron Dahanir Ela also known as the "Rain Invoking Song" occupies a unique place. Rooted in the cultural fabric of the Bishnupriya Manipuri community of North-East India, this song has been transmitted orally from generation to generation since the mid-15th century.¹

Boron Dahanir Ela is not merely a lyrical composition but a ritualistic performance addressed to Sorarel, the king of gods, believed to possess the divine ability to summon rainfall. In an agrarian society where survival depended heavily on monsoon patterns, the invocation of rain through music was not only a spiritual act but also an economic necessity.²

This paper explores the historical, cultural and ritualistic dimensions of Boron Dahanir Ela or Rain Invoking Song. The song's textual content, its mythological underpinnings and its social functions will be examined to understand how this folk tradition encapsulates the Bishnupriya Manipuri worldview.

Research Problem :

Despite its antiquity and cultural significance, Boron Dahanir Ela has received limited scholarly attention compared to mainstream Indian folk traditions. The Bishnupriya Manipuri community itself has often been marginalized in broader South Asian cultural studies.³ Overshadowed by larger ethnic groups of the region. Consequently, important questions arise:

- How has Boron Dahanir Ela survived as an oral tradition across centuries?

- What are the symbolic, religious, and ecological functions embedded in the song?
- How can the study of this song help us understand the intersection of folklore, environment, and identity in North-East India?

Objectives of the Study :

The paper pursues the following objectives :

- To document and analyze the text of Boron Dahanir Ela in its historical and cultural context.
- To examine the ritualistic role of the song in invoking rain and its ecological symbolism.
- To interpret the mythological narrative embedded within the song and its relation to Bishnupriya Manipuri identity.
- To assess the social significance of the song in sustaining community cohesion during crises such as famine.
- To situate the study within larger debates on folk traditions, continuity, and reinvention in Indian culture.⁴

Hypothesis :

It is hypothesized that Boron Dahanir Ela functions simultaneously on three levels: as a spiritual invocation to divine forces, as a social practice fostering unity and resilience during environmental crises and as a cultural repository preserving Bishnupriya Manipuri history and myth. The song's survival into the present suggests that oral traditions, when tied to ecological and communal needs, possess remarkable endurance and adaptability.⁵

Relevance of the Study :

The relevance of this study is manifold. Firstly, it contributes to the preservation and scholarly recognition of Bishnupriya Manipuri folk traditions, a community whose heritage is often overlooked. Secondly, it underscores the ecological wisdom embedded in folk practices, demonstrating how oral traditions act as cultural responses to environmental uncertainties.⁶ Thirdly, it emphasizes the intersection of folklore and identity, showing how communities narrate resilience through myth and ritual. Finally, in a global context of climate change, rain-invoking rituals remind us of humanity's age-old dependence on nature and the cultural strategies devised to negotiate with it.

Research Methodology :

This paper adopts a qualitative research methodology. The primary source is the documented text of Boron Dahanir Ela as presented by Dr. K. P. Sinha in *The Bishnupriya Manipuris* (1984).⁷ The methodology involves textual analysis of the song's verses, close reading of its narrative elements and contextual interpretation within the frameworks of folklore studies, cultural anthropology and ecological history. Secondary sources include scholarly works on Bishnupriya Manipuri culture, folk traditions of North-East India and theoretical writings on oral literature. Comparative insights are drawn from other rain-invoking traditions in India and beyond to situate Boron Dahanir Ela within a wider ethnographic perspective.

Discussion :

1. Historical Context of Bishnupriya Manipuri Folk Tradition :

The Bishnupriya Manipuri community traces its cultural lineage to both Indo-Aryan and Tibeto-Burman influences, with a distinct linguistic and cultural identity.⁸ Folk traditions evolved in response to agrarian life, seasonal rhythms and historical conflicts with neighboring kingdoms. The song Boron Dahanir Ela, composed around 1450 A. D., reflects this milieu: it emerges in a time of political struggles, ecological vulnerability and spiritual dependency on divine intervention.

2. Textual Themes of the Song :

The song's eight verses reveal multiple layers: invocation of Sorarel to relieve drought; references to Ravana's lineage; astrological explanations for rainfall; narratives of familial conflict (King and Chamei) leading to exile; communal joy upon rainfall expressed through dance and celebration.⁹

This blending of myth, ritual, and everyday life shows the song's role as both story and ceremony.

3. Ritualistic Performance :

Traditionally, Boron Dahanir Ela was sung at night in chorus by both men and women during times of drought. The communal aspect of the performance fostered solidarity, while the ritual structure symbolized collective prayer. Singing together reinforced community bonds and generated hope, even if rain did not immediately follow.¹⁰

4. Ecological Symbolism :

Rain is not only a meteorological phenomenon but also a cultural metaphor. In Boron Dahanir Ela, rain symbolizes divine grace, fertility and restoration of order. The absence of rain indicates divine

displeasure, social disharmony and ecological imbalance. By embedding ecological concerns within a religious framework, the song reflects how traditional societies integrated environmental stewardship with spiritual practice.¹¹

5. Gender and Voice in the Song :

Women play an active role in the song, both as subjects and performers. Figures like Beti and the maid-servant embody resilience and sacrifice, while female singers in the ritual contribute to the chorus of invocation. This dual presence of women as characters within the narrative and as participants in performance underscores their centrality in sustaining both family and community life.¹²

6. Myth and History Interwoven :

The narrative of Chamei's exile, Beti's loyalty, and the ensuing famine merges mythological motifs with historical memory. Such blending is characteristic of oral traditions, where boundaries between history and legend blur.¹³

7. Comparative Perspective :

Rain-invoking rituals are not unique to Bishnupriya Manipuri culture. Across India, rituals like Varun Yajna in Hindu tradition, frog marriages in Assam, or songs dedicated to Indra in Vedic times reflect similar ecological anxieties.¹⁴ Globally, Native American rain dances and African rain chants share striking parallels. What distinguishes Boron Dahanir Ela is its integration of epic narratives, local myth, and socio-political memory into a single ritualized folk song.

Results and Conclusion :

The study of Boron Dahanir Ela reveals that the song is more than a cultural

curiosity it is a living testimony to the resilience of oral tradition. Three major findings emerge:

- **Spiritual-Ecological Nexus :** The song embodies the interconnectedness of religion and ecology. Rain is invoked not only for agricultural survival but also as a symbol of divine-human reciprocity.
- **Community Solidarity:** The communal performance of the song during famine demonstrates how folklore functions as a mechanism of social cohesion, providing psychological comfort and shared purpose.
- **Cultural Identity:** The preservation of the song underscores the Bishnupriya Manipuri community's commitment to sustaining its heritage despite historical marginalization.¹⁵

In conclusion, Boron Dahanir Ela stands as a remarkable instance of how folklore serves as history, prayer and ecological wisdom. Its continued relevance lies not only in cultural preservation but also in its reminder of humanity's enduring dependence on nature. In an age of climate crisis, revisiting such traditions may inspire new ways of thinking about resilience, sustainability, and cultural continuity.

References :

1. Handoo, Jawaharlal. *Folklore: An Introduction*. Mysore: Central Institute of Indian Languages, 1989.
2. Narayan, Badri. *Women Heroes and Dalit Assertion in North India: Culture, Identity and Politics*. New Delhi: Sage, 2006.
3. Ramanujan, A. K. *Folktales from India: A Selection of Oral Tales from Twenty-two Languages*. New York: Pantheon, 1991.

4. Sarma, Satyakam. "Rituals of Rain Invocation in Assam: A Study of Folk Beliefs and Practices." *Indian Folklore Research Journal*, vol. 6, no. 1, 2006, pp. 25–42.
5. Sinha, K. P. *The Bishnupriya Manipuris*. Calcutta: Firma KLM, 1984.
6. Smith, John D. "Oral Traditions and Ecology: A Global Perspective." *Journal of Folklore Studies*, vol. 45, no. 3, 2010, pp. 201–220.

Footnotes :

1. The Bishnupriya Manipuri community preserves its cultural memory primarily through oral transmission, making songs like Boron Dahanir Ela vital for historical reconstruction (Sinha 13).
2. Comparable traditions include the Vedic hymns to Indra and Varuna, both invoked for rain and fertility (Handoo 54).
3. Marginalization is visible in the relative absence of Bishnupriya Manipuris from mainstream Indian cultural policy and documentation (Narayan 122).
4. Folklore studies often emphasize how traditions sustain cultural continuity while adapting to new contexts (Smith 205).
5. This echoes Ramanujan's argument that oral traditions survive by being "ever in flux, yet ever the same" (Folktales from India 21).
6. Folklore encodes ecological knowledge, teaching communities to interpret droughts, floods, and natural cycles (Sarma 30).
7. Sinha's *The Bishnupriya Manipuris* remains the foundational ethnographic text on this community.
8. Linguists identify Bishnupriya Manipuri as an Indo-Aryan language with heavy Tibeto-Burman influence (Sinha 55).
9. The verses represent mythology, history, and ritual woven into one song text.
10. The collective singing resembles other communal rituals in North-East India, such as the Assamese Bihu songs (Sarma 34).

11. Environmental symbolism in folklore often encodes moral lessons about balance between humans and nature (Smith 212).
12. Women's roles in performance traditions of India are often undervalued, though they remain central as both narrators and transmitters (Narayan 75).
13. Oral traditions rarely distinguish strictly between "history" and "legend"; both serve as cultural memory (Ramanujan 19).
14. Frog marriages in Assam, still performed during drought, reflect continuity of ecological rituals across regions (Sarma 27).
15. The persistence of Boron Dahanir Ela illustrates how marginalized communities assert cultural resilience through performance (Handoo 61).



हिंदी सिनेमा जगत में महिला कलाकारों द्वारा गाए ब्रज के लोकगीत'

बेबी शर्मा

संगीत विभाग

डी. जी. पी. जी. कॉलेज,

सिविल लाइन्स, कानपुर

संगीता श्रीवास्तव

संगीत विभाग

डी. जी. पी. जी. कॉलेज,

सिविल लाइन्स, कानपुर

प्रस्तावना : सर्वप्रथम 'ब्रज' को प्रणाम।

'ब्रज' शब्द का अर्थ: ये शब्द संस्कृत भाषा के 'ब्रज' धातु से बना है महर्षि पट्टिनी के अनुसार ये ब्रज शब्द का अर्थ 'गतिशीलता' को मानते हैं ब्रज शब्द का हमें वेदिकाल से ग्रंथों से प्राप्त होता है। ऋग्वेद में इसका अर्थ गोशाला, यजुर्वेद में 'गोष्ठा' माना गया है। प्रसिद्ध विद्वान् अमरसिंह जी ने अपनी रचना 'अमरकोश' में 'ब्रज' शब्द का अर्थ समूह माना है। भगवत गीता में 'मामेकम शरणं ब्रज' माना गया है। वर्तमान में ब्रज को ग्वालों का स्थान माना गया है।

संक्षिप्त रूप में बात करते हैं। सिनेमा के इतिहास की, सिनेमा और हिंदी सिनेमा इसकी शुरुआत कोई लगभग वर्ष 1895 में पेरिस में हुई थी जब उस समय के दो भाइयों जिन्हें लुमियरे बंधुओं के नाम से भी जाना जाता है इन्होंने अपना पहला सार्वजनिक रूप से एक चलचित्र प्रस्तुत किया जिसको देख जनता आश्चर्यचकित रह गई कि अभी तक सिर्फ हमारे लिए फोटो या चित्र ही देखना बड़ी असहज बात थी लेकिन ये चलता हुआ चलचित्र उनकी कल्पना से परे था। बात पेरिस देश से शुरू होती है फिर अगले वर्ष 1996 लंदन में चलते हुए चलचित्र

की तस्वीरों ने धूम मचा दी थी। इन दोनों भाईयों का काम जब अपने देश भारत देश में मुंबई में दिखाया गया तो ये बड़ा ही अद्भुत नजारा था। भारतीयों के लिए चुनौती पूर्ण था, फिर भारत में दादा साहब फाल्के जी ने अपनी खुद की बनाई हुई मूक फिल्म राजा हरिश्चंद्र बनाई ये भारत देश की पहली मूक फिल्म थी। जो 3 जून वर्ष 1913 में आई।

जब भी हमारा शरीर दिमाग थका होता है तो हम अधिकतर या तो एकांत में शोर से सबसे दूर बैठना पसंद करते हैं या फिर परिवार के साथ या अकेले कोई अच्छी फिल्म देखते हैं फिर वो घर पर टीवी का छोटा पर्दा हो या फिर घर के बाहर सिनेमा का बड़ा पर्दा। बात सिनेमा की करते हैं अगर कोई फिल्म ब्रज की संस्कृति को दर्शाती हुई तथा ब्रज के लोकगीत से सराबोर हो जिसमें विभिन्न रिश्तों के रंग को चल चित्रित किया गया हो, इसमें भी जब महिलाओं के मधुर मधुर कण्ठ की ब्रज भाषा में गाए हुए लोकगीत सिनेमा में सुनने को मिले तो तो सोने पर सुहागा सा लगता है। उत्तर प्रदेश को लोकगीतों का खजाना कहा जाता है।

लोकगीत का उद्गम : लोकगीत दो शब्दों से मिलकर बना है। लोक + गीत अर्थात् दूसरे शब्दों में

कहें तो परंपरागत गीत, लोकगीत हमारी संस्कृति का परिचय देते हैं। यह लोकगीत शब्द का उद्गम तो प्राचीन काल से ही माना जाता है। जब से मानव की तथा मानव भावनाओं का आविर्भाव हुआ। जब से मानव ने एक दूसरे को समझने में स्वयं को समर्थ पाया, तब से ही लोकगीत भी जन्में। बात करते हैं अपने ब्रज के लोकगीत के बारे में। ब्रज के लोकगीतों का क्रम चैत्र (मार्च) मास में प्रारंभ होकर के फाल्गुन मास तक चलता है। इसी प्रकार कार्तिक स्नान का पर्व भी बड़े उत्साह के साथ 40 दिनों तक मनाया जाता है। स्त्रियां प्रतिदिन यमुना मां को प्रणाम कर स्नान करती हैं। फिर 'श्री राई दामोदर' जी की पूजा अर्चना करती हैं। यहां राई शब्द का अर्थ श्री राधा जी से है। बंगला भाषा में राई शब्द को प्रयोग श्री राधा जी के लिए किया जाता है और पूजा में लोकगीत गाती हैं। लोकगीत की मूल भाषा और मात्रा को जान पाना आसान नहीं होता है किंतु थोड़ा ध्यान देने पर समझा जा सकता है। महिला कलाकारों की शब्द की अभिव्यक्ति उसमें निहित रहती है।

'लोकगीत' अर्थात् लोक (जनता द्वारा रचित गीत) / मानव द्वारा रचे गए गीत। इसमें संस्कार गीत, सोहर गीत, विवाह गीत, झांझी गीत, जातीय गीत, ऋतु गीत, कजरी, बधाई गीत, बारहमासा, विरह, भक्ति गीत, कहारवा लोक गीत (कहार जाती) विवाह के समय के लोकगीत, नौका झक्कड़, नाई समुदाय का, चनैनी लोकगीत, लोकगीत, चैती गीत, पर्व गीत, गाथा गीत, क्षेत्रीय गीत, पेशा गीत / श्रम गीत (किसान के या श्रम करने वालों) इत्यादि आते हैं। लोकगीत के सम्बन्ध में महात्मा गांधी जी ने भी कहा है।

**'लोकसंगीत में पृथ्वी गाती है, पहाड़ गाते हैं।
नदियां बहती हैं और फसलें गाती हैं।'**

ब्रज शब्द का अर्थ तथा ब्रज के कुछ महत्वपूर्ण स्थानों के नाम : ब्रज शब्द का अर्थ है

मवेशियों को चारा खिलाने का स्थान, गोशाला। यह शब्द संस्कृत का है। राजस्थान के डींग, भरतपुर इत्यादि ये जगह भी ब्रज भूमि में आती हैं।

ब्रज मंडल के अंतर्गत प्रसिद्ध क्षेत्र के नाम हैं :

1. **मथुरा** : श्री कृष्णजी का जन्म स्थान।
2. **गोवर्धन** : पर्वत यहां अपनी अपनी कनिष्ठिका अंगुली पर श्री कृष्ण जी ने गोवर्धन पर्वत उठाया था।
3. **बरसाना** : ये श्री राधा जी का जन्मस्थान है।
4. **वृंदावन** : श्री तुलसी जी का नाम वृंदा भी है यहां तुलसी जी का धाम है अर्थात् तुलसीवन भी कह सकते निधिवन भी कहे सकते हैं।
5. **नन्द गांव** : जहां नन्द बाबा यशोदा के घर पले बड़े हुए श्री कृष्ण जी।
6. **गोकुल** : यहां श्री कृष्णजी का बचपन बीता है।

ब्रज के प्रसिद्ध लोकगीतों के नाम हैं- लांगुरिया, रसिया, फाग, होरी, झूला, धमार आदि^{१६} यह बहुत प्रचलित ब्रज के लोकगीत हैं। फिल्मों में ब्रज के रसिया लोकगीत को अपनाया गया है। उदाहरण.

गीत के बोल हैं :

'आज बिरज में होरी रे रसिया'।

रसिया, होरी, लांगुरिया इत्यादि लोकगीत ब्रज के बड़े मोहक लोकगीत हैं।

वर्ष 1956 में आई फिल्म 'जागते रहो' का गीत जागो मोहन प्यारे राग भैरव पर आधारित है। यह गीत लताजी का गाया हुआ है।

ब्रज के लोकगीतों की एक बहुत ही विस्तृत व्याख्या की जा सकती है जैसे कि श्री कृष्ण भक्ति के लोकगीत, श्री राधा कृष्ण के प्रेम के लोकगीत, ब्रज

के श्री गोपेश्वर महादेव (भोलेनाथ बाबा) के लिए लोकगीत, श्री कृष्ण राधा के रास के लोकगीत, श्री तुलसी मैया जी के लोकगीत, श्री भगवान जी को भोग खिलाने का लोकगीत इत्यादि। इसके अतिरिक्त अन्य लोकगीत भी हैं। जैसे- उनकी सखा मंडली के लोकगीत, साधु-संतों के लोकगीत, गऊवों को चराने जाने को लोकगीत, गोधूलि के लोकगीत अर्थात् (जब शाम को गैया मईया के घर वापस आने के) लोकगीत, पनघट के लोकगीत, बांसुरी के लिए लोकगीत, गोपियों के लिए लोकगीत, ग्वालों के लिए लोकगीत, वृक्ष के लोकगीत, गिरिराज पर्वत जी के लिए लोकगीत, श्री जमुना मईया के लोक गीत, यशोदा मईया कान्हा के लोक गीत। ब्रज की संस्कृति तो धन्य है जहां, पवित्र ब्रज भूमि के लिए भी लोकगीत पर्वत, घाट, जल कुंड के लोकगीत इत्यादि इत्यादि सुनने को मिल जाते हैं।

अब बात करते हैं महिला कलाकार गायिकाओं की जिन्होंने फिल्मों में अपनी मधुर आवाज देकर ब्रज के लोकगीतों में निराले सुरीले सुर और रंग भरे और इन गीतों को जनमानस के लिए यादगार बना दिया। इनमें कुछ प्राचीन महिला गायक कलाकार के नाम प्रसिद्ध हैं और उनके द्वारा सिनेमा अर्थात् फिल्मों में उनके गाय हुए ब्रज के लोकगीतों का फिल्मों में प्रयोग, फिल्मों का नाम और महिला गायक कलाकार का नाम, उन प्रसिद्ध गीतों के नाम व महिला कलाकारों के नाम विवरण इस प्रकार है। सर्वप्रथम मीरा बाईजी को कौन भूल सकता है, जो कि एक सच्ची कृष्ण भक्त साधक थीं। उनकी लिखी रचनाएं व पद बहुत प्रसिद्ध हैं। उनके बाद एक अन्य महिला भक्त ताज बेगम हुईं जिनकी रचना धमार गीत आज भी होरी के त्यौहार पर ब्रज के प्रत्येक मंदिर में कानों में गूंजता है। उसी गीत से होरी खेलना शुरू होता। उनका लिखा एक अन्य प्रसिद्ध गीत 'सुनो दिल जानी मेरे दिल की कहानी', अधिक प्रसिद्ध धमारगीत की रचना रही है। कहते हैं धमार गीत की अंतिम पंक्तियां

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

स्वयं श्री कृष्णजी ने लिखी थीं ताज बेगम ने जब प्राण त्यागे तब ये लिखी थीं। ऐसी महिला कलाकार थीं ताज बेगम जी।

अब बात करते हैं सिनेमा में महिला कलाकार द्वारा गाए गए ब्रज के लोकगीतों की यूं तो बहुत सी फिल्मों बनीं जिनमें कृष्ण राधा जी का वर्णन किया गया। किंतु वर्ष 1982 में आई फिल्म का नाम 'ब्रजभूमि' ये फिल्म ब्रज भाषा में थी। इसमें 2 लोकगीत थे। इसका एक लोकगीत ब्रजभूमि को समर्पित था उस लोकगीत के बोल हैं।

**चारों धामों से निराला ब्रज धाम के दर्शन
करि लेव जी हो दर्शन करि लेव सुमिरन करी
लेव वंदन करी लेव जी। रटे राधा जी बिहारी
जू को नाम के दर्शन करि लेव जी**

यह गीत प्रत्यक्ष रूप से तो श्री रविन्द्र जैन जी ने गाया है किंतु पार्श्व गायन में महिलाओं के गायन की मधुर स्वर लहरियां अपना अलग ही रंग बिखेरती हुई सुनाई देती हैं। महिला कलाकार गायिकाओं ने अत्यंत सुमधुर संगत की है रविन्द्र जैनजी के साथ अच्छी प्रस्तुति दी है।

इस फिल्म का एक अन्य लोकगीत है जो बिहार की कोकिला कही जाने वाली महिला गायक कलाकार शारदा सिन्हा जी के द्वारा गाया गया। गीत क बोल हैं।

राम धनिया ओ राजा राम धनिया

एक यह है चुलबुला सा हंस्यप्रधान गीत है।

इसके अतिरिक्त अन्य गीतों कि बात करें तो फिल्म मीरा वर्ष 1979 में आई थी इसका अत्यधिक प्रसिद्ध लोकगीत श्याम म्हाणे चाकर रखो जी इस लोकगीत को आवाज दी महिला गायक कलाकार वाणी जयराम जी ने, बड़ा ही अद्भुत भजन है। वाणी जयराम जी द्वारा गाए अन्य जीव में प्रमुख गीत हैं

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।

बसो मेरे नयनन में नंदलाल छ इत्यादि।

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

जब महाभारत चलचित्र बनाया गया तब इसका प्रसिद्ध लोकगीत विनती सुनिए नाथ हमारी, इस गीत को आवाज दी श्रीमती साधना सरगम जी ने।

प्रभुजी मेरे अवगुण चित ना धरो यह प्रसिद्ध लोकगीत भजन कविता कृष्णमूर्ति जी के द्वारा गाया गया है।

फिल्म सुर संगम का गीत जाऊं तोरे चरण कमल पर बारी लता मंगेशकर जी और राजन मिश्रा जी के द्वारा गाया गया है।

फिल्म देवदास का गीत ढाई श्याम रोक लई सर से मोरी चुनरी गई सरक सरक सरक प्रसिद्ध लोकगीत है। जो महिला गायक कलाकार कविता कृष्णमूर्ति जी के द्वारा गाया गया इस गीत में कान्हा राधा जी की रास लीला का वर्णन है।

वर्ष 1955 में आई फिल्म झनक झनक पायल बाजे। इस फिल्म का प्रसिद्ध गीत कान्हा राधाजी पर है जो कि लता मंगेशकर जी और अन्य के द्वारा गाया गया है।

वर्ष 1970 में आई फिल्म, जिसका नाम गीत था तथा बोल थे बांसुरी बनाई के जो कि लता मंगेशकर जी के द्वारा गाया गया है।

वर्ष 1967 में शागिर्द फिल्म आई जिसका प्रसिद्ध गीत कान्हा आन पड़ी मैं तेरे द्वारष्ट बहुत प्रसिद्ध हुआ था। यह गीत भी लता मंगेशकर जी के द्वारा गाया गया है। इसके अतिरिक्त वर्ष 1986 में आई फिल्म 'कल्ल' का लोकगीत जिसके बोल थेष्ट

मोर रूप रंग मोरा अंग अंग होल हौले डोले कान्हा तेरे संग संग

यह गीत भी लता मंगेशकर जी के द्वारा गाया गया है। जो कि ब्रज रासलीला के बारे कहता है।

प्रसिद्ध फिल्म मुगले आजम का लोकगीत मोहे पनघट पे नंद लाल छेड़ गयो रे भी लता मंगेशकर जी का गाया हुआ है।

वर्ष 1999 में आई फिल्म हम साथ साथ हैं का प्रसिद्ध गीत

मईया यशोदा ये तेरा कन्हैया पनघट पे मेरी
ये पकड़े है बाइयाँ अनुराधा पौडवाल जी के
द्वारा गाया गया। बंसी के लोकगीत में प्रसिद्ध
गीत है सौदागर फिल्म का गीत

नटखट बंसी वाले गोकुल के राजा मेरी
अंखियां तरस गई अब तो आजा

एक अन्य प्रसिद्ध लोकगीत है, जो राग चारुकेसी में है और दादरा ताल में है गीत के बोल हैं।

श्याम तेरी बंसी पुकारे राधा नाम लोग करें मीरा को यूं ही बदनाम इत्यादि अनेकों ब्रज के लोकगीत सिनेमा में उपयोग किए गए।

निष्कर्ष : इस प्रकार हमने देखा कि हमारे ब्रज के लोकगीतों में उत्तर प्रदेश के अन्यत्र राज्य की महिला गायक कलाकारों ने भी श्री कृष्ण राधा की भक्ति में भाव विभोर होकर कितनी प्यारी और मधुर आवाजें सिनेमा जगत को प्रदान कर के अपने ब्रजमंडल की सेवा की हैं। धन्य हैं हमारे प्रभु श्री कृष्ण राधा रानीजी और धन्य है हमारा है 'ब्रजधाम'।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. संगीत बिसारद, लेखक लक्ष्मी नारायण गर्ग जी।
2. जागरण जोश 6 अक्टूबर 2023।
3. आकाश वाणी दूरदर्शन ब्रज के लोकगीत।
4. सुनीति आचार्य जी।
5. डॉ. वंदना सिंह : ब्रज की संगीत परंपरा।
6. ज्ञानेश उपाध्याय जी: हिंदी सिनेमा और उसका अध्ययन।



चरकुला : घूंघट में कृष्ण भक्ति का सौंदर्य

भावना मिश्रा

शोध छात्रा, चित्रकला विभाग,
दृश्य कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

डॉ. महेश सिंह

सह आचार्य, चित्रकला विभाग,
दृश्य कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

सारांश :

यह शोध पत्र उत्तर प्रदेश की ब्रज की एक अनूठी एवं प्रतिष्ठित लोक नृत्य कला चरकुला का विश्लेषण करता है। चरकुला नृत्य उत्तर प्रदेश के ब्रज मंडल (मथुरा, वृंदावन) की एक विशिष्ट और लोकप्रिय अनुष्ठानिक कला है। यह भारतीय संस्कृति के प्रजात कलेवर का महत्वपूर्ण अंग है। यह नृत्य ब्रज की लोक परंपरा का केंद्र बिंदु है यहां राधा रानी (किशोरी जी) के प्रति सहज श्रद्धा और भक्ति को कलात्मक अभिव्यक्ति मिलती है। चरकुला का प्रदर्शन मुख्य रूप से होली के तीसरे दिन किया जाता है इस नृत्य का पौराणिक आधार भगवान कृष्ण की प्रिय राधा के जन्म उत्सव की कथा से जुड़ा है। कहा जाता है कि राधा रानी के जन्म का शुभ समाचार सुनकर उनकी नानी ने सिर पर एक विशाल चक्र (चरकुला) पर 108 दीपक जलाकर नृत्य किया था। यह सहज भावुक अभिव्यक्ति ही कालांतर में चरकुला नृत्य के रूप में स्थापित हुई। विशेष रूप से चरकुला मथुरा के मुखराई गांव में किया जाता है जिसे राधा रानी का ननिहाल माना जाता है इसके अलावा यह रामपुर और उमरी गांव में भी किया जाता है। नृत्य का नाम ही इसकी विशेषता बताता है इस विषय के माध्यम से स्पष्ट करना चाहती हूं कि आपका मुख्य ध्यान केवल नृत्य तकनीकी नहीं, बल्कि घूंघट के माध्यम से व्यक्त होने वाले कृष्ण भक्ति की संस्कृतिक आयाम पर भी है। यह नृत्य ब्रज की भक्ति परंपरा का सशक्त प्रतीक है और इसको संरक्षण की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द :

चरकुला, ब्रज लोक नृत्य, घूंघट, कृष्ण भक्ति, राधा जन्म, संस्कृत सौंदर्य, दीपस्तंभ नृत्य।

ब्रज की लोक-परंपरा में चरकुला का स्थान :

भारतीय लोक कलाओं में उत्तर प्रदेश की ब्रज के नृत्य को दो श्रेणी में बांटा जा सकता है। औपचारिक नृत्य जो मंच पर दिखाया जाता है, वृंदावन, गोवर्धन) की कलाएं, एक विशिष्ट स्थान और अनौपचारिक नृत्य या अनुष्ठानिक नृत्य जो आम जनता के विभिन्न अवसरों पर दिखाया जाता है। यह क्षेत्र सदियों से श्री कृष्ण और राधारानी की लीलाओं पर आधारित भक्ति और श्रद्धा का केंद्र इसी दूसरी श्रेणी का सबसे लोकप्रिय लोक नृत्य

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

153

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

चरकुला है। इस नृत्य कामहत धार्मिक लोकाचार और साधारण श्रद्धा पर आधारित है, जहाँ नर्तकियाँ 'किशोरी जी' (राधारानी) के नाम का आश्रय लेकर भक्ति के चरम आनंद रस को अभिव्यक्त करती हैं। जिससे धार्मिक केंद्रीकरण और ब्रज के ग्रामीण जीवन और उनके कलात्मक अभिव्यक्ति को एक उच्च आध्यात्मिक स्थान मिलता है।



चित्र संख्या-1 : नृत्य करती महिलाएं

चरकुला का भौगोलिक एवं पर्वगत पहचान :

चरकुला नृत्य ब्रज क्षेत्र का पारंपरिक लोक नृत्य है, जो मुख्य रूप से होली के पर्व से जुड़ा हुआ है। यह नृत्य फागुन में होली के दिनों में पूरे ब्रज में उत्साह की एक नई लहर पैदा करता है और ब्रज की संस्कृति की परिभाषा को पूरा करता है। चरकुला नृत्य खास तौर पर पर्वों जैसे राधाष्टमी, होली, कृष्ण जन्माष्टमी, गोवर्धन पूजा आदि के अवसर पर किया जाता है। यह विशेष रूप से होली के तीसरे दिन किया जाता है, खासकर गोवर्धन के निकट मुखराई गांव में। मुखराई के अलावा, क्षेत्र के उमरी और रामपुर के गांवों का चरकुला नृत्य भी बहुत लोकप्रिय हो गया है। इस कला रूप का विकास लोकाचार को दिखाता है जहाँ कलात्मक प्रदर्शन को धार्मिक अनुष्ठान के रूप में देखा जाता है। यह नृत्य ब्रज मंडल के छोटे-छोटे गांवों से शुरू हुआ, लेकिन श्रद्धा और भरोसा के कारण इन गांवों का सांस्कृतिक महत्व बहुत ऊंचा है। यह उत्सव ब्रज की सांस्कृतिक विविधता, धार्मिकता और लोक जीवन की जीवंत पहचान है।

चरकुला नृत्य का ऐतिहासिक एवं पौराणिक आधार :

नामकरण की उत्पत्ति और शाब्दिक अर्थ :

चरकुला शब्द, इसके प्रदर्शन के मूल स्वरूप को स्पष्ट रूप से दर्शाता है यह माना जाता है कि 'चर' या 'चक्र' (रथ का पहिया) और 'कुल' (दीपको का समूह) से बना है, जिसका अर्थ है दीपकों से सजा एक पहिया या चक्र। यह नामनृत्य में उपयोग किए जाने वाले मुख्य उपकरण, यानी सिर पर रखे जाने वाले पहियों, से संबंधित है। यह दीपक से सजा पहिया नर्तकियों के सिर पर रखा जाता है। यह दीपों से भरा चरकुला नृत्य को अद्वितीय बनाता है।

ऐतिहासिक विकास और संरक्षकता :

चरकुला नृत्य की उत्पत्ति द्वापर युग की एक अलौकिक परंपरा से जुड़ी हुई है, जिसने इसे एक गहरा धार्मिक महत्वप्रदान किया है। चरकुला नृत्य की परंपरा बहुत प्राचीन है, लेकिन समय के साथ यह बदलती और पुनर्जीवित होती रही है। 19वीं सदी में मुखराई गांव के 'प्यारेलाल बाबा' और 'छन्नन लाल शर्मा' ने इस लोक कला को नया रूप दिया, उन्होंने इसकी संरचना वेशभूषा और चरकुला की आकृति लकड़ी का विशाल घेरा, लोहे की थाल और 108 दीपों वाला पांच मंजिला चरकुला का निर्माण किया। इस काम में व्यक्तिगत प्रयासों को महत्व दिया गया है, जो लोक कला को बचाने में कामयाब रहे, जिसने इस आम भाव को एक औपचारिक और संरक्षित प्रदर्शन कला में बदलने की कोशिश की। यह दिलचस्प है कि 1980 से पहले, यह नृत्य मुखराई गांव तक ही सीमित था; ग्रामवासी मानते थे कि इस परंपरा को देखने केवल गाँव में लोग आते हैं। लेकिन कलाकारों की मेहनत और उत्सुकता से यह नृत्य धीरे-धीरे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मंचों तक पहुँचा। भारत की सांस्कृतिक विरासत को विदेशों में

प्रस्तुत करने वाले कलाकारों ने इस नृत्य को विश्वव्यापी पहचान दी। ब्रज के रास नृत्य की प्राचीनता के बात की जाए, जिसका उल्लेख भारतमुनि के नाट्यशास्त्र में रासक (मंडल, ताल, दंडक रासक) के रूप में किया गया है, तो इससे यह स्पष्ट होता है कि चरकुला रास की इसी महान परंपरा से निकलकर, होली जैसे विशिष्ट समारोह के लिए अनुष्ठानिक कठोरता के साथ एक विशिष्ट लोक रूप में विकसित हुआ है।

चरकुला: ब्रज का अद्भुत वेशभूषा, सज्जा, नृत्य एवं संतुलन :

वेशभूषा और सज्जा :

चरकुला नृत्य स्त्रियों द्वारा किया जाता है, मुख्य रूप से प्रशिक्षित ग्राम वधुओं द्वारा। नर्तकी चक्करदार लहंगा-ओढ़नी में सुसज्जित होती है, जो तेज घुमाव (चक्कर) वाली मुद्राओं के लिए उपयुक्त होती है। ये महिलाएं प्रदर्शन करते समय लंबी स्कर्ट जो रंग बिरंगी और आकर्षक होती है और रंगीन ब्लाउज पहनती है अपने चेहरे को घुंघट से ढक लेती है। घुंघट का उपयोग न केवल सामाजिक मर्यादा को बनाए रखता है, बल्कि धार्मिक श्रद्धा और गोपी भाव की अभिव्यक्ति को भी दर्शाता है। और दीपों के जलने की वजह से वेशभूषा को इस प्रकार डिजाइन किया जाता है कि नर्तकियों को सुरक्षा और सुविधा दोनों मिलें। घुंघट के अलावा परिधान में पारंपरिक आभूषण जैसे- बिंदी, कंगन, झुमके आदि भी शामिल होते हैं। इस नृत्य की एक विशेषता नर्तकियों की शारीरिक तैयारी है ताकि वह चरकुला मंडल का 50 किलो वजन संभाल सके। इस से यह पता चलता है कि चरकुला नृत्य की वेशभूषा न केवल सौंदर्यपूर्ण है बल्कि यह सहज भक्ति (आनंद रस) और अत्यधिक शारीरिक क तपस्या का एक अनूठा संगम है।



चित्र संख्या-2 : चरकुला नृत्य की वेशभूषा और सज्जा

चरकुला नृत्य की संरचना और प्रतीकात्मकता :

नृत्य का केंद्र बिंदु चरकुला मंडल है। लोहे या काष्ठ से बना एक लंबा गोल, चक्रकार मंडल अपने सर पर धारण करती है। इस मंडल पर 108 दीप जलते हैं। हिंदू धर्म में 108 संख्या को बहुत पवित्र और पूर्ण माना जाता है, जो धार्मिक अनुष्ठानों में पवित्रता का प्रतीक है। ये दीपक प्रकाश (ज्ञान, चेतना और आनंद) के प्रतीक हैं। नर्तकी मुख्य चरकुला के साथ अपने दोनों हाथों में दो चमचमाते हुए लोटों पर भी दो दीपक रखती हैं। यह केवल प्रकाश को ही नहीं बढ़ाता है, बल्कि नर्तकी को नृत्य करते समय संतुलित रखने के लिए भी आवश्यक होता है। सिर पर 50 किलों का जलता हुआ पहिया रखना चरम आनंद की भौतिकी अभिव्यक्ति है, जो सहज प्रेम के बावजूद, अत्यधिक शारीरिक नियंत्रण की आवश्यकता है।

नृत्य तकनीकी :

चरकुला नृत्य की तकनीकी मुख्य रूप से संतुलन बनाए रखने पर केंद्रित होती है विशेष कर सिर पर रख भरी और जलते मंडल के साथ। कलाकार बंब (ढोल) और साखी गायन की थाप पर झुकने और चक्कर लगाने जैसे जटिल चालों को तालमेल बिठाते हैं। नृत्य के दौरान पूरा ध्यान लय बनाए रखने पर होता है। यह नृत्य एक सामुदायिक उत्सव भी है। जब

एक नर्तकी काफी समय तक नाचती है, तो यह चरकुला अत्यंत सावधानी के साथ एक स्त्री से दूसरी स्त्री के सिर पर हस्तांतरित करती है। यह कार्य न केवल प्रदर्शन की निरंतरता सुनिश्चित करता है, बल्कि परंपरा के साझा दायित्व और शक्ति के हस्तांतरण का भी प्रतीक है। रात्रि के अंधेरे में, सिर के ऊपर रखी हुई दीपमाला के प्रकाश में और रंगीन वेशभूषा में थिरकती हुई ग्राम वधू एक अनूठी और आश्चर्यजनक वातावरण का निर्माण करती है, जो भक्तों को ब्रज की पावन भूमिका आलौकिक दर्शन करती है।

संगीत और वादन शैली :

बंब वादन और अन्य संगत वाद्य यंत्र :

चरकुला नृत्य में बंब सबसे अलग और प्रभावशाली वाद्य यंत्र है बंब एक बहुत बड़ा नगाड़ा होता है यह विशेष रूप से काष्ठ के पहियों के विशेष फ्रेम पर रखा जाता है, जिसे प्रदर्शन के समय खींच कर लाया जाता है। इसे कई हरियारों द्वारा डंडों से सामूहिक रूप से पीटा जाता है। बंब की प्रचंड और सामूहिक ध्वनि फागुन के उल्लास को अभिव्यक्त करने के लिए आवश्यक है, क्योंकि यह सामाजिक ऊर्जा और उत्साह का निर्माण करती है। बंब, झांझ और चीमटा जैसे संगत वाद्य यंत्रों के साथ मिलकर प्रदर्शन को गति प्रदान करता है।

गायन परंपरा होली की साखी और लोकगीत :

नृत्य के साथ गायन की एक मजबूत परंपरा है जिसमें होली की साखी विशेष महत्व रखती है। यह साखियां हर साल स्थानीय कवियों द्वारा बनाई जाती हैं, जो स्थानीय संगीत और लोक संगीत का मिश्रण करते हैं। साथ स्थानीय चुहल (हास्य और व्यंग्य) भी शामिल रहता है। ये साखियां लोकनृत्य के साथ युवा पीढ़ी के साथ गई जाती हैं। यह प्रदर्शन केवल शारीरिक कला नहीं है, बल्कि बौद्धिक और साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम भी है, जो सामाजिक चर्चा और जनता के ज्ञान को प्रसारित करता है।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर प्रसिद्धि :

चरकुला नृत्य होली के अवसर पर सामाजिक उत्साह को व्यक्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। यह नृत्य परंपरा ब्रज की अद्भुत परंपरा का चित्रण करती है, इस प्रदर्शन में भक्ति का अद्भुत संगम दिखाई देता है।

एक दशक के बाद, चरकुला नृत्य ने स्थानीय सीमाओं को पार किया और राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान बनाई। वर्तमान में, मुखराई, रामपुर, और उमरी गांवों की महिला कलाकारों ने देश-विदेश में अपनी कला का मंचन किया है। इस नृत्य के कलाकारों को मॉरीशस, नेपाल और जर्मनी में आयोजित भारत महोत्सव के दौरान प्रदर्शन का अवसर मिला, जिसके बाद उन्होंने सोवियत संघ सहित तीन अन्य देशों की भी यात्रा की। इस तरह के वैश्विक प्रदर्शनों ने चरकुला नृत्य को सांस्कृतिक कूटनीति के एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में स्थापित किया। यह भारत की क्षेत्रीय कला की शक्ति को प्रभावी ढंग से प्रदर्शित करता है। इसके अतिरिक्त, इस वैश्विक प्रदर्शन ने स्थानीय कलाकारों और उनके समुदाय को रोजगार के अवसर भी प्रदान किए हैं, जिससे लोककला का आर्थिक महत्व बढ़ा।

संरक्षण और संस्थागत समर्थन :

चरकुला नृत्य के संरक्षण और प्रचार प्रसार में विभिन्न संस्थाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उत्तर प्रदेश के सूचना विभाग, संगीत नाटक अकादमी (SNA) और सांस्कृतिक कर विभाग अक्सर चरकुला नृत्य के कलाकारों को विभिन्न कार्यक्रमों के लिए आमंत्रित करते रहते हैं।

इसके अलावा, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र (IG NCA) ब्रज संस्कृति शोध संस्थान (मथुरा) और वृन्दावन शोध संस्थान जैसे शैक्षणिक और शोध संस्थान ब्रज साहित्य, धर्म और लोक संस्कृति पर शोध सामग्री प्रकाशित करके इस कला के दस्तावेजीकरण

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

और अकादमिक संरक्षण में योगदान दिया हैं। संस्थाएं भारत की सांस्कृतिक विरासत को बढ़ावा देने के लिए कार्य कर रही है और अपनी गतिविधियों के माध्यम से इसे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शित करने का अवसर प्रदान करती है।



चित्र संख्या-3 : चरकुला नृत्य मंच प्रदर्शन करती साहित्य समीक्षा :

सांस्कृतिक महत्व :

केंद्रीय हिंदी संस्थान की अतिथि प्रवक्ता ज्योति खंडेलवाल के अनुसार ब्रज में हर त्योहार पर स्त्रियां चरकुला नृत्य करती हैं। अधिकांशतः ब्राह्मण समुदाय की स्त्रियों का यह प्रमुख नृत्य है। एकल और समूह में होने वाला यह नृत्य पूरी तरह से संतुलन पर आधारित है। घूंघट केवल एक वस्त्र नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पहचान और धार्मिक मर्यादा का प्रतीक है जो कृष्ण भक्ति में गोपियों की लज्जा और प्रेम को प्रतीक है।

तकनीकी पक्ष :

चरकुला एक लकड़ी का भाव स्तरीय पिरामिड होता है जिसका वजन लगभग 50 किलो होता है। इस पर 108 दीपक जलाए जाते हैं, जो धार्मिक रूप से एक पवित्र संख्या मानी जाती है। ढोलक, नगाड़ा, हारमोनियम, बांसुरी और करताल जैसे वाद्य यंत्र संगीत में प्रयुक्त होते हैं। दर्शन के दौरान नर्तकी का सेंटर में रखना ताल पर पकड़ना बहुत महत्वपूर्ण है।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

आधुनिक संदर्भ में :

मंचीयप्रदर्शन :

1980 के दशक के बाद से, कलाकारों (जैसे मदनलाल शर्मा) ने इसे मुखराई गांव की चार दीवारी से बाहर निकाल कर मंचीय रूप देना शुरू किया, जिससे इसे एक ठोस पहचान मिली।

अंतर्राष्ट्रीय पहचान यह नृत्य न केवल राष्ट्रीय मंचों पर बल्कि विदेश थाईलैंड, रूस, जर्मनी, जापान, लंदन, इटली, नेपाल और मॉरीशस जैसे विभिन्न देशों में भारत महोत्सवों के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

शोध अंतराल :

अब तक के अध्ययनों में चरकुला नृत्य के तकनीकी और सांस्कृतिक पक्ष पर चर्चा हुई है, किंतु कृष्ण भक्ति में घूंघट के सौन्दर्य शास्त्रीय, धार्मिक और स्त्री-अभिव्यक्ति के प्रतीक के रूप में इसका विश्लेषण नहीं किया है। यह शोध इसी दिशा में नए दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का प्रयास है।

शोध पद्धति :

यह एक गुणात्मक (Qualitative) और वर्णनात्मक शोध है जो मिश्रित पद्धति (Mixed Method) अपनाता है। इसमें सैद्धांतिक विश्लेषण के साथ-साथ क्षेत्रीय कार्य भी शामिल है।

डेटा संग्रह के उपकरण : समाचार पत्र, पुस्तकालयीय अनुसंधान एवं साहित्य समीक्षा

डेटा विश्लेषण : सांस्कृतिक विश्लेषण।

निष्कर्ष एवं संरक्षण चुनौतियां :

आधुनिक युग में, चरकुला नृत्य को बचाने के लिए चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जिसमें बढ़ती महत्वाकांक्षाओं और आधुनिक जीवनशैली के प्रभाव शामिल हैं। संरक्षण के प्रयास में शास्त्रीय प्रस्तुति और लोकाचार के बीच एक संतुलन होना चाहिए। संरक्षण योजना को स्थानीय परंपरा और

सामुदायिक भागीदारी पर ध्यान देना चाहिए ताकि मौलिकता बनी रहे।

वृन्दावन शोध संस्थान और ब्रज संस्कृति शोध संस्थान को चरकुला की मूल प्रदर्शन परंपरा, विशेष रूप से इससे संबंधित प्रश्नोत्तर शैली के लोक गीतों (साखी) के संग्रहण, दस्तावेजीकरण और प्रकाशन के कार्य को प्राथमिकता देनी चाहिए।

संगीत नाटक अकादमी और सांस्कृतिक विभाग जैसे शीर्ष संस्थानों को ऐसे मंच प्यार करना चाहिए जो कला की मौलिकता और अनुष्ठानिक शुद्धता को पुरस्कृत करें।

संदर्भ सूची :

1. Hindustan (2022, March 5) ब्रज की होली का हिस्सा बना परंपरागत चरकुला नृत्य Live Hindustan. <https://www.livehindustan.com/uttar-pradesh/mathura/story-traditional-charkula-dance-became-part-of-braj-39-s-holi-5961845.html>
2. Jagran (2018, September 17) लाड़िली के जन्म पर नाची थी नानी तो शुरू हुई चरकुला नृत्य की कहानी, Jagran. [https://www.jagran.com/](https://www.jagran.com/uttar-pradesh/agra-city-charkula-dance-is-in-soul-of-braj-18436357.html)
3. Charkula dance (n.d.) In *Charkula Arts Academy*. Retrieved October 9, 2025, from https://web.archive.org/web/20200126222148/http://charkula.com/dance_charkula.asp
4. Drishti IAS (n.d.) चरकुला और कथक (Charkulaaur Kathak). Drishti IAS. Retrieved from <https://www.drishtiiias.com/hindi/state-pcs-current-affairs/charkula-and-kathak>
5. Sharma, A. (2021, March 1) चरकुला- आग की पहाड़ी के साथ नृत्य(Charkula- A Dance with a Hill of Fire). Joy of Dancing. <https://www.joyofdance.in/2021/03/charkula-dance-with-hill-of-fire.html>
6. चरकुला (चर्कुला). (2025, June 17). In *Wikipedia* <https://en.wikipedia.org/w/index.php?title=Charkula&oldid=1295987473>
7. Pushp A Life Lover. (2023, January 24), ब्रजभूमि का लोक नृत्य चरकुला, *Charkula folk dance of brajbhumi up, charkula, famous dance* [Video]. YouTube. <http://www.youtube.com/watch?v=5GZn-vwkHWg>
8. चरकुला नृत्य 108 दीयों की लौ में झूमता ब्रज <https://www.instagram.com/reel/DLrMRrS4Ac/>



Tradition and Innovation in Folk Literature : Ecological Memory and Mythical Survival in Vandana Singh's *Three Tales from Sky River*

Daisy Rani Doley

Assistant Professor,
Department of English
Namrup College, Dibrugarh, Assam

Abstract :

This paper examines Vandana Singh's "Three Tales from Sky River: Myths for a Starfaring Age" (included in her short story collection, "The Woman Who Thought She Was a Planet and Other Stories," 2008) as a reworking of folk traditions into speculative ecological myths. It argues that Singh's tales encode ecological memory and cultural survival strategies, while innovating the folk form for speculative, planetary contexts. Through close readings of "The Tipi-Bird's Warning," "Haiho's Knife," and "The Marriage of Tree and Stone," the paper highlights how Singh draws upon oral traditions to preserve ecological wisdom, warn against human arrogance, and assert kinship with nonhuman beings. Engaging theoretical perspectives from ecocriticism, postcolonialism, and cultural memory studies, the analysis demonstrates how Singh adapts myth not as a relic of the past but as a living epistemology capable of guiding humanity even in a "starfaring age." In doing so, the paper situates Singh's work within both the global ecocritical turn and the growing body of Indian speculative fiction, affirming that mythic survival depends on remembering, reinterpreting, and innovating tradition in new contexts.

Keywords :

Vandana Singh, folk literature, ecological memory, myth, cultural survival, ecocriticism, postcolonial science fiction.

Introduction :

Folk literature has always functioned as a reservoir of cultural wisdom, a medium through which human societies record not just their myths and legends but also their ecological memories, survival strategies and moral codes. Myths and folktales preserve what oral tradition has long transmitted: ecological cautionary tales, practical know-

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

159

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

ledge about living with nature and metaphysical reflections on existence. In contemporary literary studies, ecocriticism has underscored how myths and folk narratives encode the memory of environmental encounters and embed collective strategies for survival in times of ecological crisis. Vandana Singh's *Three Tales from Sky River: Myths for a Starfaring Age* epitomizes this convergence of tradition and innovation. By reimagining mythic storytelling in speculative contexts, Singh situates her work at the crossroads of folklore and science fiction, oral memory and speculative futurity.

In the three tales- "The Tipi-Bird's Warning," "Haiho's Knife" and "The Marriage of Tree and Stone"- Singh reconfigures the motifs of oral traditions to explore ecological survival in planetary and cosmic settings. The stories, though fictionalized as myths from other worlds, draw deeply from the structures and thematic concerns of South Asian folktales. Singh's stories highlight how closely human survival is tied to ecological forces, while also showing that myths continue to matter as carriers of memory and moral guidance. Rather than treating them as relics of the past, she reshapes these tales into ecological lessons that speak to both immediate survival and imagined futures. In this way, her work blends the storytelling patterns of folklore with speculative possibilities, creating what might be called ecological myths for a new age. Read through the lenses of ecocriticism, postcolonial theory, and cultural memory studies, Singh's narratives reveal how tradition does not fade in the face of innovation but is constantly reinterpreted and reimagined.

Theoretical Framework : Ecocriticism, Postcolonial Thought, and Cultural Memory :

Any attempt to read Singh's stories benefits from a dialogue with a few key critical perspectives. Ecocriticism, for instance, as developed by scholars such as Cheryll Glotfelty and Lawrence Buell, reminds us that literature is not only about human experience but also about the entanglement of human and nonhuman lives. Singh's landscapes-rivers, floods, trees, stones, even parasites-are never silent backgrounds. They intervene in human destiny, at times nurturing, at times threatening survival. Ursula Heise's idea of a "sense of planet" also proves useful here, since Singh constantly stretches ecological awareness beyond the local into planetary and even cosmic dimensions.

Equally significant is Aleida Assmann's notion of cultural memory, which helps explain how Singh treats myth as a storehouse of knowledge. The tipi-bird's unending cry of "Listen!" or the ritual of passing down Haiho's serrated knife are not mere plot devices; they embody how traditions preserve ecological lessons through repetition and cultural practice. This function of myth echoes the role folklore has played for centuries-encoding memory in story so that communities may survive crisis.

Postcolonial thought, particularly Homi K. Bhabha's ideas of hybridity and mimicry, provides yet another lens. Singh blends the cadences of oral tradition with the imaginative reach of science fiction, producing myths that sound familiar but unfold in new, speculative settings. This interplay allows her to both honour and reshape tradition. As Sami Ahmad Khan has obser-

ved in his studies of Indian science fiction, writers like Singh use indigenous frameworks not only to recall cultural roots but also to critique ecological destruction, colonial arrogance, and the blind faith in technology.

Voices of Survival : The Tipi-Bird and the Memory of Nature :

In the tale often referred to as “The Tipi-Bird and the Great Shaper,” the setting is the lush Saras plains, where people live in close contact with the tipi-birds. These birds, unlike ordinary creatures, are able to speak, and in that sense they act as intermediaries between humans and the wider natural world. Their everyday habits-gathering by the river, gossiping, feeding-make them seem familiar, yet their voices also carry a deeper knowledge that humans often overlook.

When the Great Shaper reveals his intention to destroy human settlements every few centuries as punishment for arrogance and ecological disruption, the story transforms into a warning about the dangers of reshaping landscapes without respect for balance. The plan echoes the ancient flood myths that recur in many cultures, but Singh retells it as an ecological reckoning rather than as divine wrath alone.

The fate of the tipi-bird is especially striking. Cursed so that her speech reduces to a single word-“Listen!”-she becomes a living embodiment of warning. Her call resounds across generations, reminding humans that survival depends on paying attention to their environment. It is an elder woman who interprets the message and guides her people to safety by leading them to the high plateau, where floods and

monsters cannot reach. This detail emphasizes that wisdom and survival are preserved not by might but by memory, interpretation and collective trust.

In this way, the story illustrates how folklore carries ecological memory forward. The tipi-bird’s cry is more than a motif; it is a reminder that listening to the non-human world is essential for survival, whether in myth or in lived experience.

The tipi-birds, who are capable of speech, embody the mediating role of animals in folklore-creatures who cross boundaries between human and nonhuman realms. The narrative begins with the tipi-birds’ curiosity: “*They would sit on the riverbanks near the human settlements, gossiping and munching river shrimp and algae all day long*” (Singh 130). This detail situates the tipi-birds as both ordinary and extraordinary, engaged in mundane activities yet capable of accessing divine knowledge.

The ecological dimension emerges when the Great Shaper, a mythic deity, confides his destructive plan: “*I am tired of them changing and reshaping my river valleys, building dams and blowing up hillsides, and I don’t want them to get too arrogant. Therefore, I have made a plan to destroy their civilization every three hundred years*” (Singh 131). This statement functions as ecological prophecy, warning against anthropocentric arrogance in altering landscapes. Here Singh adapts the motif of the flood myth, common across cultures, into a cautionary ecological tale. The periodic destruction becomes not divine punishment alone but ecological correction, a cyclical rebalancing of human hubris and natural forces.

The tipi-bird's curse-her speech reduced to the single word "Listen!"-transforms her into a perpetual ecological prophet: *"The only word they could say was 'listen!' Which is all they have said ever since"* (Singh 132). This endless repetition dramatizes the urgency of ecological attention, embodying the role of myth as continuous reminder. Ursula Heise's notion of planetary consciousness resonates here: the tipi-bird's cry transcends immediate locality to become a universal imperative, reminding successive generations of the need to heed ecological warnings.

The tale also emphasizes intergenerational survival strategies. When floods and monsters ravage the plains, the people of Saras survive only by following Rema, an elderly woman, who interprets the tipi-bird's message: *"So to this day the tipi-bird is venerated as a friend of humankind, and every three hundred years the humans leave their settlements and go to the plateau, where they need only fear earthquakes, and not floods or monsters"* (Singh 133). The narrative here encodes practical survival knowledge, just as traditional folktales encode agricultural calendars or flood warnings. Ecocritically, the story illustrates myth as a vehicle of ecological memory, ensuring survival through narrative transmission.

Haiho's Knife : Myth as Cultural Weapon against Invasive Forces :

The second tale, "Haiho's Knife," dramatizes survival against invasive parasitism. The Sonahbi people, descended from the skies, initially live symbiotically with filament-like organisms. However, immersion in earthly waters detaches these organisms, leaving them bare: *"They*

found that their bodies were smooth and bare, and their bald heads shone in the light of the new sun. And they looked at each other and thought: we are beautiful" (Singh 134). This moment of self-discovery dramatizes rebirth, echoing folkloric themes of transformation.

Yet the peace is shattered by the return of the medusa, a parasitic entity intent on reattaching itself to humans. The figure of the Medusa, both alien and familiar, recalls folkloric monsters and also allegorises invasive ecological forces. In this context, Haiho, an elder hunter, becomes the defender of culture. He prepares a double-bladed knife: *"He carefully made notches along one side of the blade. This took him a long time, so when he emerged from his hut he found that people were already retiring for the night"* (Singh 134). The notched blade, serrated on one side, is an innovation born of ecological necessity.

The knife becomes not just a weapon but a cultural inheritance: *"Ever since then, every hunter on every island in the archipelago has made sure that his knife has one serrated edge and one edge that is smooth, sharpened and deadly"* (Singh 136). Here, myth records an ecological innovation as cultural memory, transforming a survival tactic into ritualized tradition. Ramachandra Guha's insights into traditional ecological practices resonate here: myth encodes survival mechanisms that protect communities against ecological threats. Singh dramatizes this by embedding Haiho's innovation into the very fabric of cultural continuity.

From an ecocritical lens, the tale illustrates how communities adapt culturally

and technologically to ecological threats. The knife symbolizes both the vulnerability of humans in the face of parasitic invasion and their resilience through cultural innovation. From a postcolonial perspective, the tale can also be read as an allegory against invasive colonial forces-parasites that seek to consume the body politic-while myth encodes resistance strategies.

The Marriage of Tree and Stone : Kinship, Memory and Betrayal :

The third tale, “The Marriage of Tree and Stone,” shifts focus from flood and parasitism to primordial kinship. It narrates a time when “*trees could move and talk... The stones could also move and talk. They would roll from one place to another and mingle with trees and with other stones*” (Singh 136). This image of animate trees and stones recalls animistic traditions, foregrounding deep ecological kinship. The offspring of tree and stone are described as “*green in colour, smooth-skinned, with four limbs and no roots. Their bodies had the pliancy of young, green shoots but within them was a hard framework, like stone*” (Singh 136). Singh here reimagines human origins not from divine creation but from vegetal and mineral hybridity, innovating upon mythic genealogies.

The tale centers on Angud, a lame boy who remains faithful to his tree and stone kin even as others abandon them: “*Only Angud stayed behind. He did what he could to soothe the trees and stones, but the weight of their sorrow was such that they stood still*” (Singh 137). His whistle, taught to him by trees and stones, becomes the embodiment of cultural memory. In

contrast, the other children forget their origins, severing ties with their kin. The narrative thus dramatizes the dangers of forgetting ecological kinship.

The ground itself speaks in the old tongue: “*The ground thunders in the old tongue of tree and stone and they say to the ungrateful children: You are our offspring. We made you, they say, but the ungrateful ones don’t understand*” (Singh 138). This passage powerfully illustrates Aleida Assmann’s notion of cultural memory: even when forgotten by successive generations, ancestral voices persist, resurfacing in ecological crises. Singh’s tale becomes a parable of alienation from origins, a critique of anthropocentrism, and a reminder of deep ecological kinship.

From an eco-critical perspective, this tale enshrines the imperative of remembering one’s ecological roots. From a mythological standpoint, it reworks the archetype of primordial unions-here between tree and stone-into a cosmic genealogy of humanity. From a postcolonial lens, it critiques modernity’s disavowal of ecological kinship, echoing Vandana Shiva’s ecofeminist critique of capitalist exploitation of nature.

Rethinking Folk Narratives in a Starfaring Age :

When Singh subtitles her collection *Myths for a Starfaring Age*, she invites readers to pause and reflect on what it means to carry ancient stories into imagined cosmic futures. The phrase “starfaring age” suggests a time when humans might leave Earth behind to explore the wider universe. Yet the myths themselves remind us that survival, whether on Earth or among the stars, cannot rely on technological

progress alone. They insist on the continuing relevance of memory, tradition and the wisdom carried in story.

The fusion of folklore with speculative imagination can be read as a form of cultural negotiation. Drawing on Homi Bhabha's ideas of hybridity, Singh places South Asian mythic structures into planetary and cosmic frames, showing that stories rooted in the past are not diminished by innovation but reshaped through it. Her tales encode practical knowledge-how to face floods, resist invasive forces or remember kinship with trees and stones-reminding us that folklore is not static. It changes, adapts and survives in new contexts. Sami Ahmad Khan notes that much of Indian science fiction relies on this very blending of indigenous traditions with speculative frameworks, especially as a way to confront ecological crises and the legacy of colonial modernity. Singh's writing belongs firmly within this conversation.

By situating her myths in "starfaring" settings, Singh also underscores their universal reach. Mircea Eliade once argued that myth provides frameworks of meaning that transcend historical circumstance. Singh extends this by imagining myths that speak not only to local or national audiences but to a planetary community, even to interstellar futures. In doing so, she aligns with Ursula Heise's notion of a "sense of planet," which emphasizes that ecological consciousness must stretch across scales-from the intimate to the cosmic.

Conclusion :

Three Tales from Sky River illustrates how folklore can be both a vessel of

memory and a site of transformation. Singh draws on the structures of oral storytelling but places them in speculative, planetary landscapes, showing that myths continue to function as living repositories of knowledge. Each tale carries its own lesson: the tipi-bird warns against human arrogance in reshaping the environment, Haiho's knife becomes a symbol of cultural resilience against invasive threats, and the marriage of tree and stone recalls a primordial kinship that modern humans risk forgetting. Taken together, the stories portray folklore as a form of cultural technology-one that encodes survival strategies and ecological memory across generations.

The critical frameworks of ecocriticism, postcolonial studies, cultural memory and ecofeminism all help illuminate Singh's achievement. Her work does not simply retell myths but reactivates them, using their familiar rhythms to confront contemporary and future crises. In a moment of global ecological uncertainty, these stories remind us that endurance may depend as much on humility and listening to older wisdom as on innovation or science. By reimagining folk traditions in speculative contexts, Singh offers a vision of literature that is at once rooted in cultural memory and attuned to planetary futures.

References :

1. Assmann, Aleida. *Cultural Memory and Western Civilization: Functions, Media, Archives*. Cambridge University Press, 2011.
2. Bhabha, Homi K. *The Location of Culture*. Routledge, 1994.

3. Buell, Lawrence. *The Environmental Imagination: Thoreau, Nature Writing, and the Formation of American Culture*. Harvard University Press, 1995.
4. Eliade, Mircea. *Myth and Reality*. Harper & Row, 1963.
5. Glotfelty, Cheryl, and Harold Fromm, editors. *The Ecocriticism Reader: Landmarks in Literary Ecology*. University of Georgia Press, 1996.
6. Guha, Ramachandra. *Environmentalism: A Global History*. Oxford University Press, 2000.
7. Heise, Ursula K. *Sense of Place and Sense of Planet: The Environmental Imagination of the Global*. Oxford University Press, 2008.
8. Khan, Sami Ahmad. *Star Warriors of the Modern Raj: Materiality, Mythology and Technology of Indian Science Fiction*. University of Wales Press, 2021.
9. Shiva, Vandana. *Staying Alive: Women, Ecology, and Development*. Zed Books, 1988.
10. Singh, Vandana. *Three Tales from Sky River: Myths for a Starfaring Age*. Zubaan, 2015.



मिथिला लोक कला में मत्स्य चित्रण

ज्योति कुमारी

शोध छात्रा

डॉइंग एण्ड पेटिंग विभाग, कला संकाय

दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट (डीमड टू बी यूनिवर्सिटी)

दयालबाग, आगरा

डा. लकी टॉक

असिस्टेंट प्रोफेसर

डॉइंग एण्ड पेटिंग विभाग, कला संकाय

दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट (डीमड टू बी यूनिवर्सिटी)

दयालबाग, आगरा

शोध सारांश :

मिथिला की गौरवपूर्ण लोक चित्रकला अपनी सांस्कृतिक धरोहर को कलारूपी अमृत के माध्यम से समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर रही है। मिथिला की लोक चित्रकला में उसकी ऐतिहासिक परम्पराएँ विद्यमान हैं। मिथिला में लोक चित्रकला के प्रारम्भिक स्वरूप की रचना रामायण काल से मानी जाती है। जिसके अनुसार सर्वप्रथम राजा जनक ने अपनी पुत्री सीता के विवाह के अवसर पर सम्पूर्ण मिथिलावासी को जनकपुरी को सजाने का आदेश दिया था तभी से मिथिला चित्रकारी विशेषतः महिलाओं द्वारा विभिन्न अवसरों जैसे तीज-त्यौहारों, विवाह, उत्सवों व शुभ संस्करणों जैसे मांगलिक कार्यक्रमों में बनायी जाती है। वैसे तो मिथिला चित्रकला में विषयों का भंडार है, जिसमें सामान्य जनजीवन से लेकर विभिन्न ज्यामितीय अंलकरण, देवी-देवताओं का अंकन, प्रतीक चिन्ह, व पशु-पक्षियों इत्यादि का चित्रण देखने को मिलता है तदपि इन सभी विषयों में सर्वप्रमुख 'मत्स्य चित्रण' मिथिला लोक कला में अनिवार्य रूप से बनाया जाता है। मिथिला चित्रकारी में मत्स्य का अंकन विभिन्न शैलियों जैसे कचनी, भरनी, गोदना आदि में प्रमुख रूप से बनाया जाता है। इसी क्रम में मत्स्य चित्रण के धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व कलात्मक पक्ष के महत्व की विस्तारपूर्वक चर्चा इस शोध पत्र में की जायेगी, जिसमें मिथिला के कलाकारों की कलाकृतियाँ भी शामिल रहेंगी।

बीज शब्द :

मिथिला, मत्स्य, प्रतीक-चिन्ह, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक।

भारतीय चित्रण परम्पराओं में मत्स्य चित्रण का बहुआयामी महत्व है। सभी धर्मों में मत्स्य की आकृति को अकसर प्रेम सौहार्द, शान्ति व स्थिरता के भाव से देखा जाता है। मत्स्य की आकृति प्रत्येक धर्म की सांस्कृतिक परम्पराओं का परिचायक है। बात बौद्ध धर्म की करे तो बौद्ध धर्म में मत्स्य की आकृति को ज्ञान और बुद्धिमत्ता का प्रतीक माना जाता है। भगवान बुद्ध की शिक्षाओं की तुलना विशाल गहरे समुद्र से

की गई है जिसमें अनेक मत्स्य निवास करती है। सुनहरी मत्स्य को विशेष रूप से बौद्ध धर्म के आठ मांगलिक प्रतीकों में से एक माना गया है। वहीं हिन्दू धर्म में मत्स्य की पौराणिक कथाओं में भगवान विष्णु के प्रथम अवतार के रूप देखा जाता है। जिसके विषय में प्रचलित पौराणिक कथा इस प्रकार है कि इस अवतार में श्री हरी विष्णु ने विशालकाय मछली का रूप धारण कर एक विनाशकारी जलप्रलय से

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

166

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

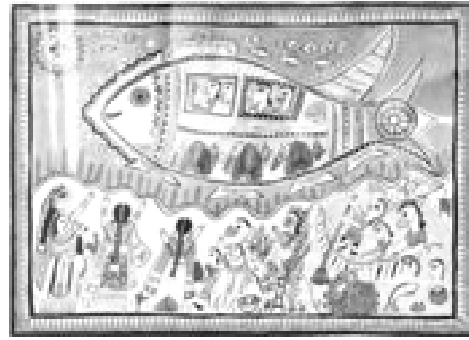
सृष्टि की रक्षा की थी। इन्हीं कथाओं से प्रेरित होकर विभिन्न कलाकारों ने मत्स्य अवतार की मनोहर छवि को अपनी कलाकृतियों में शामिल किया। मिथिला की पद्मश्री कलाकार बऊआ देवी ने भी इस विषय पर अत्यन्त सुन्दर कलाकृति का निर्माण किया। जिसे चित्र संख्या 01 में देखा जा सकता है। इस रचना में मत्स्य का प्रतिनिधि करने वाली एक बड़ी अलंकृत मछली प्रमुख है साथ ही भगवान विष्णु का मानव रूपी भाग उनके दिव्यों गुणों को शंख और चक्र के रूप में हाथ में धारण करते हुये दिखाया गया है। जो ब्रह्माण्डीय व्यवस्था में संरक्षण का प्रतीक है। चित्र में कलाकार ने गहरे चमकीले रंगों का प्रयोग किया साथ ही वृक्ष और लताएँ के कोमल अलंकरण द्वारा प्रकृति के सामन्जस्य व्यवस्था को भी दर्शाया है।



चित्र संख्या-01

मत्स्य के महत्व को मिथिला की सामाजिक प्रणाली के साथ भी जोड़ा जा सकता है। मिथिला क्षेत्र नदी प्रधान क्षेत्र होने के कारण यहा मत्स्य (मछली) प्रचुर मात्रा में पाई जाती है, जो समृद्ध परिवारों के लिए विशिष्ट व्यंजन व आमजनों के लिए पेट भरने में सहायक आहार का काम करती है। मिथिला कलाकारों में पद्मश्री दुलारी देवी जी स्वयं मछुआरा परिवार से ही ताल्लुक रखती है अतः स्वभाविक

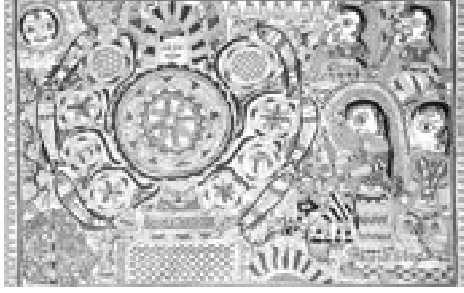
है कि मत्स्य उनके जीवन यापन का अहम हिस्सा है। चित्र संख्या 02 का निर्माण दुलारी देवी ने मत्स्य की भूमिका को दर्शाते हुये ही किया है। इस चित्र में समाज को संदेश देते हुये उन्होने कोविड महामारी के दौरान मास्क की उपयोगिता से समाज को जागरूक करने का प्रयास किया है। चित्र में आप कुछ मानवाकृतियों को मास्क पहने देख सकते हैं। जिसमें मत्स्य को जहाजरूपी सहायता प्रदान करने वाले उपकरण की भाँति दिखाया गया है।



चित्र संख्या-02

मत्स्य चित्रण का सांस्कृतिक पक्ष मिथिला की लोक कथाओं धर्म और परम्पराओं से गहराई से जुड़ा है, जो जनजातिय जीवन के विशेष अनुष्ठानों को प्रदर्शित करता है। ठीक वैसे ही मिथिला के अनेक अनुष्ठानों में से एक विवाह संस्कार भी है जिसमें मुख्य रूप से दुल्हा और दुल्हन के लिए 'कोहबर घर' एक विशेष कमरा तैय्यार किया जाता है। जिसमें कोहबर चित्र बनाकर लगाया जाता है। कोहबर चित्र नये वर-वधु वैवाहिक जीवन की मंगल कामना हेतु बनाया जाता है। उसमें भी मत्स्य या मत्स्य के जोड़े को विशेषकर बनाया जाता है। माना जाता है कि मत्स्य उर्वरता और प्रजनन का प्रतीक है। यह वैवाहिक जीवन में शुभता का परिचायक है। नवविवाहित जोड़े या संतान की कामना करने वाली दम्पतियों के लिए कमरे में मछली के जोड़े का चित्र लगाना शुभ फलदायक माना जाता है। चित्र संख्या 03 में भी कोहबर के चारों और मत्स्य का अंकन

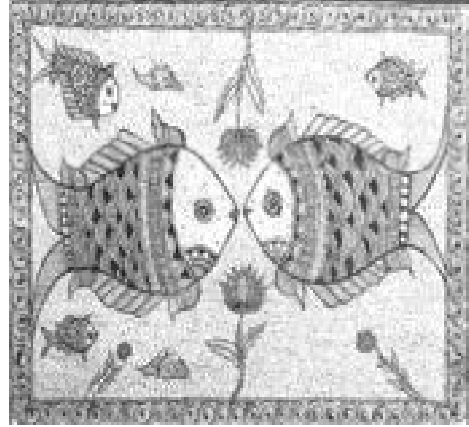
इन्ही विचारों को ध्यान में रखकर बनाया गया है। जिसमें विभिन्न रंगबिरंगों का प्रयोग किया गया है। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि कोहबर घर में मत्स्य के साथ साथ अन्य पारिवारिक वस्तुओं का अंकन भी किया जाता है।



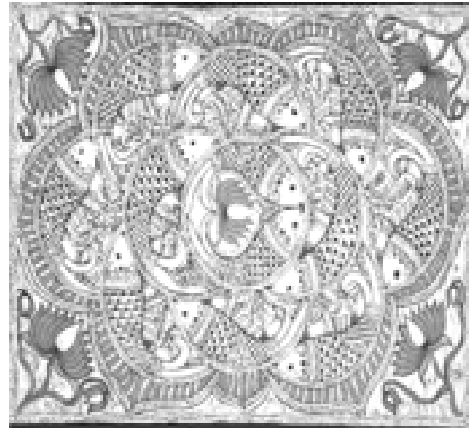
चित्र संख्या-03

मत्स्य (मछली) की आकृति को बनाने का कलात्मक पक्ष विविध कला शैलियों, तकनीकों और प्रतीकात्मक अर्थों को समाहित करता है। मत्स्य अंकन सभी लोक कलाओं में देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए बंगाल में मत्स्य को सौभाग्य का संकेत मानकर अल्पना में ज्यामितीय आकारों में बनाया जाता है। महाराष्ट्र की वर्ली पेंटिंग में दैनिक दिनचर्या को दर्शाते हुये मछली की आकृति बनायी जाती है। आन्ध्रप्रदेश की कलमकारी पेंटिंग में विशेष अंकन के लिए मत्स्य संरचना को कलाकृति में शामिल किया जाता है। मिथिला चित्रकारी में भी भिन्न-भिन्न शैलियों में मत्स्य चित्रण देखने को मिलता है। मिथिला लोक कला की प्रमुख शैली कचनी, भरनी व गोदना है। इन तीनों शैलियों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं तथा इन तीनों शैलियों में मत्स्य की अनेक कलाकृतियों का निर्माण लोक कलाकारों ने किया है जो इस प्रकार हैं। चित्र संख्या-04 कचनी शैली में रेखाओं का अंकित और दोहरावदार प्रयोग किया जाता है। जिससे गति और जीवंतता का प्रभाव पैदा होता है। इसमें महीन रेखाएँ जटिल पैटर्न के साथ उभारी जाती हैं। इस शैली में आमतौर पर काले और सफेद-रंग या बहुत कम रंगों का प्रयोग किया जाता है। एक अनहद-लोक ISSN : 2349-137X (जुलाई-दिसम्बर)

रंगीय वर्ण संगति का प्रयोग अधिक किया जाता है। वही दूसरी और भरनी (चित्र संख्या-05) शैली इसके विपरीत विभिन्न रंग बिरंगों की आभा के साथ पूर्ण की जाती है। चित्र में गहरे चटकीले रंगों का प्रयोग कलाकृति में चार चाँद लगा देता है। इस चित्र में भी तालाब में नृत्य करती मत्स्य को भरनी शैली में बनाया गया है। जो देखने में मछलियों की रासलीला जैसी प्रतीत हो रही है। चित्र संख्या-06 गोदना शैली में इन दोनों के विपरीत छावियों को समानांतर रेखाओं ज्यामितीय आकार जैसे वृत्त, आयतों में व्यवस्थित कर विभिन्न पैटर्नों को लयात्मकता के साथ उकेरा जाता है। जो एक चक्र की भाँति प्रदर्शित हो रही है।

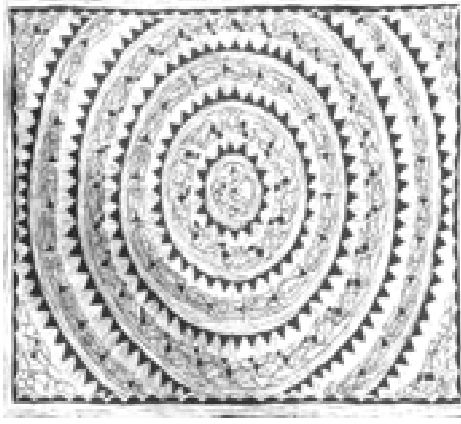


कचनी चित्र संख्या-4



भरनी चित्र संख्या-5

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal



गोदना चित्र संख्या-6

निष्कर्ष : मिथिला की चित्रकला में मत्स्य के बिम्बों का बहुतायात प्रयोग देखने को मिलता है, जो मिथिला की सांस्कृतिक परम्पराओं को दर्शाता है। यह स्वाभाविक होता है कि किसी भी क्षेत्र की कला उस क्षेत्र की स्थानीय संस्कृति की चित्रात्मक अभिव्यक्ति होती है। ऐसे में यह देखना हर्षपूर्ण होता है कि लोक कलाकार ने अपने चित्रण के विषय का चुनाव उस संस्कृति के किस पक्ष के रूप से प्रभावित होकर किया है। मत्स्य को मिथिला के आहार, व्यवहार व संस्कार सभी में समान रूप से प्रमुखता दी जाती है। यही कारण है कि मत्स्य का जुड़ाव प्रत्येक जन साधारण की भावना के साथ है व कलाकार कलाकृतियों में अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति ही करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. अमन अवधेश, मिथिला की लोक चित्रकला सफलताएँ-असफलताएँ, ललित कला अकादमी, नई दिल्ली 2019।
2. चतुर्वेदी मंजुला, भारतीय लोककला के अभिप्राय, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2009।
3. सिंह पल्लवी, मिथिला कला एक अभिव्यक्ति, बुक्स क्लीनिक, बिलासपुर छत्तीसगढ़, 2022।
4. <https://theartofindia.in/products/padma-shri-dulari-devi-madhubani-painting>
5. <https://www.pinterest.com/pin/matsya-avataar-vishnus-incarnation-as-fish-862087553642371918/>
6. <https://blogs.penkraft.in/know-all-about-madhubani-painting/>
7. https://www.exoticindiaart.com/product/paintings/fish-kachni-painting-handmade-paper-by-ajay-kumar-jha-ddg471/?srsltid=AfmBOooy_DbicBOZh7kUMIXmyTfWFxejP2n3Q1vfDIXQMpYGwjNoZXjS
8. <https://www.memeraki.com/products/fishes-in-a-pond-madhubani-painting-by-ambika-devi>
9. <https://indianfolkart.org/product/fishes-madhubani-painting-11-x-15/>



प्रयागराज के भट्ट परिवार की तबला वादन की परम्परा की कुछ अमूल्य 'अविस्तारशील बंदिशें' (तबले की समपदी, अर्द्धसमपदी एवं विषमपदी तालों में)

कामिनी मिश्रा

शोध-छात्रा

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इलाहाबाद)

डॉ. ज्योति मिश्रा

सहायक आचार्य (गायन)

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इलाहाबाद)

सारांश :

इस प्रस्तुत लेख में, सर्वप्रथम मैंने सांगीतिक विद्वानों द्वारा ताल की सरचना के लिये बनाये गये सिद्धान्तों का संक्षेप में उल्लेख करने का प्रयास किया है, जिसके अन्तर्गत ताल के लिये मात्राओं की संख्या, अंग अथवा विभाग, ताल की जाति, ताल की क्रिया तथा ताल के लिये ठेके के बोलों का चयन जैसे सिद्धान्त आते हैं।

तत्पश्चात् उपर्युक्त सिद्धान्तों में से ही एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त अंग अथवा विभाग के सिद्धान्त को जिसके अन्तर्गत तालों के ही भिन्न-भिन्न प्रकृतियों के विभागों, जिसके अन्तर्गत समपदी, अर्द्धसमपदी तथा विषमपदी प्रकृति की तालें आती हैं, जिनके अन्तर्गत हमारी भारतीय शास्त्रीय संगीत की तालें वर्गीकृत हुई हैं। समस्त तालें इन्हीं तीन प्रकृतियों समपदी, अर्द्धसमपदी एवं विषमपदी तालों के अन्तर्गत ही आती हैं।

और अन्ततः, प्रयागराज के भट्ट परिवार की तबला वादन की परम्परा की कुछ अमूल्य बंदिशों को ताल की ही भिन्न-भिन्न प्रकृतियों; समपदी, अर्द्धसमपदी तथा विषमपदी तालों के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास है, जो कि पूर्णतः इसी भट्ट परिवार के वंश परम्परा तथा शिष्य परम्परा के तबला के कलाकारों से प्राप्त साक्षात्कार पर आधारित है।

मुख्य शब्द :

ताल के सिद्धान्त, समपदी, अर्द्धसमपदी, विषमपदी।

हमारे संगीत में तीनों विधाएँ; गायन, वादन सांगीतिक विद्वानों ने इसके (ताल) निर्माण के लिये तथा नृत्य, मुख्य रूप से ताल पर ही आश्रित हैं। कुछ सिद्धान्तों का निर्माण किया है, जिनका अनुपालन करने के पश्चात् ही किसी ताल का सटीक रूप से निर्माण किया जा सकता है।

चूँकि ताल, संगीत की जड़ है, इसके लिये किसी भी बोल-समूह का बस यूँ- ही वादन करके, उसे सम पर ले आना, ताल नहीं कहला सकती। ऐसी स्थिति में, हिन्दुस्तानी संगीत अथवा उत्तरी भारतीय संगीत में क्रियात्मक लक्ष्य स्वरूप को देखते हुये नवीन

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

170

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

तालों की संरचना करने हेतु निम्न सिद्धान्त निश्चित किये गये हैं :

1. **मात्राओं की संख्या** : तालों की संरचना करने हेतु सर्वप्रथम एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त मात्राओं की संख्या निश्चित करना है। संगीत में लगने वाले समय को नापने की सबसे छोटी इकाई को भी मात्रा कहते हैं। एक मात्रा का साधारण समय एक लघु वर्ण के उच्चारण काल के बराबर होता है। वर्तमान समय में हम इसे सामान्यतः सेकण्ड का कालमान भी कह सकते हैं।
2. **ताल के विभाग** : मात्राओं की संख्या निश्चित करने के बाद, तालों के विभाग का स्वरूप निर्धारित किया जाता है। तालों के स्वरूप को सरलता से मन-मस्तिष्क में बैठाने के लिये इनका (ताल) विभागीकरण किया जाता है। मात्राओं का विभाजन करने के लिये मात्राओं की कुल संख्या को ऐसे अंक से भाग दिया जाता है कि मात्राओं की संख्या पूर्णतः विभाजित हो जाये। यथा - 12 मात्राओं की तालों का विभाजन करने से क्रमशः 2, 3, 4, 6 अंकों से क्रमशः 6, 4, 3, 2 मात्राओं के विभाग बन जायेंगे।
3. **ताल की जाति** : मात्रा-संख्या एवं ताल के विभाग निर्धारित करने के पश्चात् ताल की जाति पर विचार किया जाता है। इन उपर्युक्त तीन प्रकार के विभाजन में तीन प्रकार की तालें निर्मित हो सकेंगी। इनमें 2-2 के विभाजन में 1, 3, 5, 7, 9, 11 की मात्राएँ सबल होंगी तथा 2, 4, 6, 8, 10, 12 की मात्राएँ दुर्बल स्वरूप में आयेंगी। इसी प्रकार, 3-3 मात्राओं के विभाजन में 1, 4, 7, 10 मात्राएँ सबल होंगी, शेष दुर्बल। मात्राओं के सन्दर्भ में, इसी सबल एवं दुर्बल स्वरूप पर तालाघात तथा ताल की जाति निर्भर करती है। यदि मात्रा-खण्ड 2 या 4 मात्राओं के हैं तो वह अमुक

ताल चतस्र जाति के अन्तर्गत आयेंगी और वहीं यदि मात्रा-खण्ड 3-3 मात्राओं के हों, तो वह ताल तिस्र जाति के अन्तर्गत आयेंगी।

4. **ताल की क्रिया** : इसके अन्तर्गत हमारे ताल-पक्ष में ताली-खाली निश्चित की जाती है। हमारे संगीत-शास्त्र में ताली को सशब्द क्रिया व खाली को निःशब्द क्रिया की संज्ञा दी गई है। तालों की रचना के सन्दर्भ में यह बात विचारणीय होती है कि ताल की संरचना में 'खाली' का स्थान कहाँ निश्चित करना चाहिये। प्राचीन सिद्धान्त के अनुसार जहाँ 'द्रुत' अंग प्रदर्शित किया जाता था; वहीं एक ताली के साथ खाली का स्थान प्रदर्शित कर दिया जाता था। वर्तमान समय में, खाली के सन्दर्भ में दो सिद्धान्त दृष्टिगोचर होते हैं :

- (i) खाली का स्थान, अधिकांशतः ताल की रचना करते समय ताल के मध्य में रखना चाहिये; यथा:- तीन ताल की 16 मात्राओं में खाली का स्थान ठीक मध्य में अर्थात् 9वीं मात्रा पर है; यहाँ से ताल दो भागों में विभाजित हो जाता है।
- (ii) वहीं जिन तालों में यदि एक-से-अधिक खालियाँ हो, वहाँ पर भी एक खाली, ताल के ठीक आधे भाग पर जबकि, दूसरी खाली का स्थान ताल के चौथाई अंश (भाग) अथवा उसके बराबर की मात्रा पर होना चाहिये।

डॉ. शोभा कुदेशिया जी ने स्वरचित पुस्तक "प्राचीन ताल के परिप्रेक्ष्य में आज का तबला वादन" में पृष्ठ सं.-169 पर 'ताली' के सन्दर्भ में लिखा है, कि - वास्तव में खाली दिखाने का कोई वैज्ञानिक एवं सार्वभौमिक सिद्धान्त उत्तर-भारत में नहीं है। इस व्यवस्था पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

5. **ठेके के बोलों का चयन** : वर्तमान समय में, ठेके के बोलों के चयन पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति अथवा उत्तरी भारतीय संगीत पद्धति की सभी गायन-शैली ठेके के बोलों पर ही आधारित करके गायी जाती है; यहाँ हाथ से ताली देकर गायन करने का अभ्यास लगभग ना के बराबर होता है। हमारे उत्तर भारतीय संगीत पद्धति में अधिकांश कलाकार ताल के अंगों की गणना ठेके के बोलों पर आधारित करके गाते हैं, जबकि दक्षिणी अथवा कर्नाटकीय संगीत पद्धति में ऐसा नहीं है, वहाँ हाथ से ताली देकर गाने का अभ्यास किया जाता है।

उपरोक्त ताल-रचना के सिद्धान्तों के अभाव में तालों की मौलिक रचना नहीं की जा सकती। जिस प्रकार, हमारे अन्य किसी भी कार्य में अनुशासन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है; इसके बिना हम अपने उस लक्ष्य-विशेष को प्राप्त नहीं कर सकते; ठीक उसी प्रकार, ताल-रचना के भी सिद्धान्त उसकी (ताल) निर्मिति में अनुशासन की भूमिका ही निभाता है, अन्यथा इसके बिना हम ताल-निर्माण के लक्ष्य को सफलतापूर्वक प्राप्त नहीं कर सकते।

तालों की संरचना के सन्दर्भ में एक प्रमुख तत्व इसका निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित होना भी है:

1. समपदी ताल
2. अर्द्धसमपदी ताल
3. विषमपदी ताल

उपर्युक्त तीनों भागों का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है :

1. **समपदी ताल** : जिन तालों के पद समान हों, अर्थात् जिनके प्रत्येक विभाग में मात्रा-संख्या समान हो, समपदी तालें कहलाती हैं; यथा :

- (i) तीनताल (4-4-4-4)
- (ii) एकताल (2-2-2-2-2-2)
- (iii) सूलताल (2-2-2-2-2) (पञ्च) कहरवा ताल (4-4), आदि।

2. **अर्द्धसमपदी ताल** : जिन तालों के पद उसके एक विभाग छोड़कर, अगले विभाग में एकसमान हो, अर्द्धसमपदी तालें कहलाती हैं, यथा :

- (i) झपताल (2-3-2-3)
- (ii) झूमरा (3-4-3-4)
- (iii) दीपचन्दी (3-4-3-4) आदि।

3. **विषमपदी ताल** : जिन तालों के पद प्रत्येक विभाग में असमान हों, अर्थात् उस ताल के प्रत्येक विभाग में मात्रा-संख्या भिन्न-भिन्न हो, विषम पद तालें कहलाती हैं; यथा- धमार ताल (5-2-3-4) आदि।

ताल की उपरोक्त प्रकृतियों (समपदी, अर्द्धसमपदी, विषमपदी) की तालें हमारे संगीत गायन, वादन तथा नृत्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। और भारतीय संगीत में चाहे कोई भी ताल हो, वह इन्हीं तीन प्रकृतियों के अन्तर्गत ही आयेंगी।

इसी क्रम में; मैंने प्रयागराज के भट्ट परिवार के तबला वादन की परम्परा के कुछ कलाकारों द्वारा साक्षात्कार में मुझे प्राप्त उपरोक्त तीनों ही प्रकार की प्रकृतियों में बन्दिशों का उदाहरण झलक के रूप में प्रस्तुत किया है।

- पं. श्रवण भट्ट (वंश परम्परा एवं पारिवारिक शिष्य परम्परा से सम्बन्धित) से प्राप्त साक्षात्कार में उनके द्वारा सुनायी गयी एक अविस्तारशील बन्दिश का उदाहरण :

तीन ताल (समपदी) में झूलना की परन

$\frac{\text{प्रायेन्वायेते प्रायेन्वायेते प्रायेन्वायेते प्रायेन्वायेते}}{2}$
 $\frac{\text{दिआनानाना कतेरेताडक कतेरेताडकेना ताडकिताकनाकेना}}{2}$
 $\frac{\text{कतेरेताडक कतेरेताडकेना प्रायेन्वायेते प्रायेन्वायेते}}{2}$
 $\frac{\text{प्रायेन्वायेते प्रायेन्वायेते प्रायेन्वायेते प्रायेन्वायेते}}{3}$

- पं. अरूण भट्ट (वंश परम्परा एवं पारिवारिक शिष्य परम्परा से सम्बन्धित, भातखण्डे संगीत विश्वविद्यालय, लखनऊ) से प्राप्त साक्षात्कार में उनके द्वारा सुनायी गयी एक अविस्वारशील बन्दिश का उदाहरण-

तीनताल (समपदी) में परन (आड़ लय में)

$\frac{\text{घाडकिताक घुमकिताक तकिटकिटि तकिटकिटि}}{2}$
 $\frac{\text{कतगदिगन कतगदिगन तडडनाकिट खतिना}}{2}$
 $\frac{\text{कंडतिरकिटयेते कतगदिगन घाड कंडतिरकिटयेते}}{2}$
 $\frac{\text{कतगदिगन घाड कंडतिरकिटयेते कतगदिगन}}{2}$

- पं. कृष्ण कुमार जी (बाह्य शिष्य परम्परा) की प्रिय अविस्वारशील रचनाओं में से एक जो कि उनके सर्व प्रियतम शिष्य डॉ. गिरधर गोपाल मिश्र जी के द्वारा मुझे साक्षात्कार में सुनाया गया-

1. झपताल (अर्द्धसमपदी) में सादा टुकड़ा

$\frac{\text{ता ता ता ३ किताक दिदि दि३ किताक ता ता}}{2}$
 $\frac{\text{किताक दि३ दि३ किताक घा३ किताक दि३ किताक घा३ किताक दि३}}{3}$
 $\frac{\text{किताक घा३ घा३ घा३ घा३ किताक दि३ किताक दि३}}{2}$
 $\frac{\text{घा३ घा३ घा३ घा३ किताक दि३ किताक दि३ घा३ घा३}}{3}$

2. झपताल (अर्द्धसमपदी) में सादा टुकड़ा

$\frac{\text{घा३ किताक तेन घा३ किताक तेन घा३ किताक तेन घा३}}{2}$
 $\frac{\text{किताक तेन घा३ किताक तेन घा३ किताक तेन कडन नावावा}}{2}$
 $\frac{\text{घा३ किताक घा३ घा३ घा३ घा३ घा३ घा३}}{2}$
 $\frac{\text{घा३ किताक घा३ घा३ घा३ घा३ घा३ घा३}}{3}$

- सुप्रसिद्ध विद्वान एवं महान कलाकार डॉ. गिरधर गोपाल मिश्र जी (पं. कृष्ण कुमार जी की शिष्य परम्परा से सम्बन्धित इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) के द्वारा मुझे प्रदान किये गये साक्षात्कार में सुनाई गई रचना :

1. धमार ताल (विषमपदी) में सादी परन

$\frac{\text{घा३ घा३ घा३ घा३ घा३ घा३ घा३ घा३}}{2}$
 $\frac{\text{कतगदिगन कतगदिगन कतगदिगन कतगदिगन}}{3}$

2. धमार ताल (विषमपदी) में सादी परन (आड़ लय में)

$\frac{\text{कडते डेते कतग दिगन घाडकिताक डेते कतग}}{2}$
 $\frac{\text{दिगन घा३ घा३ घा३ घा३ घा३ घा३ घा३}}{3}$
 $\frac{\text{कंडतिरकिट डेते कतग दिगन घा३ कंडतिरकिट डेते}}{2}$
 $\frac{\text{कतग दिगन घा३ कंडतिरकिट डेते कतग दिगन}}{3}$

उपरोक्त अमूल्य अविस्वारशील बन्दिशें मुझे प्रयागराज के भट्ट परिवार की तबला वादन की परम्परा के कुछ सुप्रसिद्ध कलाकारों द्वारा मेरे शोध-कार्य करने के दौरान प्रदान किये गये साक्षात्कार में प्राप्त हुई हैं; जिन्हें मैंने ताल की भिन्न-भिन्न प्रकृतियों (समपदी, अर्द्धसमपदी एवं विषमपदी) में झलक-मात्र के रूप में प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष : अन्ततः, मैं निष्कर्ष के रूप में यह कहना चाहूँगी कि 'ताल' स्वयं में ही एक वृहद् परिकल्पना (Concept) है; जिसकी संरचना के लिये सांगीतिक विद्वानों ने कुछ सिद्धान्तों का निर्माण किया है, जो कि दोनों ही पक्षों; सैद्धान्तिक एवं क्रियात्मक रूप से उपयोगी है।

सांगीतिक कलाकारों को असहजता अथवा नीरसता महसूस ना हो, इसीलिये विद्वानों ने हमारे भारतीय शास्त्रीय संगीत में भिन्न-भिन्न प्रकृतियों (विभाग) की

अनेक तालें निर्मित की है, यथा:- समपदी, अर्द्धसमपदी एवं विषमपदी तालें। इनके अन्तर्गत आने वाली तालों की सांगीतिक प्रस्तुतियाँ देते समय कलाकारों को सहजता का अनुभव हो, अर्थात् कलाकारों को सांगीतिक कार्यक्रम में निरन्तर सरलता से तालों का सम, खाली, विभाग तथा आवर्तन आदि का बोध होता रहे।

अतः इस प्रकार से तालों के सन्दर्भ में विभागों की भी अत्यंत अहम भूमिका होती है, जिस पर तालों

की भिन्न-भिन्न प्रकृतियाँ (समपदी, अर्द्धसमपदी तथा विषमपदी तालें) निर्भर करती हैं।

संदर्भ सूची :

1. कुदेशिया डॉ. शोभा- प्राचीन ताल के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान तबलावादन (पृ. सं.-167-171)
2. गुप्ता निशि- तालशास्त्र का सैद्धान्तिक पक्ष (पृ. सं.- 278)



इलाहाबाद के कलाकार बालादत्त पाण्डे के भावपूर्ण चित्रों का भारतीय लोक संस्कृति व परम्परा की समृद्धि में योगदान

कृष्ण जी मिश्र

शोध छात्र,

चित्रकला विभाग डी. जी. पी. जी. कालेज

छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

सारांश :

इलाहाबाद के अनेकों सुप्रसिद्ध चित्रकारों ने भारतीय कला एवम् संस्कृति को आधार मान कर अपनी कलाकृतियों का सृजन किया जिनमें कई चित्रकारों जैसे- क्षितिन्द्रनाथ मजूमदार, सुखबीर सिंह सिंघल, प्रो० रामचन्द्र शुक्ल एवं डॉ. श्याम बिहारी अग्रवाल इत्यादि हैं। जिसमें भारतीय कला एवम् संस्कृति का प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है। इस क्षेत्र में एक और उल्लेखनीय नाम आदरणीय बालादत्त पाण्डे जी का है, जिन पर ये शोध-पत्र केंद्रित है।

प्रयागराज के इस अनुपम कलाकार का जन्म 1933 में रानीखेत की सुंदर सुरम्य पहाड़ियों में हुआ। बालादत्त जी ने प्रयागराज के पौराणिक महत्व को अभिव्यक्त करते हुए ढेरों चित्र बनाए, जो भारतीय पुराणों का सर्वकालिक दृश्य प्रमाण हैं।

वस्तुतः बालादत्त पाण्डे ने मुख्य रूप से भारतीय कला एवं संस्कृति से उत्प्रेरित होकर चित्रण कार्य किया। अतः हम कह सकते हैं कि बालादत्त पाण्डे की कृतियों में भारतीय कला एवं संस्कृति का प्रतिबिम्ब स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। वस्तुतः बालादत्त पाण्डे ने मुख्य रूप से भारतीय कला एवं संस्कृति से उत्प्रेरित होकर चित्रण कार्य किया साथ ही काफी हद तक तत्कालीन सामाजिक परिवेश का भी निरूपण किया है। अतः हम कह सकते हैं कि बालादत्त पाण्डे की कृतियों में भारतीय कला एवं संस्कृति का प्रतिबिम्ब स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

बीज शब्द :

प्रयागराज, इलाहाबाद के कलाकार, धार्मिक कला, आस्था, पारम्परिक कला।

भूमिका :

भारतीय पुराण वेदों में वर्णित पवित्र पावनी ही, साथ ही कला - शिक्षा और संघर्ष की त्रिवेणी भी नगरी प्रयागराज हिंदुओं की आस्था की त्रिवेणी तो है है। प्रयागराज या इलाहाबाद ही वह स्थान है, जहाँ

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

175

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

सैकड़ों छात्रों का भविष्य निर्माण होता है। इलाहाबाद ही वह नगरी है, जहाँ रचनाकारों का इतिहास अपने अवशेषों के साथ जीवंत है। जहाँ कला के धुरंधरों ने अपनी सक्रियता से इलाहाबाद में कला का पोषण किया। किसी भी देश, स्थान की संस्कृति अपने साहित्यकारों और कलाकारों की ऋणी होती है। यह कलाकार और रचनाकार ही हैं जो युगों से संग्रहित मान्यताओं को प्रमाण के तौर पर प्रस्तुत करते हैं।

भारत वर्ष के उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में स्थित इलाहाबाद हिंदुओं का प्रसिद्ध तीर्थ स्थल एवं आस्था का केंद्र है। इलाहाबाद के संगम क्षेत्र में प्रत्येक 12 वर्ष पर महाकुम्भ एवं प्रत्येक 6 वर्ष पर कुम्भ का आयोजन होता है। जिसमें पूरे विश्व से करोड़ों की संख्या में श्रद्धालु आ कर पतित पावन संगम में आस्था की डुबकी ही नहीं लगाते वरन देश विदेशों की भांति-भांति की कलाओं एवं संस्कृतियों का भी रसपान करते हैं। यहाँ से अनेकों चित्रकारों को प्रेरणा मिलती है कि कैसे कला एवं संस्कृति समाज के अभिन्न अंग हैं। इलाहाबाद के अनेकों सुप्रसिद्ध चित्रकारों ने भारतीय कला एवम् संस्कृति को आधार मान कर अपनी कलाकृतियों का सृजन किया जिनमें कई चित्रकारों जैसे- क्षितिन्द्रनाथ मजूमदार, सुखबीर सिंह सिंघल, प्रो. रामचन्द्र शुक्ल एवं डॉ. श्याम बिहारी अग्रवाल इत्यादि हैं। जिसमें भारतीय कला एवम् संस्कृति का प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है।

इस क्षेत्र में एक और उल्लेखनीय नाम आदरणीय बालादत्त पाण्डे जी का है, जिनपर ये शोधपत्र केंद्रित है।

विषय वस्तु :

यह शोध पत्र जिन महनीय कलाकार पर केंद्रित है, वह भारतीय परम्परा तथा पौराणिक आख्यानों को दृश्य रूप देने वाले कलाकार हैं। प्रयागराज के इस अनुपम कलाकार का जन्म 1933 में रानीखेत की सुंदर सुरम्य पहाड़ियों में हुआ। बाला दत्त पाण्डेय

जी उन कलाकारों में से थे जो कि रचनात्मक आस्था और नवीन सृजन विधाओं के साथ साथ प्रयोगवादी उत्साह से कार्य करते रहे। परम्परा और मर्यादाओं के साथ साथ विषयों की विविधता, रचना विधान का नवीनीकरण एवं रंग विन्यास की ताजगी उनके चित्रों में यह दर्शाती थी कि सौंदर्य बोध की दृष्टि अति व्यापक है। शायद यही कारण है कि उनके द्वारा चित्रित प्रत्येक कला अध्यायों में सर्वांगीणता के दर्शन होते हैं।

लखनऊ स्कूल ऑफ आर्ट से आर्ट मास्टर ट्रेनिंग का डिप्लोमा प्राप्त कर चित्रकला विधा से एम. ए. करने के पश्चात 1953 से उन्होंने ने अध्यापन कार्य किया। इस समयावधि में वे राजकीय पैडागॉजिकल इंस्टिट्यूट, प्रयागराज में अध्यापक रहे। साथ ही राज्य ललित कला अकादमी उत्तर प्रदेश के सदस्य भी रहे। कुमाऊँ क्षेत्र की लोक कला के सर्वेक्षण, वृत्तिकरण एवं संग्रह के अवैतनिक निदेशक के पद पर भी कार्यरत रहे। इनके अतिरिक्त प्रयाग कला समिति इलाहाबाद के सचिव पद पर रहकर राज्य के कलाकारों का विशेष प्रोत्साहन किया तथा समीक्षावाद धारा के संस्थापक सदस्य के रूप में भी अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया। बाला दत्त जी ने अपने चित्रों में पीढ़ियों से प्राप्त संस्कार, श्रुति कथाओं तथा अपनी धार्मिक आस्था का भी चित्रण किया। उनका कला संसार इतना विस्तृत और वृहद है कि उसे समझने के लिए एक पूरा शोध ग्रंथ लिखा जा सकता है, तथापि संक्षिप्त अध्ययन हेतु इस शोध पत्र में आंशिक विश्लेषण किया जा रहा है।

विषय-वस्तु विश्लेषण :

बालादत्त जी ने प्रयागराज के पौराणिक महत्व को अभिव्यक्त करते हुए ढेरों चित्र बनाए, जो भारतीय पुराणों का सर्वकालिक दृश्य प्रमाण हैं। श्री पाण्डेय ने कुछ ऐसे भी चित्र श्रृंखलाएं बनाई जिनमे सामाजिक जीवन के यथार्थवादी पक्षों को अंकित किया गया है

जैसे कि इनके द्वारा चित्रित ब्लैक बोर्ड चित्र श्रृंखला, धोबी, इक्केवाला, केला बेचने वाला इत्यादि।



इसी प्रकार काव्यानुभूति विषयक काल्पनिक चित्रों को भी अपनी तूलिका द्वारा सजीव चित्रित किया है जिनके अंतर्गत महाकवि कालिदास के वियोग में चित्रित यक्ष द्वारा संदेशवाहक की कल्पना को उन्होंने चित्रंकित किया। उमर खय्याम की रूबाइयों पर भी अत्यंत आकर्षक वो कविस्वमय चित्र श्रृंखला तैयार की है

इसी प्रकार सत्याभास चित्र श्रृंखला के अन्तर्गत आभासित तथा अदृश्य सत्य का रूप देने का अथक प्रयास किया है। उक्त श्रृंखला के अन्तर्गत श्री पाण्डेय ने यज्ञ, पुष्प, देवी माँ, चक्र तथा डोर आदि विषय वस्तुओं का चुनाव किया।

श्री पाण्डेय जी ने जहां उपनिषदों, पुराणों, वैदिक साहित्यों एवं हिन्दू धर्म में प्रचलित लोक कथाओं का अध्ययन कर उनके वैशिष्ट्य को आत्मसात कर अपनी अनुभूतियों और अकल्पनीय कल्पनाओं को कूची द्वारा कैनवास पर साकार रूप प्रदान करके भारतीय लोक संस्कृति की समृद्ध परम्परा को जीवन्त किया। वहीं प्रयोगवादी कलाकार के रूप में टाट,

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

धागे, धातु, तार एवं विभिन्न रंगों आदि साधारण वस्तुओं को कैनवास पर संयोजित कर जो रचनाधर्मिता प्रदर्शित की है वह आधुनिक तकनीकी की परिचायक है। श्री पाण्डेय के चित्र जिस प्रकार के संयोजन की नवीनता, रंग विन्यास की सहजता एवं ताजगी और प्रतीकात्मकता धारण किए हुए है वह चित्रण में पारंपरिकता के साथ साथ चित्रण में प्रयोगधर्मी नवाचार की भावना को प्रेरित करते है

इसके अतिरिक्त कला समीक्षा और अध्ययन के क्षेत्र को भी संपन्न बनाने में इनका महती योगदान है।

श्री पाण्डेय के अनुसार : 'इधर मैं प्रकृति पर हुए दुराचार पर चित्र बना रहा हूं और साथ ही आध्यात्मिक तत्व की अभिव्यक्ति भी जारी है। कुछ समय विद्यार्थियों के साथ व्यतीत होता है। इस संबंध में मैंने देखा है कि, बहुत से ऐसे लोग हैं जिनमें कला के प्रति गहरी रुचि है। जो कोई कला निर्देशन तथा अवसर न मिलने के कारण कुंद पड़ गई है। मैं अनुभव किया है कि, वहां जरा सी रख हटाने पर ही चिंगारी दृष्टिगत हुई और देखते-देखते शोला बन गई। इनमें सृजन के आनंद को स्पष्ट देखा जा सकता है लेकिन शीघ्र ही उन्हें सड़क पर भटकने के लिए बाध्य होना पड़ता है ना कोई प्रशय और ना कोई मार्ग।'



कुम्भ एवं महाकुम्भ से जुड़ी लोक तथा दंत कथाएं तो अनेकों सुनने को मिलती है पर यदि कोई कोई कलाकार विश्व के सबसे बड़े मेले को अपनी सृजनशीलता से कैनवास पर तूलिकाघातों द्वारा साकार रूप प्रदान कर दे तो यह किसी चुनौती से कम नहीं होगा। वैदिक ऋचाओं, उपनिषदों, पुराणों पर आधारित चित्रों का निर्माण करने वाले चित्रकार बाला दत्त पांडे

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

के द्वारा बनाई गई अमृत कुंभ नामक उक्त पेंटिंग विशेष सभी कला प्रेमियों के लिए विशेष है। श्री पांडे ने कुंभ यानी घड़े में ही समूचे विश्व और ब्रह्मांड को चित्रित करते हुए संगम के जल की एक पवित्र डुबकी से जुड़े विहंगम स्वरूप को अपनी खास तकनीक से साकार कर दिया। श्री पांडे का कहना था कि- 'औरों के लिए तो कला कर्म का मकसद जो भी हो पर मेरे लिए यह सिर्फ स्वांतः सुखाय नहीं है।' वे इसे एक ऐसा सौंदर्य बोध मानते हैं जो समाज के लिए उपेक्षितों और वंचितों के लिए भी है। वे कहते हैं कि- 'दुनिया में होने वाले तमाम बड़े मेलों को देखें तो वह किसी एक परंपरा से नहीं बंधे हैं। कोई आयोजक और आमंत्रित अवश्य होता है पर यहां तो ना कोई आयोजक और ना ही किसी ने किसी को मकर संक्रांति या कुंभ स्नान का निमंत्रण दिया है सदियों से लोग एक तय तारीख और तय समय पर पूरे देश से खींचे चले आते हैं और उनका उद्देश्य एक ही होता है पतित पावन गंगा में पवित्र डुबकी। इसी के साथ विभिन्न धर्म संप्रदायों मत मतांतरों के लोगों का मिलना भी इसी बहाने हो जाता है और यह सामाजिक समरसता और आपसी मेलजोल का एक सशक्त माध्यम भी बनता है।'

श्री पांडे द्वारा अपने जीवन काल में कई कुंभ और महाकुंभ देखने के बाद पूरी शिद्दत से कैनवास पर उसके दृश्यों को उतारने का कार्य किया। कुंभ नामक सीरीज में उन्होंने कई कलाकृतियों का निर्माण किया जिसमें कुंभ से जुड़े कई कथानको, घटनाओं, दृश्यों को जीवंतता प्रदान की।

समकालीन यथार्थ को मिथकीय प्रतीकों में चित्रित करने वाले चित्रकार बाला दत्त के चित्र संस्कृत वाङ्मय से बहुत प्रभावित है पाश्चात्य आधुनिक चित्रकला की अव्यक्त गलियों की बजाय भारतीय दर्शन अध्यात्म और पौराणिक गाथाओं के अमूर्त प्रतिको को माध्यम बनाकर अपनी अभिव्यक्त करने में माहिर है चित्रकार बाला दत्त पांडे पारंपरिक प्रतिको को चित्रों में समाहित



करने में कोई परहेज नहीं करते मगर उसे वह आधुनिक संदर्भों से जोड़ना नहीं भूलते। आध्यात्मिक संस्कारों में गूँधें चित्रकार बाला दत्त को

असामाजिक व्यवहार बुराईयां असंगतियां विसंगतियां और छद्म पीड़ित करते हैं तो वहीं सामाजिक संघर्ष, बगावत भी आन्दोलित करते हैं। और वह तीव्र रूप से उनके चित्रों में उतर आते हैं। चित्र में विषयों का तनाव उनके प्रतीक बयान करते हैं, लेकिन तंत्र-मंत्र, रहस्य, दिव्यता, अलौकिकता आश्चर्य के श्वर चित्रों पर एक चौकन्ना दृष्टि डालने पर मजबूर करते हैं, वरना आप भी उन चित्रों के आभामंडल में बहकर कथ्य की जगह रूप का गुणगान कर सकते हैं। बाला दत्त के चित्रकार व्यक्तित्व की खासियत और विरोधाभास यही दो धाराओं का विकास है जहां एक तरफ संघर्ष और मुक्ति की छटपटाहट है तो दूसरी ओर वैराग्य से मुक्ति परमपद की खोज। बाला दत्त का कहना है कि- 'चित्रकार के लिए भाव विचार के अलावा शिल्प की कुशलता भी उतनी ही जरूरी है'।

एक चित्रकार के रूप में बाला दत्त जी ने अपने जीवन के प्रारंभिक चरण में प्रकृति के सौंदर्य और भव्यता से अभिभूत होकर उसे पूरी रहस्यात्मकता से अपने प्रारंभिक चित्रों में उकेरा। तत्पश्चात् बाला दत्त का झुकाव राष्ट्रीयता तथा देश प्रेम और आजादी के संघर्षों की ओर होने लगा इस दौरान उन्होंने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ चित्र बनाने भी शुरू किए। आजादी मिलने के बाद जैसे-जैसे देश में अराजक वातावरण बनना शुरू हुआ बाला दत्त जी की संवेदना उस और मुड़ने लगी। वह बताते हैं कि जब अपने ही देश में नागरिक अपने ही लोगों के साथ अन्याय पर उतारू होने लगे तो ऐसे

सामाजिक तत्वों के विरुद्ध गहरा आक्रोश मेरे चित्रों में उभरा इस दौरान भूख और गरीबी पर भी मैंने चित्र श्रृंखला बनाई। जानवरों को प्रतीक बनाकर उनके उत्पीड़न पर बगावत करते चित्र बनाना आरंभ किया।

बाला दत्त के समीक्षावादी चित्रों में विषमताओं का विरोध मुख्य स्वर है समीक्षावादी चित्रों की श्रृंखला तैयार करते हुए वह अनुभव करते हैं कि वैसे तो विचार और तकनीक दोनों स्तरों पर आरंभ में चित्र साधारण सी बात ही अभिव्यक्त कर रहे होते हैं लेकिन बाद में चित्रों में विचार और शिल्प दोनों ही क्लिष्ट होते जाते हैं। अंततः अमूर्त सत्य रुपायित होने लगते हैं ऐसे चित्र दर्शन की चेतना में गहरे



अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

स्थापित हो जाते हैं। वह बताते हैं कि जब आप तस्वीर बनाने में लगे होते हैं तो उसे एक मूड आगे बढ़ा रहा होता है धीरे-धीरे उसमें मूल्य स्थापित होते जाते हैं और मूड भी गहरा हो जाता है।

बाला दत्त बताते हैं की - 'भारतीय अवधारणा है सूक्ष्म को रूप देने की कोशिश। हमारे यहां जो अरूप, अंगद, अशब्द, अनित्य है उसे ही प्रतीक में रचा गया है चित्रकला में आपके पास भाषा है लेकिन फिर भी विषय वस्तु होनी चाहिए। असाधारण कल्पना और शिल्प के चित्रकार बाला दत्त अपने चित्रों में निरंतर मौलिक चिंतन और स्थितियों परिस्थितियों को जगह देते रहे हैं।'

निष्कर्ष :

भारतीय कलाकारों के बारे में कहा जाता है कि, भारतीय कलाकार कलाकार बाद में दार्शनिक पहले होता है। यह भारत की संस्कृति और आध्यात्मिक चेतना का प्रभाव ही है। भारत भूमि के आस्था और श्रद्धा का केंद्र रही प्रयाग नगरी में दीर्घ अवधि तक कार्यरत रहे कलाकार बालादत्त पाण्डे ने भारतीय कला एवं संस्कृति से सम्बन्धित विषयों को अपनी कलाकृतियों का मुख्य आधार बनाया। वास्तव में कला एवम् संस्कृति का सह-संबन्ध सदैव से ही रहा है, क्योंकि भारतीय कला धार्मिक एवं आध्यात्मिक भावनाओं से सदा ही अनुप्रमाणित रही हैं। किन्तु भारतीय कलाकारों ने प्रत्येक युग में धार्मिक कृतियों के साथ-साथ समकालीन समाज के परिवेश को भी चित्रांकित किया है। अतः भारतीय कला को समाज की सच्ची दिग्दर्शिका भी कहा जा सकता है। वस्तुतः बालादत्त पाण्डे ने मुख्य रूप से भारतीय कला एवं संस्कृति से उत्प्रेरित होकर चित्रण कार्य किया साथ ही काफी हद तक तत्कालीन सामाजिक परिवेश का भी निरूपण किया है। अतः हम कह सकते हैं कि बालादत्त पाण्डे की कृतियों में भारतीय कला एवं संस्कृति का प्रतिबिम्ब स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

हमें आशा है कि जब भी प्रयाग नगरी के सांस्कृतिक पारंपरिक तथा कलात्मक पक्ष का अध्ययन किया जाएगा, तो उसमें बाला दत्त पाण्डे जी का नाम अग्रगण्य होगा। उनके चित्रों में व्याप्त निश्छलता, पवित्र धार्मिक भावनाएं, श्रद्धा भाव धार्मिक पात्रों के अलौकिक चेहरे, दैदीप्यमान भाव-लावण्य से युक्त होकर निश्चित ही समस्त कला प्रेमियों तथा कलादर्शकों के लिए दर्शनीय तथा अनुकरणीय है।



Indian Folk Culture in Tamil and Sanskrit Literatures

L.Suvetha

Research Scholar
Department of Tamilology,
School of Tamil Studies,
Madurai Kamaraj University,
Madurai, Tamilnadu

Dr. B. Sankareswari

Research Guide
Assistant Professor and Head (I/C)
Department of Tamilology, School of Tamil Studies,
Madurai Kamaraj University,
Madurai, Tamilnadu

Abstract :

Indian Folk culture is richly reflected in Tamil and Sanskrit literatures. However Tamil literature is much closer to folk roots and everyday life, village beliefs, oral tradition, festivals and local deities. Despite Sanskrit literature often being viewed as the language of elite or classical tradition. Many works in Sanskrit capture the essence of folk life, traditions, customs and beliefs. This article explores the rich tapestry of folk cultural elements embedded in Tamil and Sanskrit classical literatures, particularly focusing on marriage and funeral rituals. Through a comparative analysis of Tamil Sangam works such as Tolkāppiyam, Akanānūru and Puranānūru with Kalidasa's renowned Sanskrit compositions like Kumarasambhava, Abhijnana Shakuntalam, and Raghuvamsa. The study highlights the enduring nature of ritualistic traditions in Indian society. Marriage rituals such as tying Kaṅkaṇam, setting up pavilions and invoking blessings from chaste women are vividly portrayed in both literatures. The concept of Gandharva marriage and post-marriage customs like bidai are examined through characters like Shakuntala and Parvati. Similarly, funeral customs, particularly the mourning expression known as Oppāri in Tamil and the grief of Rati in Kalidasa's works, underscore the emotional intensity of loss and remembrance. Rituals like Tarppanam and Piṇṭam are emphasized for ensuring peace in the afterlife. The paper concludes that despite linguistic and regional differences, these literatures reflect a shared emotional and cultural consciousness, revealing the universality of human experiences surrounding life's key transitions- birth, marriage, and death- through the lens of folk tradition and ritual.

Keywords :

Rituals, Gandharva marriage, Kaṅkaṇam Funeral Rites, kaiyaṇilai, Tarppanam.

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

181

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

Introduction :

Tamil and Sanskrit Languages are the oldest and most distinctive classical languages of India. India's diverse cultural landscape is reflected in its literature, where folk traditions and cultural expressions have played a significant role in shaping the stories, emotions and daily lives of societies. Although both language literatures focus on themes of love life, nature and human emotions.

Kalidasa (4th - 5th century, CE) is widely regarded as one of the greatest Sanskrit poets and dramatists in Indian literature. He is known for his beautiful language, imagination and deep understanding of nature and human emotions. His famous works include the plays Abhijnanashakuntalam, Malavikagnimitram and Vikramorvasiyam. He also wrote two epics, Raghuvamsam and Kumarasambhavam and lyrical poems like Meghasandhesam and Rithusamharam.

According to Theodar H. Gaster, "Folklore is that of people's culture which is preserved consciously or unconsciously, in beliefs and practices customs and observances of general currency in myths legends and tales of common acceptance and in arts and crafts which express the temper and group rather than of an individual."

(Dr. S. Sakthivel, Nāṭṭuppuraviyal āyvu, Pg. No-20)

This article to explore the similarities and variations in portrayal of Folk culture activities in Tamil Literature and Kalidasa's works with a particular focus on before and after rituals proceedings in marriages and Funeral rites are how reflects in these literatures.

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

Marriage : Before and After Rituals:

**"Karpu eṇappaṭuvatu karaṇamoṭu
puṇara**

**kōḷarkku uri marapiṇ kilaval kilattiyai
koṭaikku uri marapiṇōr kōṭuppu
koḷvatuvē" (Tolkāppiyam-1086)**

Kaḷavumaṇam, is when a man and a woman who have the same love for each other. Then they live together without knowledge of their parents, relatives and friends. This is called Kāntarva wedding. The other one was a man and a woman lives together as a couple with knowledge of parents, villagers and a proper ritualistic marriage life called Karpumaṇam. This heading will show how wedding rituals are reflected in Tamil literatures and the literary works of kalidasa.

Before the wedding ceremony began, they set up a pavilion in front of the house, tied flower garlands, rang drums and lit lamps to decorate the house. The bride was dressed up new cloths and adorned with various ornaments and tie the safety cord to her hand. This is called 'Kaṇkaṇam' and this culture is followed the present time too. These cultural rituals are represented in Akanāṇūru, Tamil sangam literature,

**"Uḷuntu talaippeyta koḷuṅkali mituvai
peruñcōrru amalai nirpa niraikāl
tanperum pantar tarumaṇal ṇemiri
maṇai viḷakkuruttu mālai toṭari
kaṇai iruḷ akanra kavinperu kālai
kōḷkāl nīṅkiya koṭuvaṇ tiṅkaḷ..."**

(Akanāṇūru - 86:1-6)

In kalidasa's kumarasambhava, which feature the marriage of Cīvā and pārvati, depicts the rituals of marriage.

‘सन्तानकाकीर्णमहापथं तच्चिनांशुकैः
कल्पितकेतुमालम्।

भासोज्ज्वलत्काञ्चनतोरणानां स्थानान्तरं स्वर्गं
इवावभासे॥’

(Kumarasambhava -7:3)

‘मैत्रे मुहूर्ते शशलाञ्छनेन योगं गतासूत्रफलुनीषु।
तस्याः शरीरे प्रतिकर्म चक्रुर्बन्धुस्त्रियो याः
पतिपुत्रवत्यः॥’

(Kumarasambhava -7:6)

‘तस्मात् प्रदेशाच्च वितानवन्तं युक्तं
मणिस्तम्भचतुष्टयेन।
पतिव्रताभिः परिगृह्य निन्ये क्लृप्तासनं
कौतुकवेदिमध्यम्॥’

(Kumarasambhava -7:12)

“The city the high roads of which were strewed with heavenly flowers the row of flags in which was made of china-silk and which was ablaze with the brilliance of its golden outer-gates appeared as if it was heaven transplanted.

At the Muhūrttam (period of 48 minutes) auspiciously presided over by the sun and moon was in conjunction with Uttarāpaṅkuni, the kinswoman who had husband and male children decorate the bride.

From the bathing hall, the woman led pārvati to the middle of the auspicious altar which had a canopy and four pillars (at its four corners).”

(M. R. Kale, Kalidasa’s Kumarasambhava, Cantos - I-VII, Pg. No. - 49, 50)

At the wedding, the elderly woman gathered and carrying a water pot on their heads and a bowl called ‘Maṇṭai’ in their hands. Then they perform all the necessary

rituals and complete the wedding. Then four auspicious women who had given birth to children gathered and sprinkled rice and flowers with water, wishing them to live long and to take care of their husbands without slipping from their virginity.

“Putalvar payanta titalai! av vayirru
vāl ilai makalir nālvar kūṭi,

“karpiniṇ valā’a, naṇ pala utavip
per_rōr peṭkum piṇaiyai āka!” Eṇa,
nīroṭu corinta ir itaḷ alari
pal iruṇ katuppiṇ nelloṭu

tayaṅka, vatuvai nal maṇam
kaḷinta pinrai, kallen cum’maiyar,
ñerēreṇap pukutantu,

“pēr irkilatti āka” eṇat tamar tara”

(Akanālū_u - 86:11-20)

In Kalidasa’s Abhijnana Shakuntala, Dushyanta was a royal king of Hastināpur. Shakuntala was a step daughter of Kashyapa rishi. One day while passing the ashram, dushyanta saw shakuntala for the very first time. They fell in love. Both were understood each other and got married in the forest as Gandharvas. Dhushyanta rushed to the palace on a royal occasion. Then sage Kashyapa, mother Gautami and friends Anasūyā and Piriyaṃvatā were planned to be send her to Hastināpur. This is known as bidai or vidai in Indian culture. These marriage rituals are depicted here.

“Anasūyā - well, then in this cocoa-nut casket, hanging on the branch of mango tree. I have put a kēsārā -garland which is capable of keeping fresh for a time, with this very object. There take it in your hand. While I prepare for her auspicious decoration such as yellow orpiment, holy earth and turvā sprouts.

Gautami - bid the worthy sārṅkaravā and others escort śākuntalā.

Piriyamvatā - Hurry Aṇasūyā, Hurry. They are calling the hermits who are to go to Hastināpur.

(Entering with decorations in her hand)

There stands our śākuntalā, after bathing overhead at earliest sunrise, while the hermit-women, who are congratulating her. Have the hallowed grains in their hands and are invoking blessings on her. Let us advance to her.

(Enter śākuntalā seated and engaged as described) :

One of the Hermit-women : My child! Mayest thou receive the tittle of ‘Great Queen’ showing how well thy husband honors thee!

Second : Child, Mayest thou be delivered of a hero!

Third : Child, Mayest thou be highly esteemed by thy husband!

(Having blessed her thus, exeunt all except Gautami) :

Friends : Dear śākuntalā, your decoration is completed. Now put on the pair of silken garments.”

(C. R. Devadhar, Works of Kālidāsā, Pg. No. - 105, 106).

The above mentioned marriages are the gandharva structure, one of the eight types of marriages mentioned by Tolkāp-piyar. Based on this it can be seen that the wedding rituals described in Tamil literature and the stories of recorded in kalidasa’s literatures are similar. Among the wedding rituals, especially observing the day and time, worshipping the family deity, tying auspicious threads, adorning chaste women,

setting up a pavilion and arranging garlands, and the wedding is held. It is tradition that still occurs today for chaste women and elders to shower a married woman with auspicious water and give her rice beads and send her on her way.

These events are reflected in both types of Literature. However, in kalidasa’s works, only the aristocratic and archaic characters of goddess and kings are depicted. But Tamil literature goes beyond mythology and is a source of evidence for lifestyle of the indigenous people of Thinaipulam.

Funeral - Hoax and Rituals :

Oppāri songs are sung in memory of died. This song lyrics talk about the glory of deceased, their qualities and how they admired by others. These rituals and funeral rites are represented in literatures too. The cruelty of time, the power of fate and pain are meanings of Oppāri. It is natural for people to think that sharing their mental problems with others will erase their burdens. In Tamil, Oppāri is called pilākkāṇam piṇakkālam, kaiyaṇunilai, pulampal.

(Dr. S. Sakthivel, Nāṭṭuppuraviyal āyvu, pg.no-60)

“Avan pukal pāṭi ulavum ulakattu uyir”

(purapporuḷ veṇṇāmālai, koḷu-267)

This became a state of chaos, because the worldly beings were said to be spinning in praise of the leader who had entered the heaven. They speak the glory of the dead with great love, believing that life is not a life lasts forever in the body and that its glory should be praised by the world even after death.

One of the Puraṇānūru songs in Tamil sangam literature talks about kaiyaṇunilai

(Oppāri). It shows the Cēramān who is king of Kōṭṭampalam, how much he worried and cried for the death of his wife,

“Yāṅkup peritu’āyinuṁ, nōy alavu enaittē,
uyir cekukkallā matukaittu aṇmaiyin?
Kalli pōkiya kaḷari maruṅkin vellītaip
pottiya vīlai viraku īmattu, oḷ alal
pallip pāyal cērtti, ṇāṅkar māyntanaḷ,
maṭantai;
innum vāḷval; en itan paṇpē!”

(Puraṇānūru - 245)

The king was regrets that he is still alive even after her death. In kumara-sambhava literature, Lord shiva burns Maṇmatan (cupid), who has exhausted his penance with his forehead eye. kalidasa depicts the lamentations of Rati, who is in irreparable grief upon Maṇmatan’s death.

‘तमवेक्ष्य रुरोद स भृशं स्तानसम्बाधमुरो जघान च।
स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते॥’

(kumarasambhava -4:26)

Rati beat harshly as an expression of grief. When he or she saw the people they loved, the sadness had been holding back came out as quickly as if a door had opened. And Rati delivered her hoax,

‘तदनु ज्वलनं मदर्पितं त्वरयेदक्षिणवातवीजनैः।
विदितं खलु ते यथा स्मरः क्षणमप्युत्सहते न मां विना॥’

(kumarasambhava -4:36)

‘इति चापि विधाय दीयताम्
सल्लिस्याञ्जलिरेक एव नौ।
अविमज्य परत्नं तं मया सहितः पास्यति ते
सबान्धवः॥’

(kumarasambhava -4:37)

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

‘परलोकविधौ च माधव स्मरमुद्दिश्य विलोलपल्लवाः।
निवपेः सहकारमञ्जरीः प्रियचूतप्रसवो हि ते सखा॥’

(kumarasambhava -4:38)

My Maṇmatan will not be without me for a moment make a pyre and burn it well. I will also go to the heaven with him. When offering Tarppaṇam doesn’t do it separately, do not separate us. Give us both handful of water as Tarppaṇam, my friend. He will always want to drink water with me. My husband is a great lover of mango blossoms. Offer it during the initiation of Srārta ceremony said by Rati.

Funeral rituals include Tarppaṇam, Srārta, Nivāpa called Piṇṭam. These rituals are believed to bring peace to the deceased in the afterlife. Kalidasa’s Raghuvamsa also represent these rituals. Several days after the Queen Intumati’s death, guru Vaṣiṣṭa consoled King Ajaṇ, who was still mourning, saying, “Don’t be sad she will be sad too” and had the last rites performed.

‘अथ तस्य कथंचिदङ्कृतः स्वजनस्तामपनीय सुन्दरीम्।
विससर्ज कृतान्त्यमण्डनामनलायागुरुचन्दनैधसे॥’

(Raghuvamsa -8:71)

‘अथ तेन दशाहतः परे गुणशेषामुपदिश्य भामेनीम्।
विदुषा विधयो महर्दयः पुप एवोपवने समापिताः॥’

(Raghuvamsa -8:73)

‘अपशोकमनाः कुटुम्बिनीमनुगृह्णीष्व निवापदत्तिभिः।
स्वजनाश्च किलातिसततं दहति प्रेतमिति प्रचक्षते॥’

(Raghuvamsa -8:86)

“Then his relations, having with great difficulty removed that beautiful lady (Queen Indhumathi) from his lap, consigned her who was then adorned with that celestial flower as her last funeral decoration, to fire having black aloe wood for its fuel.

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

Then after ten days the ceremonies attend with great magnificence in honor of his beautiful queen, whose virtues were the only residue, were finished by that learned king in the very garden of his capital.

Relieving your mind of sorrow do you favor your wife with offerings of water for it is said with certainty that the uninterrupted flow of tears shed by relatives burn (i.e. torment) the departed soul.”

**(Gopal Raghunath Nandargikar,
The Raghuvamsa of Kālidāsā -
Pg. No.-246, 247, 253)**

Conclusion :

Birth, marriage and death are the most important events in the life cycle. Human life is bounded by rituals. The rituals performed during the formation and birth of a fetus form the basis for the baby shower, horoscope and naming ceremony. After relatives are invited, the family deity is worshipped and fasting is observed. Then the child reaches puberty, he prepares for a new life namely marriage. The rituals that can be take place before and after the wedding are given detailed explanations in the previous passage. The main features include setting up a pavilion, being adorned by auspicious women and Tying Kañkaṇam and receiving blessings from elders.

The final stage of life is death. The main feature of this death ceremony is called Oppāri. This Tradition when recorded

in literature refers to the weeping in praise of the dead and the rituals performed to ensure that the soul does not suffer in heaven after death. Notable among the rituals performed in near water bodies for this purpose are the Tarppaṇam and Piṇṭam performed after death.

These Rituals have been observed from time immemorial to this day. The fact that humans, despite being different in terms of land and language, are united by their feelings is revealed when we examine the Tamil literature and the works of kalidasa in Sanskrit, from the perspective of folk culture.

Bibliography:

1. C. R. Devadhar, 1986, Works of Kālidāsā - vol.-1 (Dramas), Motilal Banarsidass, Delhi.
2. Dr. S. Sakthivel, 2017, Nattupuravial aavu, Manivasagar Pathippagam, Chennai.
3. Dr. S. Thirugnana sambandham, 2017, Iyanaridhanar's Purapporul Venbamalai, Kathir Pathippagam, Thiruvaiyaru, Tamilnadu.
4. Dr. V. Murugan, 2000, Tolkāppiyam in English, Institute of Asian studies, Chennai
5. Gopal Raghunath Nandargikar, 1971, The Raghuvamsa of Kālidāsā with the commentary of the Mallinātha (Fourth Edition) E-Book, Motilal Banarsidas, Delhi.
6. M. R. Kale, 1917, Kālidāsā's Kumārasambhava, cantos – I-VII, The Standard Publishing Co., Bombay.
7. Puliur Kesigan, 2010, Agananuru, Sharadha Pathippagam, Chennai.
8. Puliur kesigan, 2010, Purananuru, Sharadha Pathippagam, Chennai.



Dimensions of Female Agency and Solidarity in Kerala's Thiruvathirakali Folk Tradition

Lakshmi Nair U.

Research Scholar,
Department of English,
Bharathidasan University, Tiruchirappalli,
Tamil Nadu

Dr. M. Angkayarkan Vinayakaselvi,

Associate Professor and Head,
Department of English,
Bharathidasan University, Tiruchirappalli,
Tamil Nadu

Abstract :

The folk traditions in Kerala reflect a powerful entwining of ritual and community and gendered cultural performance. Among them Thiruvathira dance and its accompanying songs are the prominent as it holds a unique place as women-centric practices that articulate social values, emotional bonds, and ritual significance. Performed mainly during the festival of Thiruvathira, these songs and their accompanying dance (Thiruvathirakali), celebrate and praise marital harmony, female solidarity and aspects of devotion connected to the myth of Shiva and Parvati. In addition to the ritual roles, these oral traditions familiarize the Kerala culture by placing women at the centre of knowledge transmission, the continuance of rituals, and community identity according to Kerala norms. The study discusses how the Thiruvathirai songs and dance foster female agency and solidarity within Kerala's knowledge traditions. The performance space, in the Thiruvathira folk tradition, where women gather in circular formations, sing in unison, and move in harmony, symbolizes equality, bonding, and shared cultural memory. Through the employment of textual analysis and cultural interpretation, the paper contends that Thiruvathirakali the ritualized performance is communicative of the way that folk art forms develop intangible cultural heritage, while simultaneously offering women a medium of empowerment through female agency, solidarity, and their shared and collective identity through the way of ritualized performance.

Keywords :

Folklore; Thiruvathirakali; Womanhood; Female Agency; Solidarity.

Introduction :

The construction of the womanhood influenced and tempered by ritual practices, notion in Kerala has historically been both oral traditions and cultural performances

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

187

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

through which normative ideals of femininity are created, as well as spaces of female agency generated. Although patriarchal narratives and discourse have focused attention on women as dutiful wives and custodians of family honour, Kerala's folk traditions also highlight the importance of women as transmitters of cultural memory and practitioners of ritualized arts. Festivals and other performative practices form gendered spaces in which women are set against social expectations and allowed to lay a strong claim of collective presence, solidarity, and creativity. Of these customs, As mentioned by Sreeparvathi (2016), *Thiruvathira* takes a special place in the cultural life of Kerala as a festival of women that intricately weaves and blends together the soulful elements of devotion, myth, music, dance and social bonding.

Celebrated in the Malayalam month of Dhanu (December-January), *Thiruvathira* was primarily observed by Brahmin, Nair, and Warriar women, and has spread to other communities in contemporary times. In this event, women observe a fast and sing *Thiruvathira Paattu* and do *Thiruvathirakali*, a beautiful and dainty dance in circumlocution around a lit lamp. Women and younger girls, garbed in their traditional clothing, enforce concepts of marital bliss, fertility, and a sharing of collective tranquillity. The rituals that accompany it include the *Patirappoo Choodal* (midnight flower adornment), using *Dasapushpam* (ten herbs). The using of the indigenous herbs and flowers underscores the persistence of ancient practices and a certain transgression of ritual orthodoxy, as the flowers chosen are those usually excluded from temple worship. *Thiruvathira*, as a folklore or as an art form, holds a mythic

foundation that, to some extent, further reinforces its gendered and devotional significance. The legend goes that Lord Shiva, who was about to go through his meditation, was interrupted by Kama Deva, who tried to interrupt his meditation through the use of amorous intentions, he was reduced to ashes by a glance of fire. Shiva redeemed Kama Deva to life on *Thiruvathira*, and thus the war-faith and erotic love could be reconciled. Women remain awake throughout the night with full devotion and prayer, hoping to receive blessings of conjugal union and husband longlife, and thus attributing ritual engagement to ideals of femininity based on the self-sacrificing devotion for marital union and spiritual authority.

Scholars like Sadasivan (2000) brings out how the festival has contributed to the retention of the Brahmanical ritual order in Kerala. Omchery (2005) analyses *Thiruvathira Pattu* as the critical aspect of oral folk tradition that depicts the voices of women in cultural and religious terms. Menon (2011) places the practice in the wider context of the Kerala culture and highlights both social and aesthetic importance. Athira and Sreedhar (2016) more recently examine *Thiruvathirakali* as ritual and performance, suggesting how it has evolved female-focused festival, where women possibility utilize the opportunity to make an excuse from the shield of the taboos that were imposed upon them. However, while all these scholarly works have mapped its ritualistic and aesthetic aspects, there is a limited scholarly attention to how *Thiruvathira* functions as an embodied archive of the feminine space, female solidarity, which brings intergenerational memory and collective identity in

contemporary Kerala. This paper addresses this gap by using textual analysis and cultural interpretation to show that the folklore *Thiruvathirakali* conveys how folk art forms develop intangible cultural heritage. At the same time, it provides women with a means of empowerment through female agency, solidarity and shared collective identity and memory, expressed through ritualized practices and performance.



Figure : *Thiruvathirakali*, <https://www.keralatourism.org/onam/onam-games/thiruvathirakkali>

Female Space and Agency :

Within the ritualized and performative culture that surrounds the *Thiruvathirakali*, it foregrounds a paradoxical but powerful form of female agency in Kerala's socio-cultural history. Although seemingly ritualistic and connected to marital auspiciousness, the dance, with its songs, establishes a space that allows the women to negotiate a freedom, although temporarily, that exists in the realm of patriarchal subjectivity and as a collective female entity. Performed around a *nilavilakku* (auspicious lamp), singing women and the rhythmic circular movements which are more than mere aesthetic gestures constitute a ritualized reclaiming of space and voice in a

culture in which the presence of women had to be closely monitored and controlled. In contrast to such solo forms as *Mohiniyattam*, developed in the nineteenth century to present stylized femininity within a form codified with the male gaze, or *Kathakali*, where participants have traditionally been all-male, with female parts performed by males, *Thiruvathirakali* is exclusively female oriented. It does not operate on the proscenium stage, but it functions in courtyards, domestic compounds, with women themselves comprising part of the performance as well as the audience. The choreography demurs spectacle and instead gives priority to community, memory, and solidarity. This difference highlights how *Thiruvathira* became a lived performance of womanhood, foregrounding the notions of femininity, not for patriarchal consumption but for intra-gender bonding and cultural continuity.

The performance was also structured by its spatial situation, which defined its agency potentials. In the case of Namboothiri *antharjanams*, whose lives had been meticulously regulated and frequently kept out of people's view, *Thiruvathira* was one of the few times they were permitted to express themselves on their own behalf. The transgression of taboos, dancing in the open, decorating the body and chewing betel leaves as a reference to the feminine sensuality was permitted only in the ritual context. As Ohiri (2015) has observed, the patriarchal anticipation of resistance makes such sanctioned taboo-breaking necessary; festivities take on the form of ritualised channels through which resistance might be diffused before it materialises, in case it does. However, ironically, it was the means of these outlets that gave women

the illusion of a temporary autonomy and solidarity and memories that were beyond the ritual realm.

The self-assertion of women goes further as the thematic core of the *Thiruvathira Pattu* (songs). The songs frequently describe the story of three women, Usha, who kept her own marriage, Parvathi, who was very active and courted Shiva, and Damayanthi, who degraded fire at evil. These stories of female longing, freedom of choice, and power struck close to the *antharjanams* as their general lives were dictated by obedience and subservience. Circumlocating and dancing along with a song, wearing flowers, chewing betel leaves, and adorning auspicious designs with flowers on the floor, *antharjanams* would have the leisure to enjoy a self-assertive aesthetics. The ritual, therefore, proved to be a sort of minimal pedagogue, envisaging counter-narrating to such womanhood, deploying myth and song, in which the wife was not only submissive but life-generating, protective, and even desirous. The act of chewing 108 leaves of betel leaves is representative of an approved indulgence with female sexuality because it meant to invoke the spirits of Kamadeva. The languid rhythmic gestures danced around the lamp represent *lasya*, the erotic feminine grace, which visually articulates a corporeality that in everyday life is subdued. Nevertheless, in the case of both *antharjanams* and Nair women, the performance enabled women to transit the boundaries of their typical roles, to develop a kind of ritualized agency that was difficult to retrogressively distinguish between conformity and resistance.

In this regard, the *Thiruvathirakali* cannot be interpreted in opposition but in cultural performance stratification. It exposes the ways women had created a domain of agency within domestic and ritual life, myth and memory had been deployed to rewrite women, and how shared performance had provided a voice to emerging feminine desire. Unlike the female-devoid *Kathakali* and other male-masculinist forms of theatricality, *Thiruvathira* provided a purely female field of performativity where female bodies, voices, sexually-avowed desires, were not just subject to any and all forms of tolerance but also, though temporary, love. The tendency of memory in these chants and dances reminds the sustaining power of women in Kerala to resist, reimagine, and recreate femininity through popular performance.

Female Solidarity and Collective Memory :

On the surface level, the *Thiruvathirakali* seemed to be a domestic rite tied by the cultural convention, although it never just rested on ritual appeasement or aesthetic pleasure alone. The group singing of *Thiruvathira Pattu* and the synchronized movements offered women a space and platform for interaction, socialization, and cultural bonding in a patriarchal milieu that otherwise restricted their mobility and visibility in the public social realm. The lyrical narratives that contain these stories act as a communal memory system that ties generations of women together through sharing performances and oral delivery (Mathew, 2024). In this way, *Thiruvathira* was like an undercover arena of negotiation where women, who seemingly were

not confined by tradition, could claim their agency through collective identity. The usage of the rhythmic words “aarpo heeyo heeyo” underscores the freedom and mobility that women achieved as a part of this ritual. This anthropomorphic aspect of *Thiruvathirakali* is significant in highlighting its cultural significance. The lasya-related motions of soft sways, bodies in circles, exaggerated gestural movements of the hands, singularly point to the grace and sensuality of female bodies without making it wholly subject to the male gaze, but the female gaze into the womanly body. The structure of the dance and rhythm emphasized equality among participants, so there was no central figure in the dance, and the circle broke all hierarchies that would make all dancers equal. This democratisation of the performing body has associated the practice with the politics of solidarity and collective cultural memory of being a woman that rested on the recognitions of others rather and communal spirits than on individual virtuosity and idealized feminine notions.

The striking and most peculiar aspect of *Thiruvathira*, compared to classical dances like *Mohiniyattam* or *Kathakali*, is its prolonged focus on the collective identity rather than the person. Although *Mohiniyattam* was institutionalized in post-colonial Kerala as a symbol of Malayalee femininity, one that was associated with the ideals of grace, restraint, and domestic virtue (Krishna, 2015; Pai, 2020) and *Kathakali* remained highly masculine, with its heroic or divine roles, *Thiruvathira* did not deprive its participatory and communal spirit. Songs sung during the *Thiruvathira* dance are not only about

mythic episodes of Shiva and Parvati or fertility cycles but are also about fragments of everyday domestic wisdom. Through these narratives, the oral history and tradition transmitted and reshaped across generations, the performance preserves a collective memory of resilience and moral strength, while simultaneously accommodating the reinterpretations of each new performance context (Nurwendah, 2022).

At the same time, the solidarity that *Thiruvathira* creates is not solely cultural but has a socio-political aspect that it carries. According to the position of feminist cultural theorists, group performances can be viewed as counter-narratives to patriarchal individualism, creating the environments of multiple women claiming their agency in numbers and unity (Butler, 2015). *Thiruvathira* is also important as an intergenerational bridge. Embodied repetition enables older women to pass songs, gestures and ritual associations to younger participants, instilling cultural memory in the very fabric of the body. As mentioned by Taylor (2003), these practices act as a type of “archives of the body,” that save the history of a group over time. It underscores the role of *Thiruvathira* in reenacting cultural memory as lived practice in her concept of repertoire, a set of practices that serves as a living archive of memory that may be transported through performance as the medium of conveyance and not through a textual record. Upon examining this preview, *Thiruvathira* not only upholds the mythological discourse but also reinforces the memories of collective female toil, the all-abiding merriment, and the emotional bonding, as they were actually experienced, by being lived. Being a woman and taking part in the *Thiruvathira*

thira is a rite of passage, a time of continuity, a step in the line of mothers and grandmothers and whole communities.

Thiruvathira, as a prominent folklore, has also gained tremendous scope as the Kerala social scenario changed, especially in the post-colonial period. Democratization of the *Thiruvathira* such that it is now a pan-Keralite performance qualifies as a massive shift in Kerala, where historically ritual and performance were caste and gender-bounded. Once restricted to the Brahminical and upper-caste households, but nowadays it has become a casteless show of unity, which points to a broader shift in social change (Nayar, 2022). It has become a 'pan-Keralite' and 'caste-less performance' of identity that is practiced in schools, cultural associations, temple festivals, and even in diaspora communities where Indians now live (Ananya, 1996). Its inclusiveness affirms the responsiveness of traditions to changing social situations and indicates a shift in enclosed family ritual celebration into the open expression of womanhood, heritage, and community pride. In such a globalized era, evolving gender relations and the corresponding identities, *Thiruvathira* has managed to retain the sense of unity in women and has changed to appeal to contemporary tastes as well. The fact that it is performed in huge masses as part of Onam in schools and in general fests where hundreds of women are involved speaks not only of the regret for the traditional practice but also the redefinition of solidarity in a contemporary society.

In this case, the *Thiruvathira* stage is both a mimesis of memory and a performative act of visibility as it establishes the

women in the lineage of tradition and, at the same time, gives the women presence in a domain associated with the public sphere. It mediates between the old and the new, the ritual and the festive, and gives women a representational model to convey something of Kerala womanhood as relational, collective and in transformation. Facilitating organised, embodied presence, it offers the arena where experiences of women are not forgotten, commemorated, and handed down over time. In the act of doing so, it is both a sustenance of intangible heritage, as well as an active construction of spaces of belonging, whereby womanhood in Kerala retains a state of constant process of redefinition in relation to collective memory, embodied performance, and cultural solidarity.

Conclusion :

The study focuses on *Thiruvathirakali* as a cultural practice that crosses the boundaries of ritual and articulate female solidarity and intergenerational memory. Instead of viewing it as a religious or aesthetic expression, *Thiruvathirakali* can be positioned as the performance within the lived contexts of women. Further, its synchronized movements, the tradition of lyricism, and communal involvement illustrate cross generational links. In this respect, *Thiruvathirakali* arises as an element of cultural survival and continuity while allowing space for reinterpretation, enabling women to engage with cultural memory in ways that are both personal and communal. Its dual purpose as ritual and performance and its art form instigate a sense of belonging, resilience and solidarity among women, besides helping the viewers to contemplate on the border reflections of the overlapping

intersections of womanhood, culture, collective identity, and memory in Kerala.

Conflict of Interest : None

References :

1. Ananya, A. (1996). Dance Research in India: A Brief Report. *Dance Research Journal*, 28(1), 118-123. Springer. <https://doi.org/10.2307/1478122>
2. Butler, J. (2015). *Notes Toward a Performative Theory of Assembly*. Harvard University Press.
3. Krishna, K. R. K. (2015). Gender and Performance: The Reinvention of Mohiniyattam in Early Twentieth-Century Kerala. *Springer eBooks*, 123. Springer Nature. https://doi.org/10.1007/978-81-322-2437-2_12
4. Mathew, M. L. (2024). Folk Ritual To Artistic Performance: Changing Terrains Of Thirayattam. *ShodhKosh Journal of Visual and Performing Arts*, 5(4). <https://doi.org/10.29121/shodhkosh.v5.i4.2024.1004>
5. Menon, A. Sreedharan (2011). *Cultural Heritage of Kerala: An Introduction*. D. C. Books.
6. Nayar, D. (2022). House as ritual: Stories of gender, space, and caste in colonial Kerala (Master's thesis, Yale University). *EliScholar*. <https://elischolar.library.yale.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=1005&context=envdesign>
7. Nurwendah, Y. D. (2022). Inventing the Reinvention? Tradition and the Body of Dancing Women. *Sawwa Jurnal Studi Gender*, 17(1), 119. <https://doi.org/10.21580/sa.v17i1.11529>
8. Ohri, L. (2015). Political Yields from Cultural Fields: Agency and Ownership in a Heritage Festival in India. *Ethnos*, 81(4), 667–682. <https://doi.org/10.1080/00141844.2014.989872>
9. Omchery, Leela. Thiruvathirappattukal (Thiruvathira Songs). *NatyaSutraOnline*, 2005. <https://www.natyasutraonline.com/music/classical-vocal/dr-leela-omchery/thiruvathirappattukal-thiruvathira-songs>
10. Pai, R. (2020). Bridging The Gap: Exploring Indian Classical Dances as a source of Dance/Movement Therapy, A Literature Review. https://digitalcommons.lesley.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=1236&context=expressive_theses
11. P. Athira., S. Sudheesh (2016). Carnavalesque in Thiruvathira Festival of Kerala: A Socio Cultural Study, *International Journal of Informative & Futuristic Research* (ISSN: 2347-1697), 4 (1), 4946- 4952. Paper ID: IJIFR/V4/ E1/ 041. <http://ijifr.com/searchjournal.aspx>.
12. Sadasivan, S. N. (2000). *A Social History of India*. APH Publishing.
13. Saravanan, V. (2015). *Gods, Heroes and their Story Tellers :Intangible cultural heritage of South India*. Notion Press.
14. Sreeparvathi, D. (2016). From Ritual To Romance: Interpreting the Thiruvathira Vrata of Namboothiri Women. *Proceedings of the Indian History Congress*, 77, 260–268. <https://www.jstor.org/stable/26552650>



Intersecting Identities, Social Hierarchy and Patriarchy in Indira Goswami's novel 'The Man from Chinnamasta'

Leena Stanley

Research Scholar; Department of English,
Department of English & Centre of Research,
Sree Ayyappa College for Women,
Nagercoil, TamilNadu
(Affiliated to Manonmaniam Sundaranar
University, Abhishekpatti, Tirunelveli)

Dr. B. Sajeetha

Research Supervisor & Asst. Professor of English,
Dept. of English & Centre of Research,
Sree Ayyappa College for women,
Nagercoil, Tamilnadu
(Affiliated to Manonmaniam Sundaranar
University, Abhishekpatti, Tirunelveli)

Abstract :

Based on Indira Goswami's novel *The Man from Chinnamasta*, intersectionality is analyzed through the experiences of its characters, particularly focusing on how intersecting identities like gender, class, and nationality affect their lives and agency. Religion plays a pivotal role in structuring and maintaining a society by imposing certain morals and norms. Like any other religion, Hinduism has led the Hindus to live in a particular way since time immemorial. Indira Goswami portrays the distressing conditions of widows living in the Vaishnavite Satra. This integration of the woman with religion becomes the core theme of Goswami's novel, *The Man from Chinnamasta* (Chinnamasta 2006), emphasises on the interconnecting issues pertaining to the oppression of women and animals. In the novel, Goswami examines and analyses the ancient religious tradition of animal sacrifice at the Kamakhya temple situated in the city of Guwahati in Assam. The novel, when it was published, generated great controversy and commotion across many orthodox sections of society that regarded the book to be an attack on ancient religious rituals and practices. However, the book and the author received a groundbreaking support from the general mass as well as animal rights groups that demanded the banning of animal sacrifice at the temple.

Keywords :

Religious rituals, sacrifice, feminine principle, Kamakhya, sati.

Introduction :

Chinnamasta share the geographical locale of the kamakhya temple and the river Brahmaputra that flows next to the hill on which the temple stands. The narrative

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

194

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

tapestry is rich with the complex coexistence of apparent irreconcilables like feminine frailty and male dependency on the feminine principle. Unlike the traditionally accepted concept of the feminine principle and its essentialisation into immutable categories, the narrative gradually unravels and interrogates the concept to reveal its constant interaction with socio-religious constructs. The sacrifice of animals at the holy altar of the Mother Goddess, for instance, clearly overlaps with victimization, passivity as well as the power of the feminine. Eroticism and spirituality are combined with the symbol of blood that gets connected with life, death, sexuality, spirituality and pollution. The representation of the feminine principle is thus highly nuanced with both the transcendent and the mundane continuously contesting and collaborating within the construct. There is a continuous process of what appears to be the creation of normative archetypes in the description of women characters as well as the goddess only to be demolished and overthrown later.

Chinnamasta is located in pre-independence colonial Assam. Chinnamasta is considered as the part of the broader Kamakhya lore. The origin of the Kamakhya temple, alive in local lore as well as in the Kalika Purana, the ancient Sanskrit compendium, is traced back to the legend of Sati, who was the daughter of Prajapati Daksha and the wife of Lord Shiva.

The Kamakhya temple is one of the most important sites of tantric worship and the sect of Sati followers. Literally meaning the 'renowned goddess of desire', Kamakhya is iconically represented by a shape similar to that of the female vulva. The temple

complex has within it a set of individual temples dedicated to the ten Mahavidyas, or ten forms of the goddess as perceived in Shaktism, which considers the meta physical reality as being feminine and the Devi, or the goddess, as being the supreme source of all energy. Chinnamasta or 'the one with a severed head' is one of the Dasa Mahavidyas, a part of Kamakhya lore belongs to the esoteric tantric tradition and the goddess referred to in the title of the novel *The Man from Chinnamasta*. The goddess is represented as nude and self-decapitated, standing on a copulating divine couple. The goddess holds her severed head in one hand and a scimitar in the other. Three streams of blood sprout out of her neck. One stream ends in the severed head of the goddess and the other two in the mouths of the two figures standing next to her. Clearly, Chinnamasta may be seen as representing many contradictory aspects of life, including death, fury, sexual energy, spiritual energy and sacrifice, including self-sacrifice. This concept of self-sacrifice is not limited only to the icon of the goddess and is depicted in the novel as a practice followed by ordinary devotees as well. One such incident is described in the following lines:

A straggle of people followed [a] palanquin. It was the sort used for carrying the sick. Henry noticed the man inside was wounded, his clothes were bloodstained.

A priest stopped at the sight of a white man.

'What happened?' the munshi enquired.

A pilgrim from Coohbehar. His eldest son is sick and he has no money for treatment. Can't afford to sacrifice a

goat or a buffalo. So he offered his own blood.'

'His own blood?' Brown was astounded. (33)

Philosophers and scholars have tried to analyse the symbolic place of blood in societies but its complexity has led many of them to describe it as 'a signifier of nearly everything' (112). 'Not only does blood have a remarkable range of meanings and associations... but many of these encompass their antinomies' (2).

The antinomies or the paradox of the blood image persistently recurs not just in literary and creative constructs but also in ritual practices described in Chinnamasta. The blood ritual, or the sacrifice of animals at the altar of the goddess, comes to a standstill due to another 'blood cycle', that of menstruation of the goddess. Goswami mentions this in Chinnamasta when she says that:

The temple doors were shut. The Mother Goddess was menstruating. Her loins were covered with a red cloth. Every year on the seventh day of the month of Ashaad the temple closed for three days. It opened on the fourth day. (79)

The paradoxical image of blood with multiple connotations of life, death, purity, impurity, taboo and pollution is too obvious for comment. The association between blood and the organic and the primeval is stressed by Mary Douglas, who approaches blood as what she calls a 'natural system of symbolizing' (xxxiii). She describes it as a 'natural symbol' that generates and activates our primal connections with our origins. The power of blood is accepted in all cultures of the world. Its connotation,

however, gets impacted by a whole array of 'socio-sacred' relations, including those of power and control. The symbolism of menstruation within this framework, needless to say, is connected with the gender paradigm that sculpts it to fit into the male-focused enquiry and taboos since 'menstrual blood is viewed as especially dangerous to men's power' (129). Emile Durkheim argues that emergence of human religion, along with its collective rituals as well as its taboos, can be traced to its intricate relationship with menstruation, which is perceived as both divine and polluting. The gendered gaze thus transforms the exclusive energy of the feminine body and sexuality into a frailty and a flaw from which neither the women nor the goddess in Chinnamasta is spared.

The major themes, symbols and Leitmotifs are developed and well-knit with great detail in Chinnamasta. The Temple of Chinnamasta is poised at the intersection of traditional subservience to normative structures and the winds of activism, rights, liberation and democracy that question both the oral and writing taxonomies. The struggle against imperialism moves hand in hand with that against gender injustice and animal sacrifice.

It is through the arrival of the grama-savika that the writer weaves the theme of anti-imperialism in to the story. The gramasavikas, who were 'Gandhians' are, described in Chinnamasta, where, among other things, has taken the shape of a full-fledged organized protest against the Simon Commission that was sent to India in 1928 to look in to the possibility of the constitutional reforms. The violence of imperialism is coalesced with that of animal

sacrifice against the background of the of Gandian of non-violence. The white men were growing cautious. Volunteers were prepared to lay down their lives for the motherland. Mahatma Gandhi had lunched a war of emotions where moral issues took the place of bullets.' (146). All these multiple strands get interconnected through a whole range of characters, especially the enigmatic tantric Chinnamasta Jatadhari (Chinnamasta's worshipper with long, matted locks), who leads the protest against animal sacrifice.

This is despite the admission by Jatadhari that people like him 'hold [their] souls together with the skins of sacrificed animals' (43). It is Jatadhari who suggests to Ratnadhar, the sensitive, young artist, to collect signatures of people in support of ban on animal sacrifice. This produces 'a huge mountain of signatures... Their presence was so potent, no one could possibly feign ignorance... the matter might... be referred to the courts of law' (161). The plan clearly employs the stratagem of democratic protest against established structures. Jatadhari also suggests to Ratnadhar to paint the scenes of bloodshed and sacrifice that had regularly recurred through the history of the region. While it is accepted that generally 'folklore seems to have a greater power than history', Ratnadhar's paintings like the one denoting a group of men blood red robes [standing! beside the Saubhagya Kunda the young priests and the old, the acolytes and the celebrants... the one who performs the sacrifices. In the 'background was the blood-soaked altar' (98) generate the visual record of the region along with the visual representation of gruesomeness of sacrifice.

While showing his painting to Bidhibala, the young girl with whom he is in love, Ratnadhar wonders, what difference [is] there between sacrificial animals and women? (99). The nubile Bidhibala is to be married off to an elderly man to become his third wife. The rhetorical question immediately unveils not just the connection between gender, 'visuality' and religious practices but also their dynamic roles in generating, legitimising and reproducing identities and community/social codes. These however get challenged by the young Bidhibala not due to any well-planned strategy or any conscious ideological position but simply due to her love for the calf who was to be sacrificed to ensure a good marriage for her. Bidhibala's love and compassion for the calf makes her weep for helpless animals sacrificed to bring benefit to humankind. 'She prayed to the goddess to take her life and spare the animal' which had to be sacrificed for her benefit. She pleads with Ratnakar to save the calf (102):

'He (the calf) understands everything!
When I see those dark eyes in the light
of the earthen lamps, I feel it wants to
say something. Just like the tortoise in
the sacred Bhairavi tank that crawls out
when we call it Mohan, he used to look
up when I called, even while he was
suckling. She burst into tears. (106)

It is her love for the vulnerable animals that gives her the courage to free the calf and flee from her family. Unfortunately, Bidhibala dies in the attempt and when Ratnakar hears the tragic news he once again identifies the sacrifice of animals with the repression of women saying, 'Bidhibala, they made a sacrifice of you instead of the buffalo' (156).

It is within this framework that the character of Dorothy Brown, wife of Henry Brown, the principal of Cotton College in Guwahati, steps into the already dense narrative of *Chinnamasta*. She leaves her husband to come already dense narrative of *Chinnamasta*. She leaves her husband to come and live at Darbhanga House close to the temple and the Brahmaputra after she discovers her husband's affair with a Khasi girl. She visits the Jathadari and requests him to help her achieve 'peace of mind' (13). Her intimacy with Jatadhari grows and she becomes a comrade in arms in his protest against animal sacrifice. She goes away with him to spread the message and when they return, she is believed to be carrying his child.

Dorothy is accused of 'going native' and for Henry her 'absurd decision to come and live in this fashion wasn't just a slap on his face. It was an affront to the Empire, their Britishness, their heritage' (35). Gender and imperialism clearly get imbricated into each other though it is quite evident that in this specific case it is gender that becomes the fundamental ingredient of socio-political structuring. It is due to this that very soon one discovers an overlay between the characters of Dorothy. Dorothy, like Bidhibala, is killed in the end and all evidence points to her husband being the killer. Dorothy is white. Dorothy while alive managed to subvert the gendered power equation. She has established the exclusive power of feminine body and sexuality. She proved that a woman can decide the boundary of her body. Identified with the goddess, both women ensure that they obtain suitable sacrifices that are not bloody but still harsh. Henry Brown is divested of all property

that Dorothy held, for she leaves behind a will declaring that all she owns must go to the unborn child of the Khasi woman who is Henry's mistress. In doing so, she ensures that Henry's sexual encounter with the already disenfranchised colonial woman does not become an economic plunder as well.

The characters' resistance and struggle in the novel reveal the interconnected nature of oppressive systems. The efforts of Jatadhari, Ratnadhar and Dorothy to end animal sacrifice are rooted in an anti-caste and anti-patriarchal stance. By advocating for an end to a practice rooted in orthodox Brahminical tradition, they challenge the caste and gender hierarchies that legitimize violence and oppression. The intersection of different social locations (caste, gender, and nationality) is reflected in the novel's portrayal of the characters' experiences and resistance, illustrating how liberation and social justice require addressing the interlocking systems of oppression. The novel suggests that the emancipation of marginalized groups, including lower-caste women like Bidhibala, is tied to the dismantling of the social order that perpetuates caste-based discrimination and gendered violence. By using an intersectional lens, the novel *The Man from Chinnamasta* is not simply about a single issue, but a complex exploration of how interlocking oppressions based on caste, gender, class, and religion affect the lives of its characters. The novel demonstrates how the fight for social justice must address these intersecting dynamics to achieve true emancipation and equality.

Clearly, the women in *Chinnamasta* go through various degrees of the ritual of sacrifice at the altars of many different

socio-economic and religious codes. Even though they faced difficulties, they are portrayed as strong women who retaliate against the wrong being done to them by men and assert firmly in the face of oppression. However, we are never allowed to forget that the cosmic energy that dominates the Kamakhya temple is feminine and closely identified with the spectacle of disempowerment and control that goes on in the lives of people living under its shadow.

Reference :

1. Douglas, Mary. (1970). *Natural Symbols*. Oxford: Routledge.
2. Engebrigtse, Ada I. (2007). *Exploring Gygs-mess: Power; Exchange and interdependence in a Transylvanian*. United states, Berghahn Books.
3. Goswami, Indira. (2006). *The Man from Chinnamasta*. Trans. Prasant Goswami. New Delhi: Katha.
4. Pathak, Namrata, and Dibyajyoti Sarma. (2023). *Indira Goswami: Margins and Beyond* Routledge.
5. S Chauhan, Vibha. (2023). The Divine and the Mundane: Ritual Sacrifice, Blood and the Feminine Principle in Indira Goswami's Under the Shadow of Kamakhya and the Man from Chinnamasta. *Indira Goswami Margins and Beyond*, edited by Pathak Namrata and Dibyajyoti Sarma, Routledge, NY, pp 151-160.
6. Simpson, Bob. (2009). 'Please Give a Drop of Blood': Blood Donation, Conflict and the heaematoglobal Assemblage in Contemporary Sri. Lanka, *Body & Society* 15(2): 101-122.



Cultural Fragmentation and The Journey from Folk Roots to Urban Displacement in V. S. Naipaul's *A House for Mr. Biswas*

M. Naveena Rani

Ph.D. Research Scholar,
Department of English and
Comparative Literature,
Madurai Kamaraj University, Madurai, TamilNadu

B. Anand Prasad

Assistant Professor, Department of English,
Cardamom Planters' Association College,
Bodinayakanur, TamilNadu

Abstract :

V. S. Naipaul's A House for Mr. Biswas reflects the cultural and emotional dislocation experienced by a community uprooted from its ancestral heritage. The novel traces the protagonist's journey from a traditional, folk-centered world toward the fragmented reality of urban colonial life. Through Mohun Biswas, Naipaul explores the tension between inherited customs and the alienating forces of modernity, revealing how the quest for selfhood becomes a struggle for belonging in a divided world. The house, as a central symbol, represents both material aspiration and the longing for identity in a culture marked by displacement. Ultimately, Naipaul portrays the postcolonial search for stability amid the collapse of communal values, illustrating the universal human desire to find meaning and permanence in an unstable modern world.

Keywords :

Dislocation, Uprooted, cultural fragmentation, identity, displacement and postcolonialism.

Vidiadhar Surajprasad Naipaul widely known as V.S. Naipaul, was born in 1932 in Chaguanas, Trinidad into a family of Indian descent. His grandparents had migrated from India as indentured laborers and this background profoundly influenced his understanding of displacement and cultural fragmentation. His father Seepersad Naipaul worked as a journalist and nurtured

literary aspirations that deeply inspired his son's ambition to become a writer. Naipaul's early life in colonial Trinidad was marked by feelings of alienation and a restless search for identity. He received a scholarship to study at Oxford University in 1950, where he faced loneliness and uncertainty but gradually developed his distinctive voice as a writer. After graduation, Naipaul

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

200

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

settled in England and began to explore the complexities of colonial and postcolonial societies through his fiction and essays. His early works, including *The Mystic Masseur* (1957) and *The Suffrage of Elvira* (1958), introduced him as a keen observer of human absurdities and social transformation in Caribbean life.

Naipaul's literary breakthrough came with *A House for Mr. Biswas* (1961), which is considered one of his most accomplished and enduring novels. Drawing inspiration from his father's life, Naipaul crafted a story that examines the struggles of Mohun Biswas, an Indo-Trinidadian man determined to assert his individuality in a society bound by colonial hierarchies and traditional constraints. The novel traces Biswas's journey from an uncertain childhood to his quest for independence and dignity as an adult. Born under an unlucky sign, Mr. Biswas spends much of his life in conflict with circumstances beyond his control—poverty, the dominance of his in-laws and the suffocating weight of social expectations. Despite his repeated failures and humiliations, his lifelong desire to own a house becomes a powerful symbol of his determination to claim a sense of belonging and personal identity in a fragmented world.

V. S. Naipaul's *A House for Mr. Biswas* stands as a powerful literary portrayal of the cultural, emotional and psychological turmoil experienced by individuals and communities uprooted from their traditional environments. Set against the historical backdrop of colonial Trinidad, the novel presents a society composed of displaced Indian laborers who attempt to forge an identity in a land where both cultural roots

and social belonging have been disrupted. Through the life story of Mohun Biswas, Naipaul captures the journey of a man and symbolically a people who moves from the fragmented remnants of folk culture toward the uncertainties of urban modernity. This journey, both external and internal encapsulates the postcolonial struggle for self-definition amid cultural dislocation.

At the beginning of the novel, Naipaul introduces a world deeply influenced by folk traditions and communal values. The Tulsi household at Hanuman House represents a microcosm of the transplanted Indian society that clings to its religious practices, social hierarchies and extended family structure. The community's adherence to Hindu rituals, mythic narratives and ancestral customs reflects an attempt to preserve cultural identity in exile. Yet, Naipaul depicts these traditions as increasingly hollow and mechanical practices performed out of habit rather than faith.

Mr. Biswas's ambivalent relationship with these traditions symbolizes a larger cultural malaise. Though he grows up surrounded by rituals and beliefs, he feels no deep connection to them. The inherited practices, once rooted in the soil of India, have become mere symbols in the alien Caribbean landscape. The displacement of the Indo-Trinidadian community has led to a loss of authenticity, as the collective memory that once gave meaning to cultural life gradually fades. The result is a world where people imitate traditions without understanding their essence, a situation that mirrors the broader fragmentation of diasporic identity.

The colonial environment of Trinidad forms the backdrop against is a loss of

cultural coherence unfolds. Under British rule, Western education and English cultural norms dominate the social hierarchy. Biswas's experience at school illustrates how colonial education instills both aspiration and alienation. By learning English and absorbing European ideals, he gains a sense of individuality and ambition, but at the cost of distancing himself from his ancestral roots.

The colonial system thus creates a psychological split within the individual that the desire to progress through Western modes of thought clashes with the inherited cultural consciousness of the East. Biswas's fascination with books, newspapers and modern professions reflects his yearning to escape the limitations of his inherited world, yet his inability to fully integrate into the colonial order leaves him perpetually insecure. Naipaul thereby exposes the double bind of colonial modernity which promises liberation through knowledge and progress while simultaneously eroding the cultural foundations that once offered belonging. This tension is not merely personal; it reflects the broader postcolonial dilemma of mimicry and displacement. The colonial subject becomes a hybrid being that imitating the colonizer's culture but never fully accepted within it. Biswas's struggle for a coherent identity becomes emblematic of this in-between existence where neither tradition nor modernity offers a stable sense of self.

Naipaul structures the novel around Biswas's physical and emotional movement from the rural hinterlands to the urban center. Each relocation from his childhood home to the Tulsi estate and finally to Port of Spain marks a deeper stage in his alie-

nation. In the countryside life, though constricted by custom and superstition still possesses traces of intimacy and collective belonging. The rhythms of agricultural labor, the shared rituals and the presence of extended kin networks provide a semblance of continuity.

By contrast, the urban space represents fragmentation and disconnection. Port of Spain, the colonial capital is portrayed as a landscape of anonymity, class stratification and cultural confusion. Here, the remnants of folk life dissolve entirely. The city is not a site of progress but of existential struggle. For Biswas, urban life brings exposure to new ideas, journalism and a sense of freedom, yet it also heightens his awareness of his marginality. His jobs as a reporter or a petty clerk reflect his attempts to assert individuality in a world that values economic productivity over human meaning.

Urbanization thus symbolizes both mobility and loss: it offers the promise of self-making but dismantles the communal bonds that once defined identity. Naipaul uses this transition to show how colonial modernity transforms cultural rootedness into loneliness.

Biswas's dream of owning a house is an aspiration that functions as both a literal goal and a profound metaphor for cultural and existential stability. The house represents more than material security; it is the symbol of self-definition in a world of displacement. Having grown up homeless and dependent, Biswas seeks a space that he can call his own, where his individuality can be affirmed and protected from the controlling influence of the Tulsi family.

The act of building or purchasing a house thus becomes a form of resistance against both cultural subjugation and personal invisibility. In a society shaped by colonial dependence and communal domination, the house stands as an assertion of autonomy. By the time Biswas achieves his dream, he is physically weakened and emotionally exhausted. His house, though a personal triumph, is poorly constructed and represents the fragility of the identity he has struggled to create.

The house, therefore, becomes a complex symbol which embodies the human longing for permanence in a transient world while simultaneously revealing the limits of material success in curing spiritual exile. Naipaul's portrayal underscores the paradox of postcolonial modernity, the struggle for independence often reproduces new forms of insecurity and isolation.

A crucial dimension of cultural fragmentation in *A House for Mr. Biswas* lies in the failure of intergenerational continuity. The younger members of Mr. Biswas's family, particularly his children are products of Western education and colonial modernity. They neither inherit their father's longing for cultural identity nor retain a meaningful connection to ancestral traditions. Their detachment from the rituals and beliefs of their elders signals a deeper loss of collective memory. Naipaul depicts this generational shift not as progress but as erasure. The Indo-Trinidadian diaspora having been removed from its original homeland which lacks the means to sustain cultural transmission. Folklore, religious stories and oral traditions that once bound communities together fade into irrelevance.

The erosion of cultural memory is one of Naipaul's central concerns. He suggests that without a living connection to the past, identity becomes unstable. The disintegration of folk culture leaves individuals to construct meaning out of fragments-books, borrowed ideals and half-remembered rituals. Biswas's life epitomizes this struggle to create coherence in a world where cultural roots have withered.

As the narrative progresses, the motif of displacement expands beyond the specific context of Indo-Trinidadian life to encompass a broader human condition. In the urban world, Naipaul reveals the loneliness and spiritual emptiness that accompany modern existence. The city with its bureaucracies, newspapers and crowded streets becomes a metaphor for the modern world's alienation. Biswas's efforts to establish himself to build a home, to educate his children, to find dignity which mirror humanity's universal desire to belong in an ever-shifting world.

Naipaul's vision is not merely sociological but existential. Urban displacement becomes a symbol of modern consciousness itself restless, fragmented and perpetually in search of meaning. The folk world of the past, with its coherence and shared belief systems gives way to a society where individuals must invent their own identities from the ruins of tradition.

Naipaul's representation of cultural fragmentation is often misread as pessimism. In reality, it reflects a profound awareness of historical dislocation. As a writer shaped by multiple worlds like Indian, Caribbean and British, Naipaul understood that the postcolonial subject cannot simply return to the past nor uncritically embrace

the present. His depiction of Biswas's journey embodies this ambivalence that is both a lament for lost cultural unity and an acknowledgment of the resilience of the human spirit.

Naipaul's narrative suggests that identity in the postcolonial world must be reinvented, not recovered. Biswas's persistent striving, despite failure symbolizes the courage to assert individuality in the face of historical displacement. The fragmented world he inhabits may offer no stable home, but his will to construct one, however imperfect represents a victory of selfhood over chaos.

In *A House for Mr. Biswas*, Naipaul chronicles the movement from collective folk identity to the fragmented isolation of modern urban life. Through the experiences of Biswas, he exposes the deep wounds inflicted by colonialism, the erosion of cultural roots, the disintegration of community and the perpetual search for belonging. The novel becomes both a social document and a philosophical exploration of what it means to exist between worlds.

The journey from folk roots to urban displacement is not only geographical but

spiritual. It traces the passage from inherited identity to self-constructed individuality, from communal faith to existential solitude. Naipaul's vision captures the essence of postcolonial existence: the unending quest for a home in a world where belonging has been fractured by history. Mr. Biswas's house may stand crooked and fragile, but it is a monument to human persistence—the enduring struggle to create meaning amid cultural fragmentation.

References :

1. Naipaul, V. S. *A House for Mr. Biswas*. London: Andre Deutsch, 1961.
2. Ashcroft, Bill, Gareth Griffiths, and Helen Tiffin. *The Empire Writes Back: Theory and Practice in Postcolonial Literatures*. Routledge, 2002.
3. Bhabha, Homi K. *The Location of Culture*. Routledge, 1994.
4. Said, Edward W. *Culture and Imperialism*. Vintage, 1993.
5. Thieme, John. *The Web of Tradition: Uses of Allusion in V. S. Naipaul's Works*. Hansib, 1987.
6. Nasta, Susheila. *V. S. Naipaul: Contemporary World Writers*. Cambridge University Press, 2002.
7. King, Bruce. *V. S. Naipaul*. Macmillan, 1993.



Echoes of Baul : Influence of West Bengal's Folk Tradition on Hindi and Bengali Film Music

Madhushree

Student of MPA

Department of Hindustani Classical Music

Visva-Bharati University, Santiniketan

Abstract :

*The Baul tradition of Bengal is one of the most significant currents of Indian folk culture, blending mysticism, music, and humanist philosophy. Emerging from wandering minstrels, Baul songs use rustic metaphors to express universal truths of love, freedom, and the search for the “**Moner Manush**” (the man of the heart). This article explores Baul's influence on both Bengali and Hindi film music. It begins with an introduction to Baul philosophy and instruments, then traces its development through three historical phases-old (18th–19th century), middle (early 20th century), and modern (20th–21st century). The paper highlights key Baul songs and their cinematic reinterpretations, from **Lalon Fakir's** mystical verses to contemporary fusion tracks. Special attention is given to the influence of **Rabindranath Tagore, Purna Das Baul, and Parvathy Baul**, as well as film composers like **Salil Chowdhury and R.D. Burman**. Finally, by analyzing songs in cinema and recent performances (2015–2025), the study shows that Baul remains a living, adaptive tradition that continues to shape India's cultural imagination.*

Keywords :

Baul, Folk Music, Bengali Cinema, Hindi Cinema, Lalon Fakir, Rabindra Sangeet.

1. Introduction: The Baul Tradition :

The word *Baul* likely comes from *vatula* (mad, wind-touched) or *vyakul* (restless). Bauls are wandering minstrels of Bengal who reject rigid orthodoxy yet embrace deep spirituality. They are neither strictly Hindu nor Muslim; their philoso-

phy borrows from **Vaishnavism, Sufism, Sahajiya Buddhism, and Tantra**.

At the heart of Baul lies the quest for the **Moner Manush**-the eternal self within. Their songs use metaphors of rivers, boats and birds to describe the human condition.

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

205

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

Performances are deeply emotional, involving music, rhythmic movement and ecstatic singing.

Recognized by UNESCO (2005) as part of the “Intangible Cultural Heritage of Humanity,” Baul remains a defining aspect of Bengal’s folk identity and continues to influence modern artistic expressions, especially cinema.

2. Instruments of Baul Music :

The simplicity of Baul music lies not only in its lyrics but also in its instrumentation. Each instrument carries both musical and symbolic significance :

- **Ektara** : A one-stringed drone instrument, often considered the Baul’s emblem. Symbolizes the unity of creation and the simplicity of spiritual truth.
- **Dotara** : A two- or four-stringed plucked lute, used for melodic accompaniment. It provides a fuller sound for group performances.
- **Khamak** : A percussive string instrument producing a twangy rhythm. Represents the heartbeat of Baul songs.
- **Duggi/Dhol** : Small hand drums played with fingers; they keep time during wandering performances.
- **Khol and Mridanga**: Occasionally used for larger Baul gatherings.
- **Kartal (cymbals) and Ghungroo (ankle bells)**: Add rhythmic texture and enhance the ecstatic movement of the singer.

Together, these instruments create a minimal yet powerful soundscape that reflects the Baul’s philosophy: simplicity, rhythm, and universality.

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

3. Historical Development of Baul Songs :

3.1 Old Period (18th–19th Century) :

Baul gained recognition through **Lalon Fakir (1774–1890)**, whose songs combined mysticism with humanism.

- “*Khachar bhiton ochin pakhi*” (“The unknown bird in the cage”) symbolizes the soul trapped in the body.
- “*Sab loke kay Lalon ki jat samsare*” rejects caste and communal divisions.

These orally transmitted songs spread across rural Bengal, shaping a collective identity.

3.2 Middle Period (Late 19th–Mid 20th Century) :

During the Bengal Renaissance, Baul influenced urban intellectuals.

- **Rabindranath Tagore** was inspired by Baul. His “*Amar praner manush ache prane*” mirrors Baul’s longing for the inner beloved.
- **Kazi Nazrul Islam** also adapted Baul rhythms in his compositions.
- Radio and recordings brought Baul melodies into urban households.

3.3 Modern Period (Mid 20th Century–2000s) :

Baul entered global culture through **Purna Das Baul**, who performed internationally and collaborated with Western musicians. His renditions of “*Moner manush pabe je*” made Baul a global sound.

- In cinema, Baul motifs appeared in films by Ritwik Ghatak and later in **Goutam Ghose’s *Moner Manush* (2010)**, directly based on Lalon’s life.

- **Parvathy Baul**, since the 1990s, has revitalized Baul tradition through international performances and collaborations.

4. Baul in Bengali Cinema :

Baul's influence in Bengali cinema is profound.

- **Ritwik Ghatak's *Subarnarekha* (1962)** : Folk-like songs reflect Baul's themes of struggle and transcendence.
- **Tapan Sinha** frequently employed Baul-inspired folk tunes.
- **Goutam Ghose's *Moner Manush* (2010)** : A landmark film, showcasing authentic Baul songs like "*Moner manush pabe je.*"
- **Rabindra Sangeet in films**: Many Baul-inspired Tagore compositions, such as "*Amar praner manush ache prane,*" continue to appear in cinema.

Thus, Baul in Bengali cinema is both cultural expression and philosophical commentary.

5. Baul in Hindi Cinema :

Baul's presence in Hindi films is indirect but impactful.

- **Salil Chowdhury**: Brought folk-Baul sensibilities into Hindi compositions.
- **R. D. Burman** :
 - "*Chingari koi bhadke*" (*Amar Prem*, 1972) echoes Baul melancholy.
 - "*O re maajhi chal*" (*Khushboo*, 1975) uses Baul-like boatman imagery of life's journey.
- **Satyajit Ray's songs** in films like *Hirak Rajar Deshe* adopted Baul-style refrains even in children's cinema.

Though not directly Baul, these songs reflect Baul's metaphors of nature, journey and inner truth.

6. Comparative phases of old, middle and modern :

Old Phase	Middle Baul Example	Modern Cinematic Connection
Old (18th–19th c.)	Lalon Fakir's " <i>Khachar bhiton ochin pakhi</i> "	Referenced in documentaries; echoed in <i>Moner Manush</i> (2010).
Middle (early 20th c.)	Tagore's " <i>Amar praner manush ache prane</i> "	Widely used in Bengali films; bridges Baul and Rabindra Sangeet.
Modern (20th–21st c.)	Purna Das's " <i>Moner manush pabe je</i> "	Performed in global stages; used in Ghose's <i>Moner Manush</i> .

6.1 Contemporary Adaptations (2015–2025) :

In the last decade, Baul has found new life in both cinema and independent music:

- **"Moner Manush" (Coke Studio Bangla, 2022)** : Arijit Singh's rendition

with Baul musicians fused *ektara* and digital beats, introducing Baul to global youth audiences.

- **"Lalon Bandhu" (2017)** : A folk-fusion Bengali track using Lalon Fakir's lyrics, popular on YouTube and social media.

- **“Shironaam” (Piku, 2015, Anupam Roy) :** Though not strictly Baul, its melody and lyrical style reveal Baul influence.
- **“Tumi Na Thakle” (2023, Arko Mukherjee with Baul singers) :** A fusion project blending urban indie with Baul authenticity.
- **Parvathy Baul (2018–2023 international performances) :** Collaborations with world musicians demonstrate Baul’s adaptability.

These examples prove Baul is not frozen in the past- it continues to resonate in mainstream and digital platforms, blending folk authenticity with contemporary styles.

7. Baul Philosophy in Film Music :

Film music inspired by Baul emphasizes :

- **Humanism :** Songs highlight equality and unity, reflecting Baul’s rejection of caste.
- **Mysticism :** Boats, rivers, and birds symbolize life’s journey, often appearing in film lyrics.
- **Resistance to Materialism :** Many Baul-inspired songs in cinema critique greed and celebrate simplicity.

8. Conclusion :

The Baul tradition, born in Bengal’s villages, remains an evolving spiritual and

musical force. From **Lalon Fakir’s** metaphysical verses to **Arijit Singh’s** Coke Studio adaptation, Baul has traveled across centuries and continents. In Bengali cinema, Baul appears as a cultural backbone; in Hindi films, its presence is more subtle yet visible in themes and metaphors.

Through its instruments, lyrics, and philosophy, Baul continues to bridge rural and urban, folk and popular, traditional and modern. Far from vanishing, it has become a dynamic element of India’s cultural imagination—proof that folk traditions, when rooted in universal values, never fade but continually renew themselves.

References :

1. Capwell, Charles. *The Music of the Bauls of Bengal*. University of Chicago Press, 1986.
2. Openshaw, Jeanne. *Seeking Bauls of Bengal*. Cambridge University Press, 2002.
3. Dimock, Edward. *The Place of the Hidden Moon*. University of Chicago Press, 1989.
4. Tagore, Rabindranath. *Selected Songs*. Macmillan, 1913.
5. Ghose, Goutam. *Moner Manush* (Film), 2010.
6. Burman, R.D. *Film Music Scores – Amar Prem* (1972), *Khushboo* (1975).
7. Coke Studio Bangla. *Moner Manush* (2022).
8. Arko Mukherjee. *Tumi Na Thakle* (2023).



लोकधुन से पर्दे तक : हिंदी सिनेमा में लोकगीतों की भूमिका

मनीश जोशी

डॉ. स्मृति भारद्वाज

लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी

मुख्य शब्द :

लोक धुन, लोक संगीत, संगीत, लोकसंस्कृति, सिनेमा।

प्रस्तावना :

भारतीय समाज की आत्मा में गीत-संगीत की गहरी छाप है। हमारी लोकसंस्कृति का आधार लोकगीत हैं, जो न केवल पर्व, तीज-त्यौहार और रस्मों-समारोहों में गाए जाते हैं, बल्कि जीवन के श्रम और कार्यों की ध्वनियों में भी रचे-बसे हैं। आटा पीसने वाली घट्टियों की घर्-घर्, खेतों में बोवनी के समय जूतों की चरमराहट, धान कूटते समय मूसल की धप-धप, ठठेरे की टन-टन और छेनी-हथौड़ी की खनन-खनन-इन सबकी लय में लोकसंगीत की गूँज सुनाई देती है।

सिनेमा, जिसे कोई 'सोलह कलाओं का संगम' कहता है और कोई 'लोक का विकृत रूप', वह भी संगीत से कभी अछूता नहीं रहा। बल्कि सच तो यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय सिनेमा की पहचान ही उसके गीत-संगीत से रही है। लगान (2001) की ऑस्कर नामांकन के समय दिखाई गई झलक इसका प्रमाण है, जहाँ अन्य फिल्मों के नाटकीय दृश्य दिखाए गए, वहीं लगान के लिए गीत 'ओ रे छोरे मान भी ले तू' प्रस्तुत किया गया।

हिंदी सिनेमा और गीतों का संबंध :

गीतों के बिना हिंदी सिनेमा की कल्पना करना कठिन है। इत्तेफाक, कानून, अचानक और भूत जैसी अपवाद फिल्मों को छोड़ दें, तो हर हिंदी फिल्म गीतों पर आधारित रही है। कभी गीतों ने मामूली फिल्मों को सफल बनाया (नागिन, एक मुसाफिर एक हसीना), तो कभी असफल फिल्मों के गीत लंबे समय तक लोकप्रिय रहे (सेहरा, अनपढ़)। यह भी उल्लेखनीय है कि हिंदी फिल्म संगीत ने पश्चिमी धुनों को अपनाया, लेकिन लोकसंगीत की मिठास को कभी छोड़ा नहीं।

हिंदी सिनेमा ने केवल उत्तर भारत की ग्रामीण संस्कृति को ही नहीं अपनाया, बल्कि गुजरात, पंजाब, महाराष्ट्र, दक्षिण और पूर्वी भारत की लोकधुनों को भी अपने संगीत में समाहित किया। यह विविधता संगीतकारों की विविध पृष्ठभूमियों से आई - जहाँ खेमचंद प्रकाश और एस.डी. बर्मन ने बंगाल की छाप दी, वहीं ओ. पी. नैयर और रवि ने पंजाब की, नौशाद और चित्रगुप्त ने उत्तर भारत की और कल्याणजी-

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

209

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

आनंदजी ने गुजरात की मिठास को फिल्मों में घोला।

उत्तर भारत का लोकसंगीत और सिनेमा :

चित्रगुप्त ने भोजपुरी और उत्तर भारत के लोकगीतों को सिनेमा में गहराई से उतारा। काली टोपी लाल रूमाल का गीत 'लागी छूटे ना अब तो सनम' और औलाद का 'हो नाजुक नाजुक बदन मोरा' इसकी मिसाल हैं। नौशाद ने भी अपने संगीत में उत्तर भारत की लोकधुनों का प्रभाव दिखाया- गंगा जमुना के 'दो हंसों का जोड़ा बिछुड़ गयो रे' और राम और श्याम का 'आज सखी री मोरा जिया ललचाए रे' इसके उदाहरण हैं।

शिव-हरि की जोड़ी ने भी उत्तर भारत की धुनों का प्रयोग किया। सिलसिला का 'रंग बरसे' और लम्हे का 'मोरनी बागा में बोले' इसकी सजीव मिसाल हैं। वहीं, दिल्ली-6 का 'सास गारी देवे, ससुराल गेंदा फूल' सीधे तौर पर उत्तर भारतीय लोकगीत पर आधारित है।

पंजाब का लोकसंगीत :

ओ. पी. नैयर के आने से फिल्म संगीत में पंजाब की मस्ती भर गई। नया दौर का 'उड़े जब जब जुल्फें तेरी' और कश्मीर की कली के गीतों ने पंजाब की ऊर्जा को फिल्मों में उतारा। रवि, जी.एस. कोहली और अन्य संगीतकारों ने भी पंजाबी धुनों का बार-बार प्रयोग किया।

आनंद बक्शी ने सरल गीतों में पंजाबी भाषा की झलक दी- 'जा रे जा तेनू ख दा वास्ता' (कच्चे धागे) और 'मैं छम-छम नचदीं फिरां' (लोफर) इसके उदाहरण हैं। समकालीन दौर में भी जब वी मेट का 'नगाड़ा नगाड़ा' और चक दे इंडिया का शीर्षक गीत इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हैं।

गुजरात का लोकसंगीत :

गुजरात की धुनों को कल्याणजी-आनंदजी ने

फिल्मों में स्थापित किया। सरस्वतीचंद्र का 'मैं तो भूल चली बाबुल का देस' और उपकार का 'मेरे देश की धरती सोना उगले' न केवल लोकप्रिय हुए बल्कि इन्हें सांस्कृतिक धरोहर का दर्जा मिला। इन गीतों में रहट और बैल की आवाज़ जैसे ग्रामीण वाद्यों का अद्भुत प्रयोग हुआ।

महाराष्ट्र का लोकसंगीत :

सी. रामचंद्र ने नवरंग का 'आ दिल से दिल मिला ले' मराठी ताल पर आधारित बनाया। गणेशोत्सव और मटकी फोड़ के लिए 'देवा हो देवा गणपति देवा' (हमसे बढ़कर कौन) और 'गोविंदा आला रे' (ब्लफ मास्टर) जैसे गीत आज भी त्योहारों पर गाए जाते हैं।

बंगाल और पूर्वांचल :

एस. डी. बर्मन और सलिल चौधरी ने बंगाली लोकधुनों और रवीन्द्र संगीत को फिल्मों में उतारा। बंदिनी का 'ओ पंछी प्यारे' धान कूटने की लय पर आधारित था। सलिल चौधरी के गीत 'मिला है किसी का झुमका' (परख) में बंगाल की मिठास स्पष्ट है।

कश्मीर और दक्षिण भारत :

कश्मीर की झलक जब प्यार किसी से होता है और मिशन कश्मीर के 'बुंबरो बुंबरो' में स्पष्ट दिखती है। वहीं, दक्षिण भारतीय धुनों को राजकुमार का 'नाच रे मन बदकम्मा' और दो फूल का 'मुत्तुकौड़ी कव्वाड़ी हड़ा' जैसे गीतों में अपनाया गया।

लोकगीत और त्योहार/मौसम :

लोकगीत ऋतु और त्योहारों से गहराई से जुड़े हैं। सिलसिला का 'रंग बरसे' होली का प्रतीक बन गया। सावन और कजरी गीतों का प्रयोग नदिया के पार (1982) और गंगा जमुना में किया गया। इस प्रकार फिल्मों ने मौसम और त्योहारों की लोकपरंपरा को परदे पर जीवंत किया।

समकालीन परिदृश्य :

आज फिल्मों में ग्रामीण परिवेश कम होता जा रहा है, फिर भी लोकगीत नई शैली में आते रहते हैं। पीपली लाइव का 'चोला माटी के राम' और गैंग्स ऑफ वासेपुर के भोजपुरी गीत दर्शाते हैं कि लोकधुनों की प्रासंगिकता बनी हुई है।

निष्कर्ष :

लोकगीत और हिंदी सिनेमा का रिश्ता परस्पर पूरक है। लोकगीतों ने फिल्मों को सांस्कृतिक गहराई दी और फिल्मों ने लोकगीतों को व्यापक पहचान। चाहे वह नदिया के पार की आंचलिक मिठास हो, सिलसिला की पहाड़ी धुनें हों या रंग दे बसंती का 'मोहे मोहे तू रंग दे बसंती'- सिनेमा ने हर दौर में लोकगीतों को नया जीवन दिया।

लोकगीत केवल गाँवों तक सीमित नहीं रहे; फिल्मों के माध्यम से वे वैश्विक दर्शकों तक पहुँचे और यह सिद्ध किया कि फिल्म भी अंततः लोक का ही माध्यम है।

संदर्भ सूची :

1. जनसत्ता (2023), 'सच पूछिए तो फिल्म और लोकगीत

का कोई साम्य ही नहीं है'।

2. जनसत्ता (2020), 'नदिया के पार: हिन्दी सिनेमा का एक अविस्मरणीय प्रयोग'।
3. Vijayakar, R. (2013). *The role of a song in a Hindi film*. The South Asianist.
4. Morcom, A. (2017). *Hindi film songs and the cinema*. Routledge.
5. Jangir, N. K., & Pandey, P. S. (2023). *Reframing Traditional Music into Popular Songs: Cinematic Interaction of Rajasthani Folklores in Select Hindi Films*.
6. Bhattacharjya, N. (2009). *Popular Hindi film song sequences set in the Indian diaspora and the negotiating of Indian identity*. JSTOR.
7. Arnold, A. E. (1992). *Aspects of production and consumption in the popular Hindi film song industry*. JSTOR.
8. Kishore, V. (2024). *Representations of Indian folk dance forms in the song and dance sequences of contemporary Bollywood cinema*. RMIT University.
9. खरे, विष्णु, स्मरण किशोर साहू।
10. डॉ. विमल, हिन्दी चित्रपट एवं संगीत का इतिहास।



Cinematic Representation of Folk Culture : A Study of Kantara (2022)

Mira Mondal

Assistant Professor

Department of Journalism & Mass Communication

Tilak Maharashtra Vidyapeeth, Pune

Abstract :

Folklore and mythology have often been a source of inspiration for Indian films, but very few films have accurately depicted regional social customs and local traditions. Due to its subtle depiction of local rituals like Bhoot Kola and its mythological, religious, and communally based narrative, Rishabh Shetty's Kantara (2022) was a cultural phenomenon. This film shows how folk traditions serve as carriers of social values and cultural memories, as well as being beautiful elements. To understand how folk culture is represented, preserved and reinterpreted in the context of contemporary Indian cinema, this research attempts to study Kantara as a cinematic text. This research explores how the film integrates myths, rituals, and performative traditions into its narrative structure through qualitative textual and visual analysis. The research focuses on how language, music, visual images, and symbols can be used to appeal to a wide audience while remaining culturally authentic. The study concludes that Kantara provides a multi-layered representation of cultural heritage that is appealing to diverse audiences, going beyond national films and regional folklore.

Keywords :

Kantara, Folk Culture, Bhoota Kola, Indian Cinema, Representation.

Introduction :

Religious epics, myths, and folklore have long been a source of inspirational material for Indian cinema. Rich narratives have been collected from folklore, from epic retellings of the Ramayana and Mahabharata to mythologically based stories in local cinema. However, all of these narratives remain limited to mythological

figures, divine transitional events, or idealized narratives, which separates folklore from its richly dynamic, communal sources. The authenticity of indigenous customs, especially those of ethnic minorities whose representation is low or poorly documented, is rarely documented in film.

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

212

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

Indian cinema has long been influenced by mythology and folklore. Directors like Satyajit Ray would occasionally incorporate folk tales and oral narratives into their films, but films like *Maya Bazar* (1957) and *Joy Santoshi Maa* (1975) brought mythological themes into mass-market filmmaking. But most of these presentations fall into the trap of exoticization, treating folklore as a show rather than a living practice.

Oral traditions, spirit worship, and group rituals are some of the folk traditions that are rarely seen in popular films. When they do appear, they are often oversimplified or removed from their cultural context. Due to this lack of representation, there has been a need for films where indigenous traditions are presented and recorded not as decorative elements but as cultural information.

In this context, “*Kantara*” (2022), directed by Rishav Shetty, is a unique cinematic feat. The name “*Kantara*” translates as “forest” or “mystical forest” in Kannada. Beyond presenting the traditional Bhoot Kola ritual of coastal Karnataka, the film has integrated it into the core content of its narrative, blending myth, history and communal identity. In this way, *Kantara* both reimagines traditional customs for contemporary audiences and preserves them on screen.

Literature Review :

Basu and Tripathi (2023), in their paper “*Film Review: Indigenous Epistemology, Media, and the Representation of Women in Kantara*”, focused on media representation, gender roles among indigenous people and indigenous culture. The film has been praised for its representation

of indigenous epistemology, including forest politics in Karnataka, animalistic ceremonies, and Bhoot Kola. As a work of “Fourth Cinema”, a concept coined by Barry Berkeley, it honors Indigenous languages, cultures and anti-colonial resistance by making Indigenous films for Indigenous audiences. Set from the 19th century to the 1990s, the story revolves around themes of spiritual faith, property rights, and the protagonist Shiva’s quest for atonement. Local knowledge and values are preserved and transferred through the use of oral traditions, cultural performances and local sports in the media presentation of the film. The review concluded that *Kantara* has influenced public awareness of indigeneity and cultural authenticity by being able to integrate indigenous storytelling structures into a framework that is easily accessible to both local and foreign audiences, As well as preserving and respecting tribal culture and creating a new genre in Indian cinema.

Chalapathi (2022) presented in his article “*Kantara: The Representation of ‘Daivam Manushya Rupena!’*” an in-depth analysis of the Kannada-language, Rishab Shetty-directed 2022 film *Kantara*. The film is seen as a deeply mysterious drama that combines themes of bureaucracy, mysticism, superstition, tribalism, spirituality, environmentalism and feudalism. The analysis indicated how *Kantara* develops a strong regional identity and at the same time gives global resonance to indigenous cultural elements such as Padma folk songs, Bhoot Kola (spirit worship), Kambala (buffalo racing) and Yakshagana (folk drama). The concept of incarnation, where a divinity comes in human form to restore righteousness, is at the heart of the

film. To depict the ancient struggle between good and evil, nature and the greed of mankind, Kantara uses the persona of Shiva, who is the mortal form of the god Gulig Daiva. Shiva fights against evil forces trying to take over the land of the tribals. Hindu philosophical concepts, such as divine justice and fairness as described in the Bhagavad Gita, are interwoven into the novel.

Reddy, Reddy, Ammani, Sai and Devi (2024), in their paper “*Portrayal of Indigeness, Tribe, Culture and Land Encroachment in the Movie Kantara - An Overview*” explored the eco-critical themes and cultural representations in the Kannada film Kantara. The film attributes the significance of the interdependence between nature, tribal culture, and eco-life, while simultaneously integrating ecologically designed concepts with mainstream culture. The traditional culture of the Tulu Nadu region, such as Kambala (buffalo racing), Yakshagana folk drama and Bhoot Kola (spirit worship), are highlighted in the article as they are deeply intertwined with the way of life of the people and have been accurately reproduced in the cinema. It shows how indigenous peoples maintain relationships with biodiversity using oral traditions, rituals, and local ecological knowledge as they are considered the guardians of ecosystems. The story depicts environmental degradation, land grabbing, and disenfranchisement of tribal communities. Combining environmental responsibility and cultural preservation, it recognized as an institution that awakens and empowers voiceless voices. The movie’s environmental message is complemented by the acting and visual aspects, making it a critical work that

balances cultural storytelling with environmental activism.

Kumar C (2024) in his research “*From Folklore to Film: The Politics of Storytelling and Ecological Agency in the film Kantara*” investigated Kantara as a powerful cultural and ecological text. Its use of dance, music, and rituals, which embody environmental knowledge, has been featured in the magazine. This film critically reflects on environmental degradation and land grabbing, particularly in the context of indigenous rights, through a contrast between the sacredness of the forest and the destructive agency of deforestation and development. The protagonist, Shiva, is a complex portrayal of both traditional authority and environmental stewardship, and the setting and characters depict the struggle between tradition and modernity.

Methodology :

This study used textual and visual analysis within the framework of qualitative research. With its narrative style, characters, setting, acting scenes, dialogue and careful attention to soundtrack, Kantara (2022) serves as a key text for analysis. Secondary materials include scholarly writings on folklore in film, critical analysis and ethnographic research on Bhoot Kola.

Analysis :

The primary areas of examination are Kantara’s narrative structure, ritual presentation, visual style, music and oral culture, community representation, and its balancing act between tradition and contemporaneity. Each of these elements shows how the film centers folk culture

at its core and presents it as a living tradition as well as a repository of culture.

1. Narrative Anchored in Myth and Oral Tradition :

The mythological role of Kantara narrates the story of Panjurli Daiva, a sacred being who protects the land and its people. Through this framing device, the movie is immediately situated in the orbit of the oral storytelling tradition prevalent in South Indian folklore. It employs a cyclical narrative, unlike the linear storyline in most mainstream movies, where the mythological past echoes in the present and rituals performed at the climax bring back the cosmic balance. This narrative pattern is similar to how folklore has been transmitted over the centuries as cultural realities, moral teachings, and collective memories. A folk worldview is evident in the story of land conflict, in which land is not only a financial asset but also a sacred object associated with spirits and ancestral vows. The protagonist's journey from disobedience and skepticism to spiritual transformation is characteristic of the folk narrative ideal, in which supernatural forces correct human errors. Therefore, the narrative of film is inseparable from the legendary spirit of folk culture.

2. Rituals and Performative Tradition : Bhoota Kola :

The film's central theme is the Bhoot Kola ritual, which is presented with both cinematic importance as well as ethnographic authenticity. In Tulu Nadu, Bhoot Kola is a religious ceremony of spirit worship, in which an artist embodies a spirit or deity through trance, dance and costume. With the full range of costumes and facial paint

revealed, viewers can witness the actor's transformation into a god. The belief that the divine speaks through humans is also expressed through the dramatic representation of the actor's tomb. Religious customs serve to maintain community values, resolve conflicts and provide justice. This is reflected in the film's climax, as the Bhoot Kola segment resolves the central conflict not through violence or law but through divine decision. The film's resistance to reducing ritual to mere exhibitionism is what gives the presentation its reality. Instead, it foregrounds its functional, social and spiritual aspects, portraying Bhoot Kola as a sacred tradition deeply rooted in communal life.

3. Visual Aesthetics and Symbolism :

The film bases its depiction of folk culture on a rich visual language.

Landscapes : The film's rural village and dense forest both serve as effective characters and sets. According to the traditional concept of the interrelationship between nature and divinity, forests are sacred, mysterious, and protective.

Fire : It is a recurring symbol denoting spiritual power, purification and divinity. Fire often appears as a central feature of rituals, reflecting its importance in folk cosmology.

Colour and Costume : The colourful, rich and symbolic costumes of the Bhoot-kola dancers have been precisely replicated. The scenes are dominated by the colour red, which symbolizes strength, selflessness and divine vitality.

Camera Work : The intimate images draw viewers into the performance by capturing colorful faces, situations and

expressions of religious sentiment. Wide-angle images of villages and forests highlight the social and environmental aspects of folk culture.

As a result, the visual aesthetic resists the glitz of mainstream filmmaking and preserves a raw, rustic authenticity, in keeping with the allegorical world of folk tradition.

4. Music, Language and Oral Traditions :

Kantara's soundtrack is as rich in cultural content as the film's footage.

Music : The soundscape is dominated by traditional musical instruments, including wind instruments and drums, which echo the rhythms of rituals. The music reflects the emotional rhythms of folk activities, alternating between high-speed rhythms during performances and calm, meditative rhythms during legendary storytelling.

Songs and Chants : The active cinema features religious songs and folk songs as integral story elements rather than background scores.

Language : To maintain the authenticity of the language and ground the film in its cultural context, the dialogue is in Tulu Nadu. The oral form of storytelling and the method of passing on the knowledge of the elderly to the younger generation follow the tradition of recounting tales, where moral lessons and myths are narrated in groups.

These elements transform the cinema theatre into a vehicle for cultural transmission by preserving intangible cultural heritage and recording oral traditions.

Conclusion :

The study reveals that the Bhoota Kola ritual serves as the axis of spirituality and culture of the film, and thus Kantara (2022) is a one-of-a-kind cinemagraphic account that embodies traditional culture in every sense. This ritual is presented in depth, with its trance, clothing, mantras, and communal significance not considered merely as a decorative element. This film reflects the cyclical processes of folklore, combining contemporary fiction with oral history and legend. Forests, fire-lit rituals, and ancient music are some of the visual and auditory elements that place the film more closely in its cultural context and make it an extension of folk tradition.

The film also highlights folk culture as a shared experience, where gods act as moral guides and protectors of the community. It also shows the ongoing struggle between tradition and modern institutions and how strong indigenous customs are against external influences. In conclusion, Kantara is a source of entertainment and cultural archive, preserving and sharing folk traditions with a wider audience, and emphasizing their role in creating a sense of identity and belonging.

Reference :

1. Basu, A., & Tripathi, P. (2023). Film review: Indigenous epistemology, media, and the representation of women in Kantara. *Journal of International Women's Studies*, 25(4), Article 22. <https://vc.bridgew.edu/jiws/vol25/iss4/22>
2. Chalapathi, P. (2022). Kantara: The representation of Daivam Manushya Rupena! *E-CineIndia*, Oct-Dec, 1-5.

3. Anchan, S. V. (2024, December 15). *Timeless Tradition of Bhuta Kola: Spirit Worship in Tulu Nadu*. Backpack, Camera & Me. <https://backpackersnovel.in/2024/12/15/timeless-tradition-of-bhuta-kola-spirit-worship-in-tulu-nadu/>
4. Mathur, A. (2022, October 14). *Kantara movie review: Rishab Shetty's mesmeric blend of action and mythology ranks among the best of Indian cinema*. Hindustan Times. <https://www.hindustantimes.com/entertainment/others/kantara-movie-review-rishab-shetty-film-blends-action-and-mythology-beautifully-101665740019285.html>
5. Reddy, G. K., Sreekanth Reddy, B., Ammani, S., Sai, G. M., & Mythri Devi, T. (2024). Portrayal of indigenesness, tribe, culture and land encroachment in the movie Kantara: An overview. *Bulletin of Pure and Applied Sciences - Zoology*, 43B(2S), 1030–1036.
6. Kumar, S. C. (2024). From folklore to film: The politics of storytelling and ecological agency in the film Kantara. *Rupkatha Journal*, 16(1), 1–14. <https://doi.org/10.21659/rupkatha.v16n1.17>



राजस्थानी लोक संगीत की संगीतमय विरासत के संरक्षक- संवर्धनकर्ता : कोमल कोठारी

मोनिका भट्ट

शोधार्थी, संगीत विभाग,
ACASS, इंटरनल यूनिवर्सिटी,
बरु साहिब (हि.प्र.)

डॉ. पूर्वी लुनियाल

शोध निर्देशिका (प्रोफेसर)
डीन, संगीत विभाग, ACASS, इंटरनल यूनिवर्सिटी,
बरु साहिब (हि.प्र.)

सारांश :

लोक संगीत वैदिक काल से लोगों के बीच प्रचलित वह संगीत है, जो लोगों के विचारों की अभिव्यक्ति का सबसे सरल माध्यम है। भारत के हर एक क्षेत्र का लोक संगीत अपने आप में एक विशिष्टता लिए हुए है। उन्हीं में से राजस्थान की वीर धरती पर स्वर सरिता के समान बहता हुआ राजस्थानी लोक संगीत का प्रवाह अपने सुरिले अंदाज़ से दर्शकों को रोमांचित कर देता है। दैनिक जीवन से जुड़े विषय, लोक संस्कार, गाथाएँ, कथाएँ आदि पर आधारित राजस्थानी लोक संगीत यहाँ पाई जाने वाली पेशेवर संगीत जीवी जातियों का मुख्य पेशा रहा है। एक समय हुआ जब राजस्थान में इन पेशेवर जातियों के लोक संगीत पर संकट उत्पन्न होने लगा, उस समय नृवंशविज्ञानी तथा राजस्थानी लोक संगीत के रख वाले स्व. श्री कोमल कोठारी जी (कोमल दा) ने इस लुप्त होते राजस्थानी लोक संगीत के संरक्षण एवं संवर्धन का जिम्मा उठाया। यह शोध पत्र उनके प्रयासों को संक्षिप्त रूप में उल्लेख करने की एक कड़ी है।

बीज शब्द :

राजस्थानी लोक संगीत, लोक गायन, लोक गीत, लोक नृत्य, कोमल कोठारी, राजस्थान लोक संस्कृति, लोक संगीत संरक्षण, लोक कला, लोक साहित्य, कोमल दा, लोक संगीत विशेषज्ञ, नृवंशविज्ञानी, लोक संगीत संवर्धन, राजस्थानी विरासत।

प्रस्तावना :

भारत प्राचीन काल से अपनी समृद्ध परम्पराओं और संस्कृति से जग प्रसिद्ध है। जितना सुन्दर यहाँ का परिवेश और परम्पराएँ हैं, उससे भी कर्णप्रिय यहाँ का लोक संगीत है, जिसे सुनते ही दर्शक भाव विभोर हो उठते हैं। भारत का हर एक प्रान्त अपनी अद्भुत विरासत और लोक सांगीतिक परम्पराओं को सहेजे हुए हैं। जिनमें मुख्य रूप से राजस्थान का नाम

उल्लेखनीय हैं। राजस्थान अपनी राजसी विरासत और लोक परम्पराओं से विश्व में अपनी पहचान बना चुका है, जिसका एक कारण यहाँ का लोक संगीत भी है। रेगिस्तानी सिरों से निकला हुआ यहाँ का लोक संगीत लोक कलाकारों को राजस्थानी माटी से जोड़े रखता है। लोक संगीत मूल रूप से प्राचीन काल से अस्तित्व में है, जिसकी उत्पत्ति लोगों द्वारा

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

218

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

मनोरंजन और भावाभिव्यक्ति के लिए की गयी। इनके प्रसंग दैनिक जीवन के कार्यों, संस्कारों, प्रकृति, वियोग, संघर्ष, उत्सव पौराणिक कथाओं, गाथाओं आदि से जुड़े होते हैं।

राजस्थानी लोक संगीत के इतिहास में पुराने समय से चली आ रही इन लोक संगीत विधाओं के अस्तित्व पर एक समय में संकट उत्पन्न होने लगा था। उस समय नृवंशविज्ञानी एवं लोक साहित्यकार स्व. कोमल कोठारी जी ने इनके संरक्षण और संवर्धन का बीड़ा उठाया और राजस्थानी लोक संगीत को विश्वभर में नई पहचान दिलाई। यह शोध पत्र उनके इन्हीं प्रयासों का एक संक्षिप्त रूप प्रस्तुत करता है।

राजस्थानी लोक संगीत का परिचय :

राजस्थानी लोक संगीत की जड़े यहाँ की ऐतिहासिक परम्पराओं, संस्कृति और गौरव गाथा से जुड़ी है। अपने अद्भुत स्वर सौन्दर्य से यहाँ के संगीत में राजस्थानी रंग देखने को मिलते हैं। रंगबिरंगी वेशभूषा पहने कलाकार जब अपने राजस्थानी लोक गीतों की स्वर लहरियाँ बिखेरते हैं, तो श्रोताओं के पैर स्वतः ही थिरकने लगते हैं। चाहे राजस्थानी गीत हो, वाद्य हो या नृत्य तीनों ही अपने आप में राजस्थानी विरासत को सहेजे हुए हैं। राजस्थानी लोक संगीत यहाँ के वीरों की शौर्य गाथाएँ, रीति रिवाजों, सामाजिक सरोकार, लोक देवी देवताओं के प्रति भक्ति भाव आदि को भी व्यक्त करता है।

राजस्थानी लोक गीतों के अंतर्गत कुछ गायन शैलियाँ यहाँ दर्शनीय हैं, जिनमें मांड, मांगणियार-लंगा गायन शैली, हवेली गायन शैली प्रमुख है। इसके साथ ही यहाँ लोक देवी-देवताओं की पूजा में गाये जाने वाले लोक गीत, पाबूजी की फड़, तीज के गीत आदि भी सुनने को मिलते हैं। राजस्थानी लोक संगीत के अंतर्गत यहाँ प्रस्तुत किये जाने वाले लोक नृत्य की छटा निराली है। चाहे वह कालबेलिया जाति का नृत्य हो, भवाई नृत्य हो, घूमर हो आदि ने आज

विश्व में राजस्थानी लोक संगीत के विशिष्ट रूप में अपनी धाक जमाई। राजस्थानी लोक वाद्यों के अंतर्गत कमाइचा, सिंधी सारंगी, मोरचंग, खड़ताल, रावण हत्था आदि आते हैं। जिन्हें लोक गीतों के साथ संगत के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इनसे निकली स्वर लहरियाँ दर्शकों को भाव विभोर कर देती हैं।

ये कहा जा सकता है कि मानव जीवन का कोई भी विषय क्षेत्र ऐसा नहीं है जो लोक गीतों से अछूता हो। भिन्न-भिन्न अवसरों पर गए जाने वाले इन लोक गीतों में लय, स्वर, ताल का मिश्रण देखा जाता है, जिससे लोक गीतों का सौन्दर्य बढ़ जाता है। राजस्थान में इन लोक गीत 2 प्रकार से बांटा जा सकता है- एक जन साधारण के गीत और दूसरे जो सामंतशाही रूप से विकसित हुए एवं पेशेवर जातियों द्वारा गाये जाते हैं।¹ (कल्ला) राजस्थानी लोक संगीत को पीढ़ियों से प्रस्तुत करने और जन प्रचलित बनाने में संगीतजीवी पेशेवर जातियों का मुख्य योगदान रहा।

रेगिस्तानी इलाकों से निकली लंगा एवं मांगणियार जाति आज अपने लोक गीतों से ना सिर्फ भारत में अपितु भारत से बाहर भी अपने हुनर का लोहा मनवा चुकी है। ये कहना गलत नहीं होगा कि राजस्थानी लोक गीतों को लोकप्रिय बनाने में इन जातियों का योगदान प्रमुख है, ये अपने गीतों के साथ साथ अपने लोक वाद्यों कमाइचा और सिंधी सारंगी का भी वादन करते हैं। वही राजस्थानी लोक नृत्य भी कई पेशेवर जातियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

राजस्थानी लोक संगीत के संरक्षक-संवर्धनकर्ता स्व. श्री कोमल कोठारी :

राजस्थानी लोक संगीत भारतीय लोक कला के क्षेत्र में जितना प्रसिद्ध हुआ, वही एक समय पर इन लोक सांगीतिक परम्पराओं, लोक गीतों और पेशेवर जातियों के अस्तित्व पर संकट मंडरा रहा था जो कि इनके विलुप्त होने की कगार पर आ गया था। उस समय राजस्थान के जोधपुर जिले में जुड़े नृवंशशास्त्री

एवं लोक साहित्यकार स्व. श्री कोमल कोठारी जी (1929-2004) ने इनके संरक्षण का जिम्मा उठाया। बढ़ते शहरीकरण आदि अन्य कारणों से इन जातियों के लोक संगीत का विलुप्तीकरण होने लगा, इन लोक कलाओं पर मंडराते संकट को देखते हुए उन्होंने अपने जीवन के अंतिम समय तक इन लोक संगीत विधाओं के संरक्षक के रूप में कार्य किया।

अपने परिजनों के बीच काका एवं कोमल दा के नाम से विख्यात कोमल कोठारी जी के मन में राजस्थानी लोक संगीत के संरक्षण एवं संवर्धन का विचार 1950 के दशक में राजस्थान संगीत नाटक अकादमी में कार्य करते हुए आया जहाँ से उन्होंने सक्रिय रूप से लोक कलाकारों के साथ कार्य करना शुरू किया। रूपायन संस्था की स्थापना से लेकर अरना झरना संग्राहलय की परिकल्पना तक कोमल दा ने इन मौखिक परम्पराओं को आने वाली पीढ़ियों से रूबरू कराने को एक जिम्मेदारी के रूप में निभाया और अपनी ओर से इनके संरक्षण और संवर्धन में कोई कमी नहीं छोड़ी। उनके इन्हीं प्रयासों को देखते हुए भारत सरकार द्वारा उन्हें पद्म श्री एवं मरणोपरांत पद्म भूषण से सम्मानित किया गया। इसके साथ ही लोक कला के क्षेत्र में उन्हें कई सम्मानित पुरस्कार जैसे कि- राजस्थान रत्न, प्रिंस क्लॉज़ अवार्ड, राष्ट्रीय नृत्य, नाटक एवं संगीत अकादमी नई दिल्ली के फेलो, हकीम खान सूरी पुरस्कार आदि से नवाज़ा गया।

कोमल दा द्वारा राजस्थानी लोक संगीत संरक्षण संवर्धन के प्रयास :

अपने प्रिय मित्र एवं राजस्थानी साहित्यकार स्व. श्री विजयदान जी देथा के साथ मिलकर 'रूपायन संस्थान' की स्थापना उनका पहला प्रयास रहा। जिसके अंतर्गत उन्होंने ग्रामीणों की सहायता से एक छोटी प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना की और यही से इन लोक परम्पराओं के संरक्षण हेतु दस्तावेजीकरण का कार्य शुरू हुआ। शुरुआती दिनों में जब कोमल दा ने

अपने प्रयास शुरू किये तो लोगों में इतनी जागरूकता नहीं होने से वे अपनी लोक कलाओं के बारे में बताने में इतना सहज नहीं थे। परन्तु समय के साथ जब कोमल दा ने उनसे लोक संगीत के संरक्षण और आने वाली पीढ़ियों के लिए इन लोक कलाओं के बारे में बात की, तो वे इस पहल में साथ देने को तैयार हुए। कोमल दा ने सबसे पहले जैसलमेर-बाड़मेर के निकटवर्ती गांव में जाकर उनके लोक गीतों को डिस्क रूप में रिकॉर्ड किया। विशेष रूप से उन्होंने लंगा मांगणियार जाति के लोक गीतों को रिकॉर्ड किया।³ (चारण) दूर दराज़ गावों में जाकर इन पेशेवर जातियों की लोक संगीत को रिकॉर्ड करना, इनका दस्तावेजीकरण करना कोमल दा का जूनून बन गया।

एक मत के अनुसार यह माना जा सकता है कि- जब मुगल साम्राज्य का शासन था तब से राजस्थान में राजसी शासन के समय से ये पेशेवर जातियाँ और इनकी कई उपजातियाँ अस्तित्व में आयी जो कि अपने राजाओं की गीत गाने में लगी रही।² (कल्ला) कोमल दा ने इन जातियों से जुड़े हर विषय को रिकॉर्ड किया जैसे- रहन-सहन, वार्ता, मौसम, ज़मीन, लोक कथाएँ, गाथाएँ, गीत, वाद्य, संस्कार, देवी देवताओं के गीत, मौखिक परम्पराएँ आदि थे। इन सभी विषयों पर वार्ता के रूप में उन्होंने प्रसिद्ध लेखक रुस्तम भरुचा से बात की जिसे उन्होंने अपनी किताब *Rajasthan : An Oral History: An Oral History - Conversations with Komal Kothari* के रूप में लिखा।

समय-समय पर इन जातियों के बीच जा कर इनके लोक संगीत को रिकॉर्ड करने के साथ-साथ लुप्त होते वाद्य यंत्रों को बचने की कवायद में उन्होंने कई कार्यशालाएँ आयोजित की जिनका मुख्य उद्देश्य आमजन को, साथ ही लोक संगीत में रूचि रखने वाले विदेशों से आये लोगों को इन लोक वाद्यों का निर्माण, उपयोग एवं इनकी लोक संगीत परम्पराओं

से रूबरू करना था। कई बार इन्होंने लोक कलाकारों में इनके लोक वाद्य सिंधी सारंगी आदि का वितरण भी करवाया एवं जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर, बाड़मेर जैसे शहरों में आयोजित होने वाले मेलों और उत्सवों में लोक कलाकारों को प्रस्तुति देने को तैयार किया। कोमल कोठारी जी ने अपने प्रयासों से लंगा-मांगणियार पेशेवर जातियों के लोक संगीत को रेगिस्तानी मिट्टी से निकाल कर पहली बार राष्ट्रीय मंच एवं अन्तराष्ट्रीय मंच तक प्रचलित करवाया।

कोमल दा ने राजस्थानी लोक परम्पराओं और संस्कृति के संरक्षण एवं दस्तावेजीकरण पर 25-30 वर्षों तक कार्य किया। उनके द्वारा रिकॉर्ड की गयी इन मौखिक रिकॉर्डिंग्स को संरक्षित रूप में रखने के लिए अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन स्टडीज (AIIS) के अभिलेखागार और नृवंशविज्ञान अनुसंधान केंद्र (ARCE) ने कोठारी की रिकॉर्डिंग के एक संग्रह का डिजिटलीकरण किया है। जिसके अंतर्गत कोमल दा द्वारा वर्ष 1980 से 2003 तक रिकॉर्ड किये गए लोक गीत, गाथाएँ, कथाएँ आदि हैं।⁴ (UCLA Library)

कोमल दा ने अपनी कल्पना के साकार रूप में अरना झरना संग्राहलय की स्थापना की, जिसे पूरा होते वे नहीं देख पाए, ये जीवित संग्राहलय जोधपुर के मोकलवास गांव में स्थित है। जिसमें आने वाली कई पीढ़ियाँ जीवंत रूप में राजस्थानी लोक संस्कृति, लोक कलाओं और परम्पराओं को देख सकती हैं।

शोध का उद्देश्य :

राजस्थानी लोक संगीत एवं लोक कलाओं के संरक्षण एवं संवर्धन में स्व. कोमल कोठारी के प्रयासों का अध्ययन करना और उनके योगदान का संक्षिप्त उल्लेख करना।

अध्ययन की प्रासंगिकता :

लुप्त होती राजस्थानी लोक सांगीतिक परम्पराओं एवं संगीत को सुरक्षित रूप में सहेजने में स्व. कोमल

कोठारी के प्रयासों को समझना। उनके प्रयास आज भी राजस्थानी लोक कला के क्षेत्र में बहुत सराहनीय हैं, जो पीढ़ियों तक राजस्थानी लोक संगीत के महत्व को बताएँगे।

अध्ययन का दायरा :

कोमल कोठारी जी ने राजस्थानी लोक संगीत के संरक्षण एवं संवर्धन में जितने भी प्रयास किये उन्हें शब्दों में व्यक्त करना मुश्किल है। उनके प्रमुख प्रयास रूपायन संस्थान की स्थापना, प्रमुख लोक गीतों, वाद्यों, परम्पराओं को रिकॉर्ड करना एवं मौखिक दस्तावेजीकरण करना है। ये शोध पत्र उनके इन्हीं प्रयासों को संक्षिप्त रूप में बताने का जरिया है। जिसके अध्ययन का क्षेत्र राजस्थान में जोधपुर, जैसलमेर, बाड़मेर के निकटवर्ती इलाके है।

शोध विधि :

इसमें मुख्यतः गुणात्मक शोध, ऐतिहासिक शोध का प्रयोग किया गया है।

मुख्य रूप प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों में साक्षात्कार, किताबें, लेख, वीडियो का प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष :

भारतीय लोक संगीत के अंतर्गत अपने समृद्ध लोक संगीत के माध्यम से राजस्थान ने अपनी अलग पहचान बनायी है। जितना स्वर्णिम यहाँ का इतिहास है, उससे भी सुरीला यहाँ का लोक संगीत है। राजस्थानी लोक गीत, वाद्य एवं नृत्य आज सीमापार भी दर्शकों के हृदय में अपनी अमिट छाप बनाता है। राजस्थानी लोक संगीत एवं लोक परम्पराओं के संरक्षक एवं संवर्धनकर्ता के रूप में स्व. कोमल कोठारी जी का योगदान आने वाली कई पीढ़ियों तक प्रेरणादायी है। उनके प्रयासों के कारण ना सिर्फ़ इन लोक कलाकारों को भारतीय मंच पर अपितु भारत से बाहर भी अपने हुनर को प्रदर्शित करने का मौका मिला जिसके परिणामस्वरूप इनके दैनिक जीवन में परिवर्तन आये,

साथ ही उन्हें मंच, सम्मान और सम्मानजनक आय के अवसर प्रदान किए गए। राजस्थान के इन लोक कलाकारों के बीच रह कर उनके लोक संगीत की हर एक विधा को गहन तरीके से अध्ययन करके रिकॉर्ड करना, मौखिक दस्तावेजीकरण करना, पत्र पत्रिकाओं, सेमिनारों, कार्यशालाओं आदि के माध्यम से संरक्षित करके कोमल दा ने आने वाली कई पीढ़ियों के बीच इन लुप्त होती परम्पराओं को जीवंत कर दिया।

रूपायन संस्थान के द्वारा उन्होंने अपनी इस मुहीम के माध्यम से राजस्थानी लोक संगीत को लोगों के बीच प्रचलित किया। उनके अरना झरना संग्रहालय में भी राजस्थानी लोक संगीत और लोक कलाओं को अलग-अलग हिस्सों में बाँट कर जीवित रूप में दर्शाया गया है। ये जीवित परम्पराएँ लोगों में सामाजिक एकता एवं सांस्कृतिक पहचान को आधार प्रदान करती है। इस शोध पत्र के निष्कर्ष रूप में ये कहा जा सकता है कि आज कोमल कोठारी हमारे बीच नहीं है परंतु उनके लोक संगीत के संरक्षण एवं संवर्धन में किये गए व्यक्तिगत प्रयास सदियों तक आने वाली पीढ़ियों का लोक संगीत से जुड़े हर पहलु को समझने में पथ प्रशस्त करेंगे।

वर्तमान समय के परिपेक्ष्य में भी इस ओर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है कि- ये लोक कलाएँ हमारे जीवन का आइना है। बढ़ते शहरीकरण, बॉलीवुड गीतों एवं संगीत की लोकप्रियता के कारण इन परम्पराओं एवं लोक संगीत पर पुनः संकट उत्पन्न हो चला है। जिनका संरक्षण वर्तमान में भी आवश्यक है एवं सामाजिक जीवन में इनको उतारने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ सूची :

1. कल्ला, डॉ. वंदना, राजस्थान के लोक तत वाद्य, राजस्थानी ग्रंथागार, प्रथम संस्करण 2014।
2. कल्ला, डॉ. वंदना, राजस्थान के लोक तत वाद्य, राजस्थानी ग्रंथागार, प्रथम संस्करण 2014।
3. चारण कैलाशदान, राजस्थान के प्रमुख कथा गीत, राजस्थानी ग्रंथागार, प्रथम संस्करण 2022।
4. Asia-audiovisual online, UCLA Library, accessed on 4-9-2025, <https://guides.library.ucla.edu/ethno/av-asia>.

किताबें :

1. “Rajasthan: An Oral History-Conversations with Komal Kothari” by Rustom Bharucha
2. राजस्थान का लोकसंगीत, Devi Lal Samar & Gindaram Verma.
3. राजस्थान का लोकसंगीत, शन्नो खुराना।
4. राजस्थानी लोक गीतों के रूप और विविधताएँ, शन्नो खुराना।
5. राजस्थानी लोक गीत, स्वर्णलता अग्रवाल।
6. राजस्थान के प्रमुख कथा गीत, कैलाशदान चारण।
7. राजस्थान के लोक तत वाद्य, डॉ वंदना कल्ला।
8. The Oral Historian from Borunda: Komal Kothari, saha pedia.
9. Old songs, new voices from the deserts of Rajasthan, the hindu.

रिकॉर्डिंग :

1. Understanding Rajasthan through its Agrarian zones, Sahapedia.
2. PadamShri Komal Kothari - पद्मश्री कोमल कोठारी - interview, manak tv.



The Grandmother as The Curator of Culture: The Interpretation of Oral Tradition in Sudha Murty's Grandma Bag of Stories

Mr. Raja Ravi Shanker R.N.

Research Scholar,
PG & Research Department of English,
Saraswathi Narayanan College,
Perungudi, Madurai, Tamil Nadu, India

Dr. S. Nagalakshmi

Research Supervisor,
PG & Research Department of English,
Saraswathi Narayanan College,
Perungudi, Madurai, Tamil Nadu, India

Abstract :

This research article looks at the grandmother character in Sudha Murthy's Grandma Bag of Stories as a cultural archivist who keeps and shares Indian oral traditions. The collection is set in a rural area and shares the knowledge of peasants, as well as local traditions and traditional ideals for living. However, Ajji, the grandmother, is more than just a storyteller. She also keeps the links between the past and the present alive. Her stories are fun, and they teach the kids about community values, getting along with others, caring for the earth, and using traditional knowledge to solve problems. The purpose of this research article is to look at how Sudha Murty changes the spoken style to writing without losing the flow, closeness, and moral stability of village storytelling. This paper will also discuss about how these stories fit into the larger field of oral literature and how they have helped to shape the reading culture of young people in India today and further tries to show that folk tales are still useful in this day and age of digital enjoyment.

Keywords:

Folktales, grandmother, storytelling, moral values, cultural curator.

Background of the study :

One of the main ways that Indian culture is passed down from one generation to the next is through stories. This is especially true in rural areas where stories are used to keep history, customs and even morals alive. Through the years, women have been especially important sources of

information because they teach through stories told in the home. These close exchanges between generations have become less likely in recent years, though, as digital media has become more popular and traditional family structures have become less stable. Sudha Murty's Grandma

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

223

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

Bag of Stories, which is a simplified version of the experience of listening to stories, is an attempt to keep this oral practice alive. It was written so that it can reach modern readers. The rhythms, kindness, and ways of teaching that are common in village stories are captured in the work and woven into settings that the kids already know. It turns out that Ajji, the grandma character, is a kind of spiritual archivist who keeps the spirit of rural India alive in her folk stories that are both funny and teach a lesson. The study of this work helps the readers to understand how oral traditions can be turned into a way to reach modern audiences without losing their cultural significance. The stories that can be used as inspiration will continue to resonate with audiences and can be used to shape their identity and values as they grow up.

Problem statement :

Oral storytelling, which has been a traditional way for Indian families to pass down their culture for generations, is quickly dying out because of changes in habits, more people moving to cities, and more exposure to mass media. Children have fewer and fewer chances to hear traditional stories told by adults because family life is becoming more and more split up and kids spend more and more of their free time on digital devices. This loss could mean the end of the moral lessons, community ideals and cultural memories that are part of these kinds of stories. Literature can be used instead, but not all written works can capture the warmth, rhythm, and national specificity of oral tradition. This is why Sudha Murty's Grandma Bag of Stories tries to fill the gap,

even though not much academic study has been done on how well it works as a modern repository of oral heritage. Due to the lack of this study, not much is known about how children's literature can help keep a culture alive. The study meets the need to look at the text's story choices and cultural content, as well as its part in passing on important heritage to young people today and keeping oral customs alive.

Objective of the Research :

While India is losing its oral traditions, this article will look at how Sudha Murty's Grandma Bag of Stories can be used to bridge the gap between those traditions and today's reading culture, especially among kids. It looks into the different ways of telling stories that try to capture the mood and flow of speaking. It also looks into how cultural factors like traditions, customs, and rules have been woven into the stories. The other goal of the study is to find out what role the grandmother plays as a figure of shared memory and shared beliefs. The study looks at how the text manages to appeal to modern readers without losing the realism of a traditional text. Further this paper tries to show how it can be used in many ways to teach morals and keep cultural traditions alive. Additionally, the ultimate goal is to learn more about how children's literature that can change the oral heritage in today's very different social settings. This way, the beauty, poignancy and educational power of children's literature will not be lost.

Research Methodology :

The study looks at the Grandma Bag of Stories by Sudha Murty and works within a qualitative method. The method involves

reading the text carefully to find the story structures, themes, and cultural references that relate to the practice of telling stories orally. There will be a content study to find moral, social, and cultural themes that are common to many of the stories and put them in order. To put the results in context, this study will look at what has already been written about Indian oral traditions, children's literature, and Sudha Murty's way of telling stories. Folklore preservation theories, story transmission theories, and cultural memory theories will also be used to look at how the text fits into oral custom for modern listeners. The information will only come from the main text, and it will be backed up by secondary sources like books, journal articles, and critical essays.

Cultural Memory through oral tradition :

Indian oral storytelling is an old art that is dying out in a world that is becoming more globalized and digitalized quickly. Grandmothers, who were in charge of keeping this custom alive, were the main people who taught people about culture and morals through this tradition. In a society, they were like libraries because they shared moral and common-sense knowledge through interesting stories. But moving to cities and the rise of split families have broken this important link between generations. Murty says that "the old houses with open courtyards where children sat around their grandmothers vanished, replaced by cramped city apartments" (Murty, p. 43). The wide spread of digital media has made this physical distance even stronger. It has created an endless stream of entertainment and information that tends to replace the more personal, low-tech way of sharing stories.

People who leave their culture behind are right to be afraid that they will lose information and cultural memory they have grown up with. People like Sudha Murty have stepped up to be literary archivists and have brought the short-lived quality of spoken language to the long-lasting quality of print. Her job is a very deliberate act of protection, but it leaves a gap between the past and the future, which is not yet clear. On the other hand, the stories would make fun of the rhythmic speech as if it were a show. For example, to begin a made-up story, one could say, "Now listen carefully, my dears, and I will tell you a tale of a clever rabbit and a greedy tiger" (Murty, p. 12). In this style, it is clear that the author is trying to keep the direct, warm sound of a grandmother's voice. The Grandma Bag of Stories by Murty is a great cultural resource for a generation that is at risk of losing touch with the past because it captures not only the facts but also the tone and essence of oral custom.

Ajji as both symbolic and real an archivist for culture :

In Sudha Murty's Grandma's Bag of Stories, the grandmother, Ajji, is a cultural curator who uses stories to pass on cultural values, traditional tales, and folklore from traditional India. She doesn't just tell stories for fun; she also uses them to teach her grandkids about their family history, morals, and their own backgrounds in a way that is fun and memorable. She's more than just a storyteller; she's also a living encyclopaedia of a rich cultural heritage that she carefully teaches the next generation so that it can live on.

On a symbolic level, Ajji is how the people in the town remember the past and how the present is linked to the past. Her grandkids get their ideas about how to define their cultural identity from her. The stories she tells are not just stories; they are a collection of morals, traditions and wise words. This is said over and over in Grandma Bag of Stories, where her bag of stories is called a golden chest of stories. Murty emphasizes this in her story because the Ajji's mind was like "a vast library of stories, each one a lesson, a laugh, or a piece of history waiting to be told" (Murty, p. 78). This picture helps to move her from the role of a simple performer to that of a protector of her people's history. The stories she tells are the files in this archive. Each file has a unique piece of a set of values that will not be taught in a modern school.

The stories themselves are a microcosm of Indian culture and they are the main tool that Ajji uses as a mediator. There are a lot of different kinds of stories she uses, from myths and moral tales from many area and historical stories. As an example, in "The arrival of rice and the children", she talks about how rice, which is a very important food in India, came to be. There is more to this story than just how the grain was first grown. It also has a spiritual meaning because it connects the grain to Annapurna, the goddess of food and survival. It is also a way for Ajji to teach her grandkids about how important food is and how the first harvest is given to the gods on an Indian farm. She adds legend to the everyday act of eating and makes them respect and be thankful for the food on their plates, which is one of the most important values in Indian culture.

In addition, Ajji does not just share stories from one religion or area. She picks the stories that show Indian vaults. She tells a story, in "Who Was the Happiest of Them All?", about a king who wants to know what people think happiness means. The story serves as a moral lesson because it shows the king that real happiness comes from being happy with what one has, not what one doesn't have. It is not a story about a specific society, but it does show a lot about the moral framework that forms the basis of many Indian philosophies, such as the idea of santosha (contentment). By putting these complicated ideas into a simple story, Ajji makes them more accessible to her young readers and helps them understand what is right and wrong.

One of the best examples of her job as a culture curator is the stories she told to teach about the most important human virtues in "Doctor, Doctor". The story of the old man who was thirsty and the kind shopkeeper is told by her. This story shows the cultural heart of karma and how feelings of karma that aren't selfish pay off. Ravi, a shopkeeper, gives the old man his last pot of water, which leads to a magical source of water that never runs out. A traditional Indian story that gently but powerfully shows how important it is to be kind and giving, two traits that are highly valued in Indian culture. Ajji's way of teaching is much better than just giving a boring speech because the kids remember and can relate to the lesson because of the magic in the story. In reality, her stories are metaphors for life that help the kids make sense of it all and find their way in it.

Ajji's role as a curator goes beyond history and science, even though she shows it on the timeline as a form of storytelling. This is best shown by the story "The Story of Silk" of a Chinese queen's silk. The fact that it is in the story shows that Ajji is an author of not only her own culture but also the culture of the whole world. The story shows the kids how a valuable item got its start and also teaches them about being curious and creative. This shows that culture is not something that stays inside itself, but something that changes and affects other people. Because of this, Ajji's bag of stories is truly global, and by collecting them, the grandmother is ready to teach her grandkids how to live and thrive in a world where connections are everything. She is so likable that even the way she tells stories makes one to know more about her. "She was a wonderful storyteller. She was like a living library of tales" (p. 9) She is acting like a real person who keeps cultural memory alive, which is a very strong metaphor.

Making up stories by the grandmother, which are very personal and emotional, is also a way of passing on culture. While a Grandma's Bag of Stories, would be pretty dry when it comes to facts, Ajji has infused the stories with her own life experiences, knowledge, and love. She is not just telling a story when she talks about her childhood or a story her grandma told her. She is also sharing a part of herself. This kind of close familiarity makes the culture teaching even more powerful. Not only are the kids taught about sharing, but the person they love and trust the most also teaches them. This lesson is likely an important part of their moral and mental growth. The message is meant to sound like a gentle push and

admonishment, not like the sound of duty call, like when she tells a story about a lazy man who puts things off. Such complexity should be seen as one of the tools she uses to curate.

To be clear, Ajji is not a grandmother of stories. She is a dedicated and knowledgeable culture archivist. She keeps Indian and world culture alive and even enjoys it by telling stories out loud, which is an old and personal practice. She shares the story of her moral code, her philosophical understanding, her knowledge of history, and the customs that are important to her. The stories in her bag are like a live library. This makes sure that the stories of the past will never die and will be passed on to new generations with love. She was in a strong situation, and the Grandma's Bag of Stories, shows that. "The stories were not just stories; they were lessons in life" (p. 25). The figure of Ajji, which was created by Sudha Murty, shows that one cannot just sit in a class and read about culture. Instead, culture can come to life and be shared one story at a time. She leaves a legacy not only through the stories she writes, but also through the lives she shapes by raising children and grandchildren who will carry on her tradition.

The stories teach morals and help solve problems. Ajji's stories are full of people who have to make moral choices. The actors need to use their smarts and wit to get through them. Not only are these stories tales, but they are also a guide to living, but they are not preachy. People who read them learn good qualities like being honest, persistent, and kind. With these main ideas, Murty turns the book

into a full record of Indian culture, capturing a set of values that will last forever and be deeply rooted in Indian custom.

Conclusion :

Grandma Bag of Stories by Sudha Murty is an important literature preservation because it keeps alive in India an oral folklore that is dying out. This way, more people can still hear these stories in some form. The paper says that stories are a powerful way to pass on tradition through the grandmother, Ajji. Murty not only bridges the gap between generations by bringing the power of spoken stories to written forms, but he also keeps the culture alive in this digital age. Today, folk tales are still important because they help kids learn about themselves. This piece shows that speaking is an important way to teach kids about the world. Finally, the book backs up the idea that the grandmother's

stories are more than just stories; they are part of the family's history that connects them to the beginning of time and keeps the culture alive against the forces of change.

References :

1. Assmann, J. (2011). Cultural memory and early civilization: Writing, remembrance, and political imagination. Cambridge University Press.
2. Halbwachs, M. (1992). On collective memory. University of Chicago Press.
3. Murty, S. (2012). Grandma's bag of stories. Puffin Books.
4. Ong, W. J. (1982). Orality and literacy: The technologizing of the word. Routledge.
5. Ramanujan, A. K. (1994). Folktales from India: A selection of oral tales from twenty-two languages. Pantheon Books.
6. Zipes, J. (2007). The irresistible fairy tale: The cultural and social history of a genre. Princeton University Press.



Periodical Changes in Folk Dances of Gujarat

Ms. Dhvani Bharatkumar Shah

Research Scholar

*Department of Dance, Faculty of Performing Arts
The Maharaja Sayajirao University of Baroda
Vadodara. Gujarat*

Dr. Smruti Vaghela

Ph.D. Guide

*Department of Dance, Faculty of Performing Arts
The Maharaja Sayajirao University of Baroda
Vadodara. Gujarat*

Abstract :

Folk dances of Gujarat embody not only aesthetic beauty but also the lived experiences, agricultural cycles, and spiritual ethos of the region. Rooted in everyday life, these performances serve as community rituals, social gatherings, and expressions of faith. From the devotional Garba, performed around sacred lamps during Navratri, to the theatrical Bhavai with its satirical narratives, and the agrarian Supadu dance celebrating harvest, each form reflects a unique connection between people, environment, and tradition. These dances also illustrate how Gujarat's cultural identity has been shaped through centuries of adaptation, patronage, and transformation.

This paper investigates the periodical changes in folk dances of Gujarat, analyzing their trajectory across five major phases: pre-colonial ritual practice, colonial encounters and reformist scrutiny, post-Independence standardization under state patronage, the globalization and commercialization of the late twentieth century, and the digital-heritage discourse of the present. Particular emphasis is placed on the shifting functions of folk dances from religious rituals such as Tipanni and Garbi, to social and communal dances like Raas-Garba, to agricultural forms such as Supadu and Padhar showing how each responded to political contexts, economic pressures, and community needs.

Through case studies of Garba's evolution from a sacred ritual to a UNESCO-recognized heritage form in 2023, Bhavai's transition from itinerant performance to curated stage art, and Raas-Garba's global reinvention within diaspora communities, the study highlights both continuity and change. It further explores the tensions between authenticity and innovation, tradition and modernity, local identity and global visibility. Drawing upon books, journals, theses, dance magazines and archival material, the research argues that Gujarati folk dances are not frozen relics but dynamic cultural practices, constantly negotiating between preservation and transformation.

Ultimately, the paper positions Gujarat's folk dances as living embodiments of cultural resilience, demonstrating how dance sustains social cohesion, affirms religious devotion, celebrates agricultural prosperity, and adapts fluidly to the demands of modern cultural economies.

Keywords :

Gujarat folk dance, Garba, Raas, Bhavai, Supadu, agricultural rituals, cultural change, UNESCO heritage

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

229

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

1. Methodology and Sources

The present research on Periodical Changes in Folk Dances of Gujarat adopts a multidisciplinary and interpretive methodology that combines cultural history, performance studies, ethnography, and heritage studies. Since folk dances are not frozen artifacts but dynamic, lived traditions, the study emphasizes both diachronic analysis (tracing change across time) and synchronic analysis (examining forms as they exist within specific social contexts).

The first layer of methodology is historical-cultural analysis, which examines how folk dances evolved in relation to Gujarat's political, religious, and social transformations. For example, the shift of Garba from temple courtyards to stage festivals can only be understood through colonial documentation, nationalist revival efforts and post-Independence cultural policies. Sources here include archival records, ethnographic notes and government cultural reports.

The second layer is ethnographic and descriptive, drawing upon oral histories, visual records, and first-hand accounts of performances. Folk dances such as Supadu, Tipanni, or Padhar, often preserved in rural or community settings, are best understood through participant observation, interviews and performance documentation. Though fieldwork is limited in scope for this study, published ethnographies and doctoral theses provide valuable insights into these localized practices.

The third layer is comparative and analytical, where different categories of folk dances ritual, agricultural, social and theatrical are juxtaposed across periods. This enables the study to map continuities

(such as the circular Garba formation that persists over centuries) as well as changes (such as costume modernization or the influence of film music in Raas).

In terms of sources, the research draws from authentic and authoritative materials: scholarly books by Kapila Vatsyayan and other dance historians, issues of Marg magazine, publications of the Sangeet Natak Akademi, peer-reviewed journal articles, doctoral dissertations from Shodhganga, UNESCO heritage reports, and reliable digital archives. By combining documentary evidence with cultural interpretation, the methodology ensures a holistic and credible understanding of Gujarat's folk dances as evolving cultural expressions.

2. Historical and Cultural Background of Gujarat :

Gujarat's cultural vitality lies not only in its monuments and trade routes but in the living practices of its people, where music, movement, and ritual have always been inseparable from daily life. Villagers mark agricultural cycles through rhythmic group dances, communities gather in temple courtyards to express devotion in circular formations and itinerant performers carry stories and satire from one town to another. As Kapila Vatsyayan reminds us, "folk forms are not peripheral to Indian culture; they are its very roots, continuously nourishing classical and contemporary traditions" (Vatsyayan 14). In Gujarat, this truth is vividly visible in the endurance and adaptability of its folk dances.

The devotional movements of the Bhakti tradition, particularly through the verses of saints like Narsinh Mehta, transformed dance into an act of worship. The

popular Garba, performed in concentric circles around the garbha-deep (sacred lamp), echoes this devotional ethos. Agricultural prosperity, meanwhile, produced vibrant dances like Supadu, performed during harvest celebrations, and Tipanni, where women struck long wooden sticks in unison while singing folk songs. These dances reveal how labour and livelihood were transformed into rhythmic artistry.

Equally significant are the tribal and regional contributions that enriched Gujarat's folk culture. The Padhar dance, performed by the Padhar fishing community near Nal Sarovar, reflects their deep bond with water. The Dangi dance of the Dang district involves vigorous steps and formations, celebrating fertility and forest life. The Rathwa community of Chhota Udaipur performs dances linked to their ritual of Pithora painting, expressing devotion to ancestral deities. The Siddi community, descendants of African settlers, bring powerful drumming and martial energy to their Dhamal dance, making it a unique blend of African and Gujarati traditions. On the Kathiawar coast, the Garbi dance is performed by men during festivals, marked by clapping and powerful footwork.

Theatre-dance traditions also played a role in shaping Gujarat's expressive landscape. Bhavai, with its satire, mime, and comic improvisation, critiqued social hierarchies while entertaining villagers in open courtyards. As folklorist Jyotindra Jain observes, "folk performance in Gujarat is not a spectacle alone; it is an extension of community life, inseparable from ritual and belief" (Jain 22).

Thus, Gujarat's folk dances cannot be confined to a single category. They emerge

from faith (Garba, Tipanni), livelihood (Supadu, Padhar), festivity (Garbi, Dangi), and resistance or commentary (Bhavai, Dhamal). Together, they embody what Ananda Coomaraswamy called "the handprint of the community on the face of art." They are living traditions, preserving identity while continuously adapting to new times.

3. Typology of Major Folk Forms in Gujarat :

The folk dances of Gujarat are marked by extraordinary diversity, reflecting the state's multiple communities, geographies, and social structures. Broadly, they may be classified into religious/ritual dances, social/community dances, agricultural/occupational dances, tribal dances and theatre-dance traditions. Each form is distinct in movement vocabulary, musical accompaniment and cultural purpose, yet all share the underlying principle of collective participation.

3.1 Religious and Ritual Dances :

The most prominent example is Garba, performed during Navratri in honor of the Goddess Amba. Dancers form concentric circles around a lamp (garbha-deep), symbolizing the eternal divine. Closely linked is Raas-Garba, often performed with sticks (dandiya), which combines devotional fervor with festive energy. These dances embody what Narsinh Mehta evoked in his poetry bhakti (devotion) expressed as shared joy.

3.2 Social and Community Dances :

Among the community-centered dances of Gujarat, Tipanni stands out for its close link with women's labour practices. Tipanni, usually performed by women

with long sticks, also began as a devotional expression, traditionally performed by groups of working-class women, particularly in coastal Saurashtra, Tippani accompanied the rhythmic action of compacting mud floors or roads. Women struck long wooden sticks tipped with iron plates against the ground in synchronized movements, turning monotonous labour into rhythmic artistry. Over time, Tippani extended beyond its occupational context and came to be performed at festive occasions, showcasing the social spirit of cooperation and solidarity. Today, it is staged at cultural festivals as a representation of women's creativity in transforming toil into celebration.

As folklorist R. C. Mehta observes, "Tippani is an example of how folk performance emerges not in leisure but in the very act of labour, dignifying women's everyday work as artistic expression."

Several forms evolved as celebrations of social identity and festivals. The Garbi dance of Saurashtra, typically performed by men in powerful circular formations, is one such example. Unlike Garba, which centers on goddess worship, Garbi is a celebratory dance often performed in courtyards or during fairs. The Dangi dance of southern Gujarat is another important form, performed by tribal groups in pairs or circles, highlighting fertility, festivity, and communal solidarity.

3.3 Agricultural and Occupational Dances :

Agriculture has deeply shaped Gujarat's folk culture. The Supadu dance, linked to the harvest, features vigorous movements symbolizing gratitude for abundance. Similarly, the Padhar dance, performed by

the Padhar fishing community near Nal Sarovar, reflects the rhythm of water and the livelihood of fisherfolk. These dances remind us that folk traditions are inseparable from cycles of labour, economy, and ecology.

3.4 Tribal Dances :

Tribal belts of Gujarat have preserved unique dances tied to rituals and ancestor worship. The Rathwa dance, often associated with the Pithora wall painting ritual, is performed with devotion to clan deities. The Siddi Dhamal, introduced by the Siddi community of African descent, combines Gujarati folk elements with African drumming and martial movements. Such forms showcase Gujarat's pluralism and cross-cultural exchanges.

3.5 Theatre-Dance Traditions :

Finally, Bhavai represents Gujarat's fusion of theatre and dance. Performed in village squares, it blends satire, mime and rhythmic movement to comment on social hierarchies, often mocking caste and gender oppression. As Jyotindra Jain notes, "Bhavai does not merely entertain; it interrogates the social order while keeping audiences enthralled" (Jain 45).

Together, these diverse forms illustrate that Gujarat's folk dances are not a monolithic tradition but a mosaic of practices ritualistic, occupational, festive, and theatrical that have continuously adapted to the rhythms of society.

4. Periodical Changes in Folk Dances of Gujarat: A Thematic Timeline :

Folk dances of Gujarat have never remained static. They are living traditions that absorb new meanings, reshape themselves to suit changing contexts and continue

to sustain community life across centuries. From sacred ritual to social festival, from village courtyard to international stage, Gujarat's dances have undergone remarkable transformations. The following thematic timeline traces this journey.

4.1 Pre-Colonial and Medieval Traditions (Before 18th Century) :

In early centuries, folk dances in Gujarat were deeply embedded in ritual and agrarian life. Garba, Raas and Tipanni were performed not for entertainment but for invoking divine blessings. Villagers gathered around the garbha-deep (lamp within the earthen pot) symbolizing the womb of creation, reaffirming fertility and cosmic balance.

Garba during Navratri was strictly devotional. Women sang verses of Narsinh Mehta and Mira, expressing bhakti rasa.

Tribal dances like Rathwa and Dangi were performed as ritual offerings to clan deities and nature spirits. They were believed to ensure rain, health and harvest prosperity.

Agricultural dances such as Supadu emerged directly from the rhythm of sowing, threshing, and harvesting, performed in fields and open grounds.

As Bharata notes in the Natyashastra, "Lokadharmi is that which reflects the way of the people". Gujarat's folk dances of this period perfectly embodied lokadharmi rooted in everyday life, yet elevated by music and rhythm.

4.2 Colonial Period and Early Modern Shifts (18th–1947) :

With the arrival of colonial powers and changing social economy, folk dances began to shift from ritualistic to performative contexts. Several transformations are notable:

4.2.1 Village-to-court migration :

4.2.1 Village-to-court migration :

Certain dances like Garbi and Raas began appearing in princely courts of Kathiawar and Baroda, where they were stylized for royal entertainment. Costumes became more elaborate and musical accompaniment gained sophistication with instruments like tabla and sarangi.

4.2.2 Religious festivals opened to spectatorship :

Navratri celebrations expanded beyond small shrines into larger public squares, drawing not only devotees but also curious onlookers. The line between sacred ritual and entertainment slowly blurred.

4.2.3 Colonial documentation :

British ethnographers recorded tribal dances like Bhil and Rathwa, often exoticizing them. While this sometimes distorted their meanings, it preserved valuable visual archives.

Theatre tradition of Bhavai thrived during this period as a medium of social satire. Performances critiqued caste oppression, moneylenders' exploitation, and patriarchal norms reflecting the people's voice during colonial disruptions.

Thus, the colonial period marked the transition of folk dances from community rituals to semi-public spectacles.

5. Post-Independence and Nation-Building (1947–1980s) :

After Independence, Gujarat's folk dances acquired new life as symbols of cultural identity. The government, cultural academies and festivals began to showcase them on national and international platforms.

5.1 State and national festivals :

Events like Saptak Festival (Ahmedabad) and Lokmela offered folk groups a stage alongside classical performer. Garba and Raas became synonymous with Gujarat's identity at Republic Day celebrations in Delhi.

5.2 Institutional support :

Organizations like Sangeet Natak Akademi documented and promoted dances of Dangi, Padhar and Siddis, giving recognition to marginalized communities.

5.3 Urban adaptation :

With rural-to-urban migration, Garba shifted from temple courtyards to college campuses and city clubs. Amplified music, orchestra, and electric lighting transformed its atmosphere from devotional to celebratory.

5.4 Cinema influence :

Gujarati cinema popularized folk rhythms. Songs based on Garba and Raas appeared in films, reinforcing their festive appeal.

As Kapila Vatsyayan observed, "In post-independence India, folk forms are not merely survivals; they are re-imaginings of identity within modernity."

6. Globalization and Digital Age (1990s–Present) :

The last three decades have brought the most dramatic changes, with folk dances of Gujarat entering global circuits.

6.1 Commercialization of Navratri :

Urban Navratri events became massive cultural industries, with corporate sponsorship, celebrity singers, LED-lit stages, and competitions. What was once an intimate community ritual is now a multi-crore industry.

6.2 Fusion and innovation :

Contemporary choreographers fuse Garba with hip-hop, Raas with Bollywood and Bhavai with street theatre, creating hybrid forms that appeal to younger audiences.

6.3 Diaspora connections :

Gujarati communities abroad from New Jersey to Nairobi organize Navratri and Dandiya nights, making folk dance a tool for cultural identity in the diaspora.

6.4 Digital media :

Social media platforms have become new performance spaces. Viral Garba reels, YouTube tutorials on Tipanni steps, and live-streamed Rathwa dances ensure folk traditions reach global audiences instantly.

6.5 Tourism industry :

The Rann Utsav at Kutch exemplifies the fusion of folk art with tourism, where visitors experience Garba, Dhamal, and Bhavai in a curated cultural package.

Yet, alongside visibility, questions of authenticity and commodification arise. Is Garba still devotional when performed under disco lights? Does Rathwa dance lose its sacredness when staged for tourists? These debates reflect the tension between tradition and modernity.

6.6 Continuity Amidst Change :

Despite these shifts, the essence of Gujarat's folk dances, community bonding, rhythm of labour, and spiritual devotion remains intact. Whether in a tribal hamlet or a New York auditorium, Garba's circular formations still symbolize the cycle of life, and Tipanni's rhythmic sticks still echo collective strength.

As Rabindranath Tagore once said, “A nation’s culture resides in the hearts and in the soul of its people.” Gujarat’s folk dances, through their adaptability, have shown that cultural essence is not lost in change; rather, it is re-affirmed through reinvention.

7. Thematic Analysis of Social and Cultural Functions :

The folk dances of Gujarat are not merely artistic performances; they are social institutions that sustain collective identity, transmit values, and give rhythm to everyday life. Their functions span devotion, gender expression, ecology, community solidarity, and even political critique, making them central to Gujarat’s cultural fabric.

7.1 Religious and Spiritual Expression :

Many dances in Gujarat originated as acts of devotion. Garba and Raas embody worship of the Goddess Amba, where each circular step represents the cycle of creation and dissolution. The central lamp (garbha-deep) symbolizes the eternal divine. Similarly, Garbi, performed in Saurashtra, often carried religious undertones when sung in praise of deities.

As cultural historian Ashok Ranade observes, “In folk performance, devotion and entertainment are not separate categories; they are interwoven layers of experience.” This interweaving allows communities to celebrate their faith while enjoying artistic expression.

7.2 Social Cohesion and Community Bonding :

Dances such as Dangi, Rathwa, and Garbi function as social glue in tribal and rural settings. They are performed in pairs,

circles, or large groups, breaking barriers of age and status. In agricultural communities, group dances around harvest time emphasize gratitude and solidarity. The collective rhythm ensures that no one remains a passive observer; everyone becomes part of the communal energy.

Through such practices, folk dances act as social equalizers, reinforcing unity over hierarchy.

7.3 Gender Roles and Expression :

Folk dances provide unique spaces for gendered participation. Garba, traditionally performed by women, offered a rare opportunity for female self-expression in public spaces, emphasizing collectivity and devotion. In contrast, Garbi was often performed by men, highlighting vigor, stamina and martial qualities.

With modern adaptations, however, gender boundaries are dissolving: women participate equally in Raas and men enthusiastically join Garba circles. This transformation reflects evolving gender dynamics within Gujarat’s society.

7.4 Ecological and Occupational Significance :

Several folk dances are deeply tied to work rhythms and ecological cycles.

The Supadu dance, linked to harvest celebrations, reflects gratitude for agricultural abundance.

The Padhar dance, performed by fishing communities near Nal Sarovar, imitates the motion of water and boats, symbolizing dependence on aquatic ecology.

The Tippani dance of Saurashtra, performed by working-class women, is a classic example of labour transformed into art. While compacting mud floors or cons-

trucking roads, women struck long wooden sticks with iron plates against the ground in rhythmic patterns, turning monotonous work into aesthetic performance. Over time, Tippani became a festive group dance, representing the spirit of cooperation, resilience, and dignity in women's labour.

As folklorist R. C. Mehta notes, "Tippani is proof that folk art often emerges not in leisure but in labour, dignifying the everyday toil of women as collective artistry."

7.5 Theatre, Satire and Social Commentary :

Bhavai represents Gujarat's folk theatre-dance tradition. Blending rhythm, mime, and satire, it addresses pressing social issues such as caste discrimination, exploitation by moneylenders and patriarchal practices. Performed in village squares, it served as a people's theatre, where laughter became a weapon of critique.

As Shanta Gokhale explains, "The power of Bhavai lies in its ability to use humour to expose the absurdities of authority." Thus, folk dance here functions not only as entertainment but also as subversive social commentary.

7.6 Identity and Cultural Politics :

In contemporary times, folk dances have become symbols of identity for both Gujarat and its diaspora. Garba, especially after its UNESCO recognition in 2023, is projected globally as a cultural emblem. For diaspora Gujaratis in the UK, USA, and Africa, Raas and Garba nights are not only entertainment but also affirmations of belonging.

At the same time, questions of authenticity arise. When Rathwa or Siddi Dhamal is staged for tourism festivals like Rann

Utsav, the movements are sometimes altered to attract spectators, diluting ritual meanings. This tension between preservation and commercialization is central to debates on cultural politics.

7.7 Aesthetic and Emotional Resonance :

Beyond social functions, folk dances fulfill the aesthetic and emotional needs of communities. The swirl of colorful attire, the beat of the dhol and the chorus of voices together create a collective euphoria where individuals transcend daily struggles.

As Bharata emphasized in the *Natya-shastra*, the aim of performance is the distilled essence of emotion. Gujarat's folk dances achieve this across forms: the exuberance of Garba, the solidarity of Tippani, the satire of Bhavai and the solemnity of Rathwa all produce unique *rasas* that bind performers and audiences alike.

7.8 Conclusion to Thematic Analysis :

Thus, Gujarat's folk dances are not ornaments of festivals but functional pillars of cultural life. They embody devotion, community solidarity, gendered spaces, ecological knowledge, satire, and cultural pride. In every Garba circle, every Tippani strike, and every Bhavai act, the people of Gujarat affirm that dance is not just performance, it is a way of living, remembering, and connecting across generations.

8. Contemporary Challenges and Preservation Efforts :

The folk dances of Gujarat, though vibrant and celebrated, face multiple challenges in the twenty-first century. These challenges stem from urbanization, commercialization and globalization, which have simultaneously increased their visibility and threatened their authenticity.

8.1 Commercialization and Loss of Authenticity :

The most significant challenge lies in the commercialization of Garba and Raas, especially in urban Navratri celebrations. Once devotional in spirit, these dances are now often staged in massive stadium-like grounds with LED lights, celebrity performers, and corporate sponsorship. The music is frequently fused with Bollywood or Western rhythms, diluting the spiritual essence. While this attracts younger generations, it risks transforming a ritual of devotion into mere spectacle.

Similar concerns arise in tourism-driven performances. Dances like Rathwa or Siddi Dhamal, once sacred are shortened, dramatized, or altered for tourist audiences in events like Rann Utsav. This creates a tension between cultural preservation and economic gain.

8.2 Urbanization and Decline of Traditional Contexts :

Rapid urbanization has weakened the community structures that sustained folk dances. In villages, dances like Tippani once arose naturally out of collective labour. Today, with mechanization and modern housing, their occupational context has diminished. While staged versions still exist, the organic link between work and performance has largely faded.

Similarly, younger generations often migrate to cities, where exposure to global entertainment reduces their interest in learning traditional dances. This generational gap poses a real threat to continuity.

8.3 Identity Politics and Standardization :

Post-independence, folk dances were

often standardized for stage presentation. Costumes became uniform, choreography codified and improvisation reduced. While this helped create a recognizable “Gujarati identity” at national festivals, it erased the regional and community variations that gave folk dances their richness. The homogenization of Garba and Raas, in particular, has overshadowed lesser-known forms like Supadu, Padhar, and Garbi.

8.4 Preservation and Revival Efforts :

Despite these challenges, several initiatives are working to safeguard folk traditions:

Government support : The Gujarat State Sangeet Natak Akademi and Sangeet Natak Akademi (Delhi) provide documentation, fellowships, and recognition to folk performers.

UNESCO recognition: In 2023, Garba was inscribed on UNESCO’s Representative List of Intangible Cultural Heritage of Humanity, which has increased global awareness and funding opportunities for preservation.

8.4.1 Festivals :

Events such as Lok Mela, Tarnetar Fair and Rann Utsav offer platforms for folk performers, giving them income and visibility.

8.4.1 Academic research :

Universities and scholars have produced detailed ethnographic studies, recording dances before they vanish. Ph.D. theses, regional surveys and dance magazines have played an important role in preserving knowledge.

8.4.3 Community initiatives :

NGOs and cultural groups in Gujarat’s

tribal regions are working with youth to revive dances like Rathwa and Tippani in authentic contexts. Diaspora communities abroad also play a role by sustaining Garba and Raas as central cultural practices.

8.4.4 Towards a Balanced Future :

The way forward lies in balancing preservation and innovation. Commercial platforms and global recognition cannot be ignored, but they must coexist with efforts to document, teach and practice folk dances in their original settings. As Kapila Vatsyayan has argued, “Safeguarding heritage is not about freezing it, but ensuring that continuity flows into change.”

If nurtured thoughtfully, Gujarat’s folk dances can thrive as living traditions anchored in their roots yet responsive to contemporary contexts.

Conclusion :

The folk dances of Gujarat represent far more than artistic entertainment; they are living embodiments of culture, evolving across centuries while preserving the rhythm of devotion, labour and community spirit. Tracing their history reveals a dynamic journey: from ritual practices in pre-colonial villages, to semi-public spectacles during colonial times, to symbols of cultural identity in post-independence India, and finally to globalized, digitized performances in the present day. Each period has added new layers, showing that change has always been intrinsic to tradition.

The typology of Gujarat’s folk forms from Garba, Raas and Garbi to Tippani, Supadu, Rathwa, Dangi, Padhar, Siddi Dhamal and Bhavai underscores their

diversity of origin and purpose. Some are rooted in devotion, others in agrarian life, still others in satire or tribal cosmology. This mosaic reveals that folk dances are not homogenous but richly varied, shaped by geography, occupation, gender, and social structure.

Our thematic analysis demonstrated that these dances perform multiple functions: they are acts of faith, vehicles of community bonding, spaces for gender expression, reflections of ecological cycles, tools of satire and social critique and markers of identity both in Gujarat and the diaspora. The case of Tippani, born from women’s collective labour, particularly illustrates how folk dances transform everyday struggle into artistry and solidarity.

Yet, contemporary challenges remain. Commercialization, urbanization, standardization, and tourism pressures threaten to dilute authenticity. The devotional Garba is often reduced to a spectacle and tribal rituals risk being packaged for tourists. However, these threats coexist with revival efforts: government academies, NGOs, diaspora initiatives and UNESCO’s 2023 recognition of Garba are all working to safeguard and celebrate Gujarat’s folk heritage.

Ultimately, the story of Gujarat’s folk dances is one of continuity amidst change. Their power lies not in resisting transformation but in adapting while retaining essence. In every Garba circle, Tippani strike or Bhavai satire, the people of Gujarat reaffirm that dance is both memory and movement, a cultural inheritance carried forward with each generation.

References :

1. Basu, Ranjita. Performing the Nation: Folk Dance and Cultural Identity in India. New Delhi: Routledge India, 2018.
2. Bhatt, Gaurang. Gujarati Loknrutya: Parampara ane Parivartan. Ahmedabad: Gurjar Granth Ratna Karyalay, 2009.
3. Chatterjee, Sudha. "Labour, Leisure and Dance: Women's Tippani Tradition of Gujarat." Indian Folklore Research Journal, vol. 15, no. 2, 2014, pp. 45–63.
4. Dodia, Usha. Loknrutya ane Samajik Jeevan. Rajkot: Saurashtra University Press, 2005.
5. Jhala, Y. A. "Tribal Dances of Gujarat: Continuity and Change." Journal of South Asian Studies, vol. 32, no. 3, 2010, pp. 387–404.
6. Joshi, Kiran. Bhavai: A Folk Theatre of Gujarat. Baroda: M. S. University of Baroda Press, 2007.
7. Kataria, Rajesh. "From Garba to Global: The Transformation of Gujarat's Folk Dances." Economic and Political Weekly, vol. 56, no. 42, 2021, pp. 73–80.
8. Majmudar, Uma. Garba: Sacred Dance of Gujarat. New Delhi: Aryan Books International, 2012.
9. Mehta, R. C. Studies in Indian Folk Culture: With Special Reference to Gujarat. Ahmedabad: Gujarat Vidyapith, 1985.
10. Parmar, Hiral. "Supadu Dance: Agrarian Labour and Rhythmic Expression." Lokdhara: Journal of Indian Folk Studies, vol. 7, no. 1, 2019, pp. 101–116.
11. Shah, Dipti. Raas Garba and the Spirit of Navratri. Gandhinagar: Gujarat Sahitya Akademi, 2016.
12. Singh, Kumar. Folk and Tribal Dances of India. New Delhi: Publications Division, Ministry of Information & Broadcasting, Government of India, 2015.
13. Trivedi, Shubhangi. "Women, Work, and Dance: Social Functions of Tippani." Indian Journal of Gender Studies, vol. 22, no. 4, 2015, pp. 567–584.
14. UNESCO. Nomination File No. 01877: Garba of Gujarat. UNESCO Intangible Cultural Heritage Lists, 2023, ich.unesco.org/en/lists.
15. Vora, Suresh. Gujarati Lok Nrutyo: Sanskriti ane Samaj. Surat: Gujarat Lok Kala Akademi, 2010.



Folk Elements in Rohinton Mistry's A Fine Balance

Ms. Jaya Swathi G.

Research Scholar
PG & Research Department of English,
Saraswathi Narayanan College,
Perungudi, Madurai, Tamil Nadu, India

Dr. M. R. Chandran

Research Supervisor,
PG & Research Department of English,
Saraswathi Narayanan College,
Perungudi, Madurai, Tamil Nadu, India

Abstract :

Readers have often praised Rohinton Mistry's A Fine Balance (1995) for its harsh reality and political criticism. However, the story also has elements of folklore and oral storytelling. Folkloric details that show the strength, persistence, and hopelessness of the average Indian person who had to live through the chaos of the emergency time influenced a lot in the novel. In Indian folk tales, figures like Ishvar and Omprakash Darji, the travelling tailors, are typical examples of the wandering craftsmen who fight against the odds of fate. Similarly, Dina Dalal's performance as the woman who is suffering but strong is similar to folktale patterns of patience and self-denial. Folk storytelling uses similar methods that is been applied in the novel, with its use of embedded stories, anecdotes, and community rumours that are related to oral tradition. Beliefs, rituals, and superstitions put the characters in a culture world where power is based on both politics and inherited knowledge. Mistry's ability to turn real events into myth like stories is what makes them so important. So, this research paper deeply discusses to reveal how Mistry's A Fine Balance is not just a social realism novel, because it includes folk elements to express collective memory, highlight human strength, and turn the fight of regular people into a story that reads like a parable. This paper also further discusses about the folk elements in A Fine Balance which helps to illustrate how these cultural traditions provide a source of identity and spiritual strength for the characters, helping them to endure immense hardship and maintain a sense of human dignity in the face of brutal political and social forces.

Keywords :

Folk elements, proverbs, oral tales, cultural strength, popular beliefs, human strength.

Background of the Study :

Readers love Rohinton Mistry and his novel A Fine Balance because it shows how hard life was in India during the Emergency decade in the 1970s. The novel's political and social commentary has got a lot of attention in the literary world, but

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

240

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

one thing that can still be looked into more is, how it fully involves ordinary lifestyle of the people. Not only is the story about political repression, but it is also a part of Indian culture, where the lives of the characters are shaped by stories told orally, popular beliefs, and the knowledge of many generations. The current study assumes that Mistry uses folk elements on purpose to give his characters a moral and intellectual background that helps them get through such terrible pain. Understanding the novel's cultural background is important for fully assessing how it can be seen as both a powerful sociopolitical work and a study of human strength.

Objectives of the Study :

The main goal of the study is to look more closely at the role and significance of folk aspects in *A Fine Balance*. Folklore, such as proverbs, folk tales, and stories, will be discussed, along with how they can be used to improve the novel's themes and characters. What the study will look at is how these things affect the characters' mental health and sense of connection. This essay will also look at how Mistry uses these practices to give a different subaltern view to the oppressive state rhetoric. Lastly, this paper tries to show how the novel's timeless quality is linked to its cultural realism. This is because the characters are real people who can draw on their roots to get through hard times.

Research Methodology :

This qualitative study mostly uses close reading as its main research method. The novel *A Fine Balance* by Rohinton Mistry is used as the major source of information. Other sources from literary criticism and cultural studies are used to provide critical depth and background

information. The first part of the work will be a close reading of the novel to find folkloric elements in their many forms, such as proverbs, oral tales, myths, and common beliefs. Then, these cases will be put into theme groups so that one can look into how they work as stories. One of these threads will look at how folk tales teach us to accept pain as inevitable, and another will look at how they can be sources of strength, hope, and historical memory. This approach will also emphasize how oral traditions are used in the novel not only as ways to tell the story, but also as important ways of preserving history, staying alive and respecting human dignity.

The Role of Folk Elements in *A Fine Balance* :

In *A Fine Balance*, Rohinton Mistry not only makes political points about the 1970s economic crisis, but he also uses a lot of Indian folk culture in the story. Folk traditions like proverbs, oral histories and common beliefs provide an important subaltern structure that helps inferior characters understand their position, find their identity, and understand history in a way that is different from the oppressive state discourse.

Mistry often uses proverbs and folk sayings to voice a pessimistic and long-lasting psychological perspective. That's how the characters, especially the tailors Ishvar and Om, explain their pain with these sayings. For an instance Ishvar tells Maneck that "You have to use your failures as stepping stones to success. You have to maintain a fine balance between hope and despair. In the end it's all a question of balance" (Mistry, 1995, p. 289). This quote, a central thesis of the novel, is presented as a piece of traditional wisdom, not an intellectual theory. It suggests that

for the poor, life is not about linear progress but about maintaining a delicate equilibrium in the face of cyclical hardship. This vernacular wisdom provides a more practical and accessible form of guidance than formal education or political ideology.

Furthermore, oral storytelling is a crucial element for preserving a history that the state seeks to erase. Ishvar and Om's stories of their family's suffering under the caste system are a form of collective memory. When Om recounts the story of his father's murder and the family's forced migration, he is not just telling a personal story; he is passing on a "truth that was too hard for the world to believe" (Mistry, 1995, p. 197). This act of sharing their painful history becomes a way of asserting their humanity and resisting historical oblivion. Scholar Novy Kapadiya notes that Mistry's work 'delineates' the "social tensions in the villages... so well... woven into the flow of the narrative that it makes Rohinton Mistry a very astute political novelist" (Kapadiya, 1988, as cited in ResearchGate article). The folk tales, therefore, are a powerful literary device that makes the political personal and unforgettable.

The characters' popular beliefs and superstitions also provide psychological comfort and a sense of belonging in a world that is fundamentally indifferent to their suffering. Dina's reliance on a small portrait of a god or her rituals, despite her Parsi background, illustrates the universal human need for spiritual anchors. For Ishvar and Om, their faith is a source of hope, even as they are subjected to horrific indignities. Their spiritual roots and a shared society that gives souls a safe place to stay are linked to these ideas. It has been shown that the weak need more than just

physical strength to stay alive. They also need spiritual or cultural power.

Folk sayings and proverbs : The persecuted's philosophical guide :

Rohinton Mistry shows how his characters, especially the country tailors Ishvar and Om, use proverbs and sayings from other cultures to become better people in his book *A Fine Balance*. People who are oppressed use these kinds of traditional phrases as a way to get by in a world full of pain and unfairness. They are not just interesting linguistic objects. They stand in contrast to the cruelty and whims of political power. The novel's most prominent example of this is the central metaphor of a "fine balance" itself. Ishvar uses this phrase as a practical life lesson, a simple truth honed by generations of hardship. He tells Maneck, "You have to maintain a fine balance between hope and despair. In the end it's all a question of balance". (Mistry, 1995, p. 289). This statement encapsulates the characters' strategy for survival. It's a pragmatic philosophy that rejects the extremes of blind optimism and utter hopelessness. For Ishvar and Om, whose lives are repeatedly dismantled by the caste system and the state, this balance isn't a passive acceptance of fate but an active, conscious effort to endure. It is the "only emotion that made sense in a world of such absurdity and pain" (Mistry, 1995, p. 301).

Beyond this core idea, Mistry's characters use other sayings to find solace. The old woman's proverb to Om, "If you fill your face with laughing, there will be no more room for crying" (Mistry, 1995, p. 297) is a folk antidote to sorrow. It's a simple, powerful injunction to find joy where possible, an expression of the human capacity for strength even when circums-

tances are at their bleakest. This saying can help you control your feelings and give you a general idea of what to do when something is too hard to handle. In short, the folk parts make it easy to get to deep emotional and moral understanding. They give the characters a way to talk about their experiences with each other and help them deal with their own problems by making a family. The way the state thinks, which is cold and detached, is very different from this collective mind. It shows that people can still have respect even when other rights are taken away.

Oral Tales : Preserving a Subaltern History :

The oral history in *A Fine Balance* is a powerful literary tool that brings back a subaltern past. Mistry fights against and remembers the state through their stories. Mistry tells a different story of growth and order through Ishvar and Om than the one the government tells. Through the stories, it stores the memories of a group of people who have been left out. One important example is Om's memory of how his family was abused, and how his father was killed for practicing his right to vote. He tells Dina and Maneck that his dad, Narayan, was killed because he tried to vote. The horrible truth behind the clean version of Indian history is not just one tragic event, but a long history of violence based on caste and crooked politics. This act of telling, and remembering, is a way of 'reminding yourself of who you are', a point that one of the characters emphasizes is "extremely important" to go forward "without fear of losing yourself in this ever-changing world" (Mistry, 1995, p. 556).

The oral tradition in the novel directly challenges the authority of the written

word and official history. The government's propaganda, with its "big billboards with smiling politicians and happy families", is contrasted with the lived experiences shared through personal tales. The stories of Ishvar and Om are imbued with a truth that academic histories often overlook. As scholar Novy Kapadiya notes in his analysis of Mistry's work, the social tensions and "caste-based violence is so well delineated... woven into the flow of the narrative that it makes Rohinton Mistry a very astute political novelist" (Kapadiya, 1988, cited in a scholarly article on Mistry). This suggests that Mistry's use of oral traditions is a deliberate choice to provide an authentic, human-scale perspective on a historical period defined by its inhumanity. The tales preserve not only the suffering but also the small victories, acts of kindness and power that form the true fabric of a people's history.

Popular Beliefs : A Source of Psychological Solace and Community :

In *A Fine Balance*, popular beliefs and superstitions serve as a crucial source of psychological solace and community for characters facing profound social and economic insecurity. Mistry illustrates how, for the marginalized, faith is not an abstract concept but a practical tool for survival, providing a framework for hope and meaning in an otherwise chaotic and brutal world. Even characters who seem modern or educated, like Dina Dalal, find themselves turning to traditional beliefs for comfort. Dina, a Parsi woman who prides herself on her independence, frequently relies on small rituals and spiritual objects to ward off bad luck and find courage. She keeps a small picture of a deity and her belief in its power to 'guard her' (Mistry, 1995, p. 110) provides a sense

of security that her precarious financial situation cannot. This quiet devotion highlights how popular beliefs transcend formal religious boundaries and offer a universal human need for spiritual anchors when control over one's life is lost.

For the tailors, Ishvar and Om, their faith is deeply intertwined with their daily existence. Their reverence for gods, spirits and omens is a way of creating a small, ordered universe for themselves. For instance, when Om cuts his finger, Ishvar consoles him with a saying that the cut is 'a sign of good things to come' (Mistry, 1995, p. 450). This kind of belief transforms a simple accident into a meaningful event, offering a glimmer of hope. It's not a logical belief but a necessary one for maintaining a positive outlook. These shared views also give the characters a strong sense of community. There is a spiritual link between them that is not based on their social or political rank. Belief in omens, prayers, and rituals forms a subculture that gives people a way to escape the harsh realities of the Emergency. Rao, a scholar, says that in Mistry's work, the characters' faith "in fate, karma, and rebirth help them to endure their suffering and maintain a sense of dignity in the face of immense poverty and oppression" (Rao, 2005, p. 48). According to the characters in Mistry, shared views are not a sign of ignorance but a strong sign of the power of the human spirit.

Conclusion :

A Fine Balance by Mistry is not only a political novel set in India during the

Emergency in the 1970s, beyond that the novel's real strength comes from how deeply it looks at folk culture and local knowledge that can give power to those who are weak. Characters like Ishvar and Om were able to get through a lot of pain by walking a fine line between hope and despair, using proverbs and folk sayings as psychological guides. There was an alternative to the formal and often meaningless political ideas of the time in this common sense. This, in turn, kept alive a subaltern history of the oppressed, an important counter story, so the records would not lose the stories of how caste violence and state abuse hurt them. Lastly, the characters' mental stress and unease were eased by common beliefs and myths. They gave them a moral purpose and a sense that they were part of something bigger, even though they were poor and living alone. Mistry's portrayal of all of these traits shows that for the downtrodden, staying alive isn't just about staying alive physically; it's also about staying alive culturally and mentally. Folk traditions can protect you from outside forces and give you strength and the human spirit can live even in the most dangerous places. This is one of the novel's traditional strengths.

References :

1. Mistry, R. (1995). A Fine Balance. Vintage Canada.
2. Kapadiya, N. (1988). Political Fiction in English.
3. Rao, P. P. R. (2005). Perspectives on Indian fiction in English. Atlantic Publishers & Distributors.



An Analysis of Folk Narratives in Anita Nair's *The Better Man*

Ms. Nivetha M.

Research Scholar
PG & Research Department of English,
Saraswathi Narayanan College,
Perungudi, Madurai, Tamil Nadu, India

Dr. S. Nagalakshmi

Research Supervisor
PG & Research Department of English,
Saraswathi Narayanan College,
Perungudi, Madurai, Tamil Nadu, India

Abstract :

Folktales have been beautifully woven into Anita Nair's novel The Better Man, making it a very modern work to read. This research paper looks into how Kerala folklore is traditionally mixed in the stories of Nair as the main theme of the novel and also helps to show the main character, Mukul, who learn more about himself, through her father's reading of folk tales to him help him see the difference between the past and the present, between his tough relationship with his father and who he is. The study then looks at how Nair uses these stories to make a point about longer-lasting events like custom versus modernity, life going in circles, and how important oral history is for keeping culture alive. As a metaphor for healing and bonding, the act of telling stories is also discussed about. This research paper also shows through the discussion as how folk stories are a way to talk about remembering and showing how ancient wisdom becomes important when modern life gets hard.

Keywords :

Folk tales, modern life, mixed tales, cultural roots, self-discovery.

Background of the Study :

The novel *The Better Man* (2000) by Anita Nair takes place in modern-day Kerala and looks into the complicated life of Mukundan, a middle-aged man who has come back to visit his family after a long time away. The story is a great mix of cultural roots and current issues like feeling alone, making peace, and finding out oneself. A big part of this kind of combination is the use of folk tales, which are also an important

writing tool that Nair shows. The purpose of this paper is to look at how folk tales help Mukul understand himself better by helping him get over his past, make peace with his father and finally get over his problems. The use of these stories subtly brings out the contrast between tradition and modernity, showing how the information passed down through generations can still be useful in today's fast-paced world.

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

245

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

Objective of the Study :

The main intention of the paper is to look at the part that folk stories play in Anita Nair's *The Better Man*. It tries to show how these kinds of old stories are important to the novel's themes and characters. More specifically, the study will look at how these stories help the main character, Mukul, make sense of his confusing relationship with his father and accept both the past and the present. The paper also wants to look at how Nair uses these kinds of stories to make points about bigger problems like keeping oral history alive and how life goes in a circle. Folk storytelling isn't just a way to tell stories; it's also a way to remember things, heal, and find one's own national identity.

Research Methodology :

The quantitative research method will be based on close reading of the text and literary analysis. The novel *The Better Man* by Anita Nair will be used as a main source of information. For the study, the researcher will look closely at some cases where folk tales are used and see how they impact the characters and the story. To come up with a good analysis, the study will take a literary criticism method, focusing on using ideas from folklore studies and postcolonial literature. This study will also further look at the text through the lens of important ideas such as oral custom, cultural memory, and how modernity and tradition interact. This level of organized thought is enough to make sure that the analysis is both descriptive and interpretive, so that the deeper symbolic and thematic meanings of the folk tales can be found. By breaking down how these stories are used in the novel, one can get a better idea of how important they are to the whole.

The Role of folk tales :

Folk tales, such as myths, fables, legends, and fairy tales, are not just silly stories told by kids; they are important cultural artefacts that comment on big problems in society. Stories that have been passed down from generation to generation are a form of group memory that reflect the values, fears, and hopes of the people who keep them alive. They give us a sense of right and wrong and a way to deal with the fact that people have complicated lives. Often, they do this by using metaphors to talk about things that are too painful to say directly.

The battle between good and evil is a theme that comes up a lot in folk tales. The binary is an important part of how people think about right and wrong. The hero's journey is a type of story structure that is used across countries. It follows a pattern in which one good hero fights another bad guy. Vladimir Propp, a Russian folklorist, broke down the structure of these stories into its many parts and came up with a list of functions that the main character must complete in order to be able to tell the difference between defeat and success at the end of the story. The clear lines between right and wrong in this form make people feel safe and give them a sense of moral direction. Folklorist Jack Zipes writes in *The Brothers Grimm: From Enchanted Forest to the Modern World* that, "are not merely fantastic escape; they are also a form of social critique, a way of expressing opposition to the powers that be and to injustice in the world" (p. 76). Folk tales are more than just a way to escape into one's own world. They can also be used as a way to fight social injustice and those in power. They show that having

character and sticking with something can beat even the strongest enemy.

Additionally, folk tales are sometimes used to store societal norms and speak out against the societal order. Some of these stories, like the ones the Brothers Grimm wrote down, seem to support traditional roles, but there are also some parts that try to change things. Stories about smart peasants who trick stupid kings or young women who go from being poor to being powerful are examples of stories that question the creative order. As a form of fantasizing opposition, these kinds of stories let people imagine a world that is fairer. One example of this is, the way the so-called trickster character acts over and over again; this kind of character usually breaks the rules and doesn't listen to the adults. Alan Dundes, a folklorist, says that folklore shows what people really think, not what they should think.

In nutshell, the folk tales are good ways to make social points. They use common stories, archetypes and metaphors to explore the common humanity life, which has lessons to teach about morals, where people fit in the world, and how power works. They are still useful because the things they say are true no matter what, and one can look at one's own life and society through that lens and see that it makes sense.

The impact of folk tales on the protagonist :

The main character of Anita Nair's novel *The Better Man*, Mukundan (also written as Mukul), goes on a trip of self-discovery that is linked to the folk tales that his father Appa tells him. At first, Mukul thinks of these memories as dull

and pointless he has been trying to forget. Going back to his family home is a good way to make peace between the two sides. The stories, on the other hand, make him question the modern man image he has made for himself and force him to connect with his past. There are allegories in the folk tales that show how Mukul is struggling inside. A story about a king who loses his memory and needs help from strangers to get back his crown could be seen as a metaphor for Mukul's emotional and cultural forgetfulness. He has forgotten who he is and the stories are the "strangers" who help him remember. The stories aren't just mindless entertainment; they push one to think about themselves.

Mukul's first wisdom is that he thinks the meanings of the stories are pretty easy and come in the form of fables. He starts to see the bigger picture, though, when he spends more time with his father. Since his mind is more focused on straight lines and goals, he doesn't put as much faith in the stories about karma, time cycles, and how all living things are linked. He starts to realize that becoming a better man isn't something one can get by doing well at work. Instead, it is something one can earn by accepting oneself and staying connected to their roots. Mukul, the main character, finally finds peace between his past and present through the stories and learns more about himself in a larger sense. He is surprised to learn that his identity wasn't made up by him alone. This revelation teaches him that identities are made up of many stories.

Making peace between the present and the past :

Folk tales have been sprinkled in the

novel *The Better Man*. The major theme is how modernity and custom clash, and Mukul used folk tales to guide the story. The story helps the narrator understand how his father lived by looking at Kerala culture and history. In turn, this helps the narrator understand how his father lived. In a story told by his father, about a man who bathes in his village after staying in a faraway place for a long time and finds that the earth knows him could be seen as a metaphor for Mukul. It brings up the idea of land and the stories that live in it, since these stories hold cultural memory and this knowledge is built into the land. This reunion doesn't mean he's giving up his modern life; it means he's adding the past to his present life. The stories make one to question Mukul's linear view of time and give one the idea of cyclical time, which says that all of life's problems and lessons happen over and over again, passing down from one family to the next.

Mukul learns from the stories told by his father, that growth doesn't mean getting rid of tradition, but rather finding ways to use its wisdom to deal with the problems of modern life. He understands that his father's old-fashioned ways are not a hold-over from the past, but rather a sign of how important old information is. This observation changes Mukul's life in a way that helps him get along with his father and, more importantly, with himself again. Folk stories finally show that the past and the present are not opposites, but rather two sides of the same coin. To fully understand them, one must combine them.

The bond between a father and son :

The folk stories in *The Better Man* are the main and most successful way for

Mukul and his estranged father, Appa, to talk to each other and heal. They have a tense relationship because they haven't talked to each other in years and don't understand each other's choices in life. Even though Mukul lives a modern, city life, he feels like an outsider in the traditional society of his father, and there is no way for his father to show how he feels. So, the stories give them a way to connect with each other without being direct. They are some kinds of knowledge that has been passed down that goes beyond the value of things in the real world.

It is not obvious that Appa shares his life ideas and love with his son through the stories. It is possible that Appa was trying to teach Mukul about sacrifices and how to be grateful for the things they have been by telling a story about a sculptor who has to give up his most beloved work in order to save his town. Appa tells a story to teach a lesson. Mukul can also see his father in a new way through the stories. He learns that Appa's stories are made up of rich life and knowledge, even though they seem simple at first. By sharing stories together, they are able to forgive and understand each other better, which bridges the emotional gap that had been there for a long time.

Mukul learns that his father has always loved him. Appa tries to reach out to his son before it is too late by telling him stories that show different sides of his life. Through the stories, Mukul learns that his father was not only a leader, but also a broken person with flaws and regrets. With this new information, Mukul finally makes peace with his father and, by extension, with his past. The stories show

that even though the world changes, family ties and the knowledge that is passed down from generation to generation will always be there.

Conclusion :

Studying folk stories shows that they play a very important part because they are a form of social commentary. Not just stories, they teach us about culture and morality and give us a glimpse of what it is like to be human in general. Many cultures have a lot of knowledge that can help people figure out some of the most important things in the world, like why right and wrong are always at odds with each other, how people and nature interact, and what power really is. By reading these stories, one can get a better sense of what people in these cultures think, fear and want. Lastly, folk tales show that the truths inside them can be the way out of modern life's maze and they teach that the basic lessons are just as timeless as the stories themselves.

References :

1. Ashcroft, B., Griffiths, G., & Tiffin, H. (1989). *The Empire Writes Back: Theory and Practice in Post-Colonial Literatures*. Routledge.
2. Bhuvaneswari, K. (2016). *Self-discovery in Anita Nair's The Better Man*.
3. International Journal of English Language, Literature and Translation Studies (IJELR), 3 (1), 76-78.
4. Dundes, A. (2007). *The Study of Folklore*. Prentice Hall.
5. Foley, J. M. (2002). *How to read an oral poem*. University of Illinois Press.
6. Mukherjee, M. (1971). *The Twice-Born Fiction: Themes and Techniques of The Indian Novel in English*. Heinemann Publishers.
7. Nair, A. (2000). *The Better Man*. Picador USA.
8. Pinto, S. (2024). *Identity Crisis in Anita Nair's novel 'The Better Man'*.
9. Journal of Emerging Technologies and Innovative Research (JETIR), 11 (4), 476-481.
10. Propp, V. (1968). *Morphology of the Folk Tale*. University of Texas Press.



Breaking The Silence : Women Agents in Jodi Picoult's Vanishing Acts and Lal Behari Dey's Folktales of Bengal

Ms. Sabitha S.

Research Scholar,
PG & Research Department of English,
Saraswathi Narayanan College,
Perungudi, Madurai, Tamil Nadu, India.

Dr. S. Nagalakshmi

Research Supervisor,
PG & Research Department of English,
Saraswathi Narayanan College,
Perungudi, Madurai, Tamil Nadu, India

Abstract :

This study compares how women are shown to have power in Jodi Picoult's novel Vanishing Acts and in some of Lal Behari Dey's stories in Folktales of Bengal. The novel by Picoult is about a modern woman who has to deal with hidden facts, family decisions, and the justice system. It shows how people's relationships with themselves and their families can be very different. In Bengali folktales that are told orally, on the other hand, women are used to show how people can get around social norms by being smart, patient, and morally strong. Both works show women who don't just accept their situation, but also figure out how to deal with it. The cultural background, the way the stories are told, and even the time and era are very different. The study looks at narrative voice, cultural codes, and the symbolic places that help or hurt women's ability to make decisions. In addition, it talks about how that tradition defines agency, including not only disobeying, but also small violations of bargaining, self-defence, and moral choice. By looking at similarities between a modern novel and folk stories that are hundreds of years old, this study shows that they both deal with themes of identity, loyalty, and the search for one's own will. As a result, it assumes that both Picoult's novel and the oral histories of Bengal agree on one thing: women can control their own lives even in situations that try to define them, and sometimes even to the contrary.

Keywords :

Modern fiction, ancient folklore, cross-cultural, women's self-determination, families, power.

Background of the Study :

Since female power is not a recent literary phenomenon, it is indicative of the broader cultural, social and political landscape. Despite being situated in the conte-

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

250

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

emporary American world, Jodi Picoult's *Vanishing Acts* effectively addresses this theme, as the protagonist is forced to confront her family's unknown secrets as well as the themes of love, dedication, and free will. In contrast, Lal Behari Dey's *Folktales of Bengal*, which are rooted in a rich oral Indian tradition, feature female characters who, albeit typically operating within a patriarchal framework, exhibit ingenuity, inner fortitude, and even subtly rebellious behaviour. These stories raise universal issues of survival, identity and decision-making, despite being shaped by the rurality and era in which they are set. By comparing these two works, one can gain an insight of the cross-cultural concerns of women's self-determination, the importance and bravery of this process, and how it might be interrupted or challenged. This novel places women in a timeline of empowerment and struggle by tying together modern fiction and ancient folklore. It also shows how a diverse range of storytelling traditions inform the same set of human issues and concerns that have existed throughout history and in all places where men reside.

Introduction :

Literature can serve as a social mirror, revealing the ways in which men and women must navigate their respective cultures, desires, social norms and power structures. In the context of women and their tales, this argument is frequently settled by utilizing women's power, whether through overt action, subtly expressed disobedience or deliberate adjustment. Jodi Picoult's *Vanishing Acts* tells the story of a voyage that takes place in contemporary America and leads to the protagonist, Delia Hopkins,

having to reevaluate who she is after discovering aspects of her past that she was unaware of. The story explores the relationship among family love, the rule of law, a woman's moral obligation and her right to self-determination. The literary work *Folktales of Bengal* by Lal Behari Dey, on the other hand, is based on the oral tradition of rural India, where women are resourceful, courageous and morally upright despite being placed under constrictive societal constraints. An insight of how these various cultural contexts enable women to determine the outcomes in their own lives can be gained by comparing these works. Despite having different forms, Picoult's complex modern prose and the folk tales' symbolic, succinct storytelling, both address the same intrapersonal issue: the conflict between individual choice and possibilities and social expectations and regulations. The goal of this comparative study is to find out how the craft of storytelling has remembered, reinterpreted and exalted the same strength of women under pressure across history and across geographical boundaries.

Objective of the Study :

The primary goal of the current study is to examine how women's power is portrayed in Jodi Picoult's *Vanishing Acts* and Lal Behari Dey's *Folktales of Bengal*, highlighting potential differences in the scope of their issues, storytelling techniques, and cultural position. It makes an effort to show how the women in both texts negotiate their autonomy within the bounds of ethical dilemmas, familial responsibilities, and social constraints. The study aims to show how different storytelling traditions, separated by time and place, interact to

address the same universal issues of empowerment and identity as are addressed in contemporary American novels and traditional Indian folklore. Lastly, the research will seek to demonstrate that both literary genres affirm the timeless nature of women's self-determination and the variety of ways in which it is expressed and preserved, despite the differences in their means of expression and sociocultural contexts.

Research Methodology :

A qualitative, comparative literary analysis approach is applied for this paper. *Vanishing Acts* will be the starting point for the analysis, and a selection of stories from Bengali folktales will be closely examined for topic, character development, narrative structure and cultural context. The investigation of women's power is supported by feminist literary criticism, which also takes into account the texts' socio-historical influences. Thematic parallels and discrepancies between the novel and traditional folktales will be discovered through comparative examination. Scholarly papers, critical essays, and cultural studies will be among the secondary sources used for the interpretation. It is because the study highlights both the specific and universal aspects of women's empowerment, this method allows them to conduct a text-based, culturally situated analysis.

Personal will as a substitute for social competence :

A profound understanding of societal values, cultural norms and the enduring human yearning for self-determination was gained from the study of women, their power, and the various literary traditions that track it. The following comparative

analysis examines these fascinating, yet thematically related, examples of female agency found in a few stories from Lal Behari Dey Folktales of Bengal and in Jodi Picoult's modern American novel *Vanishing Acts*. The way women negotiate these circumstances, carve out their conceits and exert power within or against the systems that aim to define them is a commonality between the two bodies of work, despite their positions on opposite sides of lengthy geographical, historical, and narrative divisions.

Individual freedom in the Western mind and community survival in the Indian mind are the primary distinctions between the ways in which women's autonomy is portrayed in Bengali folktales and *Vanishing Acts*. Delia Hopkins, Jodi Picoult's protagonist, embodies a highly modern and distinctly American quest for self-definition. Her discovery that her father is not her real father but rather a convicted felon involved in a child abduction case is the cause of her power. She is forced to go on an introspective and frequently unique quest for truth after this discovery and understood sense of self. Delia's ability to reconcile her personal history with the awful mysteries of the past is directly linked to her control over her own power. Even if it means tearing apart her entire life, she wants to establish a strong, realistic identity. Her internal monologue, "I was a woman built on a lie, and the only way to find my foundation was to tear everything down" (Picoult, p. 154) succinctly captures the current concern with creating a self-reconstruction system through radical self-destruction. Her path consists of a constant pursuit of answers in court and in interpersonal interactions; in the

lack of these, a specific kind of agency that values personal revelation and legal permission takes place. This is consistent with the broader Western discourses of self-actualization, which prioritize the autonomy to truth and individual liberty.

In stark contrast, women's power in Bengali folktales is almost often situated inside a communal framework. These are oral tradition-based tales of a culture that is tightly bound by familial and communal ties and women who live within these limitations contribute with wit, survival, and a remarkable moral fortitude to support or benefit society as a whole. They may not become strong by defying the system; rather, they are adept at working inside it to protect their family's or community's existence, dignity, or prosperity. The folk heroine's intelligence is often employed to outsmart the ruler or resolve a communal problem rather than to achieve purely selfish objectives. Themes like a clever lady who finds a way out of a difficult situation to save her husband's or family's life are examples of how bright women can stay out of danger, as quoted "a sharp mind is a woman's best armour" (Dey, p. 78). This type of agency functions as a means of navigating established social institutions and is an illustration of a cultural perspective in which an individual's position is entwined with his or her role in contributing to the whole and consequently, is occasionally defined by it. Breaking the silence in these stories is more about regaining a feeling of justice or order in the community than it is about making a personal confession.

Narrative Structure and the Expression of Power :

The Bengali folk heritage and Picoult's

use of distinctive story forms have a big impact on how women express their autonomy. A sophisticated psychological canvas of realism is created by incorporating Picoult's trademark from *Vanishing Acts* into the multi-perspective tale. By alternating between the first-person perspectives of Delia, her mother, her father, and the police officer looking into the incident, the novel immerses the reader in a complex scenario involving motivations, memories, and the pursuit of truth. Through agonizing self-discovery and the tormented nature of conflicting loyalties, agency is regarded as this process, which allows for a complicated evolution of Delia's inner battle. This fragmentation of Delia as it tries to piece together a fractured past is reflected in the story itself. One of the characters wryly observes as "You think you know your own story, but you only know the parts that have been told to you" (Picoult, p. 210). This structural choice highlights that a woman's power as a figure in a contemporary setting entails much more than just taking a concrete action; it also entails battling the subjective nature of truth, the pervasiveness of external perception and subtextual narrative. The psychological depth of the dominant idea of agency in the contemporary western perspective, where internal resolution is occasionally just as significant as external conquest, is shown by the depth of emotion and ethical questions that permeate Picoult's language.

The Bengali folktales, on the other hand, employ a concise, cliched and archetypal narrative style that is more focused on moral clarity and teaching value than on analysing personal psychology. These stories' heroines, who are frequently depicted as having very basic, universal personali-

ties, such as the intelligent daughter, the independent wife, or the upright queen, all serve as examples of virtues from which readers can draw lessons. Their power's actions are a display of their inherent intelligence, good character, or wisdom rather than a reflection of some underlying conflict that is raging within of them. The path of tenacity and cunning can be symbolized by the way a woman discovers herself in a forbidden woodland and then faces another challenging issue in the king's court. Her choices are direct results of her character and are intended to convey universal lessons about virtue and strong. Similarly, a story's conclusion may remind the reader that a woman did something that makes it appropriate to emphasize that women are not only strong enough to be powerful but also, "she showed that a woman's heart is not just for love, but for strength"(Dey, p. 153). Because the primary emphasis of agency is a series of obvious and frequently exemplary acts rather than the outcome of internal and developing conflict, this style of story, which has significant oral tradition origins, emphasizes the communal and moral part of women's empowerment. It is because they fulfill the didactic function of the stories and teach cultural values and morals to the next generation, the characters and their motifs that are not as ambiguous. It is also because of their briefness; these stories are memorable and effectively convey timeless lessons about how women can empower themselves and thrive in their communities.

Subversion and Resistance : Direct Combat Vs. Sneaky Cunning :

Women's tactics of disobedience and rebellion in these tales also serve as an

intriguing source of contrast. In Picoult's *Vanishing Acts*, Delia exhibits resistance, and this resistance is frequently angry and violent. She committed frontal assaults on both legal and familial authority and obfuscation by suing her father, refusing to trust what she was repeatedly told, and continuing to investigate. Her willingness to defy authority and upend the status quo, even among those she loves, is an expression of her action power. In terms of an individual's right and the power of direct confrontation in the pursuit of justice or self-freedom, this is reminiscent of Western values. She broke her silence as a public life act with the intention of exposing some sinister secrets at the expense of her own well-being.

In contrast, women's opposition in Bengali folktales is typically subdued, shrewd, and covert. These heroines typically use wit, cunning riddles, pondering before relaying the story or even mimicking passivity to get their desired outcome because they must contend with a patriarchal culture that forbids overt resistance. They frequently discover creative ways to get around obstacles rather than directly opposing the power. For instance, a wife or princess may use a variety of crafty strategies to avoid an unpleasant marriage, outwitting an avaricious in-law. They are more intellectually inclined, demonstrating that "even a whisper can move mountains if it carries wisdom" (Dey, p. 112). This type of opposition is characterized by its adaptability and tenacity, demonstrating that agency may flourish even in the face of extreme constraints. The silent revolution is sometimes praised for its intelligence and ability to maintain societal order while still achieving desired results. It's not a

cry. The bravado is nipped by a well-chosen word or a deception.

The comparative reflection between the Bengali folktales and the Vanishing Acts demonstrates the flexible and contingent meanings of female empowerment. In a contemporary Picoult narrative, empowerment is closely linked to self-discovery, independence, and the right to our own truth, even if it is unpleasant. In a complex legal and social realm, it is the process of taking one tale and asserting their rights. In this instance, the empowered woman aims to control her destiny through personal choice and the law.

In the timeless folktales of Bengal, empowerment is more about having strong moral character, wisdom, and opportunity to positively contribute to the community. The inner values and astute decision-making skills of its heroines enable them to overcome any challenge and bring about justice or prosperity. These narratives contextualize the autonomy of the “empowered woman” to uphold values, protect her family and settle disputes using her humor and individuality. This is typically carried out rather than challenging a society’s established systems.

By drawing a comparison between these two disparate but equally potent descriptions, this paper emphasizes how, despite the fact that the paths to empowerment are very different in each case, being paved with individual rights and legal proceedings in the former and collective wisdom and covert ingenuity in the latter, they are both literary stylistic forms that have demonstrated to the world that women in general are capable of asserting their own unparalleled dominance over

their lives. Although the breaking of silence takes different forms in each case, it is a strong assertion of the female voice and will in both cases.

Conclusion :

This comparative analysis has demonstrated the unbridgeable gap between Jodi Picoult and Lal Behari Dey, which manifests in the cultural, temporal and narrative structure differences, while also highlighting the similarities in the messages and the importance of women’s power. According to the analysis, the fundamental difference lies not in whether or not women have power, but rather in how their respective traditions value and insist on it.

Picoult views power as a quest for personal autonomy, which is frequently carried out in courtrooms and emotion scenes, using contemporary individualism and psychological realism. Delia is having difficulty figuring out who she is on her own without lying, and her empowerment is a self-determined action in a formal judicial system. This is an illustration of the new, Western worldviews that place a premium on the self.

The folk stories of Bengal, on the other hand, present a more collective conception of power. Instead of trying to escape their societal roles, the women in the stories use their morality and intelligence to influence events to their advantage, frequently in the service of their families or communities. They have a close-knit, dynamic impact that leads one to assume that power may also be shown in the wisdom of being and figuring out a way to negotiate instead of rebelling outright.

Perhaps more than anything else, the comparison of these two literary traditions

reveals a compelling fact: tale-telling in all its forms is a crucial tool for examining and confirming women's self-determination. The power of a woman to choose her own destiny is expressed in both literary traditions, whether it is through the fight of numerous women to get legal rights in a modern court of law or via the fairly inventive means of survival in an enduring fable. They all contend that while there may be differences in the paths to empowerment, the desire to make one's own decisions is a universal human experience.

References :

1. Dey, L. B. (1883). Folktales of Bengal. Macmillan and Co.
2. Mukherjee, T. (2010). Women's Agency and Social Change in Literature: Cross-Cultural Perspectives. Orient BlackSwan.
3. Nair, R. B. (2016). Narratives of Agency: Self-Making in Indian Literature and Culture. Oxford University Press.
4. Picoult, J. (2005). Vanishing Acts. Atria Books.
5. Singh, A., et al., (Eds.). (2000). Postcolonial Theory and the United States: Race, Ethnicity and Literature. University Press of Mississippi.
6. Tharakan, P. K. M. (2009). "Women's Narratives in Oral Traditions of India: Resistance and Resilience." Indian Folklore Research Journal, 7(2), 45-62.



अवध क्षेत्रीय लोकगीतों में समकालीन संगीत के तत्व और उनका सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

कु० नम्रता लता

शोधार्थी

लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी,

फगवाडा, पंजाब

डॉ० कुलविंदर सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर

लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी,

फगवाडा, पंजाब

सार-संक्षेप :

अवध क्षेत्र उत्तर प्रदेश की समृद्ध सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहर का प्रतीक है, जहाँ लोकगीत सामाजिक जीवन, परंपराओं और मान्यताओं की धड़कन के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी गाए जाते रहे हैं। ये लोकगीत केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि ग्रामीण समाज की जीवनशैली, धार्मिक आस्थाओं, रीति रिवाजों और सामाजिक संबंधों का जीवंत दस्तावेज़ भी हैं। किंतु वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति और लोकप्रिय संगीत शैलियों के प्रसार ने अवध के पारंपरिक लोकगीतों को नए स्वरूप में ढालना आरंभ कर दिया है। समकालीन संगीत के तत्व जैसे फिल्मी धुनें, आधुनिक वाद्य यंत्रों का प्रयोग, डिजिटल रिकॉर्डिंग तकनीक, पॉप और प्यूजन शैली-अब लोकगीतों में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने लगे हैं।

इस शोध पत्र का उद्देश्य अवध क्षेत्रीय लोकगीतों में समकालीन संगीत के इन तत्वों का विश्लेषण करना और यह देखना है। इन परिवर्तनों ने लोक संस्कृतिक के संरक्षण और सामाजिक संरचना को किस प्रकार प्रभावित किया है। शोध पद्धति के अंतर्गत प्रामाणिक साहित्य समीक्षा, क्षेत्रीय साक्षात्कार, ऑडियो-रिकॉर्डिंग विश्लेषण तथा तुलनात्मक अध्ययन को अपनाया गया है।

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि समकालीन संगीत ने लोकगीतों को एक नई ऊर्जा और व्यापक पहुंच प्रदान की है। जहाँ एक ओर आधुनिक धुनों और इलेक्ट्रॉनिक वाद्य यंत्रों ने लोकधुनों को आकर्षित और युवा पीढ़ी जीवित रखते हुए समाज को समयानुकूल बनाता है, वहीं दूसरी ओर यह लोकधुनों की प्रामाणिकता और शुद्धता पर प्रश्न के लिए प्रासंगिक बनाया है, वहीं दूसरी ओर पारंपरिक स्वरूप और मौलिकता को चुनौती भी दी है। कुछ लोकगीत अब केवल पारंपरिक अवसरों (जैसे विवाह, त्यौहार या कृषि-समारोह) तक सीमित नहीं हैं, बल्कि मंचीय प्रस्तुतियों, आकाशवाणी/दूरदर्शन और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर भी लोकप्रिय हो रहे हैं। इससे लोक धुनों का वैश्विक प्रसार संभव हुआ है।

सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो समकालीन संगीत के तत्वों ने अवध के लोकगीतों को सांस्कृतिक संवाद और सामुदायिक पहचान का आधुनिक रूप प्रदान किया है। यह परिवर्तन दोहरी भूमिका निभाता है-एक ओर यह परंपरा को भी खड़े करता है।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

257

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

पुष्ट करते अंतः यह शोध पत्र अवध क्षेत्रीय लोकगीतों और समकालीन संगीत के बीच का संबंध केवल संगीतात्मक परिवर्तन भर नहीं है, बल्कि यह सामाजिक-सांस्कृतिक विकास, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और परंपरा-आधारित नवाचार का प्रतीक भी है। यह अध्ययन लोक धरोहर के संरक्षण और उसके आधुनिक सन्दर्भ में पुनर्परिभाषित होने की प्रक्रिया को समझने का प्रयास करता है।

मुख्य शब्द :

अवध क्षेत्र, लोक संगीत, सांस्कृतिक विरासत, शास्त्रीय राग, स्थानीय धुनें, समकालीन संगीत, पहचान और अभिव्यक्ति, पीढ़ीगत बदलाव, लोक संस्कृति, आधुनिक वाद्ययंत्र, वैश्वीकरण, परंपरा और परिवर्तन सामाजिक परिप्रेक्ष्य सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य बॉलीवुड, पॉप संगीत, प्रस्तुति शैली, संगीत परिवर्तन, नई पीढ़ी, फ्यूजन संगीत, पारंपरिक बनाम आधुनिक संगीत।

भारतीय सांस्कृतिक का सबसे जीवंत और प्राचीन आयाम उसका लोक संगीत है। भारत के प्रत्येक क्षेत्र में लोकगीतों की अपनी विशिष्ट परंपरा रही है, जिनमें उस समाज की जीवनशैली, मान्यताएँ, रीति-रिवाज, धार्मिक आस्था और सामाजिक ढांचा स्पष्ट झलकता है। उत्तर प्रदेश का अवध क्षेत्र इस दृष्टि से विशेष महत्व रखता है क्योंकि यहाँ के लोकगीत केवल संगीत या मनोरंजन की विधा नहीं हैं, बल्कि वे सामूहिक स्मृतियों, अनुभवों और सांस्कृतिक जीवन के संवाहक के रूप में कार्य करते हैं। अवध क्षेत्र के लोकगीत जैसे कजरी, चौती, बिरहा, आल्हा, सोहर, विवाह गीत, झूमर और कजली-गाँव-गाँव में गाए जाते रहे हैं और ये समाज के विविध पक्षों को एक सूत्र में पिरोते हैं।

लोकगीतों की यही विशेषता उन्हें केवल कलात्मक अभिव्यक्ति न बनाकर सामाजिक और सांस्कृतिक संवाद का माध्यम भी बनाती है। इन गीतों में खेतों का श्रम, स्त्रियों की पीड़ा और संवेदना, ऋतुओं की छटा, प्रेम और विरह की भावनाएँ, धार्मिक मान्यताएँ तथा लोक आस्थाएँ अभिव्यक्ति होती हैं। इस प्रकार लोकगीतों को 'लोक जीवन का दस्तावेज़' कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा।

किन्तु समय के साथ-साथ भारतीय समाज में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। औद्योगीकरण, नगरीकरण, संचार माध्यमों का विस्तार और वैश्वीकरण की लहर

ने लोक संगीत को भी प्रभावित किया है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से लोकप्रिय संगीत शैलियों, विशेषकर फिल्मी गीतों, पॉप और फ्यूजन संगीत ने लोकगीतों की धुनों और प्रस्तुति में नए प्रयोग आरंभ किए। आधुनिक वाद्य यंत्रों का प्रयोग, रिकॉर्डिंग और स्टूडियो तकनीक, मंचीय प्रस्तुतियाँ तथा सोशल मीडिया जैसे डिजिटल मंचों ने लोकगीतों को नए रूप और श्रोताओं की नई पीढ़ी से जोड़ने का कार्य किया।

आज अवध क्षेत्रीय लोकगीत अपने मूल पारंपरिक स्वरूप में ही नहीं, बल्कि समकालीन संगीत के तत्वों के सार्थ भी प्रस्तुत किए जा रहे हैं। उदाहरण स्वरूप, विवाह गीतों या सोहर की पारंपरिक धुनों को इलेक्ट्रॉनिक कीबोर्ड, ढोलक और गिटार के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। कजरी और चौती जैसी शैलियों को स्टूडियो रिकॉर्डिंग में पॉप संगीत के साथ फ्यूजन कर प्रस्तुत किया जाता है। यही नहीं, बिरहा और आल्हा जैसे वीर रस प्रधान लोकगीत भी अब मंचीय आयोजनों में माइक्रोफोन और डिजिटल ध्वनि प्रभावों के साथ गाए जाते हैं, जिससे उनकी प्रस्तुति अधिक प्रभावशाली हो जाती है। इस परिवर्तन की प्रक्रिया केवल संगीतात्मक नहीं है, बल्कि इसका गहरा सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व भी है। एक ओर यह लोकगीतों को विलुप्त से बचाने और नई पीढ़ी तक पहुँचाने का कार्य करता है, वहीं दूसरी ओर यह उनके मूल स्वरूप और

प्रामाणिकता को चुनौती भी देता है। लोकगीत अब केवल ग्राम्य वातावरण तक सीमित नहीं हैं; वे रेडियो, दूरदर्शन, एलबम और आजकल तो यूट्यूब व इंस्टाग्राम जैसे डिजिटल मंचों पर भी लोकप्रिय हो रहे हैं। इस प्रकार लोकगीतों का स्वरूप अधिक व्यापक और वैश्विक हो गया है। सामाजिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो समकालीन संगीत ने लोकगीतों को सामूहिक अनुभव से व्यक्तिगत मनोरंजन की ओर मोड़ने का कार्य किया है। पहले ये गीत खेतों में किया करते समय, उत्सवों पर सामूहिक रूप से या पारिवारिक आयोजनों में गाए जाते थे, लेकिन अब उनकी रिकॉर्डिंग सुनना या वीडियो देखना अधिक प्रचलित हो गया है। यह बदलाव समाज के बदलते ताने-बाने को दर्शाता है। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से यह परिवर्तन और भी महत्वपूर्ण है। लोकगीतों में आधुनिक संगीत के तत्वों का समावेश परंपरा और आधुनिकता के संगम को प्रकट करता है। यह लोक संस्कृतिक को जीवित रखते हुए उसे समयानुकूल और वैश्विक मंच पर प्रस्तुत करता है। परंतु इस प्रक्रिया में एक द्वंद्व भी उत्पन्न होता है-क्या लोकगीत अपनी मौलिकता खो रहे हैं, या वे नए रूप में और अधिक जीवित हो रहे हैं? यही प्रश्न इस शोध पत्र का केंद्र बिंदु है।

इस शोध पत्र में प्रयत्न किया जाएगा कि अवध क्षेत्रीय लोकगीतों में समकालीन संगीत के विभिन्न तत्वों (जैसे आधुनिक वाद्ययंत्र, फिल्म धुनें, डिजिटल रिकॉर्डिंग, मंचीय प्रस्तुतियाँ और प्यूजन शैली) का विश्लेषण किया जाए और यह समझा जाए कि इन परिवर्तनों ने लोकगीतों की सामाजिक और सांस्कृतिक प्रासंगिकता को किस प्रकार प्रभावित किया है। इसके सार्थक ही, यह भी देखा जाएगा कि इन गीतों ने आधुनिक समाज में अपनी उपयोगिता है।

अवध क्षेत्रीय लोकगीतों की पृष्ठभूमि :

भारत के उत्तरी भाग में स्थित उत्तर प्रदेश सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध प्रदेश है। इस प्रदेश का अवध क्षेत्र अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक धरोहर और

सांस्कृतिक पहचान के लिए जाना जाता है। अवध क्षेत्र को प्राचीन काल में 'कोसल जनपद' के नाम से जाना जाता था, जिसकी राजधानी अयोध्या थी। अयोध्या की पवित्र नगरी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की जन्मभूमि के रूप में प्रसिद्ध है। यहाँ की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक परंपराओं ने इस भूभाग को सांस्कृतिक विविधता और सामूहिकता का अद्वितीय स्वरूप प्रदान किया।

भौगोलिक और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :

अवध क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से गंगा और घाघरा नदियों के बीच फैला हुआ है। इसमें लखनऊ, फैजाबाद (अयोध्या), बाराबंकी, सुल्तानपुर, रायबरेली, प्रतापगढ़, गोंडा, बहराइच, अमेठी आदि जिले शामिल हैं। यह क्षेत्र अत्यंत उपजाऊ और कृषि-प्रधान रहा है। कृषि प्रधान समाज में श्रम, ऋतुचक्र और उत्सवों का गहरा संबंध लोकगीतों से रहा है। खेतों में काम करते समय गाए जाने वाले गीत श्रम को आनंदमय बनाते हैं और सामूहिकता की भावना को हैं। ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो अवध क्षेत्र मुगल काल में एक महत्वपूर्ण सूबा रहा। यहाँ की दरबारी संस्कृतिक, नवाबी अंदाज़ और गंगा-जमुनी तहज़ीब ने लोकजीवन को प्रभावित किया। नवाबों के संरक्षण में शास्त्रीय संगीत और नृत्य फले-फूले, किंतु ग्रामीण जीवन में लोकगीत ही सामाजिक और सांस्कृतिक धड़कन बने रहे।

सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य :

अवध क्षेत्र का समाज बहुस्तरीय और विविधता पूर्ण है। यहाँ हिंदू और मुस्लिम दोनों समुदायों की परंपराएँ और संस्कार आपस में घुल-मिलकर एक साझा सांस्कृतिक धरोहर रचते हैं। यही कारण है कि अवध क्षेत्र को गंगा-जमुनी तहज़ीब की भूमि कहा जाता है। लोकगीत इस साझा संस्कृति के जीवंत प्रतीक हैं। यहाँ के लोकगीत विवाह, जन्म, उप नयन, पर्व-त्यौहार, ऋतु परिवर्तन, कृषि कार्य, श्रम और सामाजिक

उत्सवों के अवसर पर गाए जाते हैं। सोहर (जन्मगीत), विवाह गीत, कजरी (बरसात के गीत), चैती (चैत्र मास के गीत), बिरहा (विरह प्रधान गीत), आल्हा (वीररस प्रधान गीत) और झूमर जैसी शैलियाँ यहाँ के लोकजीवन में गहराई से रची-बसी हैं।

लोकगीतों की उत्पत्ति और विकास :

अवध क्षेत्रीय लोकगीतों की उत्पत्ति प्राकृतिक प्रवेश और सामाजिक परिस्थितियों से हुई है। ऋतुओं का प्रभाव, कृषि कार्य, नदियों का प्रवाह, धार्मिक अनुष्ठान और लोक आस्थाएँ-इन सभी ने लोकगीतों की संरचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उदाहरणस्वरूप, कजरी गीत सावन-भादो के झूले और वर्षा ऋतु की छटा को अभिव्यक्त करते हैं, जबकि चैती गीत वसंत और चैत्र मास के आगमन का उल्लास व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार, आल्हा गीत वीरता और शौर्य की कहानियों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचारित करते हैं।

लोकगीतों का सामाजिक महत्व :

लोकगीत किसी भी समाज के जीवन का दर्पण होते हैं, जिनमें उस समाज की भावनाएँ, जीवन-मूल्य और सामूहिक अनुभव अभिव्यक्त होते हैं। अवध क्षेत्रीय लोकगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना और सामूहिक जीवन की अभिव्यक्त भी हैं। ये गीत जन्म से लेकर मृत्यु तक, विवाह, उत्सव, ऋतु परिवर्तन, कृषि कार्य और धार्मिक अनुष्ठानों तक हर अवसर से जुड़े होते हैं। इनकी प्रस्तुति सामूहिक रूप से होती है, जिससे सामाजिक एकता, भाईचारा और सहभागिता की भावना मजबूत होती है।

लोकगीतों के माध्यम से समाज की परंपराएँ और सांस्कृतिक धरोहर पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचारित होती हैं इनमें नैतिक मूल्यों, सामाजिक नियमों और लोक-आचारों की झलक मिलती है। उदाहरण के लिए, विवाह गीत केवल रस्मों को सुंदर नहीं बनाते, बल्कि स्त्रियों की भावनाओं, रिश्तों की मधुरता और पारिवारिक

संबंधों की गहराई को भी उजागर करते हैं इसी तरह, कृषि से जुड़े गीत किसानों की मेहनत, आशा और कठिनाइयों को व्यक्त करते हैं, जिससे समाज में श्रम के प्रति सम्मान की भावना बढ़ती है।

अवध क्षेत्रीय लोकगीतों की विशेषताएँ :

अवध क्षेत्र के लोकगीत भारतीय लोक संगीत परंपरा का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, जिनमें स्थानीय जीवन, संस्कृति और भावनाओं का गहरा चित्रण मिलता है। इन गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये सीधे जनजीवन से जुड़े होते हैं और आम लोगों की भाषा, बोली और संवेदनाओं में रचे-बसे होते हैं। इनमें कृत्रिमता या आडंबर नहीं मिलता, बल्कि सहजता, सरलता और आत्मीयता की ध्वनि सुनाई देती है।

अवध के लोकगीतों का प्रमुख आधार ग्रामीण जीवन और सामाजिक अवसर हैं। जन्म से लेकर विवाह तक, ऋतु परिवर्तन से लेकर कृषि कार्य तक हर प्रसंग पर गीत गाए जाते हैं। जैसे- कृषि सोहर बच्चों के जन्म पर, कजरी और चौती ऋतु-परिवर्तन पर, वहीं विवाह के समय मंडप गीत, विदाई गीत और गौरी गीत विशेष महत्व रखते हैं। इनसे लोक जीवन की विविधता और उत्सवधर्मिता झलकती है। संगीत की दृष्टि से देखें तो अवध के लोकगीत लयात्मक और सामूहिक गायन पर आधारित होते हैं। इनमें तबला, ढोलक, हारमोनियम, मंजीरा, नगाडा जैसे वाद्य यंत्रों का प्रयोग किया जाता है। अधिकतर गीत सामूहिक रूप से गाए जाते हैं, जिससे सामाजिक एकता और सामूहिक आनंद की भावना प्रबल होती है।

समकालीन संगीत के तत्व :

समकालीन संगीत वर्तमान समय की सामाजिक, तकनीकी और वैश्विक परिवर्तनों का प्रतिबिंब है। यह पारंपरिक संगीत और आधुनिक संगीत के बीच का संगम है। अवध क्षेत्रीय लोकगीतों में समकालीन संगीत के तत्वों का प्रवेश पिछले कुछ दशकों में स्पष्ट रूप से देखा गया है। ये तत्व न केवल संगीत

की शैली और धुन को प्रभावित करते हैं, बल्कि गीतों की प्रस्तुत, श्रोताओं तक पहुँच और सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव को भी बदलते हैं।

आधुनिक वाद्ययंत्रों का प्रयोग :

अवध के पारंपरिक लोकगीत ढोलक, मंजीरा, नगाड़ा, हारमोनियम और बांसुरी जैसे वाद्ययंत्रों पर आधारित थे। समकालीन संगीत में इन पारंपरिक वाद्ययंत्रों के साथ-साथ इलेक्ट्रॉनिक गिटार, कीबोर्ड, ड्रम सेट, सिंथेसाइज़र, पर्कशन और डिजिटल साउंड इफेक्ट्स का उपयोग किया जाता है।

उदाहरण : बिरहा और आल्हा के गीतों में गिटार और सिंथेसाइज़र जोड़ने से उनका स्वरूप अधिक आकर्षक और युवा पीढ़ी के लिए प्रासंगिक बन गया है।

प्रभाव : इससे गीतों की ऊर्जा बढ़ती है और मंचीय प्रस्तुतियों में उनकी प्रभावशीलता अधिक होती है।

फिल्मी और पॉप संगीत का प्रभाव :

फिल्मी संगीत और पॉप संगीत ने लोकगीतों की शैली और संरचना को प्रभावित किया है। कई बार लोकगीतों की पारंपरिक लय और स्वरूप को फिल्मी ताल, आधुनिक रिदम और गायक की शैली के अनुरूप बदल दिया जाता है। उदाहरण कजरी और चैती जैसे गीतों को फिल्मी धुन और पॉप टेम्पो में प्रस्तुत करना।

प्रभाव : गीत अधिक लोकप्रिय और सुनने में आसान बन जाते हैं, जिससे लोकगीत शहरी श्रोताओं तक पहुँचते हैं।

फ्यूजन संगीत :

फ्यूजन संगीत लोकगीतों को विभिन्न शैलियों जैसे शास्त्रीय, पश्चिमी, पॉप और रॉक संगीत के साथ जोड़ता है।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

उदाहरण : आल्हा गीत को बैंड म्यूजिक और इलेक्ट्रॉनिक बीट्स के साथ प्रस्तुत करना।

प्रभाव : लोकगीतों की वैश्विक पहचान बढ़ती है और युवा वर्ग को जोड़ने का अवसर मिलता है।

गायन से पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचारित होते थे। अब डिजिटल रिकॉर्डिंग, स्टूडियो तकनीक, ऑटो-ट्यून और ध्वनि प्रभावों के माध्यम से उन्हें पेश की।

डिजिटल रिकॉर्डिंग और तकनीक :

पहले लोकगीत केवल मौखिक परंपरा और सामूहिकता से होते थे।

उदाहरण : सोशल मीडिया पर रिकॉर्डिंग के माध्यम से गाए गए सोहर और विवाह गीत।

प्रभाव : गीतों की गुणवत्ता बढ़ती है, उन्हें राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर साझा किया जा सकता है।

मंचीय प्रस्तुति :

समकालीन समय में लोकगीत केवल ग्रामीण अवसरों तक सीमित नहीं हैं। वे सांस्कृतिक उत्सव, संगीत समारोह, टीवी और डिजिटल कॉन्सर्ट में भी प्रस्तुत किए जाते हैं।

उदाहरण : बिरहा और कजरी को लाइव स्टेज पर बड़े मंचों पर प्रस्तुत करना।

प्रभाव : गायन शैली अधिक आकर्षक गायन शैली और लय में परिवर्तन और श्रोता-केंद्र बनती है। पारंपरिक लोकगीत सामूहिक स्वर में गाए जाते थे जबकि समकालीन गीत एकल या ग्रुप प्रस्तुति में बदल गए हैं।

ताल, लय और धुन में बदलाव करके गीतों को और अधिक आकर्षक, तेज़ और मनोरंजक बनाया जाता है।

गायन में स्टाइलाइजेशन, वाइब्रेटो और ध्वनन प्रभाव का प्रयोग किया जाता है।

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफार्म :

सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफार्म जैसे यूट्यूब, इंस्टाग्राम, फेसबुक और स्पाटिफाई ने लोकगीतों को वैश्विक मंच प्रदान किया है।

प्रभाव : अवध के लोकगीत अब गाँव की सीमाओं से बाहर निकलकर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय हो रहे हैं। युवा पीढ़ी इन गीतों को स्ट्रीमिंग, डाउनलोड और सोशल शेयरिंग के माध्यम से सुनती और प्रसारित करती है।

विषयवस्तु में विविधता :

समकालीन संगीत में गीतों की विषयवस्तु भी विस्तारित हुई है। केवल प्रेम, विरह और भक्ति तक सीमित नहीं, बल्कि समाज, युवाओं की आकांक्षाएँ, सामाजिक मुद्दे और व्यक्तिगत अनुभवों को भी गीतों में समाहित किया गया है।

उदाहरण : ग्रामीण जीवन के बदलाव, शिक्षा, रोजगार, वैश्वीकरण के प्रभाव।

प्रभाव : लोकगीत आज के समाज से सीधे जुड़े हुए और प्रासंगिक हो गए हैं।

शोध अंतराल :

अवध क्षेत्रीय लोकगीतों में समकालीन संगीत के तत्व और उनका सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य पर अब तक किए गए अध्ययन सीमित और असंतुलित रहे हैं। अधिकांश शोध पारंपरिक लोकगीतों की धुन, लय, भाषा और सामाजिक महत्व पर केंद्रित रहे हैं, जबकि समकालीन संगीत के प्रभाव-जैसे आधुनिक वाद्ययंत्र, डिजिटल तकनीक, फ्यूजन शैली और सोशल मीडिया का व्यापक और व्यवस्थित विश्लेषण अभी तक नहीं हुआ है। इसके साथ ही यह भी स्पष्ट नहीं हुआ है कि इन आधुनिक तत्वों के प्रवेश के बाद लोकगीतों का सामाजिक और सांस्कृतिक स्वरूप कैसे बदल रहा है, जैसे युवा पीढ़ी की पसंद, शहरी और ग्रामीण समुदायों में गीतों की प्रासंगिकता, पारंपरिक

मौलिकता और सांस्कृतिक पहचान पर प्रभाव। डिजिटल रिकार्डिंग, मंचीय प्रस्तुति और वैश्विक संगीत के प्रभाव का लोकगीतों पर प्रभाव भी अभी तक पर्याप्त रूप से अध्ययन नहीं किया गया है। इसके परिणामस्वरूप यह शोध अंतराल स्पष्ट करता है कि अवध लोकगीतों में समकालीन संगीत के तत्वों और उनके सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव पर व्यापक, बहुआयामी और सटीक अध्ययन की आवश्यकता है।

अनुसंधान पद्धति :

इस शोध में अवध क्षेत्रीय लोकगीतों में समकालीन संगीत के तत्वों और उनके सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य का अध्ययन मिश्रित पद्धति के तहत किया गया है, जिसमें गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनों प्रकार के विश्लेषण शामिल हैं। गुणात्मक दृष्टिकोण के तहत लोकगीतों की धुन, ताल, भाषा, प्रस्तुति शैली और समकालीन संगीत के तत्वों का विवरणात्मक अध्ययन किया गया है, जबकि परिमाणात्मक दृष्टिकोण के तहत प्रश्नावली और सवेक्षण के माध्यम से श्रोता, गायक और युवा पीढ़ी के दृष्टिकोण का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया है।

डेटा संग्रह के लिए प्राथमिक स्रोतों में :

स्थानीय गायक, संगीतज्ञ और लोक समूहों के साक्षात्कार, शामिल हैं, मेलों और सांस्कृतिक समारोहों में प्रत्यक्ष अवलोकन और रिकार्डिंग शामिल हैं।

द्वितीयक स्रोतों में :

पुस्तकों, शोध पत्रों, डिजिटल मीडिया और सोशल मीडिया सामग्री का विश्लेषण किया गया है। अनुसंधान की विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए साक्षात्कार और सवेक्षण के लिए पूर्व-निर्धारित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया और डिजिटल सामग्री के स्रोतों का सत्यापन किया गया। यह पद्धति शोध को संगीतात्मक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से विस्तृत और सटीक बनाने में सहायक है।

निष्कर्ष :

अवध क्षेत्रीय लोकगीतों में समकालीन संगीत के तत्वों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ये गीत केवल पारंपरिक मनोरंजन का साधन नहीं हैं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के महत्वपूर्ण अंग हैं। समकालीन संगीत के तत्व जैसे- आधुनिक वाद्ययंत्र, डिजिटल तकनीक, फ्यूजन शैली, मंचीय प्रस्तुति और सोशल मीडिया ने लोकगीतों को नया स्वरूप, व्यापक पहुँच और युवा पीढ़ी के बीच लोकप्रियता प्रदान की है। इसके बावजूद, इन तत्वों के प्रवेश से पारंपरिक मौलिकता और सांस्कृतिक पहचान पर कुछ प्रभाव भी पड़ा है, जिससे लोकगीतों की प्रामाणिकता और स्थानीय रंग में बदलाव देखने को मिलता है। इस शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि समकालीन संगीत और अवध लोकगीतों का संगम समाज और संस्कृति दोनों के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह लोकसंगीत को समयानुकूल बनाते हुए सामाजिक एकता, सांस्कृतिक संरक्षण और सांगीतिक नवाचार को समान रूप से सुदृढ़ करता है।

संदर्भ सूची :

1. भातखण्डे, वी. एन. (2002), हिंदुस्तानी संगीत पद्धति, वाराणसी : चौखम्बा प्रकाशन।
2. लोन, मो. (2011), 'अवध की सांस्कृतिक विरासत,' इंडियन कल्चरल स्टडीज़ 8 (2), 35-46।
3. सिंह, र. (2014), 'लोक संगीत और वैश्वीकरण,' सांस्कृतिक विमर्श, 12 (1), 77-89।
4. देशपांडे, वसंत राव (1992), भारतीय संगीत की परंपरा, दिल्ली : संगीत निकेतन।
5. वंशीलाल, शर्मा (2005), अवध लोक संगीत का सांस्कृतिक अध्ययन, लखनऊ अवध रिसर्च पब्लिकेशन।
6. त्रिपाठी, एस. (2016), 'डिजिटल युग में लोक संगीत,' संगीत शोध पत्रिका, 15 (3), 101-114।
7. गुप्ता, पी. (2017), 'फ्यूजन लोक संगीत और आधुनिकता का मिलन,' इंडिया टुडे, सांस्कृतिक परिशिष्ट, 56-60।
8. तिवारी, एन. (2018), भारतीय लोकगीतों का संकलन, प्रयागराज, साहित्य भवन।
9. शुक्ल, ए. (2019), 'अवध के मौखिक परंपरा में लोक गायन,' इंडियन लोक अध्ययन, 20 (4), 115-127।
10. मिश्रा, ए. (2020), 'बाज़ार और लोक कलाकार,' सांस्कृतिक अर्थशास्त्र पत्रिका 9 (2), 34-47।
11. वर्मा एस. (2021), उत्तर प्रदेश के लोक कलाओं का आर्थिक पक्ष, लखनऊ केंद्रीय कला एवं संस्कृति विभाग प्रकाशन।
12. सलेम, (2022), 'समकालीनता का लोक पर प्रभाव,' कलात्मक संवाद, 7 (1), 29-40।
13. यादव, क. (2023), 'भविष्य में लोक संगीत का संभारण,' भारतीय संगीत अध्ययन, 11 (2), 66-78।
14. बत्रपाठी, रामनाथ. उत्तर भारत का लोकसंगीत, इलाहाबाद लोकभारती प्रकाशन, 2012।
15. सिंह, शिवकुमार, अवध की सांस्कृतिक परम्पराएँ, लखनऊ अवध प्रकाशन, 2018।
16. वर्मा मीरा, भारतीय लोकगीत और समाज, ददकली : राजकमल प्रकाशन, 2015।
17. इंटरनेट स्रोत यूट्यूब, स्पोर्ट्सफाई, रिसर्च आर्टिकल्स (2020-2025)।



Transformation of Warrior Rituals into Communal Celebrations in Folk Dances

Niharika Joshi

Research Scholar, Department of Painting,
Faculty of Visual Arts,
Banaras Hindu University, Varanasi

Dr. Mahesh Singh

Associate Professor, Department of Painting,
Faculty of Visual Arts,
Banaras Hindu University, Varanasi

Abstract :

Chholiya Nritya, which is a well-known Talwar Nritya (sword dance) of Kumaon, Uttarakhand, is an essential martial -ritual folk dance form. This research paper explores Chholiya Nritya which is a war dance whose origins go deep into the folklore and history of the Himalayas. It began more than a millennium ago in Kumaoni Kshatriya warring traditions, intertwining swordsmanship and choreography as both a practice of courage and a method of spiritual defense. Historical lineage, structural performance, cultural symbolism, social aspects, and how it faces current danger are analyzed here. Grounded in literature, policy, and field research, it places Chholiya in Himalayan identity and international discussion about the protection of intangible cultural heritage. Uttarakhand's Kumaon region is where Chholiya Nritya, the mythic sword dance, intersects martial tradition, ritual exorcism, and art.

This research paper addresses the history of Chholiya, its religious and social significance, the changing performative art form, survival challenges, and the imperatives of preservation in a new world. The research synthesizes historical, ethnographic, governmental, and community sources to present a critical image of Chholiya and its future significance. The continuing potency of Chholiya therefore resides in its capacity to reconcile practicality and piety, enhancing the act of stimulated battle to a central aesthetic and cultural artifact. Inclusion of Chholiya Nritya into Kumaoni Hindu wedding Sanskar underscores its deep spiritual role, wherein participants are blessed with divine respect, sanctifying the dancers to a sacred honour guard.

Keywords :

Chholiya nritya, Kumaon, Uttarakhand, Wedding Rituals, Martial tradition.

Introduction :

Hidden in the mountains of Uttarakhand, Kumaon is characterized by its dense fabric of folk culture. Of these, dance is not just a show- it is a powerful reminder

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

264

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

of Kumaon's martial heritage, communal strength and religiosity. Sword dancing and choreographed simulated combat moves are an essential part of Kumaoni identity, particularly during wedding rituals and auspicious celebrations. This study seeks to offer a scholarly sound analysis of Chholiya, charting its historical development, current state, and the issues facing practitioners in the twenty-first century. This sword dance is geographically witnessed in the district's of Almora, Bageshwar, Champawat and Pithoragarh in Kumaon. The etymological origin of the term 'chholiya' holds the significance, derived from the word 'chhaliya' meaning 'someone who deceives or tricks other's'.



Fig.-1 : A group of people performing Chholiya Dance

Historical Origins and Evolution :

The Khas Warriors, Katyuri and Chand Dynasties Chholiya's military origins trace their roots to the culture of the Khasas and Rajput dynasties, which employed sword fighting as both actual and symbolic expression of power, protection, and prestige. The Katyuri dynasty (7th–11th centuries) formalized war arts, ceremonies and religious processions; the later Chand dynasty (from the 10th century) allowed

the migration and cultural blending of Rajput traditions into Kumaoni life.

Chholiya turned into a spectacle of bravery at war, weddings and royal processions, with wedding ceremonies characterized by the presence of swords and shields: the bridegroom as "Kunwar," a horseman with a khukri and accompanied by Chholiya dancers. During the colonial period, the British valued Kumaoni military prowess, recruiting them into local army battalions and also adopting their music and dance as expressions of community morale and identity.

Marriage ceremonies and Social Transmission :

Marriage processions were viewed as being susceptible to evil demon's and Chholiya performances served both as exorcism and as declaration's of the community's martial toughness. Continuity in the dance is ensured through aural transmission within devoted families and caste groups whose occupational identity has integrated with ritual practice over centuries and transformed the art from battle to social rejoicing.

Cultural and Spiritual Significance :

Chholiya is rooted in the spiritual beliefs of Kumaon, particularly in relation to rites involving change or vulnerability. The dance, through the fusion of martial and musical art, opens up opportunities for communal defense and the invocation of neighbourhood divinities through performance. Further, "chhal"-the art of deception on the battlefield- is pivotal to the dance's name as well as its technique, not just indicating physical endurance but strategic cleverness and symbolic resistance to difficulty.



Fig.-2 : *[Drum and musical instrument tied to a tree at night] [Photograph].*

Performance Structure and Artistic Elements: A typical Chholiya group is comprised of 22 artists: 8 sword dancers and 14 musicians. The dancers wear churidar pyjamas, long chola, belts, turban, shield, and sword; the faces are decorated with sandalwood paste and ornaments. The musical band employs local instruments such as the Dhol, Damau, Hudka, Ransingha, Turi and Masakbeen (bagpipe).

The music adheres to patterns from the oral treatise DholSagar, while choreographic moments involve mock-fighting, leaps, war shouts and coordinated movement. Props such as wooden or mock swords and shields support the historical background of the dance as a living martial art.

Research Questions :

1. What are the historical origins and evolutionary trajectory of Chholiya Nritya in the Kumaon region of Uttarakhand?

2. How does Chholiya Nritya embody martial tradition and ritual symbolism within Kumaoni culture?
3. What contemporary challenges and survival threats do practitioners of Chholiya Nritya face in the 21st century?

Literature Review :

Chholiya is based on the rich ethno-history of the Kumaon territory where this warrior dance art originated more than a thousand years ago. The origins of dance go back to times of feuding kshatriya groups in kumaon, specifically when the Katyuri Kingdom was commanding the tractor of land between 7th to 11th centuries.

Historical studies show that the dance developed from martial tradition when “marriages were performed at the point of swords”, following the militaristic nature of the period. The shift from the Katyuri’s to Chand Dynasty during the 10th-11th centuries served as the background to historical events against which Chholiya developed from ritual on the battlefield to ceremonial performance. The dance entails intricate choreographic motifs rendered by 8-22 members, there being designated roles such as sword-duelling dancers and cross-dressed actors to portray female characters.

The Dhol Sagar is an oral treatise on Garhwal-Kumaon drumming traditions is informative regarding the rhythmic underpinnings of folk performances such as Chholiya. Recent ethnographic investigations have analysed the socio-economic aspects of Chholiya performers, who have conventionally belonged to underprivileged communities such as Das, Tamta, Lohar and Chaaluya castes. A detailed 2023

study by Bhavesh Ahirwar chronicled the double marginalization of these artist's because of both their caste identity and season-specific occupation. The research reveals that Chholiya performers face significant challenges including:

- Limited land ownership forcing migration for alternative employment.
- Seasonal nature of performance opportunities (primarily during wedding seasons from April -June and October – January).
- Social stigma associated with traditional caste-based occupations.
- Economic vulnerability with very basic income from performances.
- Gender dynamics and cross-dressing traditions.

1. Modern Problems and Cultural Policy :

The government's acknowledgement of Chholiya as one of Uttarakhand's intangible cultural heritage components has been evidenced through various state cultural programs. India's modal organization for UNESCO intangible cultural heritage issues, the Sangeet Natak akademi, has a national inventory consisting of regional folk cultures such as Chholiya. Nonetheless, policy acknowledgement is found to contrast sharply with such on-the-ground support for practitioners. Modern assaults on tradition comprise:

- Competition from newer forms of entertainment such as DJ's and brass bands.
- Urban migration of young generation practitioners. Shrinking ritual patronage under altered social conditions.

- Institutional neglect inspire of cultural heritage acknowledgement.

Cultural Resilience and Adaptation :

Social media sites and digital documentation projects have opened new channels for cultural transmission and acknowledgement. The incorporation of Scottish bagpipes into certain performances by Chholiya is the creative transformation of the tradition without losing its essential nature. Studies of cultural tourism in Uttarakhand show that folk dance traditions such as Chholiya support economic growth through heritage tourism. But commentators also observe the conflict between commercialization and true cultural practice. The existing literature proves "Chholiya dance" value as both a singular cultural tradition and a window into understanding wider themes of cultural preservation, social identity, and economic development in Modern India.

2. Field Observation and Ethnographic Research :

Multiple trips were taken to Kumaoni villages and observational research was carried out at village festivals, religious rituals and Kumaoni Hindu wedding processions where Chholiya Nritya is performed traditionally. Participant-observation allowed learning of performance practice, ritual situation and diversity among various Kumaoni groups.

3. Interviews and Oral Testimonies :

In-depth, semi-structured interviews were conducted with :

- Dancers from established Chholiya troupes.
- Village elders, historians and ritual specialists.

- Cultural activists engaged in preservation.
- Oral histories collected intergenerational views on the dance's origins, meanings, and changing role.

4. Comparative and Visual Analysis :

A comparative model set Chholiya alongside other South Asian martial and sword dances, comparing choreography, attire, musical accompaniment and symbolism. Visual documentation (pictorial, video recordings, sketches) was subject to systematic analysis to determine variations in performance style, instrumentation, attire and scale.

5. Policy and Documentation Review :

Analysis involved examination of state and central government documents, UNESCO standards and legislation pertaining to intangible cultural heritage, with respect to recognition, financing, and educational outreach involving Chholiya Nritya.

6. Community Workshops and Focus Groups :

Workshops and informal focus groups were held with performers, youth, and custodians to articulate perceptions, hopes and solutions concerning preservation, allowing participatory access to imminent threats and community solutions.

Key Findings :

1. Historical Origins and Evolution :

Chholiya Nritya traces its origins to prehistoric Kumaoni Kshatriya practices, beginning more than a millennium ago as a ritualized performance of martial courage, exorcism, and spiritual protection. Its choreography and symbolism are indicative

of syncretism between Himalayan animist rituals and subsequent Hindu ritual, especially within Rajput lineage stories.

2. Religious and Social Significance; Chholiya performs dual roles :

- a) Ritual Protection: In Hindu marriages, the sword dance serves as a religious cover, postulated to repel evil spirits and ill omens and secure the sanctity of matrimonial Sanskar.
- b) Social Cohesion: The dance creates shared identity among the Kumaoni populace and serves as an honour guard bestowing prestige and respect upon the dancers and families.

3. Performance Structure and Aesthetics :

Chholiya is characterized by hard swordwork choreographed to a rhythmic ensemble of nagphani, dhol, hudka and local instruments. Dancers wear characteristic Rajput-inspired costumes, blending martial motion with processional, circular, and adversarial steps. Variations are seen in music, tempo and ritual content across.

4. Symbolism and Folklore :

Swords (talwar) represent both functional combat readiness and the evocation of divine power. Costumes, masks and musical themes reflect indigenous myths, warrior legends, and exorcistic rituals based on Himalayan folklores.

5. Modern Challenges :

Loss of Traditional Knowledge : Modernization, migration and youth's declining interest have disrupted the transmission of Chholiya.

Commercialization and Dilution : Commercialization of festivals and media misrepresentation have at times under-

mined religious seriousness, commodifying the dance into mere spectacle.

Resource Constraints : Institutional apathy and inadequate financial resources limit the scope of troupes' survival and innovation.

6. Policy Directions and Preservation Efforts :

Government recognition (including intangible heritage listing), attempts to integrate Chholiya in school curricula, and revivalist initiatives led by NGOs and community groups have produced mixed outcomes. Efforts towards documentation and digital archiving are increasing, though practical gaps remain in funding and systemic protection.

7. Future Significance :

The strength of Chholiya is its ability to adapt without diminishing the essence of ritual value. Identification as a marker of Kumaoni identity and an object of international intangible heritage debate presents potential not merely for protection but also for creative regeneration. Participatory preservation by local custodians with policy interventions is imperative to sustain it alive.

Discussion :

The classical genealogy of Chholiya from the Katyuri and Chand kingdoms exemplifies its long-standing presence in local power politics and protection rites. Its transition from battlefield application to ceremonial use indicates the conversion of warrior skills into aesthetic and cultural expression, reiterating the permeable boundaries among war, ritual and celebration. The dance's presence at wedding ceremonies reinforces its religious importance, as

it acts as a protection against evil and a purifying influence, consecrating life's turning points with sacred dignity. Socially, Chholiya is both a reflection of community solidarity and a sign of identity. This common heritage promotes a feeling of belonging and continuity despite social and economic challenges to the passing of knowledge.

Ethnographic evidence in this study was that performers, who were mostly from lower castes, are confronted with systemic problems such as economic insecurity, stigma, and the uncertainty of seasonal performance opportunities. Globalization, urban migration, and the spread of alternative forms of entertainment have lessened traditional patronage and community participation. The conflict between commercialization and authenticity arises as a top priority, with efforts to market the dance with tourism and social media potentially watering down its sacred and martial nature. However, the dance is highly resilient and adaptable.

Although government initiatives and cultural institutions have commenced efforts to preserve Chholiya, there are loopholes in finance, grassroots promotion and integration into education. Community initiated initiatives and participatory models of preservation present themselves as promising avenues that honour the dance's spiritual value while advancing its creative rejuvenation. In the future, the prospects of Chholiya Nritya depend on concerted collaborations between practitioners, policymakers, researchers, and custodians of culture. Its preservation is a convergence of paying tribute to ancestral knowledge, nurturing cultural pride and enabling sustainable socio-economic growth.

Conclusion :

Chholiya Nritya is the quintessential instance of the negotiated dance between tradition and modernity, ritual and performance, community and state intervention. Its survival is contingent upon cooperative, locally sensitive strategies that respect living heritage and seize adaptive modernization guaranteeing that Chholiya continues as a living, dynamic presence within Himalayan cultural life. The nuanced analysis of Chholiya Nritya uncovers a dance style that moves beyond mere artistic gesture to capture the essence of Kumaoni cultural identity and spiritual legacy.

This thousand-year-old martial-ritual tradition is a testament to the refined unification of swordsmanship, choreography, and religious practice that typifies the native wisdom traditions of the Himalayas. In its double role as a demonstration of bravery and a means of spiritual protection.

The study concludes that Chholiya Nritya's future is contingent upon it being understood as both a local gem and international heritage, worthy of preservation and uplift through collective efforts that respect its sacred aspects while making it open to subsequent generations. Only

through such rich and culturally responsive methods can this rich tradition continue to act as a bridge of previous wisdom and future potential, as a keeper of Himalayan cultural memory and spiritual practice.

The preservation needs of Chholiya Nritya coincide with current international strategies for the protection of intangible cultural heritage. UNESCO's focus on preserving traditional practice is centered on community participation, documentation and incorporation of cultural heritage into overall development planning.

References :

1. Ahirwar, B. (2023) Double marginalization and the socio-economic plight of Chholiya performers in Uttarakhand. [Unpublished manuscript].
2. Dhol Sagar. Oral treatise on Garhwal - Kumaon drumming traditions. [Oral tradition]. SangeetNatak Akademi.
3. National inventory of regional folk cultures: Intangible cultural heritage documentation. Government of India. UNESCO. Standards and legislation pertaining to intangible cultural heritage. United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization.
4. Government of Uttarakhand. State cultural program documents. Department of Culture, Uttarakhand.
5. <https://youtube.com/shorts/lt30q9cFcio?si=b3xUFRqxa5jiRh13>.



Folk Music of Khandesh, Maharashtra

Nilesh Shrikantrao Khalikar

Assistant Professor
School of Liberal Arts,
Indira University, Pune

Abstract :

This paper examines the folk music traditions of Khandesh, a historically and culturally significant region of Maharashtra, India. Understanding the folk music of Khandesh necessitates a contextual exploration of its geographical setting, historical evolution, linguistic diversity and socio-cultural dynamics. The region has been shaped by various dynastic and tribal influences, including the Ahirs, Bhils and Yadavas, which have contributed to its distinctive cultural identity. The Ahirani dialect-situated between Marathi and Gujarati - plays a crucial role in shaping the linguistic and poetic structure of the region's musical expressions.

*Khandeshi folk music encompasses a wide spectrum of forms, each embedded in community practices, ritual performances and everyday life. Notable among these are **Bhill folk songs**, which preserve tribal oral traditions and feature characteristic rhythmic and melodic patterns; **Ovi**, poetic compositions sung primarily by women during domestic activities, reflecting personal, social and emotional experiences; **Jhopalyavarachi Gani**, swing songs associated with seasonal festivals like Akshaya Tritiya; and **Vahi**, a dialogic and performativity musical form often employed to articulate social commentary and spiritual discourse. Other forms such as **Lagnaachi Gani (marriage songs)**, **Gondhal**, **Kanbaaichi Gani** and **Ger songs** further exemplify the diversity and depth of Khandesh's musical heritage.*

Before studying the folk music of Khandesh, it is essential to understand some fundamental information about the region of Khandesh. This is because, as mentioned earlier, the folk music of a particular region is shaped and influenced by its geographical, political and social factors.

History :

Khandesh, a region in Maharashtra, was in ancient times known as Rishikadesh. References to Rishikadesh are found in the epics Ramayana and Mahabharata.

When these texts describe the region, they situate it geographically with ancient Vidarbha to the east, Malwa to the north and Ashmaka (corresponding to present-

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

271

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

day Marathwada) to the south. Thus, the geographical location of Khandesh can be identified accordingly. However, it remains unclear at what point in time the name Rishikadesh disappeared and the name Khandesh came into usage.

Etymology of Khandesh :

According to some scholars, the name Khandesh originated from King Kanherdev of the Yadava dynasty, while others argue that it derived simply from the expression “the land of the Faruki Khans.” Another perspective suggests that the name may have been influenced by the local folk Goddess Kanbai, venerated in this region, whose name bears resemblance to Khandesh.

Historical records indicate that from approximately 250 CE until 410 CE, the Abhirs held political dominance in Khandesh. The cultural presence of the Abhirs is evident in the local dialect Ahirani as well as in community groups such as Ahir Shimpis and Ahir Sonars. Furthermore, sources also suggest that Khandesh was once part of the Seun-desh, which was under the rule of the Yadava dynasty of Sinnar.

Until 1906, Khandesh in the Mumbai province was a single district. Later, it was divided into two districts- East and West Khandesh. The Tapi River flows through both these regions. Since many tributaries join the Tapi River, water supply to both districts was sufficient. The eastern part of Khandesh has Jalgaon. The western part includes Dhule and Nandurbar districts. The western region of Khandesh is tribal area.

To the north of Khandesh lie the Satpura mountains and the Narmada River, to the east lies the Berar region and the Nimar district, to the south are the Satmala, Chandor and Ajanta hills and to the west were the Baroda state and the Revakatha jagir (estate)

Climate :

While studying demography, the geographical and climatic variations of a region have a direct effect on its population. Hence, it is necessary to understand the climate of Khandesh.

Due to the uneven topography of Khandesh, the climate is mixed and somewhat stable. The western parts, especially the peaks of the hills and the Satpura Mountains, receive heavy rainfall. However, the central and southern parts of Khandesh receive very little rainfall. On the whole, the rainfall in Khandesh is comparatively low.

The average annual rainfall of the district is between 20-45 inches. In April, the weather is extremely hot. The eastern and central regions of Khandesh have relatively pleasant weather, but the western part experiences more heat and therefore people in that region suffer greatly due to the climate.

Linguistic Features :

The dialect spoken in Khandesh is known by the name **Ahirani**. Based on the name of the region, it is also called **Khandeshi**. Considered a sub-dialect of Marathi, Ahirani is described by Grierson as a **mixed dialect**. In the *Linguistic Survey of India*, Volume IX, Part III, he has included it along with other related dialects of *Bhilli Boli*.

Some features of Ahirani are completely different from Marathi, while in certain aspects it resembles Marathi and in others it is closer to Gujarati. Situated between these two major languages, it functions as a **hybrid dialect**.

The influence of the geographical and linguistic factors of Khandesh on its folk music will also be made clear in the subsequent discussion.

Types of Folk Music in Khandesh :

Khandesh is seen to have many castes and communities. According to the culture of each caste and community, their folk music also changes, which is natural. However, if we take a general overview of Khandesh folk music, we can broadly categorize some major types of folk music found here.

1. Bhill Folk Music :

The *Bhill* community is found near the Satpura ranges of Khandesh. Although this community is socially very backward, it is culturally rich. Due to the lack of sufficient means of communication, they have remained away from urban culture and, like other tribal communities, continue to live their traditional way of life.

The *Bhillas* are nature-worshippers. Because of their inability to understand the mysteries of natural phenomena and events, they have given divine status to every element of nature. To avoid their wrath, they perform various rituals and worship to please them.

The reflection of this folk culture of the *Bhillas* can be clearly seen in their folk songs. These folk songs, passed down orally from one generation to another, have undergone some changes over the time.

Yet, their essence has not changed much. This folk music remains an inseparable part of their folk culture.

2) Pawara Bhillas :

Among the sub-groups of the Bhilla community, one important group is the *Pawara Bhillas*. The settlements of *Pawara Bhillas* are found in Dhule district at *Taloda, Shahada, Akrani* talukas, etc. As Pawagad In Gujarat state is their holy place, they are also referred to as *Pawara Bhillas*.

The Pawaras have their own dialect, which is called *Pavari* or *Pavari Bhili*. This dialect has shades of Gujarati, as well as Marathi, Hindi and Ahirani. Traces of all these languages are seen in Pawari. Their folk songs make this evident. The Deities such as *Vaghdev, Shivardeva, Gavadevi* are typical village Deities. Like other tribal groups, Pawara Bhillas to sing folk songs on occasions of marriages, festivals, religious rituals and devotional celebrations. Musical instruments like *dhol, duf, Basari* are widely used for such occasions.

In their folk songs, descriptions of marriage ceremonies often appear, with special emphasis on rituals like *manpan, rusve-phugve* (appeasement rituals), *dena-ghena* (exchange of gifts) and the lavish feasts. These songs highlight their customs and social practices. Pawara folk songs also describe the dignity of women, the honour of married women, the duties of wives, domestic affection, devotion to husbands and loyalty. Thus, through their folk songs, the cultural worldview of the Pawara community is expressed. Some special features of these songs are discussed below.

3) Repetition of Words :

In the Bhili dialect, some folk songs display repetition of words for creating musicality and rhythm. This repetition occurs in different forms and places. For example, see the following repetition of words:

Example :

नेमले नेमले गजगणपती
लाविले लाविले दिवा का ज्योती

Sometimes in the middle of words :

Example :

*Bāl jhālā vaṃ jhālā vaṃ Yaśavadelā
Pāḷaṇā bāndhā vaṃ bāndhā vaṃ
Reśamgāḍilā*

Sometimes at the end of words :

Example :

*Basī basī nācū gaḍe nācū nāit kāya gaḍe
kāya gaḍe
Kambar moḍī nācū gaḍe nācū nācūt
kāya gaḍe kāya gaḍe*

a) Arrangement of Dhruvapada :

In most of the Bhil folk songs, the arrangement of *Dhruvapada* (refrain/ repeated line) can be seen.

Example :

*Āre lagnaṃ n tānduḷa devālā unā
Mālā kāya māhitī mī yeto vī nā
Ye to vī nā raṃ jāto vī nā
Kacāpaṭaka bhāta mī khāto vī nā
Āre lagnaṃ taṃ tānduḷa devālā unā*

(b) Rise and fall of Notes (Swarāroha–Avaroha) :

The ups and downs of notes that arise from the emotional expression of songs are considered very important. For expe-

ssing meaning effectively while singing, where to prolong a note, where to pronounce it short and abrupt- this depends both on the type of song and on the singer.

Example :

*Gaṇapati Sarasvatī Mahādeva Pārvatīlā
namaskār karāy*

*Saptasurañcī mātā paramassa dgi
ḍaṇḍsss jī dādsss jīsss*

In this manner, in the Bhil folk songs, usually repetitions like *ho ho re ho jī jī raṃ jī* are employed. Such rhythmic and melodic rise-and-fall of notes are deliberately used to make the performance more impactful

1. The Folk Songs in Bhilli Dialect :

The folk songs in the Bhilli dialect are expressed in various forms of beauty. This beauty lies in the expression of emotions and meanings as well as in the imaginative ideas within them. The depth of expression and emotions found in Bhilli folk songs reflects the richness of their musical culture. The songs and the music used in dances reveal the unique and invaluable contribution of their folk culture.

2. Ovi :

The “Ovi” is a very simple yet meaningful poetic form. Because of its simplicity in word structure and expression, the Ovi form is used mostly by women. It expresses the social, familial and emotional experiences of women’s lives.

In the Ahirani dialect, Ovi has great poetic significance. Traditionally, Ovi are sung while performing daily household chores. These songs contain descriptions of personal experiences, emotions, incidents and various figures of speech.

Example :

देवा सूर्यनारायण नित नियमानं उभा
मह्ना कपालीच कुक्कू सात जन्मांत टिकवा॥

Such Ovi compositions have been greatly enriched by the poets *Bahinabai Chaudhari* and others from the Khandesh region. Their works have added a unique charm to the traditional Ovi, making them precious gems of literature.

In the Khandeshi region, the themes of Ovi usually include marriage rituals, domestic conversations between mothers-in-law and daughters-in-law, rituals, festivals and daily household matters.

Example :

सासु-आत्याबाई, तुमनं बसनं दारात
जरीना पदर, लाईट पडना घरात॥
सासु-आत्याबाई तुमनं पदरले बवा
मी चालनु माहेराले, मना रामले जीवाला॥

In this way, humorous or meaningful exchanges are expressed through Ovi.

3. Songs on Swings (Jhopalyavarachi Gani) :

Akshaya Tiritiya (Aakhaji) is considered an important festival in the Khandesh region. On this occasion, swings are tied to trees and married women return to their maternal homes. Songs sung while swinging on these swings are called **Jhopalyavarachi Gani**.

These songs may be about incidents from the Ramayana or simple, self composed songs of four lines sung spontaneously by women. Sometimes, they sing songs from their memory related to the Ramayana. These songs are usually playful, rhythmic and often involve calling out to companions.

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

Example :

सीतेच्या माहेरी कशाचं बन
सीतेच्या माहेरी आंब्याचं बन
आंब्याचा पाला लागे चरा चरा
देरा लक्ष्मणा चला झरा झरा॥

In these songs, there is a special charm in their **rhythm and melody**. As the swinging continues, the tempo of the song also increases and the women sing with enthusiasm, enjoying the musical rhythm and expressing their joy freely.

4. Vahi :

Vahi is an important folk form of Khandesh. It is a type of folk performance sung in local fairs with Duf, Dholki and Ghugru. Vahi is mainly performed by farmers and villagers to express their emotions, joy, sorrows and observations about social conditions.

Vahi songs are usually **dialogue-based**, performed between two groups who respond to each other musically. After the dialogue, they again sing together in chorus.

Nirankari Vahi is a type in which **spiritual questions** are asked through the songs.

Example :

आत्मा कुडीचे दोघाचं भांडाण
कुडी म्हणते, निघ माझ्यातून॥

In this way, through the **Vahi** form, spiritual concepts are presented in a simple and poetic language. In some places, **natural beauty** is also described through Vahi songs.

Still there are many forms such as Lagnaachi gani (marriage songs), Gondhal, Kanbaaichi Gani and Ger Songs Folk

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

Music of khandesh is Unique for its rich tradition and heritage it not only contributes its beautiful shade to the culture of Maharashtra but also enriches to the folk Music of Bharat.

References :

1. Ranade, Ashok Da. – Folk Musicology
2. Mhate, Ganesh Rango (Editor) – Article of G.V. Ketkar from Abhinav Marathi Encyclopedia.
3. Joshi Mahadevshastri – Bharatiya Sanskritikosh – Volume 2.
4. Shaha M.B. (Editor) – Cultural History of Khandesh.
5. Gare Govind – Tribal Folk Songs.
6. Suryavanshi Shyamrao Vidya – Aherani Folk Songs.
7. Babar Sarojini – Nadbrahma.



Folk Installation and Tradition : Shivaratri in Pabbar Valley, Himachal Pradesh

Nitika

Research Scholar,

Department of Visual Arts,

Central University of Himachal Pradesh, Dehra, India

Abstract :

Every year, India celebrates more than 50 major festivals, along with hundreds of regional and community-based celebrations. These festivals can be categorized as religious, harvest, national, seasonal or cultural based on their meaning and origin. Art and Craft contribute significantly to these traditions, making festivals both decorative and utilitarian while preserving cultural memory. This research explores the rich cultural phenomenon behind the celebration of Maha Shivaratri Festival in Pabbar Valley of Himachal Pradesh. While Maha Shivaratri is celebrated across the state in many unique ways, one of which is the world-famous Mandi Shivaratri. However, this paper focuses on a lesser-known local celebration in the Pabbar Valley, highlighting its distinctive folk installations and art created in the honor of Shiv and Parvati's marriage as well as community's deep connection with the surrounding natural environment. This study is based on the interviews, field observations, local narratives and oral traditions. It examines how these folk installations are created, what they indicate about the community devotion and how art plays a vital role in folk culture and identity.

Keywords :

Culture, Folk Installation, Folklore, Himachal Pradesh, Pabbar Valley, Shivaratri Celebration, Tradition.

Objectives :

To study the folk rituals, practices, celebration and symbolism of the Shivaratri festival in Pabbar Valley.

Database and Methodology :

In this paper I have used qualitative research methodology that combines both primary and secondary data to explore the art and tradition of Shivaratri festival in

Pabbar Valley. The primary data has been collected through fieldwork in the study area, which included direct observation, interviews with local residents and visual documentation of rituals and customs from 8th March 2024. Secondary data is gathered from books, ancient texts, blogs, websites, as well as published and unpublished research works. The data has been

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

277

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

analyzed using thematic and narrative approach which allows for an in-depth understanding of cultural practices and symbolic meanings behind the installation.

Study Area :

The study area focuses on the Pabbar Valley, which lies in the south-eastern part of Himachal Pradesh, about 100 km from the Shimla district. The Valley consists of the area drained by the river Pabbar, which originates from the Chandan Nahan Glacier (Pabbar Valley, n.d.). This valley is known for its scenic beauty, steep mountains and open high-altitude meadows that range from about 1,200 to 5,200 meters above sea level (P.P.Chauhan, 2021). It covers the three subdivisions of district Shimla that is Chirgaon, Rohru and Jubbals blocks. The valley extends from Kinnaur district before connecting with the River Tons which further drains into the River

Yamuna in Uttarakhand. (Pabbar Valley, n.d.) (Chauhan, 2005).

The cultural life of its inhabitants is profoundly shaped by the festivals, rituals and customs performed here. One such festival is Maha Shivaratri in which villages throughout the Pabbar Valley along with areas like Keothal, Upper Shimla and some parts of Kinnaur, celebrates the marriage of Lord Shiva and Parvati by creating folk installations out of food, clay figurines and natural materials like food grains, leaves as well as other elements drawn from the local surroundings. This paper focuses specially on the Jubbals subdivision. The selection was based on the Convenience Sampling because as the native of the region I have direct access to its culture and can efficiently cover multiple locations in a single day either in person or through local contacts.



Figure-1 : Map of district Shimla - Himachal Pradesh General Studies. (2020, May 19). Himachal Pradesh General Studies. <https://hpgeneralstudies.com/brief-geography-of-district-shimla-himachal-pradesh-general-studies/map-of-district-shimla/>

Introduction :

India is a land of vibrant colours, diverse culture and joyous celebrations. Fair and festivals are like a kaleidoscope of traditions, rituals and customs. They play an important part in bringing the spirit of unity and happiness among communities. In today's fast-paced life, many people have left their villages and towns in a search for a good jobs, education and better life but festivals become the time when these people return to their roots and feel connected to the place they belong to. More than just a way of bringing people together, these celebrations and festivals are also a way for communities to preserve their folk knowledge through songs, dances, art and rituals passes down from one generation to another. It is also a moment for people to celebrate their spiritual beliefs and their faith in God.

The auspicious festival of Maha Shivaratri is observed once a year and is one of the most important events in Hinduism. According to the Hindu Lunar Calendar it falls on the Chaturdashi, means 14th Day of the New Moon during Krishna Paksha, falling in the middle of Maagha and Phalgun corresponds to the month of February and March (Vepachedu, 2015). The term 'Krishna Paksha' comes from Sanskrit which literally means the moon's waning phase or the dark fortnight. In honour of Lord Shiva and his cosmic power, every region in India has its own unique way of celebrating this festival, shaping by its environment, history and beliefs. Among them, Himachal Pradesh, mythologically known as the home of Shiva and Shakti and often referred as Dev Bhoomi (the land of the Gods), hold a special place for

its unique cultural and spiritual traditions in the celebrations of Shivaratri. Therefore, this research focuses specifically on the celebration of Shivaratri within the Pabbar Valley of Upper Himachal.

Shaivism in Himachal Pradesh :

Situated in the Western Himalaya, Himachal Pradesh is a mountainous state located in the northern part of India. The name "Himachal" is derived from two Sanskrit words, *Him* means snow and *Anchal* means lap, so, etymologically it signifies "*a land or region that is covered into snow*" (Ahluwalia, 1988). Historically, the region was the homelands for several tribes such as Mundas, Kols, Nishads, Dasyus, Khashas, Kailis, Halies, Dagis, Dhuris, Gaddis, Dasa, Kinners and Kirats (Sharma T. , 2024) (Kapoor, Kanwar, & Sharma, 2008). Due to its challenging terrain, it remained isolated for centuries which helped preserve its distinct way of life. But overtime the influence of Brahmanism led to the blending of these tribal communities into broader Pahadi society we see today.

In term of religion, the state is predominantly Hindu, with 95.17% of the population, followed by Muslims with 2.18% (Office of the Registrar General & Census Commissioner, 2011). The trans-Himalayan regions of Kinnaur, Kullu, Lahaul, and Spiti are home to Buddhist communities (Religion and Rituals in Himachal Pradesh, n.d.), which make up just over 1.15 % of the population, followed by Sikhs constitute about 1.16%, while Christians account for only 0.18% (Office of the Registrar General & Census Commissioner, 2011).

The people of Himachal Pradesh are deeply religious, worshipping both Vedic and Puranic Gods (Gautam, 2013). The Vedic gods are seen more like spirits of various forces of nature, while the Puranic gods are worshipped in their various forms or avatars (Thakur, 1997). Apart from this almost every village has its own deities and local god called *Devta* (Kinfolk's God), who may also serve as the family god known as *Kul Devta*. In addition to these, people also worship snakes and ancestor (Handa, 2004) while some folk beliefs also include spirits and aboriginal gods. So, there are as many gods as there are villages in Himachal.

Local deities and devtas in Himachal are generally regarded as manifestations of Brahma, Vishnu or Shiva (Sharma, Kumar, Thakur, & Kishore, 2024), though most have been associated with the Shiva cult since ancient times (Sharma T., 2024). Shaivism refers to the major tradition of Hinduism in which Lord Shiva is worshipped as the Supreme Being (T. & K., 2020). The origins of Shaivism are not entirely clear and debated amongst various scholars. In Vedas, there is no direct mention of Shiva although there is deity called Rudra which was later associated with Shiva (Basham, 1991). The *Mandukya Upanishad* (verse 12) describes the fourth state of consciousness as *Shivam*, while the *Isha Upanishad* (verse 1) says the universe is pervaded by the Lord Shiva, the *Shvetashvatara Upanishad* presents Shiva as the uncaused cause of Brahman and source of creation (Hiranyagarbha), and other Upanishads like *Kena*, *Katha*, and *Kaivalya* are also interpreted as recognizing Shiva as the supreme reality (Summum Bonum) (Sharma V., 2017). Archaeological

find by Sir John Marshall of Pashupati seal discovered at Mohenjo-daro is interpreted as an early representation of Shiva as Lord of Animal (Pashupati) traces Shaivism back to the Indus Valley Civilization. The origin of Shaivism in Himachal Pradesh is traced through Audumbara coins and the inscription "Bhagvata Mahadevasa" indicates that Lord Shiva was worshipped as the Kul Devta of the Audumbara Kingdom.

Himachal has long been a center of shiva and shakti devotion. In local traditions of the Gaddi community, Shiva is believed to move among humans, and folk songs across Himachal describe him as Kailasho ke Wasi (resident of Kailash) and Dhauli Dhaaron ke raja (king of the white peaks). The Bharmour region of Chamba, also known as Shivpuri, is home to the gaddi community who worship Shiva as the protector of their flocks. Across the state numerous temples are dedicated to various forms of Shiva, including Manimahesh in Chamba, Shrikhand Mahadev and Bijli Mahadev in Kullu, Baijnath in Kangra, Triloknath in Purani Mandi, Narvadeshwar Temple in Hamirpur, Baba Bhootnath and Panchvaktra in Mandi, Churdhar in Sirmaur and many more. Alongside these, there are some temples devoted to the local incarnations of Shiva such as Bothe Mahsu Devta, Devta Maneshwar, Shirgul Devta, Devta Shalu, Devta Chaltu and Baba Balak Nath, reflecting the deep and enduring presence of Shaivism in the region (Gautam, 2013). This spiritual heritage is further celebrated through the seven-day long Shivaratri festival in Mandi, is one of the most famous and largest celebration of Lord Shiva in Himachal.

Profile of Pabbar Valley :

● Geographical Context :

The Pabbar Valley also known as the Rohru valley, consists of a cluster of villages spread along the Pabbar river in the upper Shimla hills of Himachal Pradesh. The river originates from the Chanshal range and flows through areas like Chirgaon , Rohru and Jubbal before joining the Tons River in Uttarakhand. It is situated at 31°7' N latitude and 77°48' E longitude with altitude ranges from 1.21 km to 3.81 km above sea level. This valley is not as famous as other valleys of Himachal because it is largely untouched and isolated from the bustle of tourists. However, this does not diminish its natural scenic beauty. The valley is known for its apple orchards, agricultural fields and deodar and oak forests, which strongly shape its local life. The population here is largely agrarian, with communities relying on orchard farming, small-scale agriculture and pastoralism.

● Cultural Landscape :

The population of valley comprises several ethnic groups, with the Khashas being the dominant community. Present-day Khashas represent both Brahmin and Kshatriya segments organized into warrior groups called Khoond (Ancient and Modern Tribes of Himachal Pradesh, 2016). According to D. N. Majumdar, in his book *The fortunes of Primitive Tribes* (p.141) he mentioned that “the Khasas are Hindus”. Culturally, the major feature of folk life in this valley revolves around the worshipping of *Kul Devatas* and *Sthan Devatas* (village deities), who are seen as the main guardians of families and villages. People

also believe that these spirits control both good and bad and bring blessings as well as cause misfortunes. The communities largely focused on these local deities for solving problems and handling unexpected events. While they were mostly unaffected by the Brahminical ideas, some inhabitants beside worshipping their devi or devta also worshipped different divine forms of Shiva and Vishnu including local incarnation of these Hindu gods. The region also follows shamanistic traditions through the *Mali* system, where chosen oracles deliver divine messages and guide the community in rituals, decisions and ceremonies.

● Shaiva Heritage :

In Himachal lord Shiva is believed to resides on Mount Kailash and according to the local mythology he is considered to be the son-in-law of the Himalayan kingdom. While the cultural beliefs of the Pabbar Valley revolve around local deities and spirits, most villages also have temples dedicated to Shiva. These shrines are created as blend of classical Hindu mythology and regional folk beliefs. In daily life, Shiva is worshipped not only as a great Hindu deity but also through local manifestations and village or clan deities considered to be his forms or companions. For example, in Rohru, Shikru Maharaj Devta regarded as a Shaivite deity.

The strongest evidence of Shaivism's in the Pabbar Valley is found at the Hatkoti Temple complex. It is an ancient site believed to have been constructed during the Gupta period (6th–9th century CE). Three small inscriptions, written in Sankha, Siddhamatrika, and Nagari scripts found here also confirm its historical importance

(Thakur L. S., 1982). Architecturally, the Hatkoti complex developed in three distinct phases: the first phase included small shrines with square plan, curving shikharas and doorways with decorated floral and geometric motifs which belongs to the post-Gupta style of the early 8th century, the second phase included three Shiva temples, constructed on the outskirts of Hatkoti at Parahat and the third phase involved the construction of two more temples dedicated to Shiva and Durga within the complex (Thakur L. S., 1982). These temples were renovated several times, and the most recent major restoration carried out by Raja Padam Chand of Jubbal in 1888 CE, as confirmed by an inscription on the temple bell (Thakur L. S., 1982). Other than this, the Giri Ganga Temple near Kharapathar, is dedicated to Shiva and located at the source of the Giri Ganga stream. According to local legend, the stream was formed when priests spilled sacred Ganges water here which linking the place to Shiva.

Shivaratri Celebrations in The Pabbar Valley :

The festival of Maha Shivaratri is celebrated across India with a variety of rituals, customs, and practices based on regional geography, history and local beliefs. Common practices include fasting, night-long vigils, meditation, temple visits, offerings of milk, honey, and water to the Shiva Linga, and participation in *hawan*. In the Pabbar Valley of Himachal Pradesh, the festival is observed through a distinctive combination of classical Shiva worship and local folk rituals.

● **Morning Rituals and Fasting :**

The festival begins with the early morning ritual bath. After this, devotees visit local deity temples to offer prayers and seek blessings. Throughout the day many devotees observe a strict fasting, which may include complete fasting or refraining from even drinking water, as a form of devotion and spiritual discipline. After completing these morning rituals, villagers start preparing for the rest of the day's customs and ceremonial activities.

● **Preparation of the Jatadharaya Mahadev :**



Figure-2 : Jatadharaya Mahadev.

Source: Photo taken by the author on 8th March 2024, in Ranvi Killa, Pabbar Valley, Himachal Pradesh, India

A central feature of the festival is the creation of the *Jatadharaya Mahadev* (figure 2.), a symbolic representation of Shiva's Linga or jatta (Dulta, 2024). It is

a single string garland made out of various leaves and grasses. Its bottom and top are traditionally made from leaves of *jaw* (Barley), *juub*, *beakhal*, *kupish* and *barbeli*, while the central portion is filled with *pajja* leaves and wild orange, locally known as *keemp*. The choice of leaves may vary depending on local availability. This practice reflects the deep connection of the local communities of the Valley with their natural environment and mountains. Folk knowledge suggests that *keemp* have some medicinal properties. Locally, they were not used for daily consumption but were believed to aid digestion, especially during this festival when deep-fried foods are largely consumed and many believe that they may also help with skin-related ailments. Today, these are primarily used for decorative purposes during this festival. Once completed, this garland is placed above the mandap where the Shiva-Parvati installation is made and after Shivaratri, it is hung at the front of the house and remains there until the next Shivaratri.

● **Idol Creation and Symbolic Figurines :**

Another key ritual involves preparing a round, thick wheat bread locally known as *Rott* or *Pola*. The dough for this is intentionally kneaded hard and cooked only on one side. On the uncooked surface, circular designs are imprinted using a glass rim or bottle cap, these designs are locally known as *Kheltu*. Once cooked, a *tilak* is applied to the *Rott* as a mark of reverence.

From the same dough, a small portion is reserved to make symbolic figures such as *Khadu* (ram), *Bakre* (goats), and a dog. As recalled by 83-year-old Ranvi Killa

resident Smt. Padmu Devi, earlier generations used to offer animal sacrifices, which are now symbolically represented through these flour-made animals. A similar reference is found in Molu Ram Thakur's book *Myths, Rituals and Beliefs in Himachal Pradesh*, where he cites an invocation once used during such rituals: "*Ishara Mahadeva ka khano tere, Khadu ri dalki anjo re phere*" meaning "O great Shiva, what will you eat- the meat of the ram or the intestines?".



Figure-3 : Idols of Shiva, Ganesh and Paravati made out of Cow Dung

Source: Photo taken by the author on 8th March 2024, in Ranvi Killa, Pabbar Valley, Himachal Pradesh, India

After the *Rott* is prepared, idols of Shiva, Parvati and Ganesha are crafted from cow dung and clay. *Jaw* (barley) seeds are placed around them, and a red *Kalava* (sacred thread) locally called *Moli* is tied around the figures (figure 3.). These idols are abstract in form, emphasizing symbolic meaning over physical likeness, reflecting the community's folk interpretation of divine presence.

● **Food preparation :**

Every festival feels incomplete without food and Shivaratri is no exception. Traditional delicacies prepared during the festival include *gulwe* or *malpuas* (deep-fried

sweet pancakes made from wheat flour and jaggery), *shakli* (a crispy rice-based snack), *vada* (savory fritters made from mashed black lentils) and *poldu* or *babru* (deep-fried wheat *puri* made from fermented dough). Food plays an important role not only in the ritual installation but also as a means of strengthening community bonds. After the end of Shivaratri, families share this food with their married daughters and sisters, a custom locally known as *Kilti*.

- **Folk Installation :**

On the day of Maha Shivaratri, every household in the Pabbar Valley transforms into a symbolic temple of Shiva because of the preparation of a folk installation. Once all the ritual items are ready the installation of the *mandap* (marriage pavilion) for Shiva and Parvati begins. First, the *Jatadharaya Mahadev* garland is tied above the *mandap* area, symbolizing Shiva's presence. Then a small altar is prepared to serve as the base of the installation. Before placing the idols, a *mandala*, geometric sacred pattern is made on the floor with rice (Figure-5.) or corn. This *mandala* closely resembles the wedding *mandala* traditionally created during local marriage ceremonies. The *pola* is then placed at the center or sometimes outside of the *mandala*, upon which the symbolic flour figurines are arranged. The idols of Shiva, Parvati, and Ganesha are then placed in front of the *pola*, surrounded by offerings of food, flowers, fruits, and oil lamps (figure 4.). In some villages, a large wall of *shakli* (crisp rice snacks) is constructed to represent Mount Kailash. In the end a *diya* (lamp) is lit in one corner, signifying the start of the evening *aarti*.



Figure-5 : Folk Installation in Shivaratri with rice Mandala.

Source : Photo taken by Shivam Chauhan on 8th March 2024, in Daroti Village, Nankhari, Himachal Pradesh, India



Figure-4 : Folk Installation in Shivaratri.

Source: Photo taken by the Ritika Dulta on 8th March 2024, in Ranvi Killa Village, Pabbar Valley, Himachal Pradesh, India

- **Night worship :**

At night, a pooja is performed by family members by lighting a ladle filled with hot

charcoal and adding ghee to it. After the *puja*, devotees break their fast and spend the rest of the night sit near the *mandap*, keeping the *diya* (lamp) burning throughout the night as a symbol of divine presence and in some villages by singing hymns and folk songs dedicated to Lord Shiva until dawn. This night is considered highly sacred, so no one sleeps especially those who observed the fast that day.

Symbolism :

Table-1 : Symbolic meanings of various items used in the Shivaratri installation in the Pabbar Valley

Items	Material & Form	Ritualistic Purpose	Symbolic Meaning
Jatadharaya Mahadev	A single string garland made out of various leaves and grasses.	To represent the presence of Shiva in a form of a Linga	By including leaves and medicinal plants in the ritual, the folk preserve and pass down traditional medicinal knowledge from one generation to the next.
Rott or Pola	Large, thick bread made from wheat flour	Primary ceremonial food offering placed at the puja altar for Shiva and Parvati	Symbolizes the divine marriage reception or <i>Mandap</i> for Shiva and Parvati marriage.
Bakra & Khadu	Symbolic figurines crafted from <i>Rott</i> dough	Represent the sacred livestock and ritual substitutes for actual animal sacrifice.	It represents the devotion, gratitude and the wish for protection, prosperity and abundance in exchange of sacrifice.
Kilti	A package of food prepared during the festival	Share the prepared food during Shivaratri with married daughters and sisters	Renews connections among relatives after the long winter months when travel and visits are limited.

• Mythological Context :

The term *Maha Shivaratri* is derived from two words: *Maha* meaning great and *Ratri* meaning night, which literally means

• Post- Festival Rituals :

Before sunrise the next day, the idols of Shiva and Parvati are ceremonially buried in nearby fields, symbolizing their return which is locally called *Sabana*. The idol of Ganesha, however, is kept in the house as a blessing for prosperity and protection. The *Jatadharaya Mahadev* (garland) is then hung outside the home, where it remains until the next Shivaratri.

particularly significant in shaping local rituals.

The first legend is from the Shiv Purana, explains the creation of Mahadev from Pajja leaves, symbolising the origin of shiva as a Linga. According to the story, Brahma and Vishnu were once disputing over their supremacy. To teach them a lesson, Shiva appeared as an infinite column of fire (*linga*) and challenged them to find its end declaring that whoever succeeded would be considered supreme. Brahma took the form of a swan to find the top, and Vishnu took the form of Varaha to find the base. Despite searching for thousands of miles, neither could find an end. Brahma then encountered a *ketaki* flower drifting from above and convinced it to falsely claimed that he collected it from the top of the column. This angered Shiva and he punished Brahma, decreeing that he would never be widely worshipped and the *ketaki* flower was also banned from offerings. Since Shiva first manifested in the form of a Linga on the 14th day of the dark fortnight (*Krishna Paksha*) in the month of Phalguna, this day became particularly auspicious and is celebrated as Maha Shivaratri (Dulta, 2024).

The second local belief sees Shiva as the son-in-law of Himachal and Parvati as his daughter. According to this legend, Maha Shivaratri marks the night of Shiva and Parvati's wedding (Devi, 2024). This story is reflected in Pabbar Valley traditions, such as setting up a mandap and performing the symbolic *vidaie* (farewell) of Shiva and Parvati idols in the end of the festival.

● Artistic Perspective :

The *mandap* created during the Shivaratri festival in Pabbar valley is closely parallel to the ides and concept of installation art in contemporary practices. In art, an installation is a three-dimensional work designed to transform the perception of a space, creating an immersive experience for the viewers. Similarly, the whole ritual of creating the mandap turn an ordinary home space into a sacred and visually rich environment filled with symbolic meanings. Installation is not just a single object like a painting or sculpture but it is an arrangement of multiple elements that come together to create cohesive experience. For the mandap, these elements includes atadharaya Mahadev garland, clay and cow-dung idols of Shiva, Parvati, and Ganesha, flour-based animal figurines, the *pola*, food offerings, and lamps. Each of these elements are prepared individually but placed together in a way to evoke a sense of Shiva and Parvati's marriage ceremony. This arrangement is site-specific and temporary in nature as it exist only for the festival, which emphasizes the idea of impermanence much like a central concept of art installation. From an artistic perspective, this festival is a celebration of creativity, community, and spirituality, where every element is thoughtfully composed to engage people visually, emotionally and spiritually. This is why the creation of mandap during the celebration can be understood as a folk installation, blending devotion with artistic expression.

Challenges & Conclusion :

The preservation of Shivaratri traditions in the Pabbar Valley faces several

significant challenges. One of them is the gradual erosion of folk knowledge. Folk culture is not just a way of representing a community but it serves as a means of preserving practical knowledge, customs, and values that are passed down from generation to generation. However, with today's fast-paced lifestyle, younger generations are increasingly moving away from traditional agricultural practices and migrating to cities in search of better employment and education opportunities. As a result, many find it difficult to devote an entire day to the preparation of the festival. Another major challenge is the lack of systematic documentation and scholarly literature on these rituals. Much of the folk knowledge is orally transmitted, leaving it vulnerable to loss as older generations pass away and in some cases the elders may follow a ritual without fully knowing its symbolic meanings. Without proper recording and academic study, these rich cultural practices risk fading from collective memory, threatening the continuity of the Pabbar Valley's unique spiritual and artistic heritage.

References :

1. Ahluwalia, M. S. (1988). *History of Himachal Pradesh*. New Delhi: Intellectual Publishing House.
2. *Ancient and Modern Tribes of Himachal Pradesh*. (2016, November 6). Retrieved from Himachal Pradesh General Studies: <https://hpgeneralstudies.com/ancient-modern-tribes-himachal-pradesh/>
3. Basham, A. L. (1991). *The Origins and Development of Classical Hinduism*. (K. G. Zysk, Ed.) New York: Oxford University Press.
4. Chauhan, H. (2005). The Traditional Jewellery of Pabbar Valley. *Indian Journal of Traditional Knowledge*, 4(2), 118-126. Retrieved from <https://nopr.niscpr.res.in/bitstream/123456789/30664/1/IJTK%204%282%29%20118-126.pdf>
5. Devi, P. (2024, March 8). Legend Behind the Making of the Mandap During Shivratri Celebrations. (Nitika, Interviewer)
6. Dulta, B. S. (2024, March 8). The legend behind the celebration of Maha Shivaratri. (Nitika, Interviewer)
7. Gautam, S. (2013). Hinduism in Himachal Pradesh. *Graduate Seminar on Indic Religions* (p. 9). Oxford: Oxford Centre for Hindu Studies.
8. Handa, O. C. (2004). *Naga Cults and Traditions in the Western Himalaya*. New Delhi: Indus Publishing Company.
9. John, M. S. (1921). *Mohenjo Daro and the Indus Civilization Vol-i*. LONDON: ARTHUR PROBSTHAIN.
10. Kapoor, A., Kanwar, P., & Sharma, N. (2008). Handicrafts heritage of Gaddi tribe of Himachal Pradesh. *Indian Journal of Traditional Knowledge*, 62-66.
11. Majumdar, D. N. (1944). *The Fortunes Of Primitive Tribes*. Lucknow: THE UNIVERSAL PUBLISHERS LTD.
12. Office of the Registrar General & Census Commissioner, I. (2011). *C-10: Population by Religious community - Himachal Pradesh, Census of India*.
13. P.P.Chauhan. (2021). AN ETHNOBOTANICAL SURVEY OF WILD EDIBLE MUSHROOMS-A POTENTIAL RESOURCE OF FOOD AND INCOME GENERATION IN PABBAR VALLEY, HIMACHAL PRADESH, INDIA. *Plant Archives*, 21, 267 - 272. doi:<https://doi.org/10.51470/PLANTARCHIVES.2021.v21.no2.041>
14. *Pabbar Valley*. (n.d.). Retrieved from holidify: <https://www.holidify.com/places/shoghi/pabbar-valley-sightseeing-1254788.html>
15. *Religion and Rituals in Himachal Pradesh*. (n.d.). Retrieved from Abhipedia: <https://>

- abhipedia.abhimanu.com/Article/STATE/NTE00TEEEQQVV/-Religion-And-Rituals-In-Himachal-Pradesh-#:~:text=The%20major%20religious%20population%20of%20Himachal%20Pradesh%20is,a%20little%20concentration%20in%20Sirmur%2C%20Chamba%20and%20Kangra.
16. Sharma, S., Kumar, A., Thakur, H. S., & Kishore, K. (2024). *The Tradition and Culture of Devi-Devta Worship in Himachal Pradesh*. Retrieved from Sahapedia: <https://www.sahapedia.org/the-tradition-and-culture-of-devi-devta-worship-himachal-pradesh>
17. Sharma, T. (2024). An Ethnographic Study of the Religious Sites of Shaivism cult in Kullu District of Himachal Pradesh. *'Journal of Reseach & Development' A Multidisciplinary International Level Referred and Peer Reviewed Journal*, 16(3), 28-33.
18. Sharma, V. (2017, March). HISTORICAL DEVELOPMENT OF SHAIVISM IN BANARAS DURING. *Indian Journal of Applied Research*, 7(3), 380-381. Retrieved from file:///C:/Users/Nitika/OneDrive/Desktop/Research%20Papers/Research%20paper/4.%20folk/Literature/March_2017_1491813120__149.pdf
19. T., N., & K., J. P. (2020). SHAIVISM AND ITS PASUPATA SECT. *INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH CULTURE SOCIETY*, 4(6), 45-48. Retrieved from <https://ijrcs.org/wp-content/uploads/IJRCS202006008.pdf#:~:text=It%20is%20a%20form%20of%20non-dual%20spiritual%20practice,system%2C%20Kapalika%20and%20kalamukha%20sects%20will%20be%20enlightened>.
20. Thakur, L. S. (1982). ARCHITECTURAL AND SCULPTURAL ART OF HIMACHAL PRADESH-THE CASE STUDY OF HAT KOTI TEMPLES. *Indian History Congress*, 43, 798-807. Retrieved from <https://www.jstor.org/stable/44141323>
21. Thakur, M. R. (1997). *Myths, Rituals, and Beliefs in Himachal Pradesh*. New Delhi: Indus Publishing Company.
22. Vepachedu, S. (2015). *Maha Shivaratri*. VEPACHEDU EDUCATIONAL FOUNDATION.



भवप्रीतानंद के झुमुर गीतों में योग दर्शन की अन्वेषण

निवेदिता मण्डल

शोधार्थी, संगीत विभाग,
जमशेदपुर महिला विश्वविद्यालय, जमशेदपुर

जब आप ध्यान करते हैं और संगीत सुनते हैं तो संगीत ध्यान में अपना ध्यान और जागरूकता अपनी सांसें पर केंद्रित करना शामिल होता है। ध्यान संगीत में आरामदायक संगीत शामिल हो सकता है जो विशेष रूप से लोगों को ध्यान की स्थिति में लाने में मदद करने के लिए बनाया गया है लेकिन इसमें कोई भी संगीत शामिल हो सकता है जो आपको आनंददायक लगे। ठीक उस प्रकार भवप्रीतानंद ओझा ने आध्यात्मिक मार्ग पर कई सारे झुमुर गीतों की रचना की है।

भवप्रीतानंद ओझा का जन्म 1886 ईस्वी में आश्विन मास की नवमी तिथि को ब्रिटिश भारत के वैद्यनाथ धाम के निकट कुण्डा ग्राम में त्रिपुरानंद ओझा के ज्येष्ठ पुत्र रूप में हुआ था। वे अल्पायु में ही पितृविहीन हो गए थे। भवप्रीतानंद संस्कृत, हिंदी, बांग्ला और ब्रजभाषा में निपुण थे, तथा रामायण, महाभारत, पुराण आदि धर्मशास्त्रों में उनका गहन पांडित्य था। काशीपुरराज ज्योतिप्रसाद सिंह देव उनके संरक्षक थे। चूंकि भवप्रीतानंद निःसंतान थे, अतः उन्होंने बोडाराम के शिरोमणि हाजरा को धर्मपुत्र रूप में स्वीकार किया, जिनके प्रयास से बाद में भवप्रीतानंद की काव्यकृति झुमुर रस मंजरी का प्रकाशन हुआ। भवप्रीतानंद का निधन 15 मार्च 1970 को हुआ।

भवप्रीतानंद की सर्वोत्तम कृति बृहत्झुमुर रसमंजरी

ग्रंथ है, जिसमें उनके द्वारा रचित 227 झुमुर गीतों का संकलन है। कुछ वर्षों बाद कवि की अगली कृति में झुमुर रसमंजरी नामक ग्रंथ में 900 से भी अधिक झुमुर गीत प्रकाशित हुए। उन्होंने राधा और कृष्ण के प्रेम विषय पर कई पालाबद्ध झुमुर की रचना की, जिनमें अथ श्रीराधिका दुर्जय मान भंजन पाला, श्री कृष्णकली वर्णन पाला, अथ जल संवाद पाला आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इसके अतिरिक्त उन्होंने श्री वैद्यनाथ माहात्म्य वर्णन, चौतीसाक्षरी काली स्तव, वर्णमालानुक्रमिक मातृनाम स्तव, त्रिपुरास्तव आदि आध्यात्मिक मार्ग के कई झुमुर गीतों की रचना की। महाभारत की कथाओं पर आधारित उन्होंने अभिमन्यु वध पाला, कुंती - गांधारी का संघर्ष, भीष्म के शोक में गंगा का विलाप जैसे पालाबद्ध झुमुर गीतों की रचना की।

इसके अलावा उन्होंने कुछ श्यामासंगीत की भी रचना की, जो उनके झुमुर गीतों जितनी लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर सके। भवप्रीतानंद द्वारा रचित झुमुर गीतों को मुख्यतः छह प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है भादरिया, पालाबद्ध, खेमटा, बाऊल-धर्मी, कीर्तनांग, और बार तालिया।

भवप्रीतानंद के झुमुर गीतों की संरचना और बनावट वैष्णव पदकवि मैथिली कोकिल विद्वान कवि विद्यापति की रचनाओं के समान है। वास्तव में,

विद्यापति के वैष्णव पदों में भी झुमुर शैली का प्रभाव देखा जा सकता है। इन दोनों कवियों की पदरचनाओं में लोकजीवन का गहरा संबंध और संपर्क विद्यमान है। इसलिए लोकभावनाओं और जनमानस की अनुभूतियों के साथ मिलकर भवप्रीतानंद के झुमुर गीतों (विशेषकर राधाकृष्ण लीला पर आधारित गीतों) का निर्माण हुआ है।

हालांकि इन पदों में भगवान के प्रति सीधा भक्ति भाव प्रकट नहीं होता, फिर भी कवि की आत्म समर्पण की भावना स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। ईश्वर के प्रति इसी आत्मिक जुड़ाव से भवप्रीतानंद के राधाकृष्ण लीला-प्रधान झुमुर गीतों की रचना संभव हुई है। इन गीतों में राधाकृष्ण प्रेम की लोकजीवन की मधु झलकती है। इस लीला-माधुर्य के साथ जुड़ा हुआ दर्शन ही भवप्रीतानंद के झुमुर गीतों की रसात्मक अनुभूति का केंद्र है।

विद्यापति की राधा की तरह ही भवप्रीतानंद की राधा का भी विशेष आकर्षण है- यह राधा अपने प्रियतम कृष्ण के प्रेम में पगली हुई, मिलन की अभिलाषा में तड़पती हुई, श्रृंगार रस के धर्म में डूबी एक विरहिणी है। भवप्रीतानंद के झुमुर गीत इतने रसभरे और प्रभावशाली हैं कि स्वयं कवि इन्हें गाते समय राधा-भाव में लीन हो जाते थे।

फिर भी, इस रस का जुड़ाव आध्यात्मिक नहीं बल्कि लौकिक है। ईश्वर की अनुभूति का यह दृष्टिकोण वैष्णव पदावली साहित्य में केवल जयदेव, चंडीदास और विद्यापति के काव्य में ही मिलता है। वास्तव में, चौतन्य-पूर्व युग के वैष्णव पदावली साहित्य में झुमुर शैली के लक्षण प्रमुख रूप से उपस्थित हैं। इसलिए इसे चौतन्य-पूर्व युग की रचना शैली के रूप में स्वीकार किया गया है।

चौतन्य - पूर्व युग के कवि विद्यापति की भांति भवप्रीतानंद भी शिवभक्त, अर्थात् शैव थे। पुराणों में उल्लेख मिलता है कि यद्यपि शिव आदि देवता हैं,

फिर भी उन्होंने राधाकृष्ण की लीला-माधुर्य और युगल-दर्शन की आकांक्षा की थी। इस कथा ने भक्तों के मन में यह धारणा उत्पन्न की, कि स्वयं आदि देव शिव को भी राधाकृष्ण की शरण लेनी पड़ी थी। इसलिए शिवभक्त कवि विद्यापति और भवप्रीतानंद ओझा दोनों ने श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित होकर शिव भक्ति विषयक पदों की रचना के माध्यम से उस दिव्य योग की अनुभूति करने की चेष्टा की।

झुमुर गीतों की दुनिया में यह योग दर्शन पूर्णतया नवीन और अनोखा है। यही कारण है कि वैद्यनाथ धाम के प्रधान पुरोहित भवप्रीतानंद, शिव मंदिर में प्रतिष्ठित रहते हुए भी राधाकृष्ण की लीला - माधुर्य पर आधारित पदों की रचना करते थे और उन्हें सुर में गाकर आत्मविभोर हो जाया करते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि शिव की कृपा के बिना राधाकृष्ण के युगल दर्शन संभव नहीं। उनका मानना था कि समस्त जीवों में भगवान विद्यमान हैं, और उस भगवान की खोज केवल शिव-सेवा के माध्यम से ही संभव है।

भवप्रीतानंद यह भी मानते थे कि यदि शिव सेवा पूरी निष्ठा और विधिपूर्वक संपन्न हो, तो करुणामय राधाकृष्ण की लौकिक और अलौकिक सभी प्रकार की लीला-माधुर्य का रसास्वादन सहज हो जाता है। इसी कारण उन्होंने तांत्रिक मत के अनुसार हठयोग की साधना को भी नकारा नहीं। उनके शिव वंदना से संबंधित गीतों में इस ओर संकेत स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

भवप्रीतानंद ओझा ने राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला पर आधारित कई पदों की रचना की है। विशेष रूप से श्रृंगार रस से भरपूर, देह-संराग (शारीरिक आकर्षण) वाले पदों में रस की अनुभूति की जा सकती है। इसी कारण ये पद वैष्णव पदों के बहुत करीब पहुँचते हुए भी, विशुद्ध वैष्णव पद नहीं हैं बल्कि झुमुर की आदिरसपूर्ण अपील से परिपूर्ण। एक उदाहरण - जहाँ भवप्रीतानंद की राधा कंधे पर कलश लेकर जल

भरने निकली हैं, और राधा की

देहबल्लरी (नारी-सौंदर्य) कवि को इस प्रकार
आकृष्ट करती है :

“कलस लिए ध्वनि यमुनाते जावे धू रुनु रुनु
(रे मरी मरी)।

रुनु रुनु नूपुर बजाए देली हो।

बंकिम नयने बाण कटाक्ष चलावे धू मृदु
हासि (रे मरी मरी)।

मृदु हासि मदन जगाए देली हो॥”

फिर एक अन्य गीत में कृष्ण की बंसी ध्वनि से
राधा की उन्मादित अवस्था का वर्णन मन के भीतर
गहराई छू जाता है :

से

“लोग कहते हैं बंसी बजती है बनमाझे धमाझे
बनमाझे बंसी क्या बजे मनमाझे॥”

इस प्रकार, राधा-कृष्ण की लीलाओं पर आधारित
भवप्रीतानंद की झुमुर अंततः झुमुर की माटी
(लोकसंस्कृति) को ही स्पर्श करती है।

एक अन्य गीत में भवप्रीतानंद ने कृष्ण की
वृद्धावस्था का वर्णन बहुत सुंदर ढंग से किया है -
जहाँ कृष्ण अपने खेत में कुदाल चला रहे हैं और
वृद्ध हो गए हैं :

एकदा श्याम था चूड़ा लो धुकुदाल पारे श्याम
हुआ बुढ़ा लो/ “इन गीतों में लोक जीवन, प्रेम,
श्रृंगार और रचना कला का अद्भुत संगम देखने को
मिलता है।

राधाकृष्ण की लीला पर आधारित भवप्रीतानंद
के झुमुर गीतों की अभिव्यक्ति मुख्यतः मानभूम क्षेत्र
की सांस्कृतिक परिधि में उभरकर आई है। मानभूम
की धरती और यहाँ के लोग ही भवप्रीतानंद के झुमुर
गीतों को अपनाया और सराहा। यह बात उल्लेखनीय
है कि झुमुर गीतों की उत्पत्ति स्वयं धरती से हुई है,
और इस धरती के लोग ही इन गीतों की आत्मा हैं।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

यद्यपि भवप्रीतानंद ओझा के झुमुर गीत राधाकृष्ण
की लीलाओं पर आधारित हैं, फिर भी उनका आकर्षण
इस क्षेत्र के लोकजीवन के रस में सराबोर है। पुराण-
आधारित आध्यात्मिकता इन गीतों के लौकिक जीवनरस
को दबा नहीं सकी, बल्कि दोनों का एक सुंदर संगम
हुआ है। यही योग-दर्शन भवप्रीतानंद के झुमुर गीतों
की आंतरिक पहचान है।

भवप्रीतानंद ओझा के गीतों को एकताल, कहरवा
और दादरा ताल में गाया जाता है। कई गीतों में
कहरवा और एकताल एक साथ भी प्रयुक्त होता है।
अधिकांश गीत चार मात्राओं पर आधारित होते हैं,
जबकि कहरवा सुरों में आठ मात्राओं की संरचना भी
देखने को मिलती है। एकताल में बारह मात्राओं वाले
गीत भी हैं। इन गीतों की मातान (मुख्य भाग)
अलग-अलग अंगों में विभाजित होती है। हारमोनियम,
डुग्गी- तबला, मादल और करताल इन गीतों के
प्रमुख वाद्ययंत्र हैं। इनके अलावा ढोल, शहनाई,
बांसुरी, क्लैरियोनेट आदि सहायक वाद्य भी प्रयुक्त
होते हैं।

झुमुर गीतों में हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत का
प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। साथ ही,
कीर्तन का प्रभाव भी इन पर मौजूद है। कई गीतों में
पदावली कीर्तन की छवि उभरकर आती है।

झुमुर के “धुआँ” (रंग) भाग को धीमे लय में
ठेके के साथ गाया जाता है। लेकिन जब “मातान”
में पहुँचा जाता है, तो उसी धुआँ को कई बार तेज
लय में दोहराकर पूरी महफिल को झंकृत किया जाता
है। तब वाद्ययंत्रों की तालियाँ भी बदल जाती हैं।
गायक ऊँचे सुर में गाकर झुमुर प्रस्तुत करते हैं
जिससे गीतों का भाव अत्यंत सहजता और स्वाभाविकता
से प्रकट होता है।

भवप्रीतानंद के झुमुर गीतों में सुरों की विशेषता
रस की मधुरता और तालों की विविधता - इन सभी
ने मिलकर उनके संगीत को अत्यंत श्रुतिमधुर बना

दिया है। संगीत की कलियाँ, सुर और वाद्ययंत्रों का अद्भुत समन्वय भवप्रीतानंद ओझा के झुमर को एक विशिष्ट ऊँचाई प्रदान करता है, इसमें कोई संदेह नहीं। सीमांत बंगाल के झुमर-जगत में भवप्रीतानंद उझा को गुरु के रूप में विशेष ख्याति प्राप्त थी। उनके विविधतापूर्ण जीवन के अंतिम चरण में उन्हें वैद्यनाथ धाम के प्रधान संत के रूप में प्रतिष्ठा मिली। उन्होंने राधादृक्कृष्ण लीला से संबंधित झुमर-रचनाओं के साथ-साथ पाला-बद्ध झुमर के माध्यम से शिवदृक्पार्वती लीलाओं का भी वर्णन किया है। पाला-बद्ध गीतों की रचना उन्होंने त्रिपदी छंद में की, जो 'झुमर' नाम से प्रसिद्ध है। मैथिली और हिंदी भाषा में भी उन्होंने झुमर-गीतों की रचना की। भवप्रीतानंद उझा ने शृंगार-रस के साथ हास्य-रसात्मक झुमर-गीतों की भी रचना की।

मूल रूप से वे लोककवि थे, किंतु साथ ही उन्होंने अपनी एक विशिष्ट पहचान भी बनाई। उनके गीतों की भावभूमि लोकपरक है, परंतु कृत्रिम नहीं। इन गीतों की ध्वनि नागाड़ा और मादल की संगति में और भी जीवंत प्रतीत होती है।

एक उदाहरण :

आँधरि भादर राति देखिए तड़पे छाति
पति नाहि पालकं उपरे।
सखी रे प्राण दहे मदनेर शरे। (रंग व ध्रुवपद)
एके तो अबला वाला दोसरे यौवन ज्वाला
केमने रहिबो शून्य धरे।
शुन शुन सहचरी तोदिगे विनय करि
बाँचाह आनिया से नागरे।
विना सेई श्यामधन ना राखिवो ए जीवन
भवप्रीता हरिपद धरे।

इस गीत को ठीक इस प्रकार से ब्रजभाषा में भी उन्होंने पदरचना की है :

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

स्वपन सगुना देखि हरखि उठलि सखी
दूती से कहति बातियां -
फरकि उठलि वाम आँखिया
आजुरे आउतो कालिया। (रंग)
उरेखि बाँधलि जूड़ा लागायलि पान बिड़ा
बिछाईलि झारि सोजिया।
जागि रहलि धनी रातिया।
श्याम शबद शुनि चमकि उठिलो धनी
मिललि आगु लाजिया,
प्रेमे छलछल बारि आँखिया।
अंग परश सुखे मुरछिता पतिबुके
मुख से ना फुटे बातिया।
भवप्रीता भावे वनोमालिया।

स्वप्न से जागकर राधा उल्लास से भर उठीं। उनकी बाई आँख फड़कने लगी, और इस शुभ संकेत से उन्होंने समझ लिया कि श्याम के आगमन का समय निकट है। उन्होंने केशों को ऊँचाई पर सँवारकर बाँध लिया, पान को स्नेहपूर्वक सजा कर रख दिया और शय्या को पुनः अत्यंत मनोहर रूप से अलंकृत कर दिया। यह सम्पूर्ण दृश्य वैष्णव पदावली की राधा का स्मरण नहीं कराता, प्रत्यंत सीमांत बंगाल की किसी भी साधारण नारी की छवि को सामने ला देता है। उनकी काव्य-रचना का उद्देश्य वैष्णव परंपरा की मर्यादा की रक्षा करना नहीं था, वरन् शृंगारप्रधान लौकिक प्रेम-लीला का रसास्वादन कराना ही उनकी मूल अभिलाषा थी। इसी कारण उनकी अधिकांश गीत-रचनाएँ सहज, लोकजीवन से अनुप्राणित और लोकायत भावों से परिपूर्ण दिखाई देती हैं।

भवप्रीतानंद का अनुसरण कर जिन्होंने झुमर-रचना की है, वे सब कवियों की संख्या नगण्य नहीं। उनमें से जिन्होंने भवप्रीतानंद का प्रभाव अधिक

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

ग्रहण किया है, वे भी पद को किसी दिशा में स्पष्ट रूप से स्थापित नहीं कर पाए। भवप्रीतानंद की अनुपम क्षमता उनमें थी नहीं, लोककवि की सारता भी उनमें नहीं। इनमें मानभूम-धलभुम के अनेक राजा-जमींदार भी रहे, जिन्होंने झुमुर-गीत रचना की। उनमें ये सब लोककवि राधाकृष्ण की पौराणिक प्रेमलीला का पुनः प्रकाशन करते हुए पथ-प्रवर्तकता प्रकट करते रहे। अनेक अवसरों पर लोककवि राधाकृष्ण गीतों की रचना करते थे। इन्हीं दरबारी रचनाओं के माध्यम से झुमुर नामक एक शैक्षिक झुमुर की उत्पत्ति हुई। भविष्यत कवियों के प्रयत्नों से यह झुमुर गायकी शैली झुमुर होकर राग-रागिनी के प्रयोग में आई। यह झुमुर अपनी विशिष्टता के कारण लोकसंगीत की गिनती में नहीं आता।

दरबारी झुमुर गीतों की रचना और गायकों में अधिकांश उच्चवर्गीय तथा संपन्न जीवन से संबंधित लोग थे। फलस्वरूप इनकी रचनाएँ लौकिक झुमुर की मौलिकता से अलग थीं। परंतु सुरसंपन्नता के कारण झुमुर के भीतर लोकसंगीत के कुछ लक्षण दिखाई देते हैं। इसीलिए झुमुर वास्तव में जनजीवन से सीधे जुड़ा नहीं था और यही कारण है कि लोकसंगीत की संपत्ति या जनसंगीत की परंपरा में इसका कोई विशेष स्थान नहीं मिला। सामान्य झुमुर गीतों की भांति इसमें व्यक्तिगत उपस्थिति के लक्षण नहीं मिलते। मौलिक झुमुर में प्राकृतिकता नहीं होती, बल्कि सुर के प्रयोग और वाद्ययंत्र की संगति के कारण यह पारंपरिक रूप में सीमांत-बंगाल के जीवन को प्रस्तुत करता है। दरबारी झुमुर का स्वरूप संपूर्णतः संगीत प्रधान था, इसमें नृत्य का बहुत कम प्रभाव था। प्रत्येक अवसर के अंत में ध्रुपद गाया जाता था। गायक जब राग के पद पर पहुँचते, तब मादल और ढोल के उद्गार से वातावरण गूँज उठता था। उस क्षण सीमांत क्षेत्र के जंगल, पहाड़ और मैदान उपस्थित हो जाते थे। और उसके साथ नृत्य शुरू हो जाता था। दरबारी झुमुर अपना नृत्य रूप खो बैठा था। मूलतः

आदिरूप में यह नृत्य-प्रधान झुमुर-गीत ही था। झुमुर-गीत के साथ जो नृत्य होता था उसे ही झुमुर-नृत्य कहा जाता है। भवप्रीतानंद का अनुसरण कर जिन्होंने झुमुर-रचना की है, वे सब कवियों की संख्या नगण्य नहीं। उनमें से जिन्होंने भवप्रीतानंद का प्रभाव अधिक ग्रहण किया है, वे भी पद को किसी दिशा में स्पष्ट रूप से स्थापित नहीं कर पाए। भवप्रीतानंद की अनुपम क्षमता उनमें थी नहीं, लोककवि की सारता भी उनमें नहीं। इनमें मानभूम-धलभुम के अनेक राजा-जमींदार भी रहे, जिन्होंने झुमुर-गीत रचना की। उनमें ये सब लोककवि राधा-कृष्ण की पौराणिक प्रेमलीला का पुनः प्रकाशन करते हुए पथ-प्रवर्तकता प्रकट करते रहे। अनेक अवसरों पर लोककवि राधाकृष्ण गीतों की रचना करते थे। इन्हीं दरबारी रचनाओं के माध्यम से झुमुर नामक एक शैक्षिक झुमुर की उत्पत्ति हुई। भविष्यत कवियों के प्रयत्नों से यह झुमुर गायकी शैली झुमुर होकर राग-रागिनी के प्रयोग में आई। यह झुमुर अपनी विशिष्टता के कारण लोकसंगीत की गिनती में नहीं आता।

दरबारी झुमुर गीतों की रचना और गायकों में अधिकांश उच्चवर्गीय तथा संपन्न जीवन से संबंधित लोग थे। फलस्वरूप इनकी रचनाएँ लौकिक झुमुर की मौलिकता से अलग थीं। परंतु सुरसंपन्नता के कारण झुमुर के भीतर लोकसंगीत के कुछ लक्षण दिखाई देते हैं। इसीलिए झुमुर वास्तव में जनजीवन से सीधे जुड़ा नहीं था और यही कारण है कि लोकसंगीत की संपत्ति या जनसंगीत की परंपरा में इसका कोई विशेष स्थान नहीं मिला। सामान्य झुमुर गीतों की भांति इसमें व्यक्तिगत उपस्थिति के लक्षण नहीं मिलते। मौलिक झुमुर में प्राकृतिकता नहीं होती, बल्कि सुर के प्रयोग और वाद्ययंत्र की संगति के कारण यह पारंपरिक रूप में सीमांत-बंगाल के जीवन को प्रस्तुत करता है। दरबारी झुमुर का स्वरूप संपूर्णतः संगीतप्रधान था, इसमें नृत्य का बहुत कम प्रभाव था। प्रत्येक अवसर के अंत में ध्रुपद गाया जाता था। गायक

जब राग के पद पर पहुँचते, तब मादल और ढोल के उद्गार से वातावरण गूँज उठता था। उस क्षण सीमांत क्षेत्र के जंगल, पहाड़ और मैदान उपस्थित हो जाते थे। और उसके साथ नृत्य शुरू हो जाता था। दरबारी झुमुर अपना नृत्य रूप खो बैठा था। मूलतः आदिरूप में यह नृत्य-प्रधान झुमुर-गीत ही था। झुमुर-गीत के साथ जो नृत्य होता था उसे ही झुमुर-नृत्य कहा जाता है।

मूलतः झुमुर गीत गायक की दक्षता पर ही अवलंबित रहते हैं। गायक अपनी स्वकीय शैली में प्रवीणता अर्जित करता है, इसी कारण झुमुर गीत को सामान्य लोकसंगीत की कोटि में रखना उचित नहीं। इसके स्वरों में ऐसी भावनात्मक व्यंजना है, जिसने सीमांत बंगाल के जनजीवन पर अद्वितीय प्रभाव डाला है।

विशेषतः प्रेमप्रधान झुमुर गीत ग्राम्य जीवन की सहज रचनाएँ हैं, जिनमें ग्रामीण जन के हृदय की अंतरंग अभिव्यक्ति झलकती है। इन गीतों में श्रृंगार रस का प्रवाह सशक्त है और पके हुए फलों जैसी मधुरता का रसास्वादन कराया गया है। इनमें भवप्रीतानंद का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है, जिसके परिणाम स्वरूप कवियों की छाया में झुमुर लोकसंगीत और भी समृद्ध हुआ है। लोकभाव, भाषा तथा सुर की दृष्टि से झुमुर निश्चय ही एक प्रामाणिक लोकसंगीत

है। इसमें वैष्णव प्रभाव की खोज करना निःसंदेह निरर्थक प्रतीत होता है। केवल राधादृक्कृष्ण नाम के उच्चारण से इतर इसमें जो शेष रह जाता है, वह है ग्राम्य युवकद्वयुवतियों का लौकिक प्रेम। इस प्रेम में व्यथा भी है और भर्त्सना भी, किंतु इन गीतों में विरह का स्वर ही सर्वाधिक प्रमुख है। यदि लोकदृष्टि से विचार किया जाए तो इस विरह की ध्वनि में कहीं भी कृत्रिमता नहीं मिलती। राधादृक्कृष्ण की विरहमूलक पदावली ने किसी न किसी रूप में निश्चय ही झुमुर गीतों को प्रभावित किया है, अन्यथा इन गीतों में मिलनात्मक रूप ही प्रायः अधिक प्रकट होता। सामान्यतः समस्त लोकगीतों में प्रेमभाव की प्रधानता देखी जाती है, जिसमें वंचना और पीड़ा का रूप विशेष रूप से दृष्टिगत होता है।

जो भी हो, राधा-कृष्ण लीला से संबद्ध इन लौकिक गीतों में लोककवियों का उद्देश्य भक्ति-भाव का वातावरण निर्मित करना नहीं रहा। अपितु, पूर्वरंग और विरह को आधार बनाकर ही ये गीत प्रस्फुटित हुए हैं, जिनमें लोकमानस की सहज भावनाएँ अपनी सम्पूर्णता के साथ अभिव्यक्त हुई हैं।

सन्दर्भग्रन्थ सूची :

1. ओझा भवप्रीतानंद, बृहत् झुमुर रसमर्जरी हिन्दी बिद्यापीठ, देवघर पहला प्रकाशन, 1316 बंगाब्द, झारखण्ड।



कुमाऊँनी लोक गाथाओं में प्रतिबिंबित नाथ पंथ : साधना एवं दर्शन

परिमुक्ता

शोधार्थी, (पी. एच. डी. हिंदी)
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखंड

डॉ. राजेन्द्र कैड़ा

शोध निर्देशक
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखंड

शोध सार :

कुमाऊँ की लोकसंस्कृति में नाथ पंथ का प्रभाव अत्यंत व्यापक और विस्तीर्ण है। कुमाऊँनी लोकगाथाओं में नाथ पंथ की धार्मिक मान्यताएँ, योगबल, चमत्कार, साधना एवं जीवन दर्शन प्रतिबिंबित होता है। कुमाऊँ की लोक गाथाएँ, लोकसंस्कृति और नाथ पंथ के बीच गहरे और अमिट सम्बन्ध को उजागर करती हैं और यह प्रमाणित करती हैं कि नाथ पंथी लोकगाथाएँ, योग, साधना और लोककल्याण की जीवंत परंपरा का सबसे प्रभावशाली चित्रण करती हैं। कुमाऊँनी जागर गाथाएँ देवताओं के प्रति असीम श्रद्धा, समर्पण, लोकविश्वास का अप्रतिम उदाहरण हैं।

प्रस्तावना :

भारतीय संस्कृति समृद्ध एवं वैविध्यपूर्ण रही है। इसे और अधिक गंभीर रूप से समझने के लिए एवं जनमानस की प्रवृत्ति, रुचि, विचार एवं अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए लोक साहित्य एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। लोक साहित्य के अन्तर्गत लोक गीत, लोक कथा, लोक गाथा, लोकोक्ति एवं लोक वार्ता सम्मिलित हैं। लोक का मत लोक साहित्य में सहज ही प्रतिबिंबित होता है। लोक साहित्य के अन्तर्गत आने वाली लोक गाथाएँ लोक की विचारधारा, संवेदना, आचार व्यवहार और अनुभूतियों की परिणति हैं। कुमाऊँनी लोकगाथाएँ मौखिक परंपरा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित हुई हैं। जागर, भाण और गीत शैली में गायी जाने वाली ये गाथाएँ न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण

हैं, अपितु समाज में न्याय, धर्म, कृषि, सामाजिक सुरक्षा और नैतिक मूल्यों के प्रति जागरूकता भी उत्पन्न करती हैं। कुमाऊँनी लोक गाथाओं में नाथ पंथ और उसका दर्शन, साधना पद्धति प्रदर्शित होती है।

लोक शब्द का अर्थ, व्युत्पत्ति, परिभाषा :

‘लोक’ शब्द संस्कृत के ‘लोक’ (दर्शन) धातु से ‘घञ्’ प्रत्यय लगकर बना है। लट् लकार, अन्य पुरुष, एक वचन में इसका रूप ‘लोकते’ बनता है। अतः ‘लोक’ शब्द का अर्थ है- ‘देखने वाला’। इस प्रकार से देखने वाला समस्त जन समुदाय ‘लोक’ शब्द से अभिहित होगा। ऋग्वेद में यह शब्द अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद में ‘पुरुष सूक्त’ में प्रयुक्त ‘लोक’ शब्द ‘जीव’ और ‘स्थान’- इन दो अर्थों में आया है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

295

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

‘लोक’ शब्द प्रत्येक वस्तु में परिव्याप्त व सर्वप्रसारित रूप में देखा जा सकता है। महर्षि पाणिनी ने भी वेद से पृथक् लोक सत्ता स्वीकार की है। भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र में लोकधर्मी प्रवृत्तियों की चर्चा करते हुए लोक की उपस्थिति स्वीकारी है। महर्षि व्यास ने भी महाभारत में जन सामान्य के रूप में ‘लोक’ शब्द का प्रयोग किया है।

लोक शब्द की परिभाषा :

1) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार :

‘लोक’ शब्द का अर्थ ‘जन-पद’ या ‘ग्राम्य’ नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।’

2) डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार :

‘लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है। लोक कृत ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूता माता, पृथ्वी, मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणात्मक रूप है।’

3) डा. सत्येन्द्र के अनुसार :

‘लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।’

लोक साहित्य :

लोक साहित्य वह साहित्यिक अभिव्यक्ति है, जो जनसमुदाय के सामूहिक मानस की सहज स्फूर्ति एवं सामूहिक चेतना की भाव-संरचना से उत्पन्न होकर मौखिक परंपरा के माध्यम से निरंतर पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचारित होती रही है। यह लिखित संस्कृतियों की अपेक्षा अधिक जीवन्त और गतिशील है, क्योंकि इसमें लोकधर्मिता, सामूहिक अनुभवों की प्रतिध्वनियाँ तथा सांस्कृतिक-ऐतिहासिक बोध समाहित रहते हैं। लोक साहित्य पर प्रकाश डालते हुए डा. देव सिंह पोखरिया लिखते हैं- ‘साहित्य की आत्मा केवल ‘लिपि’ में ही संकुचित नहीं हो सकती अतः मौखिक साहित्य को भी इसके अन्तर्गत समाहित करके साहित्य को और भी व्यापक बनाया जा सकता है।’ इसी प्रकार डा. सत्येन्द्र भी कुछ यही विचार रखते हैं- ‘साहित्य के इस विस्तृत अर्थ में आज मनुष्य की वह समस्त सार्थक अभिव्यक्ति सम्मिलित मानी जायेगी, जो लिखित या मौखिक हो, किंतु जो व्यवसाय क्षेत्र की न हो।’ डा. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार ‘लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्तित्व ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक-समूह अपना मानता है और जिसमें लोक की युग-युगीन वाणी-साधना समाहित रहती है। जिसमें लोक-मानस प्रतिबिम्बित रहता है।’

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि मौखिक साहित्य अथवा लोक साहित्य कितना स्वाभाविक, सरल और स्वच्छंद है। प्रायः सभी संस्कृतियों का अपना एक लोक साहित्य होता है। जिसमें की उनका संपूर्ण जीवन दर्शन निहित होता है। लोक साहित्य श्रुति परम्परा पर आधारित होता है जो पीढ़ी दर पीढ़ी कंठानुकंठ परम्परित रहता है।

लोक गाथाएं :

लोकगाथाएँ लोकसाहित्य की वह विशिष्ट विधा हैं, जिनमें जनमानस की ऐतिहासिक चेतना, सामाजिक-

सांस्कृतिक स्मृतियाँ तथा लोक-आस्था का काव्यात्मक रूपान्तरण अभिव्यक्त होता है। इनका स्वरूप मूलतः कथात्मक-गीतात्मक होता है, जो सामूहिक श्रवण एवं मौखिक परंपरा द्वारा निरन्तर संचारित एवं संरक्षित रहा है। लोक-गाथा के लिए अंग्रेजी में 'बैलेड' शब्द का प्रयोग किया गया है। संस्कृत साहित्य में 'गाथा' शब्द का प्रयोग गेय पदावली के अर्थ में होता आया है। 'बैलेड' अथवा 'लोक गाथा' की परिभाषा विविध विद्वान अनेक रूप से देते हैं। न्यू इंगलिश डिक्शनरी के अनुसार 'बैलेड वह स्फूर्तिदायक या उत्तेजना पूर्ण कविता है जिसमें कोई जनप्रिय आख्यान रोचक ढंग से वर्णित हो।' लोक गाथाओं में संगीत तथा नृत्य का अप्रतिम साहचर्य मिलता है। लोक गाथाओं में प्रकृति, मानव जीवन, धार्मिक अनुष्ठान, पूजा पद्धति, कृषि कर्म आदि का सुंदर वर्णन मिलता है।

कुमाऊँनी लोक गाथाएं :

स्कन्द पुराण में मानसखंड के नाम से अभिहित कूर्माचल क्षेत्र (कुमाऊँ) दिव्यता, सौंदर्यता और प्रकृति का पर्याय है। यहां की जीवन शैली और संस्कृति सभी का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती है। संस्कृति से समृद्ध कुमाऊँ क्षेत्र लोक गाथाओं, लोक कथाओं, लोक नाट्य, लोक वार्ता आदि का पुरोधा रहा है। यहां का जनमानस अपने लोक साहित्य से सभी को मंत्रमुग्ध कर देता है। कुमाऊँ की लोकसंस्कृति में लोक गाथाओं का विशेष स्थान है। ये गाथाएँ केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि यहाँ के समाज, इतिहास और संस्कृति की जीवित स्मृतियाँ हैं। लोक गाथाएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक परंपरा के रूप में गाई जाती रही हैं, जिनमें लोक के विचार, मनः स्थिति, रुचि, संघर्ष और संवेदना अंकित है। इन गाथाओं की भाषा कुमाऊँनी है, जिसमें लय, छंद और गीतात्मकता का अद्भुत संगम मिलता है। मेलों, त्यौहारों और जागर अनुष्ठानों में जब ये गाथाएँ गाई जाती हैं, तो सम्पूर्ण वातावरण लोकभावना से सराबोर हो उठता है। कुमाऊँ की लोक गाथाओं को हम निम्न वर्गों में

वर्गीकृत कर सकते हैं :

- 1) परंपरागत गाथाएं।
- 2) पौराणिक गाथाएं।
- 3) प्रेमपरक गाथाएं।
- 4) धार्मिक गाथाएं।
- 5) स्थानीय एवं वैदिक देवी देवताओं से संबंधित गाथाएं।
- 6) वीर गाथाएं।

नाथ पंथ, कुमाऊँ के संदर्भ में :

गुरु गोरखनाथ द्वारा स्थापित नाथ पंथ ने समूचे भारत के साथ ही साथ देवताओं के वास स्थान और साधकों की तपोभूमि, देवभूमि उत्तराखंड को भी प्रभावित किया है। गढ़वाल क्षेत्र के साथ ही साथ कुमाऊँ क्षेत्र में भी नाथ पंथ का व्यापक प्रभाव देखने को मिलता है। नाथ योगियों की साधना, तप और दर्शन ने न केवल आध्यात्मिक जीवन को समृद्ध किया, बल्कि लोकजीवन, लोककला और साहित्य में भी गहरा प्रभाव डाला। नाथ योगियों और स्वयं गुरु गोरखनाथ जी ने अपनी साधना के लिए इस स्थान को चुना। चंपावत जिले में गुरु गोरखनाथ गुफा स्थित है। गोरखनाथ जी ने इस गुफा में लंबी तपस्या और ध्यान किया। यह स्थल नाथ पंथ के अनुयायियों के लिए तीर्थ स्थल के रूप में पूजा जाता है। नाथ योगियों ने अपनी शक्तियों से अनेकों चमत्कार किए, जन साधारण के कष्ट, विपत्ति आदि दूर किए। मंत्र, तंत्र, साधना द्वारा रोग, शोक, आधि, व्याधि निवारण कार्य किए। नाथ योगियों की अपनी स्वयं की मौलिक चिकित्सा प्रणाली थी जिसके द्वारा वो रोगों के निवारण हेतु आवश्यक उपक्रम प्रयोग में लाते थे। नाथपंथ, जो कि योग, तंत्र और शैव साधना से जुड़ा है, कुमाऊँ की लोकसंस्कृति, लोक देवताओं और मंदिर परंपरा में कई स्तरों पर समाहित है। कुमाऊँ में नाथ योगियों की गाथाओं, बानियाँ को

अक्सर सुना व सुनाया जाता है। लोक कल्याण हेतु नाथ योगी अवतरित होते हैं। उनकी जागर लगाई जाती है। हर एक शुभ कार्य करने से पहले उनका स्मरण किया जाता है। उनकी याद में मेला, उत्सव आदि का आयोजन किया जाता है। धार्मिक अनुष्ठानों आदि में उनकी पूजन पद्धति अपनाई जाती है। कुल देवता, इष्ट देवता, ग्राम देवता आदि के रूप में नाथ योगी संपूर्ण कुमाऊँ क्षेत्र को अपने आशीर्वाद से सिंचित कर रहे हैं। देवताओं के अवतरण हेतु प्रयोग में लाई जाने वाली जागर पद्धति नाथ पंथ की ही देन है। कुमाऊँ में पूजित अन्य लोक देवता जैसे गोरिल, हरू, सेम, गंगनाथ, मलयनाथ, नाथ पंथ, कुमाऊँ के संदर्भ में :

गुरु गोरखनाथ द्वारा स्थापित नाथ पंथ ने समूचे भारत के साथ ही साथ देवताओं के वास स्थान और साधकों की तपोभूमि, देवभूमि उत्तराखंड को भी प्रभावित किया है। गढ़वाल क्षेत्र के साथ ही साथ कुमाऊँ क्षेत्र में भी नाथ पंथ का व्यापक प्रभाव देखने को मिलता है। नाथ योगियों की साधना, तप और दर्शन ने न केवल आध्यात्मिक जीवन को समृद्ध किया, बल्कि लोकजीवन, लोककला और साहित्य में भी गहरा प्रभाव डाला। नाथ योगियों और स्वयं गुरु गोरखनाथ जी ने अपनी साधना के लिए इस स्थान को चुना। चंपावत जिले में गुरु गोरखनाथ गुफा स्थित है। गोरखनाथ जी ने इस गुफा में लंबी तपस्या और ध्यान किया। यह स्थल नाथ पंथ के अनुयायियों के लिए तीर्थ स्थल के रूप में पूजा जाता है। नाथ योगियों ने अपनी शक्तियों से अनेकों चमत्कार किए, जन साधारण के कष्ट, विपत्ति आदि दूर किए। मंत्र, तंत्र, साधना द्वारा रोग, शोक, आधि, व्याधि निवारण कार्य किए। नाथ योगियों की अपनी स्वयं की मौलिक चिकित्सा प्रणाली थी जिसके द्वारा वो रोगों के निवारण हेतु आवश्यक उपक्रम प्रयोग में लाते थे। नाथपंथ, जो कि योग, तंत्र और शैव साधना से जुड़ा है, कुमाऊँ की लोकसंस्कृति, लोकदेवताओं

और मंदिर परंपरा में कई स्तरों पर समाहित है। कुमाऊँ में नाथ योगियों की गाथाओं, बानियां को अक्सर सुना व सुनाया जाता है। लोक कल्याण हेतु नाथ योगी अवतरित होते हैं। उनकी जागर लगाई जाती है। हर एक शुभ कार्य करने से पहले उनका स्मरण किया जाता है। उनकी याद में मेला, उत्सव आदि का आयोजन किया जाता है। धार्मिक अनुष्ठानों आदि में उनकी पूजन पद्धति अपनाई जाती है। कुल देवता, इष्ट देवता, ग्राम देवता आदि के रूप में नाथ योगी संपूर्ण कुमाऊँ क्षेत्र को अपने आशीर्वाद से सिंचित कर रहे हैं। देवताओं के अवतरण हेतु प्रयोग में लाई जाने वाली जागर पद्धति नाथ पंथ की ही देन है। कुमाऊँ में पूजित अन्य लोक देवता जैसे गोरिल, हरू, सेम, गंगनाथ, मलयनाथ, भलनाथ आदि नाथ पंथ के ही अनुयायी हैं।

कुमाऊँनी लोक गाथाओं में प्रतिबिंबित नाथ पंथ :

कुमाऊँनी लोकगाथाएँ यहाँ की पौराणिक संस्कृति की संवाहक रही हैं। इन लोकगाथाओं के निर्माण के पीछे इतिहासपरक घटनाओं की विशेष भूमिका रही है। लोकमानस की भाव भूमि पर प्रचलित इन गाथाओं में प्राचीन काल की घटनाओं तथा चरित्रों का उल्लेख मिलता है। कुमाऊँ क्षेत्र की विशेष पर्वतीय भौगोलिक संरचना, सभ्यता, संस्कृति तथा लोकजीवन की अनुभूति के लयात्मक संस्पर्श को हम इन गाथाओं के माध्यम से आत्मसात करते हैं। भाषा बोली के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों में इन गाथाओं की लय विलग हो सकती है, किन्तु भावात्मक सुन्दरता प्रायः एक सी है। कुमाऊँनी लोक गाथाएँ स्वयं में आख्यान का वैशिष्ट्य प्रकट करती हैं। नाथ योगियों की साधना, दर्शन, पद्धति का लोक गाथाओं में सहज ही वर्णन देखने को मिलता है। नाथ योगियों की अलौकिक बानियां और मांत्रिक योगदान इन गाथाओं के द्वारा सर्व सुलभ है। यहाँ के ग्रामवासी प्रायः इन गाथाओं को अनेक कार्य व कृषि कर्म करते हुए गाते हैं। गुरु गोरखनाथ जी ने

अपनी सिद्धियों से इस क्षेत्र को पल्लवित किया है।
प्रायः हर गाथा में उनका स्मरण अवश्य किया जाता है।

कुमाऊँनी नाथ पंथी लोक गाथाएं :

1) गंगनाथ का गुरु गोरखनाथ जी से दीक्षा का अंश :

ए.....तै बखत का बीच में, हरिद्वार में बार वर्षक
कुम्भ जो लागि रौ।

ए..... गांगू.....! हरिद्वार जै बेर गुरु की सेवा टहल
जो करि दिनु कूँछे.....!

अहा.... तै बखत का बीच में, कनखल में गुरु
गोरखीनाथ जो भै रई.....!

ए..... गुरु कें सिरां ढोक जो दिना, पयां लोट जो
लिना.....!

ए..... तै बखत में गुरु की आरती जो करण फैगो,
म्यरा ठाकुर बाबा.....!

अहा.... गुरु धें कुना, गुरु....., म्यरा कान फाडि
दियो,

मून-मूनि दियो, भगैलि चादर दि दियौ, मैं कें विद्या
भार दी दियो,

मैं कें गुरुमुखी ज बणा दियो। ओ...

दो तारी को तार-ओ दो तारी को तार,

गुरु मैंकें दियो कूँछो, विद्या को भार,

बिद्या को भार जोगी, मांगता फकीर, रमता रंगीला
जोगी, मांगता फकीर।

2) गोरखनाथ और बिनसर की गाथा :

कथा है कि जब गुरु गोरखनाथ कुमाऊँ आए,
तो उन्होंने अपनी साधना के लिए बिनसर पर्वत को
चुना। वहाँ पहले से ही कई देवता पूजित थे। कहा
जाता है कि गोरखनाथ ने अपनी योगशक्ति से वहाँ
के देवताओं की परीक्षा ली।

लोकगाथा में वर्णन आता है कि गोरखनाथ ने
अपनी खिचड़ी (धान-चावल का प्रसाद) बनाई और
देवताओं से कहा- 'यदि तुम सचमुच लोकपालक
हो, तो इस खिचड़ी को पकाओ।'।

देवता ऐसा न कर सके, तब गोरखनाथ ने
अपनी योगशक्ति से बिना अग्नि जलाए खिचड़ी
पका दी।

यह देखकर देवता स्तब्ध रह गए और गोरखनाथ
की महिमा स्वीकार की।

आज भी बिनसर महादेव और गोरखनाथ गुफाओं
में यह कथा जागर और भाण के रूप में गाई जाती
है।

जय हो गोरख बाबा,

नाथन के अवतारा।

बिनसर डाँडा बैठी,

साधन करी तुम्हारा।।

गोरख गुफा गहनी,

धूणी धरी चमकी,

बिनसर देवता आय,

परीक्षा करि देखी।।

खिचड़ी धान की धरी,

पानी बिना उबारी,

अग्नि बिना पकाई,

महिमा देखी भारी।।

देवता सब हारे,

गोरख बल पै माने,

नाथन की वंदना करी,

जागर भणि गाये।।

जय हो गोरखनाथ,

बाबा सिद्धन के नाथ,

बिनसर डाँडा पवित्र भया,

गूँजे आज तलक तुम्हारा नाम।।

3) गोरखनाथ और गोलजू की गाथा :

कथा है कि गोलजू (ग्वेल देवता) न्याय के देवता माने जाते हैं। लोकविश्वास है कि गोलजू महाराज को न्यायकारी शक्ति गुरु गोरखनाथ से ही प्राप्त हुई थी। गाथाओं में कहा जाता है कि गोरखनाथ ने उन्हें आशीर्वाद दिया :

‘जहाँ अन्याय हो, तू वहीं न्याय कर।

जहाँ पीड़ित रोए, तू वहीं पुकार सुन।’

तभी से गोलजू देवता को कुमाऊँ में न्याय के देवता माना जाता है।

जय हो ग्वेल देवता,

जय हो गोरखनाथ।

नाथन के बल पै,

पायो न्याय का साथ॥

काली कुमाऊँ बसा,

गोलजू महाराज,

अन्याय जहाँ होय,

तुरत करें काज॥

गोरख बाबा बोले,

हे बालक सुनि ले,

तेरा नाम अमर हो,

धरती गगन गूँजे॥

जो दुखिया दरस पावै,

जो पीड़ित तेरे द्वार,

उसके कष्ट मिटाइ,

तू कर न्याय अपार॥

जय हो गोरखनाथ,

जय हो ग्वेल देव।

कुमाऊँ की धरती में,

गूँजे तेरो नाम॥

4) गोरखनाथ और हरुहीत की गाथा :

कुमाऊँ में हरुहीत देवता (कृषि और पशुधन के रक्षक) की पूजा विशेष महत्व रखती है। लोककथा है

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

कि हरुहीत को वरदान गुरु गोरखनाथ से मिला।

गोरख बाबा बोले-

हे हरुहीत सुनि ले,

धान खेत तू देखभाल,

गाय-भैंस रख ले॥

हरुहीत नमन करी,

नाथन बल पायो,

धरती-धान-धान्य,

सबको सुख दियो॥

जहाँ दुध-दूध बहे,

जहाँ अन्न झरे,

वहाँ हरुहीत राज,

नाथ आशीष करे॥

5) गुरु गोरखनाथ और चंपावत की गुफा की गाथा :

लोकविश्वास है कि चंपावत की गोरखनाथ गुफा में स्वयं गुरु गोरखनाथ ने तपस्या की थी। वहाँ वे धूनी रमाकर बैठे और साधना की।

चंपावत नगरी बीच,

गुफा अति पवित्र।

गोरख बाबा धूनी रमाए,

जग पै करि विचित्र॥

अग्नि बिना ज्वाला,

जल बिना धार।

गोरखनाथ योगी,

करैं जग उद्धार॥

भक्त सब आयो,

प्रणाम करि डार,

नाथन की कृपा से,

कटैं सब भार॥

6) नाथ योगियों के चमत्कार :

गोरखनाथ और अन्य नाथ योगियों ने जन साधारण को अपनी शक्तियों से जो चमत्कार दिखाए

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)

Peer-Reviewed Journal

वे आज भी लोगों के बीच लोक गाथाओं के रूप में
गाए जाते हैं :

लोक कल्याण, धर्म रक्षा,
सदा करो विहार।।

जय हो गोरख बाबा,
नाथन के अवतारा।

आकाश मा उड़ि गए,
सिद्धि देखी सारा।।

पानी ऊपर चाले योगी,
नदी झील पार करी।

मरा जीव सब फेर जिंदा,
लोक सुख मिलि भरी।।

अदृश्य भए शिष्य,
संकट सब टल गयो।

रोग, महामारी भाग गय,
नाथ बल देख्यो।।

पत्थर सोना भया,
एक चना गाँव भरि।

सिंह, भालू, बाघ सब,
नाथ संग चलि सरि।।

ऋतु बदली हाथ मा,
सर्दी बसंत भई।

दैत्य, भूत सब भाग गय,
नाथ कृपा सब देखी।।

जय हो चौरासी सिद्ध,
गोरख बल अपार।

उपसंहार :

कुमाऊँ की लोकसंस्कृति में नाथ पंथ का प्रभाव अत्यंत गहरा और व्यापक है। लोकगाथाएँ केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि ये समाज, धर्म, आस्था और लोकजीवन के मूल्य भी संजोए हुए हैं। गोरखनाथ और उनके शिष्यों की कथाएँ, उनके चमत्कार, सिद्धियाँ और लोककल्याणकारी गतिविधियाँ इन गाथाओं में स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होती हैं। नाथ पंथी गाथाएँ न केवल धार्मिक साधना और योगबल का प्रतिनिधित्व करती हैं, बल्कि लोकविश्वास, न्याय, कृषि, सामाजिक सुरक्षा और जीवन मूल्यों को भी जीवित रखती हैं। ये गाथाएँ पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक परंपरा में संरक्षित होकर न केवल आध्यात्मिक शिक्षा देती हैं, बल्कि लोकजीवन और सामाजिक मूल्यों को भी स्थायित्व प्रदान करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- 1) पाण्डे, त्रिलोचन, कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य।
- 2) पोखरिया, देवसिंह, लोकसंस्कृति के विविध आयाम।
- 3) जोशी, कृष्णानंद, कुमाऊँ का लोक साहित्य।
- 4) डा. कृष्णदेव उपाध्याय लोक साहित्य की भूमिका।
- 5) डा. सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान।
- 6) उत्तराखंड का लोक साहित्य, उत्तराखंड मुक्त विश्विद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल।



Cultural Continuities and Transformations : Folk Dance Influences in Bharatanatyam and Kathak

Parvathi P L

*Masters in Performing Art Student,
Reva University, Banglore,
Karnataka*

1. Introduction :

Everyone likes to hear stories. Before films and series become a part of our society stories and storytellers have always been significant parts of Indian culture. Remaining of such stories can be found in any art form of India, including dance, music, sculptures, paintings etc. In the Indian art forms, along with the mythological stories, one can also find folk stories related to the different cultures of each region. Similar to other forms of art, dance also showcases various stories and their unique interpretations. The impact of these folk dances on contemporary classical dances has undoubtedly manifested throughout various stages of evolution. Here we can focus on two out of eight Indian classical dances which are Bharathanatyam from South India and Kathak from North India.

Bharathanatyam was evolved from Sadir attam, the ritualistic dance performed in temples of Tamilnadu and Karnataka region by devadasis. During the medieval period it was patronised under many famous

dynasties like Vijayanagara marathas nayaka and get more recognition and high standard. British invasion destroyed this sacred art form by degrading the dignity of the art as well as the artists. With the great efforts of many artists and social reformers including Rukmini Devi Arundale, E. Krishna Iyer, Muthulekshmi Reddy revived the art form and restructured it to fit with the social norms. Even though legendary artists like Balasaraswathy tried hard not to change the original form. Kathak was originated in the northern region of India as a temple ritual. The name kathak originated from the Sanskrit word “Kadha” which means story. Intricate footworks and continuos spins are the unique characteristics of kathak. During the medieval period we can see the Persian influence on kathak due to muslim invasion. After British this art form also lost its significance and purity which was revived during the renaissance period. Now we can closely examine the folkdance influence on these dances.

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

302

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

2. Bharathanatyam and folk dances of Tamilnadu :

Tamilnadu is a south Indian state having rich cultural history from ancient time. The evidence of dance in Tamil culture can trace back from sangam literature era. Since Bharathanatyam undergo a vast stage of evolution many folk forms influenced it. Therukoothu, meaning “street play,” is a vibrant folk theatrical tradition of Tamil Nadu that combines music, dance, dialogue and dramatic storytelling. Performed in open spaces during temple festivals, particularly in honor of Goddess Draupadi, Therukoothu narrates episodes from the *Mahabharata*, *Ramayana* and other mythological tales. Its performances are marked by colorful costumes, expressive makeup, and energetic movements, creating an immersive communal experience. Beyond entertainment, Therukoothu functions as a medium of religious devotion, moral instruction and social commentary, reflecting the life, beliefs and collective identity of Tamil rural communities while preserving ancient cultural narratives through performance. Therukoothu and Bharathanatyam, though belonging to different aesthetic and social contexts, share profound historical, cultural and performative linkages within the spectrum of Tamil Nadu’s artistic heritage. Both art forms originate from the ritualistic and devotional traditions of Hindu temple culture, where performance served as an offering to deities and a medium of moral instruction. Therukoothu, a folk theatrical form of Tamil Nadu, integrates music, dance and dialogue to narrate stories from the *Mahabharata* and *Ramayana*, particularly during Draupadi Amman temple festivals. Similarly, Bharathanatyam,

once known as *Dasiattam*, evolved within temple sanctums, expressing devotion through codified gestures (*mudras*), rhythmic footwork, and emotive abhinaya. Both forms thus reflect a shared mythological foundation and a deep engagement with Bhakti ideology, transforming epic narratives into performative expressions of dharma.

Devarattam, meaning “dance of the gods,” is a vibrant folk ritual dance of Tamil Nadu traditionally performed to celebrate victory, valor, and divine blessings. Originating as a post-war performance by kings and warriors, it later became an integral part of temple festivals and community celebrations. The dance is marked by vigorous footwork, swift body movements and dynamic group formations that symbolize unity and strength. Unlike other folk and classical dances, Devarattam involves **no vocal or melodic music**; the rhythm and energy are sustained solely by the **urumi**, a powerful double-headed percussion instrument that heightens its spiritual intensity and ritualistic fervor. Devarattam and Bharathanatyam, though categorized under folk and classical traditions respectively, share striking aesthetic and structural parallels that reflect their common cultural and ritual origins in Tamil society. In Devarattam, dancers wear *ghungroos* (ankle bells), similar to Bharathanatyam performers, emphasizing rhythmic precision and coordination between movement and percussion. The entry of the dancers with *Anjali Hasta* and the act of *Bhumi Vandana* salutations to the earth and the audience closely resemble the invocatory segments of Bharathanatyam such as *Pushpanjali* and *Alarippu*. The

performance begins in a gentle and graceful *Lāsya* mode, aligned with the *Kaisiki Vritti* of the *Nāṭyaśāstra* and gradually intensifies into a vigorous *Ārabhami Vritti*. Furthermore, the rhythmic patterns in Devarattam reveal movements analogous to the “*Tha Thei Thaha Adavu*” of Bharatanatyam, demonstrating a shared technical vocabulary in body kinetics and rhythmic articulation. Historically, the *Devadasis* who performed sacred dances in temples were referred to as *Thevaradiyaal* -literally “servants of the gods” -linking both forms through their ritual function of divine worship. Hence, Devarattam can be seen as a folk continuation of the same devotional and performative ethos that Bharatanatyam later codified, uniting them within the continuum of Tamil ritual dance tradition.

In addition to these to these two we can even find out the connection of Bharathanatyam with Kavadi Attam another folk dance of Tamilnadu. The music we used to compose Kavadi chindu or some Muruga Kautwams should always have a shade of this folk dance’s music.

3. Kathak and folk dances of North India :

North India hold a very rich vibrant and colourful culture. That energy can be seen in their dance forms also. All the folk dances of North India are the reflection of this cheerful energetic culture. As Kathak also developed and evolved around this environment definitely the influence of folk forms can be seen. The first one is Rasalila. Kathak and Rasalila share a profound historical, thematic and philosophical connection that is deeply rooted in India’s storytelling and devotional tradi-

tions. Both forms emerged within the broader context of the **Bhakti movement**, where the worship of Krishna and other deities inspired artistic expression through music, dance, and drama. Rasalila, which developed in the temple traditions of Vrindavan and Mathura, presents Krishna’s divine play with the gopis as a symbol of **spiritual love, devotion and divine union**. These performances were not merely theatrical spectacles; they were immersive devotional experiences, blending narrative, music and dance to convey complex theological ideas in accessible and emotive forms. Similarly, Kathak evolved from the narrative art of the **Kathakars**, itinerant storytellers who traveled across northern India, narrating the legends of Krishna and other epics through rhythmic movement, expressive gestures, and abhinaya. The intersection of the two forms becomes particularly evident in their portrayal of Krishna’s lilas, including episodes like **makhan chori, Govardhan lila, and panghat ki gat**, which convey the philosophical notion that divine love transcends ego, worldly desire, and material concerns. From a technical perspective, both Kathak and Rasalila employ intricate rhythmic structures and mnemonic systems, such as **bols**, along with instruments like the **pakhawaj**, while Kathak’s signature **chakkars (piro-uettes)** echo the cyclical, flowing energy of Rasalila’s group choreography. Furthermore, the devotional core of Rasalila finds its aesthetic parallel in Kathak’s expressive **thumri and gat bhav**, where the emotions of separation (vipralambha) and union (sambhoga shringara) articulate the gopis’ spiritual longing and devotion to Krishna. In essence, while Kathak and Rasalila differ in scale, context and codifi-

cation, they remain intertwined embodiments of Krishna's eternal dance, reflecting the enduring confluence of narrative, rhythm, and devotion in northern Indian performing arts.

Lavani and Kathak, though emerging from distinct cultural and aesthetic contexts, exhibit significant historical, rhythmic, and performative parallels that underscore the interplay between folk vitality and classical refinement in Indian dance traditions. Lavani, a vibrant folk dance of Maharashtra, emerged during the **16th century** and gained widespread popularity in the **18th century** under the patronage of the **Maratha Peshwa dynasty**, which encouraged both courtly and popular performances. Traditionally performed to express stories of social, romantic and moral themes, Lavani integrates **dynamic footwork, precise rhythmic patterns, and expressive abhinaya**, accompanied by powerful music and percussion. Its performances are characterized by lively tempo, swift movements, and sensual yet narrative-driven expressions, reflecting the energy and spirit of regional folk culture. Kathak, in contrast, evolved in northern India as a temple-based narrative dance that later flourished under Mughal and regional courts. It employs intricate footwork, rapid spins (chakkars), and expressive gestures to narrate stories, particularly those related to Krishna and other epic legends. Despite its classical codification, Kathak retains a rhythmic and improvisational flexibility reminiscent of folk traditions. The parallels with Lavani are evident in the shared emphasis on **laya (tempo), tala (rhythmic cycles), and the use of ghunghroos (ankle bells)**

to accentuate both rhythm and movement. In both forms, rhythm serves as a primary driver for expressive storytelling, whether depicting romantic, devotional or dramatic narratives. The historical support of the **Maratha Peshwas** facilitated the preservation and refinement of Lavani while simultaneously contributing to the broader cultural environment in which Kathak evolved, highlighting the importance of regional patronage in sustaining both folk and classical traditions. Together, Lavani and Kathak exemplify how folk dynamism and classical sophistication coalesce, illustrating the continuous dialogue between popular expression and elite art forms in Indian performing arts.

4. Analysis :

The study provides a comprehensive examination of the dynamic interplay between folk and classical dance traditions in India, highlighting how regional folk practices have historically shaped classical codification, aesthetics, and performance strategies. In Tamil Nadu, dances such as **Therukoothu, Devarattam and Kavadi Attam** demonstrate their influence on Bharatanatyam through shared rhythmic patterns, invocatory gestures and narrative structures rooted in devotional and ritual practices. Similarly, in North India, folk forms such as **Raslila and Lavani** have left a profound imprint on Kathak, evident in rhythmic intricacy, expressive storytelling and precise footwork. The study emphasizes the role of **historical patronage**, from Maratha Peshwas in Maharashtra to Mughal and regional courts in North India, in nurturing both courtly and popular manifestations of these dance forms. While the research effectively traces these aesthetic

and historical continuities, it remains largely descriptive and could be strengthened by exploring the **mechanisms of transmission**, such as teacher-disciple lineages, regional festival practices, and choreographic codification. A detailed comparative analysis of specific movements or sequences could further illustrate how folk idioms were integrated into classical frameworks. Nevertheless, the study significantly contributes to performing arts scholarship by framing classical dances as living traditions deeply embedded within regional folk landscapes. Future research can expand this inquiry to include the **remaining six Indian classical dance forms**, all of which also show meaningful connections with their respective regional folk traditions. Ethnographic fieldwork, performance analysis and interdisciplinary approaches could illuminate the dynamic processes through which folk vitality continues to inform, enrich, and transform classical performance practices across India, highlighting the ongoing dialogue between popular and elite cultural expressions.

5. Conclusion :

In conclusion, this study highlights the crucial role of folk dances in the evolution, sustenance, and enrichment of classical dance forms like Bharatanatyam and Kathak. Folk traditions such as **Therukoothu, Devarattam, Kavadi Attam, Raslila and Lavani** provided foundational frameworks for rhythm, gesture, storytelling, and expressive techniques, which were later codified and refined within classical performance. These connections demonstrate that classical dances are not isolated or purely elite art

forms but are deeply embedded in regional cultural and devotional practices, reflecting a continuous dialogue between popular and courtly aesthetics. The historical patronage of dynasties, from the Vijayanagara and Maratha Peshwas to Mughal and regional courts, facilitated this integration, ensuring both folk vitality and classical sophistication. Understanding and acknowledging the contributions of folk dance is essential not only for tracing the historical development of Indian classical dances but also for preserving their cultural authenticity and sustaining their creative evolution in contemporary performance contexts.

Reference :

1. Hein, Norvin. "The Ram Lila." *Traditional India: Structure and Change*, edited by Milton Singer, American Folklore Society, 1970, pp. 73–79. ISBN 978-0292735040.
2. Kumar, Manjula. "Devarattam - a Beautiful Folk Dance of Tamil Nadu Surviving Through Generations." *Caleidoscope | Indian Culture, Heritage*, 18 Aug. 2025, caleidoscope.in/art-culture/devarattam-a-beautiful-folk-dance-of-tamil-nadu.
3. Mehta, Rutanshi. "Lavni: Soulful Dance of Maharashtra - Historified." *Historified*, 24 Dec. 2024, historified.in/2024/12/24/lavni-soulful-dance-of-maharashtra.
4. Pandit, Varada. "The Rāsa-Līlā Tradition with Relevance to Kathak." *International Journal of Humanities and Social Science Research*, July 2018, <https://www.socialsciencejournal.in/assets/archives/2018/vol4issue4/4-4-19-468.pdf>.
5. Sathiamoorthy, Varsha. "The Dance of Gods – DEVARATTAM." *Varsha*, 2 Aug. 2020, artsy.data.blog/2020/08/02/the-dance-of-gods-devarattam.
6. Sharma, Pinkey. "Lavani Dance: A Glimpse Into Maharashtra's Traditional Art Form."

- Orchids*, 27 Aug. 2024, www.orchidsinternationalschool.com/blog/lavani-dance-of-maharashtra.
7. Travelworldplanet. "Devarattam Dance, Tamil Nadu." *Travel World Planet*, 28 Feb. 2023, www.travelworldplanet.com/devarattam-dance.
 8. Veena, S. P., and Banu S. Parvin. "Analysis of the Amalgamation of Music and Tamil Theatrics in Therukoothu Performances through the Lens of New Historicism." *The International Journal of English Language, Literature and Culture*, Apr. 2025, https://www.researchgate.net/publication/391368695_Analysis_of_the_Amalgamation_of_Music_and_Tamil_Theatrics_in_Therukoothu_Performances_through_the_Lens_of_New_Historicism.
 9. "Kavadi Attam." *Forms of Dances in Tamilnadu*, 5 Mar. 2020, formsofdancesintamilnadu.wordpress.com/kavadi-attam.
 10. "Lavani: The Dance of Beauty, History, and Resilience." *Enroute Indian History*, 28 Aug. 2025, enrouteindianhistory.com/the-lavani-confluencescontradictions-and-its-journey-from-royalty-to-marginalisation.
 11. "Lavani Dance in Maharashtra India: Origin, History, Costumes, Style." *DanceUs.org*, www.danceus.org/style/lavani-dance-in-maharashtra-india.



अवध के विभिन्न लोकोत्सवों में प्रचलित लोकगीत

प्रतीक्षा मिश्रा

शोध छात्रा

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

शोध निर्देशक (सह-आचार्य)

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश :

भारत के उत्तरी भाग में स्थित उत्तर प्रदेश का एक क्षेत्र अवध जो कि लोक संगीत, लोक संस्कृति, लोक परंपरा तथा लोकोत्सवों से समृद्ध क्षेत्र माना जाता है। हमारे अवधी लोक संगीत में प्रयुक्त साहित्य भी अत्यन्त विपुल एवं समृद्ध परिलक्षित होता है। हमारी भारतीय संस्कृति में उत्सवों का विशेष महत्त्व देखने को मिलता है। हमारे सनातनी समाज में कहावत भी प्रसिद्ध है- 'सात वार, दस त्योहार' अर्थात् सात दिनों में दस त्योहार मनाने की यहाँ प्रथा। जो प्राचीन काल से लेकर आधुनिक समय तक एक परंपरा के रूप में विद्यमान है। हमारे हिन्दू समाज में प्रत्येक तिथि पर एक त्योहार अवश्य पाया जाता है जो विशेषतः धर्म से, ऋतु से, संस्कारों आदि से संबंधित होते हैं। इन्हीं उत्सवों के माध्यम से हम विशेष तिथि की विशेषता का स्मरण करते हुए लोक गायन भी करते हैं। प्रत्येक पर्व, उत्सव, त्योहार आदि पर कुछ विशेष लोकगीतों का पारंपरिक रूप से गायन होता देखा जाता है, जैसे- नवरात्री में देवी गीत, होली में फाग, जन्म से संबंधित सोहर, विवाह के गीतों में सुहाग, नकटा, गारी, ढोलक पूजन के गीत, इत्यादि लोकगीत जो आज भी अवध क्षेत्र में परंपरागत रूप से गाये-बजाए जाते हैं।

मुख्य शब्द :

लोक, उत्सव, लोकगीत, अवध, संस्कृति, परंपरा।

प्रस्तावना :

हमारा भारतवर्ष सांस्कृतिक, साहित्यिक, भौगोलिक एवं सामाजिक रूप से अत्यन्त विस्तृत तथा अनेकता में एकता का भाव रखते हुये सम्पूर्ण विश्व में अपनी विशिष्टता का परचम लहराता हुआ परिलक्षित होता रहा है। हमारी भारतीय संस्कृति भी भौगोलिक रूप से अत्यन्त व्यापक देखने को मिलती है। जहाँ अनेकानेक लोकोत्सवों जैसे- असम में बीहू, बिहार में छठ पूजा, तमिलनाडू में पोंगल तथा केरल में ओणम का त्योहार इत्यादि वृहद् रूप से मनाए जाते हुए देखे जाते हैं।

अनेक पर्व, प्रसिद्ध मंदिर विशेष से संबंधित होते हैं, जो उन मंदिरों में स्थापित विभिन्न देवी-देवताओं को समर्पित किये जाते हैं।' हमारी भारतीय जीवनशैली भीतर से रंगमय, उल्लासमय और आनन्द से परिपूर्ण देखने को मिलती है, यही कारण है कि हमारा भारत देश वार्षिक पर्व मनाने की दृष्टि से विश्वभर में सबसे उत्कृष्ट माना जाता है।'

हमारे उत्सव, पर्व, त्योहार, मेले इत्यादि सभी भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग माने जाते हैं।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

308

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

हमारी भारतीय संस्कृति प्रेम, सौहार्द, करुणा, मैत्री, दया और उदारता जैसे मानवीय गुणों से परिपूर्ण परिलक्षित होती है। हमारे भारत जैसे धर्म प्रधान देश में आस्था और विश्वास के साथ मिलकर, आनंद और उल्लास से त्योहारों को पारंपरिक रूप से मनाने की प्रथा सदैव से ही देखने को मिलती है।² इन उत्सवों एवं त्योहारों को पारंपरिक रूप से मनाने के अनेकानेक महत्व भी देखने को मिलते हैं, जिन्हें हम सामाजिक, सांस्कृतिक, कलात्मक, आर्थिक, पर्यावरणीय, धार्मिक आदि रूप से अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

पारंपरिक रूप से जन-मानस के मध्य मनाये जाने वाले उत्सवों को हम 'लोकोत्सव' शब्द से संबोधित कर सकते हैं। इन अनेकानेक लोकोत्सवों में भिन्न-भिन्न लोकगीतों का गायन-वादन प्राचीन समय से देखा जाता रहा है। हमारे हिन्दू समाज में आयोजित होने वाले लोकोत्सवों को विभिन्न वर्गीकरण के अंतर्गत देखा जा सकता है जैसे- धार्मिक पर्वों के रूप में, ऋतू पर्व के रूप में, सामाजिक पर्वों के रूप में, संस्कारिक गतिविधियों के रूप में तथा संवैधानिक या राष्ट्रीय पर्वों के रूप में इत्यादि। इन लोकोत्सवों को सांस्कृतिक रूप प्रदान करने, सुमधुर रूप से सुसज्जित करने एवं प्रत्येक व्यक्ति को भावात्मक रूप से अपनी संस्कृति के समीप लाने में हमारे लोक गीत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुये देखने को मिलती हैं।

लोकसंगीत तो हमारी भारतीय संस्कृति को पूर्णरूपेण उजागर करती हुई परिलक्षित होती है तथा लोकगीत धरती के वह गीत है जो माटी की सुगन्ध को लेकर विकसित हुए हैं। अपने-अपने प्रदेश की माटी को सुगन्धित बोलियों के साथ जो गीत उभरकर हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं, वहीं उसकी विशेषता के परिचायक होते हैं। उत्तर प्रदेश के पश्चिम में ब्रज, मध्य में अवधी, पूरब में भोजपुरी और दक्षिण में बुन्देलखण्डी लोकगीतों के भण्डार देखने को मिलते हैं।³ किसी भी क्षेत्र विशेष के लोकगीतों में वहाँ के मानव जीवन का चित्रण, रहन-सहन, खान-पान,

रीति-रिवाज आदि समाहित देखे जाते हैं। जिसमें अवधी लोकगीत अपनी एक अलग पहचान बनाए हुए देखने को मिलता है। अवधी क्षेत्र की संस्कृति 'अवधी लोकगीतों' द्वारा बखूबी प्रदर्शित होती हुई देखी जा सकती है।⁴

हमारा अवध, उत्तर प्रदेश राज्य का एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उत्कृष्टता से परिपूर्ण मध्यस्थित क्षेत्र है, जिसे गंगा जमुनी तहजीब का प्रतीक भी माना जाता है। हमारे अवध क्षेत्र के अन्तर्गत लखनऊ, सीतापुर, उन्नाव, हरदोई, अयोध्या, सुल्तानपुर, रायबरेली, बाराबंकी, गोंडा, बहराइच आदि कई अन्य जिले सम्मिलित देखने को मिलते हैं, जिसके चलते एक ही पर्व को विभिन्न पारम्परिकता से मनाने की प्रथा देखने को भी मिलती है। अवध क्षेत्र में लोकोत्सवों की संख्या अत्यंत वृहद रूप लिए हुए है। जिसमें मुख्यतः चैत्र नवरात्र, होली, दीवाली, जन्माष्टमी, कजरी तीज, हरियाली तीज, रामलीला, गोवर्धन पूजा, हलछठ, तिलवा (सकट), गणेश चौथ, गंगा स्नान इत्यादि जैसे अनेकानेक त्योहार तथा मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक के 16 संस्कारों में भी लोकगीतों का प्रयोग देखने को मिलता है। अवध क्षेत्र के लोकोत्सवों को अनेकानेक रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है।

धार्मिक लोकोत्सव : होली, दिवाली, शिवरात्री, जन्माष्टमी, रक्षाबन्धन, बसंत-पंचमी, रामनवमी, नागपंचमी, हलछठ, गणेश चौथ, चैत्र नवरात्रि, दशहरा, गोवर्धन, भाई दूज, कजरी तीज, हरियाली तीज, गंगा स्नान, देवोत्थानी एकादशी, गंगा दशहरा इत्यादि उत्सव देखने को मिलते हैं।

संस्कारिक लोकोत्सव : जन्म, कन-छेदन, मरचटना (अन्त्राशन), उपनयन, मुण्डन, छठी, बरही, विवाह आदि 16 संस्कारों को भी उत्सव रूप में मानते हुए देखा जाता है, जहाँ प्रत्येक संस्कार के साथ अनेकानेक लोक गीतों को गाने की प्रथा वर्तमान समय में भी देखने को मिलती है।

ऋतु सम्बन्धी उत्सव : इनमें मुख्यतः कजरी एवं चैती लोक संगीत का महत्वपूर्ण अंग है, जो मौसम की भावनाओं को व्यक्त करते हुए गाये बजाये जाते हैं।

अन्य उत्सव : ढोलक पूजन, राष्ट्रीय पर्व, ज्येष्ठ माह के बड़े मंगल, बुद्धेश्वर महादेव का मेला (सावन में), कतकी (कार्तिक) का मेला, शीतला अष्टमी का मेला, हत्याहरण का मेला (भादो में), मासिक अमावस्या का मेला (चन्द्रिका देवी में), परिक्रमा मेला (नैमिषारण्य), हर्दोइय्या बाबा का मेला, बक्सर का मेला (उन्नाव), दुर्गा कुसेहरी का मेला इत्यादि।

इस प्रकार यदि लोकोत्सवों की गणना की जाय तो अवध क्षेत्र में छोटे स्तर से लेकर बड़े स्तर तक अनेकानेक उत्सवों के विभिन्न रंग देखने को मिलते हैं। जो पर्व व उत्सव बड़े स्तर पर मनाये जाते हैं उनमें विभिन्न जगहों के लोक-कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन लोकगीतों तथा अन्य लोक कलाओं के माध्यम से अत्यधिक हर्ष एवं उल्लास के साथ प्रदर्शन करते हुये देखे जाते हैं किन्तु कुछ तीज-त्योहार ऐसे भी हैं, जिन्हें कुछ विशेष समुदायों या क्षेत्रों में उत्सवों की तरह मनाने की प्रथा भी समाज में देखी जाती है। इन सभी प्रकार के लोकोत्सवों में प्रचलित लोक गीतों को भी भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखा जा सकता है।

अवध क्षेत्र के विभिन्न लोकोत्सवों में प्रचलित लोकगीत : अवध क्षेत्र में अनेकानेक व्रत व त्योहार प्रत्येक माह में विभिन्न तिथियों पर देखने को मिलते हैं, जिनमें विभिन्न प्रकार के लोक गीत विशेषकर यहाँ की स्त्रियों द्वारा गाने-बजाने की प्रथा है। अवधी लोक साहित्य में देवी-देवताओं से सम्बंधित अनेकानेक लोकगीत उपलब्ध हैं, जिनमें सरस्वती माता, शीतला माता, कलकत्ता की काली माता, औसान भाई, माता भवानी आदि प्रसिद्ध हैं।⁵

औसान भाई (संकठा माता) : हमारे हिन्दू समाज में सुहागिले खिलाने की प्रथा अत्यधिक पुरातन **अनहद-लोक** ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

समय से विद्वमान देखि जाती है। सात सुहागिनों को आमंत्रित करके औसान माई की 'दुरदुरिया' चबायी जाती है। आठवीं सुहागिन जो सभी सुहागिनों से भीख लेती है। सातों सुहागिने अपने-अपने भाग से भीख देती हैं। औसान (संकठा) माता की कथा सुनाई जाती है और गीत गाया जाता है। गीत और कहानी का समापन के पश्चात् सब मिलकर चावल को समेटती हैं और बैठकर दुरदुरिया चबायी जाती हैं तत्पश्चात् सुहाग ले कर गीत गाती हैं।

गीत :

देवी मनाय घरै आगई अपने।

सोने के थारा ज्योंना बनावें,

देवी जिवाय घरै आगई अपने।⁶

तुलसी माता का गीत : हमारी भारतीय संस्कृति में तुलसी के पौधे को देवी स्वरूप माना जाता है। तुलसी पूजन का हमारे हिन्दू समाज में महत्वपूर्ण स्थान देखने को मिलता है। बसंत पंचमी में सरस्वती पूजा के साथ-साथ कई जगहों पर तुलसी माता की पूजा का, देवोत्थानी एकादशी जिसे तुलसी विवाह के नाम से भी जाना जाता है तथा गंगा स्नान (कार्तिक पूर्णिमा) में तुलसी के पौधे का पूजन अत्यधिक धूम धाम से करने की प्रथा सनातन धर्म में देखने को मिलती है।

तुलसा महारानी नमो नमो।

हरि कै पटरानी नमो नमो।

धन तुलसा पूरन तप कीन्हों,

मैय्या सालिग्राम महापटरानी नमो नमो।⁷

- (पारंपरिक गीत)

माता भवानी के गीत : किसी भी धार्मिक आयोजन, व्रत, उपवास तथा सामुदायिक समारोहों में सर्वप्रथम देवी गीत गाने का प्रावधान देखने को मिलता है। जिसमें माता भवानी का आवाहन करते हुए उनकी शक्तियों, पराक्रम, दया तथा उनके श्रृंगार का वर्णन किया जाता है। देवी गीत सदियों से लोक

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)

Peer-Reviewed Journal

परम्परा का अभिन्न अंग माने जाते हैं।

देबी मोरे अंगना में आई निहुर के पैय्यां लागो।
का देखि मैय्या मगन भई हैं, का देखि मुस्कानी।
सेंदुर देखि मैय्या मगन भई हैं, बिंदिया देखि मुस्कानी।
निहुर के पैय्यां लागों।⁸

- (पारंपरिक गीत)

सरस्वती माता के गीत : बनजरवा गीत के गायक कलाकार तथा आल्हा गवैया गायन से पूर्व माता सरस्वती की स्तुति करते हैं तथा सरस्वती गीत गाते हैं।

सुरसती मोरी भतवा ना,
माता वड़िठि रहा दहिनी बगलियाँ ना।
माता हाथ लैल्ला कलम दवतिया ना, माता
जौन मुख भूले अच्छरवा ना।
माता लिखा उ जिभिया के उपरां ना, सुमिरन
के और नाही पेड़वा ना।
सुमिरन कै छोडा पँवरवा ना।⁹

होली (होरी) : प्रेम, हर्ष और उल्लास से मनाया जाने वाला यह उत्सव फाल्गुन माह में मनाया जाता है। इस समय गाई जाने वाली रचना को फाग, होरी व होली से संबोधित किया जाता है।

‘दसरथ सुत खेलत होरी, समाज बटोरी।
रामचन्द्र करताल बजावत भरत मजीरा जोरी।

गिरिजा पति एक डमरू बजावत,
हनुमत लिहे ढोल चिकोरी, समाज बटोरी।

सोर भये चहुँ और अवधपुर, रघुवर खेलत होरी, सोरह से रनिवास जनकपुर, सब बहुरि परे एक ओरी, समाज बटोरी।¹⁰

संस्कार गीत : हमारे हिन्दू धर्म में बालक के गर्भ में आने से लेकर जन्म तक और वृद्धावस्था में अंत्येष्टि तक अनेकानेक संस्कारों की व्यवस्था देखने को मिलती है। ‘व्यासस्मृति’ में भी 16 संस्कार माने गये हैं, जिनके नाम इस प्रकार से देखे जा सकते हैं-

1. गर्भाधान	9. कर्णभेद
2. पुंसवन	10. उपनयन,
3. सीमन्तोन्नयन	11. केशान्त
4. जातकर्म	12. समावर्तन
5. नामकरण	13. विवाह
6. निष्क्रमण	14. वानप्रस्थ
7. अन्नप्राशन	15. परिव्राज्य या संन्यास
8. चूड़ाकरण	16. पितृमेध या अन्तिम संस्कार। ¹¹

इन्हीं सोलहों संस्कारों में अलग-अलग लोकभाषाओं में लोकगीत गाये जाने की प्रथा है। हमारे हिन्दु समाज में जन्म से मृत्यु तक सभी संस्कारों के साथ लोकगीतों का अटूट संबंध देखने को मिलता है। संस्कारों पर आधारित लोकगीतों को विधि विधान से गाए जाने का प्रचलन प्राचीन समय से देखने को मिलता है जैसे; जन्म के अवसर पर सोहर, विवाह के अवसर पर गारी, नकटा, सुहाग, विदाई, इत्यादि अनेकानेक लोकगीत गाये जाते हैं।¹²

जन्म संस्कार : जन्म संस्कार के अंतर्गत विभिन्न चरण आते हैं जिनमें जन्म से पूर्व तथा जन्म के पश्चात् होने वाले सभी संस्कारों को सम्मिलित किया जाता है। इन सभी चरणों में पारंपरिक गीत गाने की प्रथा देखने को मिलती है जिसमें मुख्यतः सोहर, साध, सरिया, रोचना, बधाई, छठी, बरही, अन्नप्राशन (पसनी), मुंडन, यज्ञोपवीत (जनेऊ) इत्यादि शामिल हैं। प्राचीन काल में चार पृथक् पृथक् संस्कार जैसे; चूड़ाकर्म, यज्ञोपवीत, वेदारम्भ और समावर्तन नियमानुसार करने की परंपरा थी किन्तु अब ये सभी ‘जनेऊ’ के अवसर पर एक दिन में ही सम्पन्न कर दिये जाने का प्रचलन देखा जाता है। सनातनधर्मी परिवारों में आज भी यज्ञोपवीत संस्कार को धूमधाम से मनाने का प्रावधान देखने को मिलता है।¹³

सरिया : हंसत खेलत घर आये, कहाँ सरि खेलि आयो मोरे लाल।

यक पग धरे हैं डेहरि पै दुसरो पलंग पै,
कहौ धना बेदना मोरे लाल।¹⁴

सोहर : हंकरौ न नग्र के नउआ बेगेहि चलि आवहु
रे।

नउआ, बंभना पंडित लै आवउ,
खोलै पोथिय पुरान तौ बाची सुनावैं।¹⁵

बधाई : प्रगतै हैं चारेओ भईय्या, अवध मा बाजे
बधईय्या।

जगमग जगमग दियला जलत है, झिलमिल
होत अटरिया।

अवध मा बाजे बधईय्या।¹⁶

विवाह संस्कार : अवध क्षेत्र के विवाह संस्कार
में लोक गीतों में अनेक शास्त्रीय तथा लौकिक विधि
विधान देखने को मिलते हैं, जो कन्या तथा वर पक्ष
दोनों में सम्पादित परिलक्षित होते हैं। विवाह संस्कार
के अवसर पर इन गीतों को लोक में अत्यधिक
उल्लास एवं हर्ष के साथ गाने की प्रथा आज भी
देखी जाती है।¹⁷ जिनमें अवधी गीतों में मुख्यतः
बन्ना-बन्नी, गारी, नकटा, सुहाग, विदाई इत्यादि जैसे
अनेकानेक लोकगीत शामिल हैं :

नकटा : बलम मोर गजरा लइगे चोराय।

अहरा मा दूढेयो, पेटहरा मा दूढेयो, बालम
तोरी सेजिया दूढेयो हलाये।¹⁸

गारी : राम लच्छिमन भरत शत्रोहन आये हैं जब
ससुरारी जी।

करन कलेवा लागे जनक घर गावैं सखी
सब गारी जी।¹⁹

विदाई : छुटा तोरे बाबुल कै गाँव मोरी बिटिया,
छुटि तोरी मइया कै अँचरा कै छाँव।
छुटि रहि संग के सहेली सखि गुइयाँ,
छुटा तोर बहिन और भइया कै धराँव।²⁰

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

ढोलक पूजन : अवधी लोक संगीत में ढोलक
का विशेष स्थान है। प्रत्येक उत्सव जो घर एवं
समुदाय में मानये जाते हैं, उनमें ढोलक पूजन का
प्रावधान भी देखने को मिलता है, जिसमें विशेषकर
गुरुवार के दिन ढोलक पूजन स्त्रियों द्वारा किया जाता
है जिसमें पारंपरिक रूप से यह लोक गीत गाया
जाता है :

ढोलक रानी हमरे बार बार आयो।

**भये माँ आयो, बरहें माँ आयो, ढोलक रानी
छड़ी माँ चली आयो।²¹**

- (पारंपरिक गीत)

निष्कर्ष : अवध क्षेत्र के लोकोत्सवों में गाए
जाने वाले लोकगीत केवल प्रदर्शन व मनोरंजन का
साधन मात्र ही नहीं हैं, बल्कि वे लोकजीवन की
गहराइयों को व्यक्त करने वाले अमूल्य सांस्कृतिक
धरोहर के रूप में परिलक्षित होते हैं। ये गीत ग्रामीण
समाज की खुशियाँ, दुःख, आस्था और परंपराओं
के जीवंत चित्रण का प्रतिबिम्ब हैं। चाहे वह विवाह
गीत हों, कृषक जीवन से जुड़े गीत हों या देवी-
देवताओं के प्रति भक्ति प्रकट करने वाले गीत हों
सभी में लोक की आत्मा बसती हुई देखी जाती है।
इन लोकोत्सवों का सबसे बड़ा महत्व यह है कि वे
समाज को एक सूत्र में बाँधने का भी कार्य करते हुए
पाए जाते हैं। प्रत्येक उत्सवों में सामूहिक रूप से गाए
जाने वाले गीत लोगों के बीच भाईचारे, सहयोग और
सामूहिक चेतना को जागृत करने का कार्य भी करते
हैं। आधुनिक समय में जब व्यक्ति दिन-प्रतिदिन
व्यक्तिगत व्यस्थता की ओर अग्रसर हो रहा है, तब
लोकगीत और लोकोत्सव हमें हमारी जड़ों से जोड़ने
का कार्य कर रहे हैं। अवध के लोकोत्सव और उनमें
गाए जाने वाले लोकगीत हमारी सांस्कृतिक पहचान
के जीवंत प्रतीक हैं। इनका संरक्षण केवल सांस्कृतिक
दायित्व ही नहीं बल्कि आने वाली पीढ़ियों को एक
समृद्ध परंपरा से जोड़े रखने का माध्यम भी है। यदि
हम इन लोकगीतों को शिक्षा, शोध और जनजीवन

से जोड़कर रख सकें तो निश्चित ही हमारी लोकसंस्कृति और अधिक सशक्त, वृहद् एवं प्रासंगिक बन सकेगी।

सन्दर्भ सूची :

1. शर्मा, एस. पी., हमारे त्योहार और मेले, हिंदी बुक सेण्टर, नयी दिल्ली, संस्करण- 2014, पृ. सं.-7
2. शर्मा, एस. पी., हमारे त्योहार और मेले, हिंदी बुक सेण्टर, नयी दिल्ली, संस्करण- 2014, पृ. सं.-9
3. कुमार संतोष, 'शिल्पायन', संगीत लेखमाला, पब्लिशिंग वाराणसी, प्रथम संस्करण-2013, पृ. सं.-137
4. लोक के विविध रंग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरबंघा, लोक स्मरणिका, 2020, पृ. सं.-113
5. सिंह अनुश्री, अवध क्षेत्र के लोक कलाकरों एवं लोक वाद्यों का योगदान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, शोध प्रबंध -2017, पृ. सं.-106
6. वही पुस्तक पृ. सं.-109
7. समुदाय विशेष द्वारा प्राप्त पारंपरिक गीत ।
8. <http://kavitakosh.org>, अवधी लोक गीत, देवी गीत।
9. सिंह अनुश्री, अवध क्षेत्र के लोक कलाकरों एवं लोक वाद्यों का योगदान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, शोध प्रबंध -2017 पृ. सं.-110
10. वही पुस्तक पृ. सं.-86
11. कुमार संतोष, 'शिल्पायन', संगीत लेखमाला, पब्लिशिंग वाराणसी, प्रथम संस्करण-2013, प्र. सं.-133
12. वही पुस्तक, पृ. सं.-135
13. सिंह अनुश्री, अवध क्षेत्र के लोक कलाकरों एवं लोक वाद्यों का योगदान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, शोध प्रबंध-2017, पृ. सं.-61
14. अवस्थी, डॉ. नरेशप्रतापनारायण, अवधी लोकगीत के अनोखे रंग, भारतीय भाषा भवन, 411-ए, दारागंज, प्रयागराज, पृ. सं.-23
15. वही पुस्तक, पृ. सं.-26
16. समुदाय विशेष द्वारा प्राप्त पारंपरिक गीत।
17. सिंह अनुश्री, अवध क्षेत्र के लोक कलाकरों एवं लोक वाद्यों का योगदान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, शोध प्रबंध -2017-63
18. अवस्थी, डॉ. नरेशप्रतापनारायण, अवधी लोकगीत के अनोखे रंग, भारतीय भाषा भवन, 411ए, दारागंज, प्रयागराज, पृ. सं.-66
19. वही पुस्तक पृ. सं.-68
20. सिंह अनुश्री, अवध क्षेत्र के लोक कलाकरों एवं लोक वाद्यों का योगदान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, शोध प्रबंध -2017-75
21. समुदाय विशेष द्वारा प्राप्त पारंपरिक गीत।



निर्गुण परंपरा एवं लोक संस्कृति का अंतःसंबंध

प्रिया शर्मा

शोध छात्रा

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

शोध निर्देशक

सह-आचार्य (गायन)

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश :

हमारी भारतीय संस्कृति में 'निर्गुण परंपरा' भारतीय संगीत एवं लोक संगीत की विरासत एवं धरोहर के रूप में परिलक्षित होती हुई दिखाई देती है। इसे भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग माना जाता है। जो सदियों व अनेकों वर्षों से गीतों और दोहों के माध्यम से पीढ़ीगत रूप से चली आ रही है। इस परंपरा में ईश्वर को निराकार, अमूर्त, अप्राकृतिक एवं गुणातीत के रूप में स्वीकार किया गया है। क्योंकि निर्गुण भक्ति के अंतर्गत मूर्तिपूजा की अपेक्षा आत्मा की पवित्रता, शुद्धता, भजन तथा गीत गाए-बजाए जाते रहे हैं। इसके अंतर्गत अत्यंत ही सरल एवं साधारण भाषा का प्रयोग किया जाता रहा है, जिससे सामाज में सभी आमजन के बीच यह धारा सरलतम रूप से प्रसारित हो सके। भारतीय संगीत में कबीरदास, दादू, रैदास, सूरदास, मलूकदास, जैसे अनेक महान संत कवि हुए हैं, जिन्होंने इस निर्गुण धारा को लोकभाषा और लोकसंगीत के माध्यम से गाव-गाव में सभी साधारण जनता के बीच तक पहुँचाने का कार्य किया है। उनका यह कथन न केवल आत्मिक है अपितु, सामाजिक चेतना के रूप में भी विद्यमान दिखाई देता है।

वही दूसरी तरफ लोक संस्कृति के अंतर्गत पाए जाने वाले समाज की जीवनशैली, रीति-रिवाज, त्यौहार, भाषा, गीत एवं नृत्य और अनेकानेक सभी कलाओं की सामुदायिक अभिव्यक्ति भी परिलक्षित होती है। जब निर्गुण परंपरा की मुखरता लोक संस्कृति से संलग्न होती है तो वह केवल धार्मिक विचार-विमर्श ही नहीं रह जाती बल्कि, यह लोकजीवन के एक अभिन्न अंग के रूप में प्रदर्शित होती है। लोक संस्कृति में अन्तःस्थ लोककलाओं एवं लोकसंगीत में निर्गुण भक्ति परंपरा की छवि आज भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जो लोकमानस के मन और हृदय में आध्यात्मिकता, अमूल्यता और गहरी विचारधारा प्रदान करती है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि, निर्गुण परंपरा और लोक संस्कृति का अंतःसंबद्ध भारतीय समाज की सांस्कृतिक एकता, गहन चिंतन तथा समाज के मानवीय मूल्य व उनके जीवन का परिचायक होता है। यह जुड़ाव केवल अतीत की धरोहर के रूप में ही दिखाई नहीं देती है बल्कि, आधुनिक काल में भी लोकजीवन एवं सामूहिक जागरूकता के स्तंभ के रूप में विद्यमान दिखाई देता है।

मुख्य शब्द :

निर्गुण परंपरा, लोक संगीत, निराकार, लोक संस्कृति, अभिव्यक्ति, जनमानस।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

314

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

प्रस्तावना :

निर्गुण से अभिप्राय : निर्गुण का साधारण सा अर्थ है 'प्राकृत गुणों से रहित' अर्थात् ऐसा मनुष्य जो सांसारिक इच्छाओं से बहुत ऊपर उठ चुका हो, या यूँ कहे कि वह मोह, लोभ, क्रोध, वासना, अहंकार जैसे सभी दोषों से मुक्त हो गया हो। भारतीय सांस्कृतिक धरोहर कि परिदृश्य के अंतर्गत निर्गुण भक्ति धारा की मुख्यतः दो धाराएँ मानी गयी हैं 'सगुण और निर्गुण'। जहाँ सगुण धारा का तात्पर्य मूर्तिपूजा से है, जिसका अर्थ है- भगवान को एक आकार रूप देना जैसे- मीराबाई जी 'भगवान श्री कृष्ण' की मूर्ति की पूजा किया करती थी, इसलिए सगुण धारा अलंकारिक, भक्ति-सौंदर्य और मंदिर-परिसर से अत्यधिक जुड़ी हुई प्रतीत होती है। वहीं निर्गुण धारा को निराकार ईश्वर, साधना व आत्मबोध के रूप में प्रदर्शित किया जाता जाता है। क्योंकि निर्गुण धारा में ईश्वर का कोई रूप या आकार नहीं होता है। जैसे- कबीरदास जी ने अपने कविताओं के माध्यम से बताया है कि, ईश्वर कण-कण में व्याप्त है उसकी अनुभूति केवल भक्ति, ध्यान और आंतरिक साधना के माध्यम से ही की जा सकती है।

यह परंपरा लोक-परंपराओं और क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से जनजीवन में इसकी अभिव्यक्ति सहज रूप से परिलक्षित होती है। 'लोक' का तात्पर्य यह है कि यह केवल स्थानिक गाँवों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि रोजमर्रा के कार्य, श्रम, कर्म, उत्सव, पीड़ा, हर्ष और इसे सामुदायिक व्यवहारों का जीवित संसार भी बताया गया है। संगीत में निर्गुण परंपरा कि मुख्य विशेषता यह है कि, वह स्वर और लय शब्द कि भक्ति में विलीन हो जाते हैं।¹

निर्गुण परंपरा में संत कवियों का योगदान :

निर्गुण परंपरा में संत कवियों का योगदान अत्यंत ही महत्वपूर्ण एवं विविधात्मक रहा है। उन्होंने भारतीय समाज के अंतर्भूत आध्यात्मिक परिवर्तन, वैचारिक

परिवर्तन एवं जन-जीवन में बदलाव लाने में अपनी एक अद्वितीय भूमिका निभाई है। इसके अंतर्गत जाति-पाति, भेदभाव, मूर्तिपूजा, आडंबर एवं धार्मिक पाखंड का विरोध किया गया तथा सामान्य लोगों के लिए ईश्वर की भक्ति का सहज मार्ग प्रस्तुत किया गया है। इस परंपरा का प्रचार-प्रसार करने लिए संत कवियों का अत्यधिक योगदान रहा है जिससे आज यह भक्ति धारा जन-जन के हृदय और मन में गहराई से बसी हुई दिखाई देती है। विशेषकर कबीर, रैदास, दादूदयाल, मलूकदास, और गुरु नानक जैसे संत कवियों ने न केवल अपने साहित्यिक अभिव्यक्ति का योगदान दिया बल्कि, इन्होंने संगीत को माध्यम बनाकर भक्ति भावना का प्रसार किया और सामाजिक सुधार का संदेश भी दिया है।²

कबीरदास : निर्गुण संत परंपरा में कबीरदास का योगदान सर्वाधिक विलक्षण एवं उल्लेखनीय रहेगा। क्योंकि उनकी वाणी को आज भी लोग कबीरपंथी साधु 'कबीरवाणी' के रूप में गाते-बजाते आ रहे हैं। कबीर ने अपनी रचनाओं को मुख्य तीन रूपों में प्रस्तुत किया है, 'साखी, सबद और रमैनी'। इनमें से सबद से तात्पर्य है कि यह संगीतमय रचनाएँ होती थीं जिन्हें लोकधुनों के आधार पर आसानी से गाया-बजाया जाता था। कबीरदास जी ने शास्त्रीय संगीत की जटिलताओं से दूर हटकर लोक की धुनों और सरल रागों का प्रयोग किया। यही कारण है कि उनके गीत व भजन सभी साधारण या आम लोगों के बीच बहुत ही आसानी से उनके हृदय तक पहुँच गयी। कबीरदास के गीतों में 'अनुभव' की प्रधानता है, अर्थात् उनकी गीतों में मुख्य रूप से व्यक्तिगत, सामाजिक और आत्मिक अनुभूतियाँ झलकती हैं। कबीर जी ने अपने गीतों में साधना व जीवन के भाव को व्यक्त करते हैं, न कि आडंबरपूर्ण लय या तानों की। आडंबर का अर्थ है- कि उनके अपने भजनों में कोई दिखवाटीपना नहीं नजर आता है। उनके प्रसिद्ध पदों में निहित है- 'साँई इतना दीजिए' और 'मोको

कहाँ ढूँढे रे बंदे' आज भी यह लोकगायन, कबीरपंथी मठों और मंचीय प्रस्तुतियों में गाए-बजाए जाते हैं।³

कबीर के संगीत का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह रहा है कि उन्होंने सामाजिक संदेश को संगीत के साथ जोड़ने का कार्य किया। कबीरदास जी अपने भजनों में धर्म एवं सम्प्रदाय के नाम पर होने वाले भेदभाव का विरोध करते रहे हैं, उनका कहना है कि सच्चा धर्म वही है जो मानव के भीतर निहित है न की मंदिर-मस्जिद एवं बाहरी पूजा में है। उनका कहना यह था कि ईश्वर एक है और सभी जातियों के लिए एक समान है।⁴

गुरु नानक : कवि गुरु नानक ने संगीत को साधना और ईश्वर से आत्मसात करने का सबसे महत्वपूर्ण साधन बताया है। उन्होंने अपने विचारों व भावनाओं को संगीत व गायन के माध्यम से प्रस्तुत किया है। नानक देव की रचनाओं को बाद में 'गुरुग्रंथ साहिब' में संग्रहीत किया गया। इन्होंने ने रागों को विशेष स्थान दिया। 'गुरुग्रंथ साहिब' में लिखित रचनाओं को प्रमुख रागों में संकलित की गयी हैं। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि निर्गुण भक्ति परंपरा और संगीत का संगम सिख परंपरा में और अधिक व्यवस्थित रूप में देखने को मिलता है। आधुनिक युग में गुरुद्वारों में होने वाला गुरुबाणी कीर्तन इसी परंपरा की देन मानी जाती है। गुरु नानक का योगदान यह दिखाता है की उन्होंने संगीत को न केवल आध्यात्मिक साधना बनाया, बल्कि उसे धार्मिक अनुष्ठानों, पूजा और प्रक्रियाओं को अभिन्न अंग के रूप में भी स्थापित किया गया।⁵

संत रैदास और दादू दयाल : इस परंपरा में रैदास (रविदास) का नाम भी अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। वे चर्मकार जाति से संबंध रखते थे, लेकिन अपने भजनों और पदों के माध्यम से उन्होंने समाज को समानता और भक्ति का संदेश प्रदान किया।

रैदास के भजन भी अधिकतर लोकधुनों पर ही आधारित होते थे, जिन्हें साधारण लोग अपनी भाषा में उसे आसानी से गा-बजा लेते थे। आज भी हमारे पूर्वी क्षेत्रों के गाँवों में उनके भजन गाए-बजाए जाते हैं।⁶

इसी प्रकार दादू दयाल ने भी निर्गुण भक्ति को 'नाम-रस' के रूप में प्रस्तुत किया है। दादू-दयाल ने भी कीर्तन और भजन मंडलियों के माध्यम से अपनी वाणी का प्रचार-प्रसार अत्यधिक किया। उनके अनुयायियों ने 'दादूपंथ' की स्थापना की, जिसमें आज भी भजन एवं कीर्तन की परंपरा जीवित दिखाई देती है।⁷

लोक और संगीत का संगम :

निर्गुण संत कवियों का संगीत में सबसे बड़ा योगदान यह रहा है कि, उन्होंने शास्त्रीय संगीत की जटिलता से बचकर लोकधुनों और लोकसंगीत को अपनाया है। जिससे उन लोगों रचनाएँ आम जनसामान्य के हृदय में बस गयीं। जहाँ दरबारीओं में संगीत शास्त्रीय और उच्चवर्ग के लोगों तक सीमित रहा, वहीं संत कवियों का संगीत सरल, सहज और जनप्रिय हो गया था। उनके भजनों में ढोलक, मंजीरा, खंजरी, सारंगी, तंबूरा आदि वाद्ययंत्रों का प्रयोग किया जाता था। यही वजह है कि निर्गुण संत कवियों की गायन परंपरा लोकसंगीत के अंतर्गत निहित हो गई।

सामाजिक प्रभाव :

संत कवियों ने संगीत के माध्यम से समाज पर गहरा छाप छोड़ा। उन्होंने उन्होंने धर्म, जाति-पाति और ऊँच-नीच का विरोध किया और लोगों को भाईचारा एवं मिलजुलकर रहने तथा समानता का संदेश भी दिया। संगीत के जरिए भक्ति धारा को जन-जन तक पहुँचाने का अथक प्रयास किया। आज भी निर्गुण संत कवियों की परंपरा कबीर गायन मंडलियों, कीर्तन, दादूपंथी भजनों और लोकगायन के रूप में जीवित दिखाई देती है।⁸

लोक संस्कृति से अभिप्राय :

मानव जीवन में लोक संस्कृति का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण माना गया है। क्योंकि संस्कृति केवल रीति-रिवाज या परंपराओं कि शृंखला या समूह के रूप में ही प्रदर्शित नहीं होती है बल्कि इसमें खान-पान, रहन-सहन, लोकगीत, लोकचित्रकला, लोकसाहित्य, लोकपर्व एवं त्योहार भी शामिल हैं। यह सभी कलायें जीवन जीने की एक संपूर्ण प्रक्रिया के रूप में विद्यमान हैं। हम जब अपनी 'लोक संस्कृति' पर विचार-विमर्श करते हैं, तो उसका आशय यह निकलता है कि उसका संबंध उस संस्कृति से है जो सामान्य जनजीवन से उत्पन्न होती है और पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होकर समाज में जीवित रहती है। वह लोक संस्कृति कहलाती है। लोक संस्कृति आम जनमानस के द्वारा पल्लवित जीवन-पद्धति, लोककथाएँ, लोकगीत, नृत्य, रीति-रिवाज, मान्यताएँ और धार्मिक आस्थाएँ इस सभी रूपों में प्रदर्शित होती हैं। यह किसी खास वर्ग या विद्वान कि बौद्धिक क्षमता तक सीमित न होकर सीधे जनता के हृदय और मन से गहराई से जुड़ी होती है।

यह सहज, साधारण और स्वाभाविक होती प्रतीत होती है। लोकगीत, कहावतें, मुहावरे और लोककथाएँ ये सभी लोकसंस्कृति कि महत्वपूर्ण अभिव्यक्तियाँ मानी जाती हैं। लोक संस्कृति समाज को उसकी जड़ों से जोड़ती है और उसे पहचान दिलाती है। यह केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए मार्गदर्शक का कार्य भी करती है। लोकगीत, लोकनृत्य और पारंपरिक त्योहार सामाजिक एकता और सामूहिकता के प्रतीक हैं। आधुनिक युग में जब वैश्वीकरण अपनी पकड़ मजबूत कर रहा है, तब लोक संस्कृति का संरक्षण और भी आवश्यक हो जाता है।

लोक संस्कृति की विशेषताएँ :

सामूहिकता : लोकसंस्कृति के अंतर्गत आने

वाले सभी कलाएं जैसे- गीत, नृत्य, नाटक, शिल्प कला, कथाएं इत्यादि का प्रदर्शन एक साथ मिलकर किया जाता है, क्योंकि ये सभी कलायें एक दूसरे से परस्पर रूप से जुड़ी हुई हैं। जैसे-लोकगीत गाते समय विभिन्न वाद्ययंत्रों और नृत्य का प्रयोग किया जाता है। इसलिए यह एक व्यक्ति का नहीं अपितु, पूरे समाज के सामूहिक अनुभव को साझा करती हुई दिखाई देती है।⁹

प्राकृतिकता : इसका अर्थ है 'वास्तविकता' या यूँ कहे कि भौतिक चीजों से परे, जिसमें किसी भी प्रकार कृत्रिमता नहीं हो, अर्थात् किसी प्रकार का कोई बनावट ना हो। जिस प्रकार 'प्राकृतिक परिदृश्य' जैसे- पहाड़, नदी, झरने, समुद्र, पेड़-पौधे, बादल, सूरज इत्यादि जैसी प्राकृतिक चीजें होती हैं, जिसमें मनुष्य का किसी भी प्रकार का कोई भी हस्तक्षेप नहीं होता है। उसी प्रकार लोक कला और लोक संस्कृति में प्राकृतिकता को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कबीर, रहीम एवं अन्य कवियों की रचनाओं में प्राकृतिकता का गुण निहित है।¹⁰

मौखिक परंपरा : मौखिक परंपरा वह परंपरा है जिसमें विगतकाल से सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक ज्ञान कि धारा मुख के द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक अपनी बातों को मौखिक रूप से पहुँचायी जाती रही हैं। इसके अंतर्गत चीजों को स्मृति में याद करके रखी जाती रही हैं, मौखिक परंपरा के अंतर्गत किसी भी प्रकार की कोई लिखित प्रारूप नहीं पाई जाती है। मौखिक परंपरा का मुख्य उद्देश्य है- ज्ञान, मूल्य एवं अनुभव को जीवित रखना। तथा इसमें कहानियाँ, लोकगीत, लोककथा, मुहावरे, प्रथनाएं आदि सम्मिलित होती हैं।¹¹

व्यावसायिकता का अभाव : लोक संस्कृति को अव्यवसायिक कहा जाता है। क्योंकि इसका उद्देश्य आर्थिक लेन-देन नहीं बल्कि, यह लोक जीवन कि सहज अभिव्यक्ति है, या यूँ कहे की लोक संस्कृति

के अंतर्गत आने वाले विचारक, कलाकार, संगीतज्ञ तथा शिल्पकार आदि अपनी कला का प्रयोग लाभ प्राप्त करने के लिए नहीं करते अपितु ग्रामीण जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करते हैं।

बौद्धिक, धार्मिक और नैतिक जीवन की दृष्टि से पूर्णता का अभाव : बौद्धिक, धार्मिक और नैतिक जीवन की दृष्टि से लोक संस्कृति कभी पूर्ण नहीं होती है। इसका अर्थ यह है कि लोक संस्कृति और अभिजात संस्कृति एक दूसरे से निरंतर आदान-प्रदान करती रहती है। अधिक सरल रूप में यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार किसान समाज की अवधारणा पूरी तरह विकसित नहीं होती है, उसी प्रकार लोक संस्कृति भी पूरी तरह लोक संस्कृति नहीं होती है।

स्थानीय स्वरूप : ग्रामीण लोगों के द्वारा ऐसे बहुत से देवी-देवताओं को माना जाता है और कई ऐसे त्योहार भी मनाए जाते हैं जो पूरे भारत में फैले हुए दिखाई देते हैं। ऐसे देवी-देवताओं और त्योहारों का संबंध संस्कृति की अभिजात परम्परा अथवा दीर्घ परंपरा से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। इसके बाद भी गांवों में कई ऐसे देवता, त्योहार, रीति-रिवाज और मेले देखे जाते हैं, जिनका प्रसार पूरे भारत में नहीं बल्कि, लोगों के बीच में होता रहा है। लोक संस्कृति एक ऐसी संस्कृति मानी जाती है जिसमें स्थानीय स्वरूप को अधिक महत्व दी जाती रही है।

सृजनात्मकता : सभी विद्वानों का मानना है कि लोक संस्कृति में एक विशेष रचनात्मक शक्ति पाई जाती है, जो लोक संस्कृति के अन्तर्गत मन्दिर, धार्मिक उत्सव, अनुष्ठान, पर्व एवं नृत्य आदि व्यक्तियों की सामूहिकता की गुणवत्ता को बढ़ाने का अवसर प्रदान करते हैं। मनोरंजन का मुख्य आधार लोक कथाएँ, भजन-कीर्तन तथा वृद्धजनों के जीवन के अनुभवों को माना जाता है। जिस स्थान पर लोकसंस्कृति जितनी अधिक प्रभावशाली होती है, उसके व्यक्तित्व

में उतना ही संगठित और आन्तरिक पक्ष दिखाई देता है। लोक समाज में लोक संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान होता है। यह संस्कृति उस क्षेत्र विशेष में संपूर्ण समाज का दर्पण है जिसमें हम सामूहिक जीवन, आचरण, आदर्शों को देख और समझने कि क्षमता रखते हैं।

कलात्मक क्रियाओं में सामान्य भागीदारी :

लोक संस्कृति में आने वाली कलात्मक गतिविधियों में सभी लोग भाग लेते हैं। लोक संस्कृति के अंतर्गत दर्शक और कलाकार को अलग-अलग पात्रों में विभाजित नहीं किया जा सकता है। एक व्यक्ति दर्शक भी होता है और अभिनेता भी। उदाहरण के लिए, लोकनृत्यों में भाग लेने वाले स्वयं रचना करते हैं, गाते हैं और नृत्य भी करते हैं। दर्शक एक समय पर वही कलाकार बन जाते हैं।¹²

निष्कर्ष :

निर्गुण परंपरा एवं लोक संस्कृति का अंतःसंबंध गहन और अविच्छिन्न है। निर्गुण परंपरा भारतीय संस्कृति का वह आयाम है जिसमें निराकार ईश्वर की साधना, आत्मबोध, सामाजिक समानता और आध्यात्मिक चेतना का सशक्त संदेश मिलता है। यह परंपरा विशेष रूप से संत कवियों जैसे कबीर, रहीम, तुलसीदास आदि के माध्यम से जनमानस तक पहुँची और लोक संस्कृति का अभिन्न हिस्सा बन गई। लोक संस्कृति, जो जन-जीवन के अनुभव, परंपराओं, रीति-रिवाजों और मौखिक साहित्य का संगम है, निर्गुण परंपरा के विचारों और अभिव्यक्तियों को अपनी भाषा, लोकगीत, भजन, कहावत और कथाओं में संजोकर संरक्षित करती है।

इस प्रकार निर्गुण परंपरा न केवल धार्मिक या आध्यात्मिक स्तर पर, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी लोक संस्कृति के मूल तत्वों में प्रवेश करती है। निष्कर्षतः निर्गुण परंपरा और लोक संस्कृति का संबंध केवल वैचारिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक

और जीवनोपयोगी है। निर्गुण परंपरा लोक संस्कृति को आध्यात्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आधार प्रदान करती है, जबकि लोक संस्कृति इसे स्थायी रूप से जीवित रखती है। इस अंतःसंबंध से स्पष्ट होता है कि निर्गुण परंपरा और लोक संस्कृति भारतीय समाज की आत्मा और उसके मूल संदेश का सार है।

संदर्भ सूची :

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, (1990), कबीर : कबीर के व्यक्तित्व और दार्शनिक विचारों की आलोचना, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
2. शर्मा, हजारी प्रसाद (1985), भक्ति आंदोलन और हिंदी साहित्य, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
3. सिंह, कृष्ण बिहारी (2001), निर्गुण भक्ति और संत साहित्य, दिल्ली : साहित्य अकादमी।
4. ठाकुर, जगदीशचंद्र (1998), भारतीय संत परंपरा और समाज सुधार, पटना : बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी।
5. शर्मा, डॉ. राजेश (2024), गुरु नानक और गुरमत संगीत परंपरा, नाद-नर्तन (Journal of Music & Dance Studies), वॉल्यूम 12, अंक 1।
6. सिंह, रामस्वरूप (1992), संत रैदास : जीवन और दर्शन, दिल्ली : साहित्य भवन।
7. दन्त, श्रीनिवाल (1987), दादु और दादुपंथ, जयपुर : राजस्थान हिन्दी अन्य अकादमी।
8. मिश्र, महावीर प्रसाद (2008), लोक साहित्य और संस्कृति, वाराणसी : भारती भवन।
9. दत्त, रामकुमार (2010), भारतीय लोक संस्कृति, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
10. द्विवेदी, हजारीप्रसाद (2010), कबीर (निर्गुण काव्य और उसकी सहज अभिव्यक्ति का विवेचन), इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन।
11. शुक्ल, रामचन्द्र (2021), हिन्दी साहित्य का इतिहास, नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन।
12. <https://social&work-in/lok&sanskriti&kya&hai>



Anthropology Behind Indian Folk's Literature

R. Abishek

Research Scholar

*Department of English and Comparative Literature
Madurai Kamaraj University*

Dr. B. Anand Prasad

Assistant Professor,

*Department of English
Cardamom Planters' Association College*

Abstract :

This article opens the curtain of the hidden part of the stage (Folk Literature) through Anthropological analysis. Every myth and belief has its way of polishing scientific benefits over fear and divinity. Each citizen of their nationality adopts, adapts, and then adapts foreign culture for their own interests (comfort, updating, modernizing, diaspora and uniqueness). Mostly cultural practices are taken for granted, but nobody realizes that even the traditional teeth brushing can make a big difference in evolution. Ancient Indians used charcoal, brick sand, neem twig, salt, tamarind, and other fragrant spices to clean their mouths and brush their teeth. After the colonial period, the Indians adopted the practice of using toothpaste and now we can find blooming dental clinics in every province. The funny part is now the toothpaste companies are marketing their products by saying that their paste contains salt, neem and other natural substances, along with that started selling charcoal tooth brushes. Initially, we gave up and lost our culture, and now India is re-adopting the western people's adopted practices from Indian. Here and there, folk literatures of certain states tell about every mythological practice, but often the real reason is hidden or mildly revealed. The Anthropological study in this paper aims to bring out the flaws, losses, and mistaken cultural practices. These unnoticed little things are slowly and gradually corroding the identity, along with the root of original native practices. Something can be changed or replaced but it should not be forgotten. Because, if we find the result product ineffective, one should be able to remember the classical way of doing it. unless it is forgotten. There is no way going back. So, let's dive deeper in acknowledging that in which way we are going wrong.

Keywords :

Spiritual Anthropology, Misguided Culture, superstitious practices.

Introduction :

An English Antiquarian, William Thomas, coined the term Folklore in 1846. Folk means people and lore represents the compilation of the peoples' knowledge. Folk is the most ignored, underrated area where it has been totally dumped with an

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

320

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

abundance of data, which can help to clarify the culture, politics, tradition and much more of that particular period, clearer than history. Anthropology is the vast area of cultural studies, which simply gathers and inculcates every aspect of the common man's living method and standards. Folk literature or songs will always have its pride as the first emerged native art of every nation, because only the folk songs and folk stories laid the bricks for drama and musical concerts to modern cinema. Either any discoveries or new inventions, its idea would have been a spark of inspiration and that source might have emerged from the facing problem of that particular period, also to avoid its existence in the future. Similarly, every folk literature and folk arts have their objective to overcome certain problems; furthermore, being infused with the culture of the natives will make the folk connected with the folks of the natives.

Anthropology in Spirituality :

Most of the Indian Folk tales come under the category of spiritual, devotion, moral, witty and patriotism. From the series of stories like Vikatakavi Thennali Raman, Vikram and Betal are a few common, widely read stories that impart wisdom, devotion, supernatural elements and positive contentment. But the passed-down spiritual practices are still always mistaken now with innocent superstitious beliefs and practices. Moreover in every region of India has its own way of worshiping or paying tribute to the god, which involves self-hurting, and later evolved into a form of bribery between humans and the Gods. In Tamil culture, the people from the past had suggested several ways and methods to worship God

with immediate benefits and diagnostics, which were later mistaken as a superstitious belief and lost its original purpose. Almost all Indian folk literatures are not just stories but ritual performing texts.

i) **‘Adi Pradakshinam’** : it is performed to get married soon and fall in love, or if we have any previous sins, it would be nullified by this act. The procedure is simple, a men or woman have to walk around the temple with the measure of every ‘Adi’ (feet). But, the rules are like between each foot there shouldn't be any gap, the way of walking should be in a straight line, to be precise, it is like tight rope walking or funambulism on the floor. This parikaram (remedy) is performed to get married soon. But the real idea behind this is that if a person is too fat or very lean and anemic, they may not attract the suitor of the wedding. So while performing Adi Pradakshinam the fat one cannot perform it as his/her thighs would be too stout to walk effortlessly, meanwhile, the lean and anemic one will be nauseated or dizzy while performing. So the ancestor and poets, through several poems they instructed this practice, so the groom or bride-to-be would become health-conscious and prepare themselves to be fit to get married.

ii) **Shayana Pradakshina** : It is performed to get good health or to get rid of any disease. Also, some perform by taking a vow to succeed in it. In this parikaram, the devotee would lay down flat on the floor of the temple with all of his body parts touching the ground, along with his joined hands stretched out

with divine respect (Shastanga Namaskaram), and roll around the temple. Scientifically, it is better to sleep lying down on the floor than sleeping on a mattress. It will enhance sleep, digestion, along strengthen the bones. So, the roughly polished granite stone floors of the temple are well for body ailments and tiredness. The forefather had the vision that modern rapid cure medicine may suppress this, hard natural remedies, they made these kinds of practices integrated with holy belief as it wouldn't be forgotten or ignored in long tenure. Unfortunately, people are now using it as a bribe to make their deal with God to get their deeds done. The child of a parent may be suffering from a bodily ailment or disease. The kid is the one who is essential to perform Shayana Pradakshina, but his/her mother/father performs on behalf of their kid and as a result, the parents' health will be enhanced regardless of their kid and they expect god to take care of their offspring.

- iii) **Agni Chatti (Fire-pot carrying) and Thee Midhi (Fire Walking) :** Agni Chatti is carrying a clay pot, that contains fire wood that keeps on burning, the devote should carrying that burning firepot in his/her palm and reach the temple similarly the Thee Midhi certain distance of the ground would be filled with burning charcoal and the devote have to walk/run through it as a penance. Both of these pariharam involves fire (Agni). These two practices have physical, spiritual, and psychological effects. Physically, it develops endurance, tolerance and

patience. Spiritually, it releases one from their sins from the past and before life. Psychologically, it builds courage, confidence and willpower. More than that, it is also believed that our body has several chakras which including chakras in our palms and in our feet. If you see the human anatomy maximum number of nerves can be found in the hand and leg. So, experiencing fire (heat) with a vow can vibrate that chakra, resulting in enhanced physical well-being.

Other than these major practices, there are some other wide practices like Anna Dhanam (Food offering), Vratas (Fasting) and Anga Dhana (Body piercing) etc. In Tamil folk literature, we have Kanda Puranam, Draupadi Amman Folk Epics and Madurai Veeran Kathai, which involves Kavadi, Fire-walking, Deification of hero, Body Sacrifices and Trance Dances in its story plot. Even a celestial character like Draupadi did undergo Fire Walking (Theemithi) to prove her chastity; to that extent, the folk tales say that even a Godly being also had to undergo certain rituals to prove themselves. Every state of India has its own folk literature that at least has a few pariharam made in its storyline. Kerala has Ayyapan Folk Ballads, Andhra Pradesh has Gangamma Jatara Tales, Karnataka has Male Mahadeshwara Katha, Bengal has Chandi Mangal Kavya, and North India has Sati Folk Tales.

Anthropology in Environment :

The culture and traditional practices are intertwined with nature and natural elements in every possible way. Either the natives worship all natural elements (sun, air, water and land) or devote themselves

to an idol and worship it with these elements. Either way, Indians respect nature, unlike Western native culture, which prioritizes only mythology and history. *Brhat Samhitā*, a Sanskrit encyclopedia written by Varahamihira in the 6th Century CE. It lets about the weather prediction, explicitly records the ant as an omen, it says, “When ants carry their eggs from below to above, know that there will be rain.” Even with the ants, the people were able to predict the weather and climatic changes. Periods like Navratri celebration and in the Tamil month called Puratasi, Karthikai and Margazhi, people often used to fast for their desires and wishes to happen every month and divine occasions have a mythological story behind it and even behind that hides the hidden science. These are the seasons where the climate won’t be stable.

Andal, *Thiruppavai* is a Tamil devotional poem of the Margazhi month (December-January). The thirty days of Thiruppavai are sung each morning in that month. “Mārgaḷi thingaḷ mathi nīrainda nannāḷ nīrāḍap pōdhuvīr pōdhumino nēr izhaiyīr”, which means, on this full moon day (first day of Margazhi), an auspicious day, the maidens with bangles! Shall come and let us all bathe in the sacred water. The instructions are simple: the devotee should

take a cold shower in the morning, which is scientifically rejuvenating the person, and won’t feel too cold during the winter of mid-December to mid-January. The temples will provide ‘prasatham’ (food or sacred ash with the blessings of god), which often would be some grains or grams that are rich in protein to withstand the coming winter. All this takes place from 4 a.m. onwards, which is called ‘Bhramamuhurtham’. Generally, waking up early in the morning has numerous benefits and if one practices waking up in the winter, it would be too easy to be awake in summer or wake up even before 4 am. Mostly sunny followed by drizzle or heavy downpour. This climate fluctuation has the probability of causing several chronic diseases and indigestion. To avoid this by cleansing your inner organs once in year and avoiding eating meat in the name of god will support your health with reduced body temperature and being a natural anatomical detox.

Misunderstood Spiritual Practices :

How much the Indian may get educated, even to the level of research, they still fell much unfulfilled is they take up some action without the sign of God. Some commonly done practices and their real meaning are listed.

S.No.	Action	Spiritual Reason	Scientific/Common Reason
1.	Do not cut the nails after 6 pm.	Will attract evil energy	Lack of light in those days, so nails or hair may fall in the food and we may not count the money properly in that dark hour and give extra money.
2.	Do not comb the hair after 6 pm.	Something bad will happen to the family	
3.	Do not give money after 6 pm.	The Goddess of wealth will leave the house	

4.	Driving over lemons in a new vehicle	The Goddess of safety and security will follow and travel along with you.	In those days, people traveled with cows, horses and bullocks during the journey; those animals might get infected in their legs. So they made their animal to stamp in lemon before the journey.
5.	Broken mirror and spilled oil	Bad luck	After cleaning the broken glass or oil, we may have left some pieces or drops. Later one shall suffer from piercing or slip to fall.

The above-listed are very common beliefs among innumerable practices. Tamil Nadu especially has a contrasting set of superstitious practices, categorized into astrology, omens, rituals, unknown seasonal changes, and daily customs.

Summation :

Initially, the primitive people started adopting certain practices as part of their life, which were adaptable to the seasonal climate and lifestyle of the native. Later, the generations started to adopt some practices from other cultures. Some may be effective and more may be defective because the people from the target culture may not experience the same climate and monsoon in their native environment, for example, Indians (People of the equatorial region) wearing jeans/Denim from the western culture. So the people of the native

used the fear and loyalty to god to make these practices withstand through evolution with different meanings. And it becomes a superstitious belief when one's parent or grandparent introduces these practices without enlightening them on their true purpose. The primitive or classical people practiced this kind of inducing God with effectual healthy practices to preserve it. It is a great way but when the age of lifestyle differs sometimes it make humans to do some insane practices that lead to foolishness of idealess doings.

Reference :

1. Andal. *Tiruppâvai*. Translations and commentary (online editions / Ramanuja / Sadagopan e-book). Accessed 3 Oct. 2025.
2. Varâhamihira. *B[hat SaChitâ*. Translated by N. Chidambaram Iyer, 1884. Chapter 21 ("On Rainfall")



भारतीय सिनेमा में लोकगीत

राकेश सुभाषभाई दवे

प्राध्यापक-संगीत (गायन) विभाग

फेकल्टी ऑफ़ परफोर्मिंग आर्ट्स,

दि महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा वड़ोदर, गुजरात

सारांश :

भारतीय संस्कृति एवं परंपरा संगीत से ही विद्यमान है। भारतीय संगीत में लोकसंगीत या लोकगीत का अद्वितीय स्थान रहा है। इस संगीत में लोकगीत की अपनी अलग एक पहचान है। और साथ ही साथ सिनेमा की जान भी है। भारतीय संगीत में सिने संगीत एक ऐसी विधा है, जिसने हमारी संस्कृति तथा परंपरा को जीवंत रखा। भारतीय संस्कृति में लोकगीत विभिन्न धर्मों एवं जातियों के रीत-रिवाजों, रहन-सहन, खान-पान तथा अपनी जीवन शैली को दर्शाते हैं। जिसने सिनेमा को एक नैष्ठिक एवं प्रामाणिक स्पर्श दिया है। सामाजिक त्योहारों-अवसरों, जन्म, विवाह इत्यादी से जुड़े लोकगीत सिने कथा के अनुसार दृश्य के लिए एक विशिष्ट, अत्यंत भावजन्य माहौल खड़ा कर देते हैं जिससे कहानी में गहराई उत्पन्न होती है। लोकगीत सिनेमा की कहानी के अनुसार पात्रों की खुशी, प्रेम, दुःख या सामाजिक संघर्ष जैसी भावनाओं को व्यक्त करते हैं। लोकगीत केवल सिनेमा की पृष्ठभूमि तक सीमित नहीं रहते बल्कि कहानी को आगे बढ़ाने तथा महत्वपूर्ण जानकारी देने का काम भी यथा योग्य रूप से करते हैं। सिनेमा में लोकगीत का समावेश मात्र मनोरंजन ही नहीं होता बल्कि यह भारतीय लोक संस्कृति को जीवंत रखने, दर्शकों के साथ भावनात्मक जुड़ाव रखने, सभ्यता तथा एकता जैसे गुणों को विकसित करने के साथ-साथ कहानी में गहराई लाने का महत्वपूर्ण कार्य भी करते हैं।

बीज शब्द :

भारतीय, सिनेमा, लोकगीत।

प्रस्तावना :

विविध धर्मों एवं जातियों से समृद्ध भारतदेश है वे किसी न किसी नृत्य शैली के साथ जुड़े होते हैं 'अनेकता में एकता' की व्याख्या को जीवंत रखने के तथा भारत देश के विभिन्न धर्मों एवं जातीय क्षेत्रों के लिए भारतीय संस्कृति और सभ्यता में व्याप्त भारतीय संगीत की एक विशिष्ट शैली 'लोकगीत' का महत्वपूर्ण साथ जुड़ी विशिष्ट शैली के रूप में प्रदर्शित होते हैं। कार्य रहा है। भारत देश का अधिकांश लोकसंगीत लोकगीत लोगों द्वारा बनाया गया लयदार गीत है। लोगों की आस्था और परंपरा कि विरासत से नृत्य प्रधान है। मतलब यह है कि जो गीत गाए जाते टकराती हुई लोकगीतों की निर्मल धाराने सिनेमा

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

325

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

और समाज को किस प्रकार प्रकाशित किया? यह जानना भी आवश्यक है। भारतीय सिनेमा ने जिस प्रकार लोक बोली को अपनाया और उसका कलात्मक रूप से प्रयोग किया वह श्रेष्ठतम है।

लोक परंपरा से जुड़े इस संगीत में कोई कठोर नियम नहीं होता। लोगों की सहज वाणी के रूप में ही प्रस्फुटित होता है। जो जन्मोत्सव, सगाई, शादी, त्योहारों या अवसरों जैसे कई समारोह का एक महत्वपूर्ण हिस्सा कहलाते हैं। देश के ग्रामीण हिस्सों में जैसे, खेत में रोपण-कटाई जैसी कृषिक विधियों से जुड़े हुए लोकगीत सिनेमा की कहानीयों की गतिविधियों को भी दर्शाते हैं। तथा कहानी को आगे बढ़ाने में मदद करते हैं।

भारतीय सिनेमा में लोकगीत :

बीसवीं सदी से लेकर आज तक सिनेमा ने बहुत ही कम समय में लोक जीवन पर अत्यंत गहरा प्रभाव डाला। सिनेमा से लोगों की संस्कृति-सभ्यता, क्रिया-कलाप व्यापार आदि बहुत ही प्रभावित हुए हैं।

“‘लोक’ शब्द का मूल अर्थ होता है, देखने वाला। ऋग्वेद में ‘लोक’ शब्द ‘जन’ के पर्याय के तौर पर प्रयोग में आया है। लोक के सांस्कृतिक पक्ष को जब हम समाज और परंपरा के गाढ़ेपन के बीच देखते और समझते हैं तो हमारा परिचय लोकगीतों के भरे-पूरे संसार से होता है। लोकगीतों के इस संसारने जहाँ हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत को एक आधार दिया वहीं सुगम संगीत और फिल्मों में इनके चलन का दौर आज तक नए-नए प्रयोगों के साथ जारी है।”

(1) हिन्दी सिनेमा का लोक – Jansatta)

भारतीय सिनेमा में लोक संस्कृति का दिव्य स्वरूप हमें देखने को मिलता है, जो खास तौर पर आम जनता की संस्कृति व सभ्यता की उदात्त भावना है। लोकगीतों ने सिनेमा कथा को भाषा दी, तो साथ

ही साथ अभिव्यक्त करने की लय भी दी। इस सांस्कृतिक जुड़ाव का एक पक्ष यह भी है कि लोकगीत लोगों के हृदय की निर्मल वाणी है, जो भारतीय सिनेमा के साथ और भी जीवंत हो गई।

“लोकगीत लोकमानस की सहज और लयात्मक अभिव्यक्ति है, जो लोक की स्वेच्छा एवं स्वतः स्फूर्ति जन्य व लोकजीवन का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करने वाली होती है। अगर सिनेमा समाज का दर्पण है, तो लोकगीत समाज की सरल अभिव्यक्ति है। लोक के हृदय का सच्चा उद्गार है। जो शुद्ध प्राकृत अवस्था में स्वतः फूटता है। इसे परंपरा के बहुरंगी दायरों के बीच पनपता उल्लासमय संगीत भी कह सकते हैं। दिलचस्प है कि संगीत की इस दुनिया का विस्तार और विन्यास दोनों ही अलिखित हैं, मौखिक हैं।”

(2) (हिन्दी सिनेमा का लोक – Jansatta)

लोकगीत वो गीत होते हैं जो किसी राज्य, शहर, गांव या कस्बों में पैदा होते हैं जिन्हें किसी संगीतकार ने नहीं बल्कि लोगों के समूह ने ही शब्दबद्ध किया होता है और ताने भी दि होती है।

आज से कई वर्ष पूर्व दूर-दराज क्षेत्रों में पनपते लोकगीतों की पहुँच अपने-अपने क्षेत्रों तक ही सीमित रहती थी। किन्तु जबसे भारतदेश में सिनेमा का आगमन हुआ तभी से लोगों की जीवन शैली संस्कृति, सभ्यता आदि को जनमानस तक पहुँचा ने का श्रेष्ठ कार्य सिनेमा ने किया। इससे फायदा यह हुआ कि भारतदेश के अलग-अलग विस्तारों में रह रहे लोगों को अलग-अलग प्रांतीय क्षेत्रों, संस्कृति, सभ्यता, रहन-सहन, खान-पान आदि की जानकारी प्राप्त होने लगी। इसमें भी सिनेमा में लोकगीतों के पदार्पण से सोने पे सुहागा आ गया। असल में हम बात करें तो लोकगीतों के बिना सिनेमा जगत की कल्पना ही अधूरी है।

“सिनेमा में लोकगीत की लय, शब्दावली, छंदों का प्रयोग करके अनेक गीत लिखे गए हैं। चूंकि लोकगीतों की लय सहज होती है और वे किसी प्रकार के नियम से बंधे नहीं होते इसलिए फिल्मों में इनका कुशलता से उपयोग किया जा सकता है। लोकगीत की शैली तीन प्रकार की है। एक ठेठ लोकगीत जैसे कजली, बिरहा, चैती लावणी होली आदि। दूसरे वे जो किसी न किसी श्रम से जुड़े हुए हैं और उन्हें समूहगान (कोरस गीत) के रूप में गाया जाता है। रोपनी, जतसार, सोहनी, गोदना आदि। तीसरे वे जिनमें टेक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। सिनेमा में लगभग सभी अवसरों पर गाए जाने वाले विभिन्न अंचलों और लोक प्रचलित शैलियों से संबंधित लोकगीतों का प्रयोग किया गया है।”

(3) (डॉ.शशि रानी, हिंदी सिनेमा में लोकगीत)

सिनेमा में लोकगीत व लोकधुनों का उपयोग नौशाद साहब, सी रामचंद्र, जयदेव, एस. डी. बर्मन से लेकर लक्ष्मीकांत प्यारेलाल शंकर एहसान लॉय और ए. आर. रहमान तक कई संगीतकारों ने किया। जिन्होंने लोकगीतों के सहारे सिने संगीत की पूरी एक दुनिया ही रच डाली। भारत में सिनेमा और संगीत का साथ ऐसा बना है कि इसने क्षेत्र, परंपरा और संस्कृति के दायरों को एक ऐसे समुद्र में मिला दिया जो ‘अनेकता में एकता’ की व्याख्या को जीवंत रखता है।

हिन्दी सिनेमा में 1930 के दशक से संगीत दे रहे नौशाद साहब ने कभी भी अपने गीतों के लिए संगीत से समझौता नहीं किया। उन्होंने अपने गीतों में लोकधुनों और लोक संगीत की मधुरता पिरोई। साथ ही अपने संगीत में विभिन्न भारतीय पारंपरिक लोकधुनों को समाहित किया, जो उनकी रचनाओं को एक खास पहचान देता था। उन्होंने लोक संगीत के तत्वों को सुरिलें तरीके से पेश किया और फिल्म संगीत को समृद्ध बनाया। उन्हें उत्तर भारत के लोक संगीत से

बेहद प्यार था। खुद नौशाद साहब का कथन है कि, “हमारे संगीत की अपनी परंपराएँ हैं। ये परंपराएँ सैंकड़ों वर्षों की तपस्या, रियाज़ से बनी हैं। इसमें हमारी मिट्टी की सुगंध है, हमारी जिंदगी की शकल है।”

नौशाद साहब के संगीत में सिने कथा का सामंजस्य देखने को मिलता है उन्होंने लोक संगीत की जड़ों को समझा फिर उन्हें सिनेमा की कहानी के साथ जोड़ा और कहानी को जीवंत बनाया। इससे दर्शकों में लोकगीतों और संगीत का गहरा प्रभाव पड़ा। नौशाद साहब हिन्दु मुस्लिम संस्कृति तथा कई भाषाओं की अच्छी पहचान रखने वालों में से एक थे। भाषाओं की बात करें तो फिल्म गंगा-जमुना में शुद्ध भोजपुरी बोली का प्रयोग उनकी एक विशेषता का परिचायक है। 1961 में आई फिल्म ‘गंगा-जमुना’ के सारे गीत भोजपुरी बोली में थे। शकील बदायुनी के लीखे इन गीतों को नौशाद साहब ने लोकधुनों में ढाला था। फिल्म ‘गंगा-जमुना’ के गीत ‘ढूँढो-ढूँढो रे साजना...’, ‘दगाबाज तोरी बतियां...’, ‘नैन लड जई है तो मनवा मा कसक होइबे करी...’, ‘ओ छलिया रे छलिया...’ गीतों द्वारा संस्कृति का संवर्धन करते हुए उन्होंने फिल्म संगीत में भारतीय लोक परंपराओं और सांस्कृतिक धरोहर को जीवित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन्होंने लोक संगीत के माध्यम से इस धरोहर को जन-साधारण तक पहुंचाया। तथा लोकसंगीत को अपने संगीत का अभिन्न अंग बनाकर उसे नई ऊंचाई पर पहुंचाया।

नौशाद साहब के प्रत्येक गीतों में मिट्टी की खुशबू हमें मिलती है। जिससे हमें आह्लादक आनंदानुभूति प्राप्त होती है। फिल्म ‘मदर इंडिया’ में नौशाद साहब ने ग्रामीण वाद्यों के शानदार प्रयोग से भारतीय गांवों को जीवंत रखा। जैसे इस फिल्म के समूहगीत ‘गाडी वाले गाडी धीरे हांक रे ...’, दूसरा ‘दुःख भरे दिन बिते रे भैया...’ इत्यादि।

यहाँ पर नौशाद साहब द्वारा सिनेमा में लोक संगीत का जो भरपुर मात्रा में उपयोग किया गया है उसके गीतों की सूची निम्नांकित दर्शायी गयी है।

क्रम	फिल्म का नाम	प्रदर्शित वर्ष	गीत के बोल	गायक-गायिकाओं के नाम
1	रतन	1944	रूम झुम बरसे बादरवा	जोहराबाई अंबालेवली
2	रतन	1944	ओ जाने वाले बालमवा	अमीरबाई कर्नाटकी-शाम कुमार
3	मेला	1948	आई सावन ऋतु आई	शमशाद - मुकेश
4	बाबुल	1950	छोड़ बाबुल का घर मोहे पीके नगर	शमशाद
5	बाबुल	1950	नदी किनारे साथ हमारे	रफी - शमशाद - तलत महेमूद
6	बैजू बावरा	1952	दूर कोई गाए धुन ये सुनाए	शमशाद - लता - रफी
7	आन	1952	आज मेरे मन मे सखी बाँसुरी बजाए कोई	लता
8	आन	1952	खेलो रंग हमारे संग	लता - शमशाद
9	आन	1952	आग लगी तन मन में	शमशाद
10	अमर	1954	उदी उदी छाई घटा	लता
11	अमर	1954	उमंगों को सखी पी की नगरीया	लता
12	शबाब	1954	लागी मोरे मन की	शमशाद
13	उड़न खटोला	1955	मोरे संयाजी उतरेंगे पार	लता
14	मधर इंडिया	1957	दुःख भरे दिन बीते रे भैया	रफी - मन्नाडे - आशा - शमशाद
15	मधर इंडिया	1957	ओ गाड़ी वाले गाड़ी धीरे हाँकरे	रफी - शमशाद
16	मधर इंडिया	1957	पि के घर आज प्यारी दुल्हनिया चली	शमशाद
17	मधर इंडिया	1957	होली आई रे कन्हाई रंग छलके	शमशाद
18	मधर इंडिया	1957	नगरी नगरी द्वारे द्वारे ढूँढ़ूँ रे साँवरिया	लता
19	कोहिनूर	1960	तन रंग लोजी आज मन रंग लो	रफी - लता
20	गंगा जमुना	1961	नैन लड़ जई है तो	रफी
21	गंगा जमुना	1961	ओ छलिया रे छलिया	आशा - रफी
22	गंगा जमुना	1961	हो रे हो छनन घूँघर बजे	लता - महेन्द्र कपूर

इस प्रकार हिन्दी फिल्मी गीतों में नौशाद साहब ने लोकधुनों का भरपूर उपयोग किया। कुछ अन्य संगीतकारों ने भी फिल्म संगीत में लोक गीतों का प्रयोग किया है, जो इस प्रकार हैं।

क्रम	फिल्म का नाम	प्रदर्शित वर्ष	गीत के बोल	संगीतकार का नाम	गायक-गायिकाओं के नाम
1	परदेसी	1957	रिमझिम बरसे पानी	अनिल बिस्वास	मीना कपूर
2	मधुमती	1958	चढ़ गयो पापी बिछुवा	सलिल चौधरी	लता-मन्नाडे
3	गंगा मैया तोहे पियरी चढ़ाई बे	1962	सोनवा के पिंजरा में बंध भईल हाय राम	चित्रगुप्त	रफी
4	गोदान	1963	पिपरा के पतवा सरीखे डोले मनवा	पंडित रवि शंकर	रफी
5	गोदान	1963	हिया जरत रहत दिन रैन हो रामा	पंडित रवि शंकर	मुकेश
6	तीसरी कसम्	1966	चलत मुसाफिर मोह लिया रे	शंकर – जयकिशन	मन्नाडे
7	मिलन	1967	सावन का महीना	लक्ष्मीकांत प्यारेलाल	मुकेश -लता
8	नया जमाना	1971	रामा रामा गजब हुई गावा रे	एस. डी. बर्मन	लता

भारतीय सिनेमा में लोकगीत के उपयोग से न केवल भारतीय संस्कृति बल्कि फिल्म संगीत भी अत्यंत समृद्ध हुआ है। आधुनिक फिल्मों में लोकगीत के उपयोग से तो आज की पीढ़ी भली-भाँति परिचित है, किन्तु पुराने सिने संगीत में लोकगीतों के किये गए प्रयोग को भी आज की पीढ़ी समझे, जाने और इससे प्रेरित हो, यही इस शोध प्रपत्र का उद्देश है।

संदर्भ सूची :

1. हिन्दी सिनेमा का लोक। Jansatta <https://share.google/16H20IbCTcCCoIV58>.
2. हिन्दी सिनेमा का लोक। Jansatta <https://share.google/16H20IbCTcCCoIV58>.
3. डॉ. शशि रानी, (July 2018), हिन्दी सिनेमा में लोकगीत International Research Journal of Human Resource and Social Sciences ISSN(O) : (2349-4085) ISSN (P) (2394-4218) Website- www.aarf.asia, Email : editoraarf@gmail.com



भारतीय लोककला परंपरा में प्रकृति का अंकन

रवि कुमार

शोधार्थी

ललित कला विभाग

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, हरियाणा

आँचल

शोधार्थी

चित्रकला विभाग,

कुमाऊँ यूनिवर्सिटी, नैनीताल

सारांश :

भारतीय लोक कला परंपरा में प्रकृति का अंकन शाश्वत सांस्कृतिक दृष्टिकोण और सामुदायिक जीवन के अनुभवों का जीवंत दस्तावेज़ है। लोक कलाकार अपनी कला के माध्यम से न केवल सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति करते हैं, बल्कि वे प्रकृति और जीवन के गहरे संबंध को भी उजागर करते हैं। मधुबनी, वारली, पट्टचित्र, गोंड और फड़ जैसी लोक कलाओं में वृक्ष, सूर्य, चंद्रमा, नदियाँ, पशु-पक्षी और ऋतु-चक्र के विविध रूपों का निरंतर चित्रण होता आया है। इन कलाओं में प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि वह जीवन, समृद्धि और आध्यात्मिकता का प्रतीक है। मधुबनी कला में कमल, मछली और वृक्ष जैसे प्रतीक जीवन और प्रजननशीलता के प्रतीक के रूप में सामने आते हैं; वारली चित्रों में कृषि, शिकार और जीवन-नृत्य प्रकृति और मानव के सह-अस्तित्व का दर्पण हैं; गोंड कला में वृक्षों और जीव-जंतुओं का अंकन जनजातीय विश्वदृष्टि को उजागर करता है; जबकि पट्टचित्र और फड़ कला में पौराणिक आख्यानों को प्राकृतिक परिवेश से जोड़ा जाता है। इस प्रकार लोक कला का प्रत्येक रूप पर्यावरणीय चेतना और सांस्कृतिक आस्था का सामंजस्यपूर्ण रूप प्रस्तुत करता है। वर्तमान वैश्वीकरण और बाज़ारीकरण के दौर में लोक कला की मौलिकता पर कई प्रश्न खड़े हुए हैं, किन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि लोक कला ने आधुनिक समय में पर्यावरणीय आंदोलनों और सतत विकास की अवधारणा को नई दृष्टि दी है। यह अध्ययन विभिन्न लोक कला परंपराओं में प्रकृति के प्रतीकात्मक और दार्शनिक आयामों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय लोक कला केवल कला-रूप नहीं, बल्कि प्रकृति और मानव के सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व का जीवंत सांस्कृतिक घोषणापत्र है।

बीज शब्द :

भारतीय लोक कला, प्रकृति का अंकन, मधुबनी, वारली और गोंड कला, सांस्कृतिक प्रतीकवाद।

भूमिका :

‘लोक’ शब्द का अर्थ मानस का सांस्कृतिक अर्थ सारी मनुष्य जाति व जनसाधारण से लिया गया चिन्तन वेदों में ‘लोक’ शब्द का प्रयोग ‘भुवन’ के है। अशोक सम्राट के शिलालेखों में ‘लोक’ का अर्थ में हुआ है, पर आगे चलकर ‘लोक’ शब्द का आशय ‘समस्त प्रयोजनों’ के लिए किया गया था।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

330

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

लोक की व्यापकता को गाँव व नगर की सीमाओं में बाँधा नहीं जा सकता।’

“लोक शब्द की परिभाषा तथा व्याख्या डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ‘लोक’ शब्द के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि ‘लोक’ शब्द का अर्थ जनपद या गाँव नहीं बल्कि नगरों व गाँवों में फैली वह समस्त जनता है जिनके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर के परिष्कृत, रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं।”¹

शचीरानी गुट्टु के अनुसार : “लोक कला युग-युग का इतिहास संजोए मानवीय भावनाओं के साथ-साथ चल रही है। परम्परागत अनुभवः अगणित मानवीय भावनाओं और स्मृतियों के ताने-बाने से उसकी सृष्टि हुई है।” उनका यह भी मानना था की प्जन कला केवल शादी-ब्याह तक ही सीमित नहीं है बल्कि वह सर्वक्षेत्र आचारों, संस्कारों और जीवन को प्रत्येक परिस्थिति में रम गयी है। यह तो जनपद के हृदयगत उद् गार हैं जो लोक परम्परा के रूप में लोक-चित्रण कहलाते हैं।”²

लोक-कला जन साधारण की भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति है। सभ्यता के विकास के क्रम में जहाँ एक ओर वह आदिम कला से जुड़ी रही है, वहीं दूसरी ओर सुसंस्कृत कला के मध्य स्थित रहीं है। इस कला को मुख्यतः ग्रामीण जनता से सम्बन्धित किया जाता है, क्योंकि वस्तुतः इस कला को आगे बढ़ाने का कार्य ग्रामीण जनता ने ही किया है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा संस्कृति से अपनी परम्पराओं को प्राप्त करती हुई यह लोक-कला आज भी हमारे पारिवारिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन की परम्पराओं के साथ सम्बद्ध होकर, हमारे बौद्धिक धरातल को स्पर्श किये बिना हमारे आँगनों में पलती हुई आगे बढ़ती रही है।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

इस प्रकार ‘लोक’ शब्द को प्रतिबिम्बित करने वाली यह कला इसी मानव समूह की भावनाओं का सहज प्रतिरूप है जो उसकी सौन्दर्यानुभूति और मांगलिक भावनाओं के प्रतीक रूप में अभिव्यक्त होती रही है। लोक-मानस के हृदय की सरलता व सुबोधता लोक कला के प्राण हैं। लोक-कला के सौन्दर्य-विधान को समाज के बहु-संख्यक लोग सहज श्वास की तरह ही स्वीकारते चलते हैं। लोक-कलायें प्रमुख रूप से स्थानीय ही होती हैं। स्थानीय परम्पराओं की दृढ़ता के कारण इस कला में प्रयुक्त की जाने वाली सामग्री भी प्रमुखतया स्थानीय व आंचलिक ही होती है।”³

लोककला और प्रकृति का संबंध :

लोककला से हमारा स्वाभाविक अपनत्व है। लोककला एक प्रकार की रचनात्मक कला है क्यों कि यह मिश्रण तथा परिष्करण, जूठन या अनुकृति नहीं थी विचारों के नवोत्थान की भांति कलात्मक जागृति तथा सांस्कृतिक उत्थान का शिष्ट स्वरूप था। लोककला को जीवित रखने और उसमें नित नये जीवन तत्वों का समावेश करने का श्रेय हमारी नारियों का रहा है। क्योंकि ग्रामीण नारियों का अत्यधिक समय प्रकृति के देख-रेख में ही जाता है। वह अपने दैनिक दिनचर्या के अंतर्गत अनेको कार्यों को करके व उन्हीं से प्रेरणा लेकर अपने खाली समय में कलाकृति का निर्माण करते समय वह प्रकृति को ही विषय के रूप में चुनती है। प्रकृति से संबंधित विषय-वस्तु को अपनी कलाकृति में जीवनदान देती है। ये कलावस्तुएँ जो लोकमानस में सुरक्षित रहकर लोक के हाथों अभिव्यक्त एवं पोषित होती हुई अब तक पहुंचती है किसी विशेष उद्देश्य से बनती रही है। यद्यपि, विभिन्न कलावस्तुओं के साथ जो मुख्य विधान जुड़े होते हैं उनको पकड़ पाना सहज नहीं है फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनके निर्माण के मूल में कुछ तो प्राकृतिक भावना है और कुछ मनोरंजनात्मक की। यही कारण है कि लोककला की यह थाती भारत के विभिन्न जनपदों एवं जातियों में

अनेक तरह से संपूजित एवं समाहित होकर आज भी हमारे लोक-जीवन के साथ अभिन्न रूप से बनी हुई है।

लोककला के अंतर्गत न केवल प्रकृति के संबंधित चित्रों का समावेश हुआ बल्कि चित्रों को पूर्ण करने के लिए प्रकृति एक साधन के रूप में भी प्रयोग में ली गई। लोककला में पशु-पक्षियों का चित्रण मंगलकामना से भी किया गया है। शुक, सारिका, कुक्कुट, कलहंस, कोकिल, मयूर, सारस, चकोर, हरिण, घोड़ा तथा हाथी आदि पशु-पक्षियों को चित्रित किया जाता है। इनके अतिरिक्त फल-पत्तियों और रंग-बिरंगी भावात्मक आकृतियाँ भी चित्रित की जाती हैं।⁴

लोक कला में स्वाभाविक (प्राकृतिक) सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति है। इनमें प्रतीकात्मकता, रूपांकन का विशेष उपयोग, सामग्रियों, रंग और बनाने की विधियों का विशिष्ट उपयोग लोक कला के निर्माण में किया जाता है। लोक कला और शिल्प के बीच एक पतली रेखा है। इन दोनों में रचनात्मकता, अंतःप्रेरणा (स्वाभाविक), आवश्यकताएँ और सौंदर्यबोध शामिल हैं।⁵

लोक कलाओं में प्रारम्भ से ही प्रकृति पूजा होती रही है, जैसे - कुमाऊँ क्षेत्र में प्रकृति पूजा कुमाऊँ क्षेत्र में धार्मिक कृत्यों में प्रकृति पूजा का विशेष महत्व है, यहाँ के पर्वत, नदियाँ, वृक्ष, भूमि, वनस्पतियाँ मूल मानव धर्म के अवशेष हैं। नन्दा देवी पर्वत, रामगंगा देवी, काली नदी पयां, पीपल, केला आदि वृक्ष जौ, गाय, नाग, बुरुंश तथा रैमासी के फूल और सूर्य चन्द्र तथा अग्नि की पूजा प्रागैतिहासिक संस्कृति एवं धर्म के प्रतीक हैं।⁶

लोक कला की प्रमुख परंपराएँ और प्रकृति का चित्रण :

1) मधुबनी चित्रकला (बिहार) :

मधुबनी चित्रकारी, जिसे मिथिला की कला (क्योंकि यह बिहार के मिथिला प्रदेश में पनपी थी) भी कहा जाता है, की विशेषता चटकीले और विषम रंगों से

भरे गए रेखा-चित्र अथवा आकृतियाँ हैं। इस तरह की चित्रकारी पारम्परिक रूप से इस प्रदेश की महिलाएँ ही करती आ रही हैं, लेकिन आज इसकी बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए पुरुष भी इस कला से जुड़ गए हैं। ये चित्र अपने आदिवासी रूप और चटकीले और मटियाले रंगों के प्रयोग के कारण लोकप्रिय हैं। मधुबनी चित्रकला में प्रकृति और पौराणिक गाथाओं के वही चित्र उभारे जाते हैं, जो इनकीशेली से मेल खाते हैं।



चित्र संख्या- 1 : रामायण चित्रण, चित्रकार, सीता देवी,

स्रोत : <https://share.google/images/qTwfmVOlrtmFNXVRT>

डिजाइनों का भरपूर चित्रण किया गया है वे हिन्दू देवी-देवताओं से संबंधित हैं जैसे कि कृष्ण, राम, शिव, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सूर्य और चन्द्रमा, तुलसी के पौधे, राजदरबारों के दृश्य, सामाजिक समारोह आदि। इसमें खाली स्थानों को भरने के लिए फूल-पत्तियों, पशुओं और पक्षियों के चित्रों, ज्यामितीय डिजाइनों का प्रयोग किया जाता है। यह हस्तकौशल एक पीढ़ी को सौंपती आई है, इसलिए इनके पारम्परिक डिजाइनों और नमूना का पूरी तरह से सुरक्षित रखा जाता है।⁷

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

2) कालीघाट चित्रकला :

कालीघाट चित्रकला का उद्गम लगभग 19वीं सदी में कोलकाता के कालीघाट मंदिर में हुआ माना जाता है, इस चित्रकला में बंगाल में समय-समय में समाज के विभिन्न वर्गों यथा स्त्री, उद्यमी, मजदूर आदि का चित्रण मुख्यतः मिलता है। मूल रूप से यह कला लोक व शहरी जीवन का दर्पण रही, परन्तु इसमें प्रकृति और उसके सौंदर्य का चित्रण भी गहरे रूप में मिलता है।



चित्र संख्या-2 : कालीघाट चित्र

स्रोत : <https://share.google/images/ay0gEy7NgFhDezrk0>

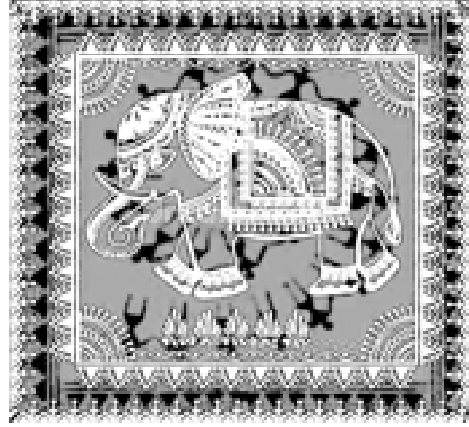
पश्चिम बंगाल की पटुवा चित्रकला भी इसी शृंखला की एक कड़ी है। इस शैली की चित्रकला में चित्रकार लम्बे-लम्बे कागजों में रामायण, महाभारत पर आधारित प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग करके चित्रण करते हैं। व गाकर उस चित्रण का व्याख्यान करते हैं।⁸

कालीघाट चित्रों में वृक्ष, झाड़ियाँ, कमल, पक्षी आदि को सरल और सजावटी रूप में दर्शाया गया। ये अक्सर मुख्य पात्रों को उभारने के लिए बैकग्राउंड की तरह प्रयुक्त हुए जल और वनस्पति का चित्रण, तालाब, कमल-पुष्प, जलचर जीव और हरे-भरे वृक्ष जीवन की सहजता और सौंदर्य को दर्शाते हैं। वर्षा, वसंत और शरद जैसे ऋतु-परिवेश को रंगों और आकृतियों द्वारा व्यक्त किया गया।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

3) माँडना चित्रकला :

ऋतम्भरा काश के अनुसार : “रंगोली या माँडना हमारी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति की समृद्धि के प्रतीक हैं। इसलिए चौंसठ कलाओं में माँडना को भी स्थान प्राप्त है। उत्सव, पर्व तथा अनेकानेक मांगलिक अवसरों पर माँडना से घर आँगन को खूबसूरती के साथ अलंकृत किया जाता है।”



चित्र संख्या-3 : गजराज , माँडना चित्रकला

स्रोत : <https://share.google/images/0VVEzpEdXSwmRuKOk>

माँडना में सजावट के लिए प्राकृतिक तत्वों का प्रयोग किया गया है, माँडना जब सूख जाती है तब उत्सव अथवा विषयानुसार चावल, कलश, सुपारी, फूल-पत्तियाँ, सुपारी की पतियाँ दीए आदि से कलात्मक सज्जा की जाती है। माँडना लोककला में प्राकृतिक चित्रण में ज्यामितीय आकृतियों के साथ-साथ कमल, पत्तियाँ, फूल, पक्षी, और जानवर जैसे प्राकृतिक तत्वों का उपयोग होता है। इन चित्रों को बनाने के लिए खड़िया (चाक), गेरू (लाल मिट्टी) जैसे प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता है जो गोबर से लीपी गई दीवारों पर बनाए जाते हैं। ये चित्र शुभता, ऐश्वर्य और समृद्धि का प्रतीक होते हैं और धार्मिक और शुभ कार्यों से जुड़े होते हैं माँडना के विषय रूप से पक्षियों, जानवरों और पौधों, मानवरूपों, चिड़ियाघर

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

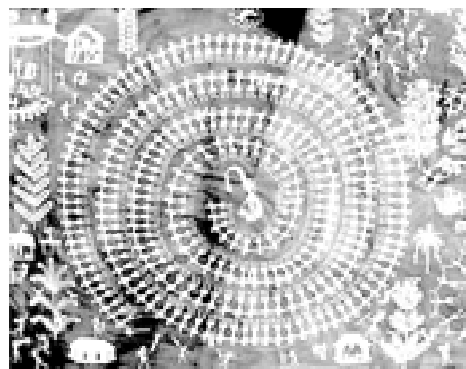
रूपों और उत्कृष्ट सजावटी डिजाइनों की विविधताएं हैं जिन्हें बिंदुओं और डैश के साथ उजागर किया जाता है। इन सभी रूपों में, उनका विशेष आकर्षण मोरदी (मोर) है जिसे विभिन्न शानदार शैलियों और आकारों में ज्यादातर सामने की बाहरी दीवारों पर चित्रित किया जाता है। प्रारम्भ में माँडना के रंग बनाते समय हल्दी, सिन्दूर, नील अथवा फूल-पत्तियों को रंग बनाने के लिए प्रयुक्त किया जाता था।⁹

4) वरली चित्रकला :

वरली समुदाय उत्तरी महाराष्ट्र के पश्चिमी तट के आसपास के उत्तरी सह्याद्री क्षेत्र में विशाल संख्या में निवास करते हैं। यह क्षेत्र ठाणे ज़िले में है। विवाहित महिलाएँ चौक नामक चित्राकन में एक केंद्रीय भूमिका निभाती हैं, जहाँ विशेष अवसरों पर वह चौक बनाती हैं। यह शादी, प्रजनन, फसल और बुवाई-कटाई के रीति-रिवाजों से संबंधित है। चौक देवी माँ पालघाट की आकृति पर आधारित होती है, जिसे मुख्य रूप से प्रजनन की देवी के रूप में पूजा जाता है जो मकई की देवी, कंसारी का प्रतिनिधित्व करती है। कंसारी देवी को एक छोटे वर्ग के फ्रेम में लगाया जाता है जिसके बाहरी किनारों को नुकीले कड़ी (शेवरॉन) से सजाया गया है। यह बाहरी किनारा हरियाली देवता, अर्थात् पौधों के देवता का प्रतीक है। कंसारी देवी के प्रहरी और अभिभावक की कल्पना, एक बिना सिर वाले योद्धा के रूप में की जाती है, वे घोड़े पर सवार या उन पर खड़े होते हैं जिनके गले से पाँच मकई के पौधे उगते हुए चित्रण किया जाता है और इसलिए इन्हें पंच सिरिया देवता (पाँच सिर वाले भगवान) कहा जाता है। यह खेत्रपाल या खेतों के संरक्षक का भी प्रतीक माना जाता है।¹⁰

वरली में प्राकृतिक सौन्दर्य की प्रतीकात्मकता में वृत्त, सूर्य और चंद्रमा का प्रतिनिधित्व करता है, जो जीवन के शाश्वत चक्र का प्रतीक है। त्रिभुज, पहाड़ और पेड़ों का प्रतिनिधित्व करता है, जो प्रकृति में

मौजूद संतुलन को दर्शाता है। वर्ग, एक पवित्र बाड़े का प्रतिनिधित्व करता है, जो अनुष्ठानों और समारोहों में उपयोग होता है। पेड़, विशेष रूप से इमली और खजूर के पेड़, जीवन और गतिशीलता के प्रतीक हैं। जानवरों का चित्रण, जैसे बाघ, बंदर और सांप, प्रकृति के साथ जनजाति के गहरे संबंध और उनके विश्वासों को दर्शाता है। चित्रों में अक्सर खेती, कटाई, शिकार, मछली पकड़ने और त्योहारों के दृश्य होते हैं, जो प्रकृति के साथ उनके जीवन के सह-अस्तित्व को दर्शाते हैं।



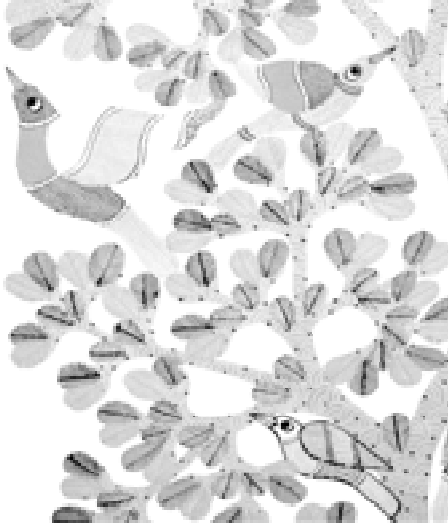
चित्र संख्या-4 : थाने जिले के जीव्या सोमा द्वारा रचित वरली चित्रकला

स्रोत : <https://share.google/images/BxEvBEvILbQUwxZR>

5) गोंड चित्रकला :

गोंड चित्रकला मध्य प्रदेश, डिंडोरी जिला के पाटनगढ़ गाँव से निकली या पनपी है, जो कि जबलपुर संभाग में आता है। नर्मदा नदी इसके बीच से बहा करती है और जनजातीय संस्कृति में नर्मदा नदी का बहुत पूजनीय स्थान रहा क्योंकि ये जनजातियाँ पूर्णरूपेण प्रकृति पर निर्भर रही हैं, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदी-तालाब, पहाड़, वर्षा सभी इनकी अमूल्य सम्पत्ति हैं। मध्य प्रदेश में गोंड जनजाति की लगभग 50 उपजातियाँ पायी जाती हैं, गोंड कला में हाथी, बाघ, मोर और विभिन्न पक्षियों के साथ-साथ पेड़-पौधे भी चित्रित किए जाते हैं, जिन्हें शैलीगत और

प्रतीकात्मक रूप से दर्शाया जाता है। कलाकृति में जीवन वृक्ष, जंगलों, नदियों और बादलों जैसे प्राकृतिक तत्वों को भी प्रमुखता से दर्शाया जाता है। गोंड चित्रकला मानव जीवन और प्रकृति के परस्पर जुड़े होने का प्रतीक है, जो प्रकृति के प्रति गोंड समुदाय के गहरे सम्मान को व्यक्त करती है।



चित्र संख्या-5 : गोंड चित्रकला

स्रोत : <https://share.google/images/gWbIlyRh95O5fZCZ4>

6) पिठोरो चित्रकला :

गुजरात में पंचमहल क्षेत्र के राठवा भीलों और पड़ोसी राज्य मध्य प्रदेश में झाबुआ में चित्रित इन चित्रों को घरों की दीवारों पर विशेष अवसर या धन्यवाद उत्सवों पर चित्रित किया जाता है। ये बड़े भित्ति चित्र हैं, जहाँ पंक्तियों में कई भव्य रंगीन देवताओं को घोड़े पर सवार दर्शाया जाता है। घोड़ों की पंक्तियाँ, दिव्य आकृतियाँ और देवी-देवताओं का चित्रण किया जाता है। साथ ही, इसमें ग्रामीणों, जानवरों और दैनिक जीवन के दृश्यों को भी दिखाया जाता है, जो जनजातीय समुदाय के जीवन को दर्शाते हैं।

पिठोरा चित्रकला में घोड़े, हाथी, बाघ, देवी-देवताओं और मानव आकृतियों को रंगीन और

प्रतीकात्मक रूप से दर्शाया जाता है, जिनमें एक कथात्मक प्रवाह होता है। यह एक अनुष्ठानिक कला है, जिसमें प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता है घोड़ा सवार देवताओं की पंक्तियाँ, राठवाओं के ब्रह्मांड का प्रतिनिधित्व करती हैं। सबसे ऊपर घुड़सवार देवताओं का खंड, स्वर्गीय निकायों और पौराणिक प्राणियों की दुनिया का प्रतिनिधित्व करता है। एक अलंकृत लहराती रेखा इस खंड को निचले खंड (क्षेत्र) से अलग करती है, जहाँ पिठोरो की शादी की बारात जिसमें गौण देवता, राजाओं, देवियों, एक आदर्श किसान, घरेलू जानवरों इत्यादि को पृथ्वी पर दर्शाया जाता है।



चित्र संख्या-6 : पिठोरा चित्रकला

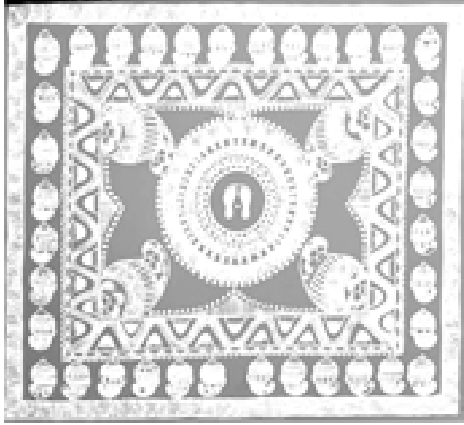
स्रोत : <https://gaatha.com/pithora-paintings/>

7) ऐपन चित्रकला :

उत्तराखंड राज्य की महिलाएँ पूजा, विवाह आदि विभिन्न शुभ अवसरों पर अपने-अपने घरों के फशों और दीवारों पर गेरू की परत लगाकर उस पर चावल के बिस्वार (पिष्टि) से उंगलियों के सहारे सुंदर चित्रकारी करती हैं, जिन्हें ऐपण कहा जाता है। इन्हें शिलख थापश्या थापा भी कहते हैं।¹¹

ऐपण सृजन में प्रकृति और प्रतीकात्मकता का सक्रिय सहयोग रहा है। ऐपण के अधिकांश स्वरूपों में पौष्पिक (फ्लोरल) व जान्त्विक (फॉनल) जैसे कमल पुष्प, वृक्ष वनस्पतियाँ, पक्षी, मछलियाँ, पर्वत, जल को सृजित करते हुए विभिन्न स्थानों पर बिन्दुओं, पंक्तियों, अर्थ पंक्तियों, वर्गों, त्रिभुजों और बेलों को सम्मिलित किया गया है। लोकचित्रकला पूजन का

एक माध्यम है जो विशिष्ट देवताओं के आवाहन में पूजक को सहायता प्रदान करती है और इसलिए पूजा की चौकी/आसन या अन्य आरेखों की विशिष्टता उल्लेखनीय होती है।¹²



चित्र संख्या- 7 : ऐपन चित्रकला

स्रोत : <https://cultureandheritage.org/2023/09/aipan-art-of-kumaon-uttarakhand.html>

यदि ये कहें कि प्रकृति तो प्रत्येक रचना की ही प्रमुख आधार-शिला रही है या इन आकारों की प्रेरणा-स्रोत रही है तो गलत नहीं होगा। अधिकांशतः आकार प्रकृति के ही प्रतिरूप हैं। चाहे धार्मिक तथ्य हों या आलंकारिक, सभी प्रकृति का एक अंश हैं। सूर्य व चन्द्रमा का अंकन यहाँ अधिकांशतः सामान्य सभी लोक-चित्रों में हुआ है। इसके अतिरिक्त 'जनेऊ' में सप्तऋषि मण्डल के प्रतीक सितारे के रूप में, शिव-पीठ व लक्ष्मी-यंत्र आदि में पृथ्वी को चतुष्कोण (भूपुर) के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। शेषशायी-लक्ष्मी-यंत्र के शेषशायी विष्णु के अंकन में समुद्र अथवा जल को अभिव्यक्त किया गया है। लक्ष्मी-यंत्र में कई लोग कमल, मछली व शंख आदि का अंकन अष्टदल कमल के वृत्त के चारों ओर करते हैं जो जल व वृष्टि के उद्भव का प्रतीक रूप होते हैं। मछली का अंकन घूल्यर्घ की चौकी में भी कहीं-कहीं देखने को मिलता है। कृष्ण जन्माष्टमी पट्ट में भी यमुना नदी में मछलियों के अंकन किया गया है।¹³

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

सांस्कृतिक एवं धार्मिक अर्थ :

भारतीय लोककला का मूल दर्शन यह है कि प्रकृति और संस्कृति एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। ग्रामीण और जनजातीय समाज वृक्षों, नदियों, पर्वतों और पशुओं को देवता के रूप में पूजते आए हैं। उदाहरण के लिए- वृक्ष, पीपल और बरगद को जीवनदाता माना जाता है। इन्हें विवाह या व्रत-त्योहार के अवसर पर चित्रित किया जाता है। नदियाँ, गंगा और यमुना का अंकन लोक चित्रों में केवल जलस्रोत के रूप में नहीं, बल्कि माँ के रूप में होता है। पशु-पक्षी, हंस, मछली, हाथी और गाय को शुभता और समृद्धि का प्रतीक माना जाता है। इस प्रकार प्रकृति का पवित्रीकरण लोककला में धार्मिक आस्था और आध्यात्मिक दृष्टि को दर्शाता है।

लोककला में प्रकृति का चित्रण केवल सुंदरता या सजावट नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक भाषा है। मधुबनी चित्रकला में मछली को समृद्धि, बांस को वैवाहिक स्थिरता और सूर्य को ऊर्जा का प्रतीक माना जाता है। गोंड कला में वृक्ष = समुदाय की शक्ति, जानवर = कबीलाई परंपराओं का रक्षक। वारली कला में वृक्ष और मानव का संयुक्त नृत्य = सामुदायिक जीवन का प्रतीक। इन प्रतीकों के माध्यम से नई पीढ़ी तक नैतिक मूल्य, सामूहिक जिम्मेदारी और धार्मिक आस्था पहुँचाई जाती है।

लोक कला का एक बड़ा उद्देश्य समाज को जोड़ना भी है। विवाह, त्योहार और फसल कटाई जैसे अवसरों पर दीवारों, आँगनों और कपड़ों पर चित्र बनाए जाते हैं। सामूहिक चित्रण से गाँव या समुदाय के लोग एक साथ आते हैं और अनुष्ठानों में सहभागिता करते हैं। कला यहाँ केवल चित्र नहीं, बल्कि सामाजिक एकजुटता का साधन है। उदाहरणः वारली कला में तरपा नृत्य (संगीत और वृक्ष के साथ चित्रित) पूरे समुदाय की खुशी का प्रतीक है, मधुबनी विवाह चित्र केवल सजावट नहीं, बल्कि विवाह संस्कार का आवश्यक अंग है।

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

निष्कर्ष :

भारतीय लोक कला परंपरा में प्रकृति का अंकन केवल कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज की जीवन-दृष्टि, आध्यात्मिक विश्वास और सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतिबिंब है। लोककला का आधार सीधे जनजीवन और प्राकृतिक परिवेश से जुड़ा होता है। गाँवों और जनजातीय इलाकों में पत्ती-बढ़ी इन कलाओं में प्रकृति को केवल दृश्य रूप में नहीं बल्कि सांस्कृतिक शक्ति और आध्यात्मिक प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है।

मधुबनी चित्रकला में कमल, मछली, वृक्ष और सूर्य जैसे प्रतीकों से जीवन, प्रजनन और समृद्धि का संदेश मिलता है। वारली कला में वृक्ष, पशु-पक्षी और सामुदायिक नृत्य मानव और प्रकृति के सह-अस्तित्व का जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। गोंड कला में वृक्ष को ब्रह्मांडीय शक्ति और जनजातीय जीवन का केंद्र माना जाता है। फड़ और पट्टचित्र परंपराएँ पौराणिक आख्यानों को प्राकृतिक परिवेश से जोड़कर यह दर्शाती हैं कि धार्मिक कथाएँ भी प्रकृति से अलग नहीं हैं। इन विविध कलाओं का साझा तत्व यह है कि प्रकृति मानव जीवन की धुरी है और उसका संरक्षण ही समाज की निरंतरता का आधार है।

इन कलाओं के माध्यम से यह भी स्पष्ट होता है कि भारतीय लोकमानस में प्रकृति को पवित्र माना गया है। वृक्ष, नदियाँ, पशु और पर्वत केवल भौतिक इकाइयाँ नहीं, बल्कि धार्मिक आस्था और सामुदायिक जीवन के संरक्षक माने गए हैं। इस प्रकार लोककला, एक सांस्कृतिक पाठशाला के रूप में कार्य करती है, जहाँ नई पीढ़ी को प्रकृति-संरक्षण और सामाजिक-सहयोग जैसे मूल्य सिखाए जाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. द्विवेदी, अजय (2004), (शोध), “अवध प्रान्त एवं कुमाऊँ की लोक कला में तुलनात्मक अध्ययन”, पृष्ठ संख्या-59
2. प्रदीप, किरण (2018), ‘सृजन के मूलधार आकृति-1’, कृष्ण प्रकाशन मिडिया मेरठ, पृष्ठ संख्या-48
3. कासलीवाल ‘भारती’, मीनाक्षी (2013), ‘ललित कला आधारभूत सिद्धांत’, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ संख्या -29
4. <https://rjpn.org/ijcspub/papers/IJCSP22B1245.pdf>, पृष्ठ संख्या - 81
5. एनसीईआरटी, ‘भारतीय कला का परिचय भाग 2’, एनसीईआरटी प्रकाशन, नई दिल्ली, (2022), पृष्ठ संख्या -127,128
6. अग्रवाल, गिरिराज, डॉ. ‘कला समीक्षा’, पृष्ठ संख्या -124,126
7. भारतीय चित्रकला, “शिक्षा दीप प्रकाशन गाजियाबाद, 2015, पृष्ठ संख्या-183,184
8. शेखावत, प्रमोद (2015), “भारतीय चित्रकला” शिक्षा दीप प्रकाशन गाजियाबाद, 2015. पृष्ठ संख्या ,158
9. प्रदीप, किरण (2018), “सृजन के मूलधार आकृति-1 “कृष्ण प्रकाशन मीडिया, मेरठ, (2018), पृष्ठ संख्या-52,53
10. एनसीईआरटी, ‘भारतीय कला का परिचय भाग-2’, एनसीईआरटी प्रकाशन, नई दिल्ली, (2022), पृष्ठ संख्या -130,131
11. फुलेरिया, चित्रा (2010)“उत्तराखंड”, (2010), पृष्ठ संख्या 327
12. रावत, अजय सिंह, डॉ. (2023), “उत्तराखंड का सांस्कृतिक इतिहास” अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी (नैनीताल), (2023), पृष्ठ संख्या-583
13. बैराठी, कृष्णा, डॉ./सत्येंद्र, कुश, “कुमाऊँ की लोककला, संस्कृति और परम्परा” पृष्ठ संख्या-19, 20, 51



Indian Folk Performing Arts (Gayan, Wadan, Nartan) as a Therapeutic Medium for Perimenopausal Women : An Analytical Study

Rudrapriya Ashtankar

Research Scholar,
Department of Fine Art (Music),
RTMNU, Nagpur

Dr. Vaikhari Wazalwar

Professor & Head, Department of Music,
L.A.D. & R.P. College for Women, Nagpur
Rashtrasant Tukadoji Maharaj Nagpur University
(RTMNU), Nagpur

Abstract :

Perimenopause is a transitional period that often brings physical discomfort and emotional instability in women between the ages of 40 and 55. While hormone replacement therapy (HRT) is a common biomedical intervention, its long-term side effects have encouraged many women to explore complementary methods. This study analyzes how Indian folk performing arts-Gayan (singing), Wadan (instrumental music), and Nartan (dance)-can function as therapeutic mediums for perimenopausal women.

A total of 140 women from Maharashtra participated, divided into three age groups: 40-45 (45 participants), 45-50 (39 participants), and 50-55 (56 participants). Standardized tools such as the Menopause Rating Scale (MRS), Hospital Anxiety and Depression Scale (HADS), Pittsburgh Sleep Quality Index (PSQI), and Visual Analogue Scale (VAS) were used to evaluate changes in symptoms. Participants were allowed to select their preferred performing art form.

Findings revealed that singing was the most preferred intervention, especially among the 50-55 age group, while dance and instrumental music were more popular among younger participants. Many women continued consulting gynecologists, but a considerable proportion expressed reliance on cultural practices rather than medication alone. This suggests that Indian folk arts can play an important role in reducing anxiety, alleviating sleep problems, and promoting holistic well-being.

Keywords :

Perimenopause; Music Therapy; Folk Performing Arts; Gayan; Wadan; Nartan; Anxiety; Sleep Disturbance; Women's Health

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

338

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

Introduction :

Perimenopause marks the gradual transition into menopause, usually beginning in a woman's early forties and extending until her mid-fifties. This stage is natural, but its impact is often profound, involving hormonal shifts that bring physical, psychological and emotional challenges. Symptoms such as hot flashes, irregular menstrual cycles, disturbed sleep, mood swings and persistent fatigue are widely reported. The World Health Organization (2021) estimated that by 2030, more than 1.2 billion women worldwide will be at or beyond the menopausal stage, with a high proportion experiencing moderate to severe symptoms. These figures highlight the urgency of developing supportive interventions that go beyond the limits of conventional biomedical treatment.

One of the most common biomedical options for symptom relief is hormone replacement therapy (HRT). While effective for many, HRT is not without controversy. The North American Menopause Society (2021) noted that long-term use of HRT may increase risks of cardiovascular complications and certain cancers. Understandably many women are reluctant to depend on it exclusively. This concern has shifted attention toward non pharmacological and complementary approaches-particularly those rooted in culture and tradition-that carry fewer risks while promoting holistic well being.

India offers a unique landscape for such approaches because of its deep cultural connection to music and performance. In Indian philosophy, art is not just entertainment but a path toward inner balance and healing. The ancient Natya Shastra

attributed to Bharata presents performance as a means of harmonizing mind and body, describing how different rasas (aesthetic emotions) produced through music and dance can lift the spirit and calm the mind. Sharangadeva's Sangeet Ratnakar similarly highlighted music's therapeutic powers, emphasizing the link between melody, rhythm and emotional regulation. Abhinavagupta, in his Abhinavabharati, argued that performance experiences purify inner states and relieve distress.

Beyond classical texts, everyday folk traditions in India show how music, rhythm and dance serve therapeutic roles. In Maharashtra, Lavani songs combine rhythm and expressive lyrics that help women articulate emotions collectively. In Gujarat, Garba dances foster community bonding while providing physical exercise. In West Bengal, Baul singers emphasize spirituality and inner freedom, often easing stress through devotional performance. Bhajans (devotional songs) are sung daily in many households, acting as a form of meditation. These examples illustrate that Indian performing arts are embedded in the rhythms of life and already act as informal therapeutic practices.

The current study is situated at the intersection of traditional wisdom and modern science. It analyzes whether Indian folk performing arts-specifically Gayan (singing), Wadan (instrumental music), and Nartan (dance)-can function as therapeutic mediums for perimenopausal women in Maharashtra. By applying standardized assessment tools alongside traditional cultural practices, this study attempts to bridge two worlds: one rooted in ancient performance traditions and another in modern clinical research.

Literature Review :

The relationship between music, dance and healing has long interested scholars. Scientific evidence increasingly supports what cultural traditions have practiced for centuries: music and performance have measurable therapeutic value. Koelsch explained that music evoked emotions stimulate neural systems linked to memory, reward, and stress regulation. Thoma and colleagues demonstrated that listening to music in daily life lowered cortisol levels, a biomarker of stress. Park and Sung reported that group singing improved sleep and reduced depression in middle aged women, with social bonding as a key mechanism. Li and co authors confirmed through a randomized trial that music interventions improved sleep quality and reduced anxiety among menopausal women. Altenmüller and Schlaug emphasized that music and dance activate auditory-motor pathways, strengthening connections between emotional expression and movement, while Eyigor et/ al. showed that folk dance improved balance and reduced depressive symptoms in older women. Indian studies parallel these findings: devotional singing reduced anxiety (Rao & Devi), and folk dance increased energy and community participation among rural women (Sharma et/ al.). Classical texts such as the Natya Shastra, Sangeet Ratnakar and Abhinava-bharati provide a theoretical basis for these effects through the concepts of rasa, rhythm and purification of consciousness. Policy documents by ICMR, WHO and NAMS recognize menopause as a significant public health concern and recommend culturally familiar, complementary approaches.

Methodology :

This research adopted a descriptive-analytical design in the Nagpur region of Maharashtra. A total of 140 women aged 40–55 participated voluntarily after informed consent. They were grouped into 40–45 (n=45), 45–50 (n=39) and 50–55 (n=56). Most participants lived in semi urban and rural areas where folk singing and dance are familiar. Confidentiality was maintained throughout.

Four standardized instruments captured physical and psychological dimensions: the Menopause Rating Scale (MRS) measured symptom severity; the Hospital Anxiety and Depression Scale (HADS) assessed mood; the Pittsburgh Sleep Quality Index (PSQI) evaluated sleep; and a Visual Analogue Scale (VAS) recorded subjective symptom intensity.

Participants selected one preferred art form-Gayan (singing), Wadan (instrumental music), or Nartan (dance)-reflecting cultural practice and comfort. This choice based design ensured engagement with personally meaningful activities and mirrors real world use of folk arts as self care.

Results :

As shown in Table 1 and Figure 1, the distribution of participants was skewed toward the 50–55 age group. Table 2 and Figures 2–3 summarize preferences by age group and overall. Table 3 and Figure 4 present patterns of medical consultation and supplement use. Table 4 and Figure 5 detail symptom frequencies.

Table-1 : Participant Distribution by Age Group :

Age Group	Number of Participants
40–45	45
45–50	39
50–55	56

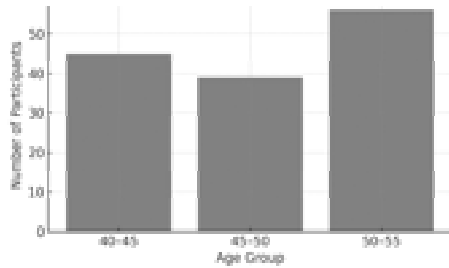


Figure-1 : Participant Distribution by Age Group

Table-2 : Music Preference by Age Group :

Age Group	Singing (Gayan)	Instru mental (Wadan)	Dance (Nartan)
40–45	32	12	18
45–50	36	14	17
50–55	50	13	10

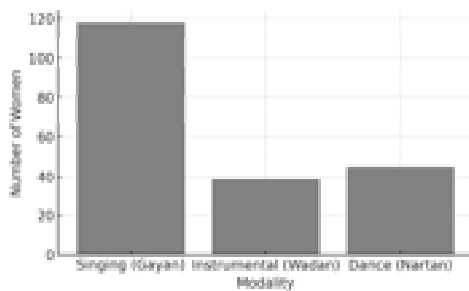


Figure-2 : Overall Music Preference

Table-3 : Gynecologist Consultation and Medication Use :

Age Group	Consulted Gynecologist	Supplements Medication/
40–45	21	12
45–50	21	16
50–55	27	20

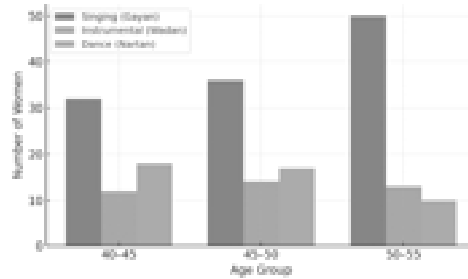


Figure-3 : Music Preference by Age Group :

Table-4 : Symptom Frequency among Participants :

Symptom	Number of Women
Hot flashes	91
Sleep disturbance	77
Fatigue	70
Mood swings	67
Anxiety/Depression	56
Other	49

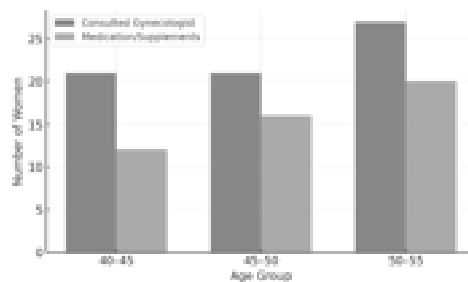


Figure-4 : Gynecologist Consultation vs Medication Use

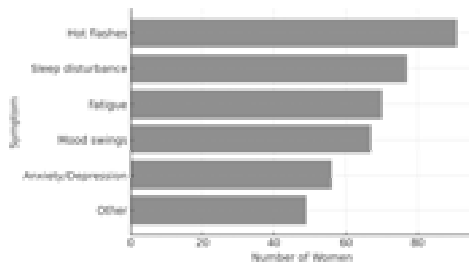


Figure-5 : Symptom Frequency Among Participants

Discussion :

The findings indicate that singing (Gayan) was the most preferred and effective activity, particularly among women aged 50–55. Participants frequently described evening bhajan or folk song sessions as calming and sleep promoting. Instrumental music (Wadan) offered rhythmic focus and relaxation for a smaller subset, while dance (Nartan) benefited younger women by combining movement, joy and social bonding. Consultation with gynecologists was common, yet many participants complemented biomedical care with cultural practices, reflecting a dual approach to well being. Prior work supports these results: singing improves sleep and mood; music reduces cortisol and engages reward circuits and folk dance enhances coordination and lifts depressive symptoms. Altogether, Indian folk performing arts emerged as accessible, culturally meaningful supports for perimenopausal women.

Conclusion :

This analytical study confirms that Indian folk performing arts-Gayan (singing), Wadan (instrumental music), and Nartan (dance)-are valuable therapeutic mediums for perimenopausal women. Singing was most preferred and often most effective, while dance fostered energy and commu-

nity support and instrumental music provided calming focus. These practices are non invasive, affordable and culturally resonant, making them sustainable complements to biomedical care. Incorporating folk arts into community programs could improve quality of life for women navigating the menopausal transition and bridge traditional heritage with modern health strategies.

References :

1. Park, S., & Sung, H. (2016). Group singing improves sleep and reduces depression in middle aged women. *Journal of Music Therapy*, 53(2), 132–150.
2. Li, C., Zhou, Y., & Wang, S. (2018). Music therapy for sleep quality in menopausal women: A randomized controlled trial. *Complementary Therapies in Medicine*, 38, 74–79.
3. Garcia, L., Kim, H., & Thompson, J. (2018). Music interventions for stress reduction in menopausal women. *Journal of Women's Health*, 27(9), 1123–1130.
4. Huang, C., Li, Y., & Wang, Y. (2019). Effects of music therapy on mood and cognition in menopausal women. *Climacteric*, 22(3), 233–240.
5. Koelsch, S. (2015). Music evoked emotions: Principles, brain correlates, and implications for therapy. *Annals of the New York Academy of Sciences*, 1337(1), 193–201.
6. Thoma, M. V., Ryf, S., Mohiyeddini, C., Ehlert, U., & Nater, U. M. (2013). Emotion regulation through listening to music in everyday situations. *Cognition and Emotion*, 27(3), 534–543.
7. Altenmüller, E., & Schlaug, G. (2015). Apollo's gift: New aspects of neurologic music therapy. *Progress in Brain Research*, 217, 237–252.
8. Clift, S., & Morrison, I. (2011). Group singing fosters mental health and wellbeing. *Mental Health and Social Inclusion*, 15(2), 88–97.

9. Eyigor, S., Karapolat, H., Durmaz, B., Ibisoglu, U., & Cakir, S. (2009). A randomized controlled trial of Turkish folk dance on performance, balance, depression, and quality of life in older women. *Archives of Gerontology and Geriatrics*, 48(1), 84–88.
10. Rao, P. R., & Devi, S. (2017). Bhajans and anxiety reduction: A psychosomatic approach. *Indian Journal of Psychiatry*, 59(4), 451–457.
11. Sharma, N., Bansal, P., & Kaur, R. (2020). Folk dance as therapy for rural women: An exploratory study. *Indian Journal of Psychological Medicine*, 42(5), 481–488.
12. Kumar, A., & Singh, R. (2015). Music therapy and psychological well being in Indian women. *Journal of Traditional and Complementary Medicine*, 5(3), 234–240.
13. Sairam, T. (2016). *Music therapy in Indian tradition*. Chennai: Indian Music Therapy Publications.
14. Indian Council of Medical Research. (2020). Menopause and women's health in India. *Indian Journal of Medical Research*, 151(6), 559–566.
15. North American Menopause Society. (2021). The 2021 hormone therapy position statement. *Menopause*, 28(9), 973–997.
16. World Health Organization. (2021). *Global report on menopause and healthy ageing*. Geneva: WHO Press.
17. Bharata. (1992). *Natya Shastra* (M. Ghosh, Trans.). New Delhi: Sahitya Akademi.
18. Sharangadeva. (1978). *Sangeet Ratnakar* (R. K. Shringy & P. L. Sharma, Trans.). New Delhi: Munshiram Manoharlal Publishers.
19. Abhinavagupta. (1918). *Abhinavabharati* (K. Krishnamoorthy, Ed.). Baroda: Oriental Institute.
20. Zatorre, R. J., Chen, J. L., & Penhune, V. B. (2007). When the brain plays music. *Nature Reviews Neuroscience*, 8(7), 547–558.



Harvest Rhythms in Folk Dance : A Study About Kummi, Kolattam and Oyilattam of Tamil Nadu During Pongal

Sahithya V.

Research Scholar

Department of Music & Fine Arts,

School of Ancient Indian Studies & Fine Arts,

VISTAS, Pallavaram Chennai

Dr. U. Bhawani

Research Supervisor & Assistant Professor

Department of Music & Fine Arts,

School of Ancient Indian Studies & Fine Arts,

VISTAS, Pallavaram Chennai

Abstract :

This study examines the role of rhythm in three prominent Tamil Nadu folk dances- Kummi, Kolattam, and Oyilattam-performed during the harvest festival of Pongal. Emphasizing movement-driven rhythm, the research explores how clapping, stick striking, and Parai drum accompaniment structure dance patterns, establish pace, and coordinate group formations. The study highlights the inclusiveness of these dances, enabling participants of all ages to engage collectively. It also underscores the cultural and symbolic significance of rhythm in expressing gratitude for the harvest, fostering social cohesion, and sustaining folk traditions. Overall, the research demonstrates rhythm as a central element linking movement, culture, and community in Tamil folk dance.

Keywords :

Rhythm, Tamil Nadu folk dance, Pongal festival, Kummi, Kolattam, Oyilattam, Movement and tradition.

Introduction :

The cultural essence of Tamil Nadu finds its foundation in its indigenous folk practices, where musicality, dance forms, and festive occasions are intimately linked. Pongal, the celebration of the harvest season, embodies appreciation towards the natural world and collective rejoicing. Amongst the state's diverse artistic forms, Kummi, Kolattam and Oyilattam hold a significant position, with rhythm originating from actions like hand clapping, the

hitting of sticks, and the stomping of feet. Different from formal Bharatanatyam or Carnatic music, in which rhythm is dictated by standardized frameworks, these folk dances naturally create rhythm via uncomplicated, repeated motions that encourage involvement.

This piece of writing investigates the rhythmic expressions rooted in movement within these dance forms, intending to showcase how they mirror farming life and

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

344

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

reinforce community spirit.

Objectives and Methodology :

The intention of this research is to explore the ways rhythm is produced through body movements in three folk dance styles of Tamil Nadu-Kummi, Kolattam and Oyilattam-which are deeply connected to the Pongal harvest festivities. The emphasis lies on hand clapping, the percussion of sticks, and synchronized foot movements as core rhythmic components, independent of any accompanying external musical performance. As for methodology, the study adopts a qualitative strategy, scrutinizing the methods by which these movement-based designs originate and maintain rhythm. The exploration takes into account the cultural and festive backdrop, underscoring the communal and participatory facets that mold the rhythmic experience during the Pongal celebrations.

Literature Review :

The Asian Research Association Journal (2024) emphasizes Pongal as a multi-day agrarian festival that preserves seasonal practices and community rituals. It highlights how artistic expressions such as dance are embedded in local ecology and communal identity.

A study in Granthaalayah (2023) analyses Tamil Nadu's ritual practices and documents how ritualized movements and percussive acts form recurrent rhythmic patterns in village rites. It notes that rhythm in these contexts is often embodied through clapping, stamping and collective action.

R. D. (2022), in the International Research Journal of Tamil, documents Oyilattam's communal function, step structures, and its close connection with temple rituals and seasonal celebrations. The paper emphasizes the improvisatory nature of

steps aligned with drum beats and footwork, with rhythm produced by embodied accentuation.

The safeguarding project report by IndiaICH-SNA (2023) on Pinnal Kolattam describes regional variants, stick patterns, and formation changes. It shows how stick strikes encode pulse and accents that coordinate group formations, framing these as living heritage traditions.

Padma (2000), in a theatre and performance study, references Kummi as a pan-regional clapping dance form. It highlights its role as a social and collective practice where percussive clapping functions both musically and socially.

A recent paper on Tamil folk songs (2025) underscores oral transmission and recurrent rhythmic patterns in festival songs. It emphasizes the link between folk singing traditions and movement, where claps and step cycles generate rhythm in performance.

Kummi :

Kummi is one of the oldest and most widely practiced folk dances of Tamil Nadu, traditionally performed during festivals and agrarian celebrations, particularly Pongal. It is primarily a women's dance, though men may participate in certain regions, and is characterized by circular formations with dancers clapping in unison. The movements-gentle sways, coordinated steps, and occasional gestures mimicking agricultural activities-create both audible and visual rhythm, which serves as the central organizing principle of the dance. Unlike classical dances, Kummi does not require instruments; the clapping itself establishes the beat, tempo and pace, guiding the dancers' movements throughout the performance.

The rhythm of Kummi is predominantly based on four-beat and eight-beat cycles, which provide clarity and structure to the dance. The four-beat cycle establishes a steady pace, allowing beginners and experienced dancers alike to maintain synchrony, while the eight-beat cycle creates an expansive pattern, enabling subtle variations and embellishments. This rhythmic foundation determines the tempo of movements, the flow of transitions between steps, and the coordination of circular formations, ensuring that the dance remains cohesive even with large groups. The consistent rhythm also enhances energy and engagement, gradually building momentum as the performance progresses, while maintaining a sense of communal unity.

Inclusiveness is a defining feature of Kummi. The dance encourages participation across all ages and social groups, with rhythm serving as the binding element that unites participants. Circular formations and synchronized clapping allow everyone to follow the pace easily, fostering collective engagement and social cohesion. This communal aspect mirrors the broader purpose of Pongal: celebrating the harvest while reinforcing village unity and shared cultural identity.

Kummi holds particular significance during Pongal, serving as both a thanksgiving ritual and a festive expression of abundance. The rhythmic clapping mirrors agricultural cycles, with movements symbolizing sowing, harvesting or offering prayers to the sun and earth. The rhythm not only structures the dance but also energizes the participants, directing their movements, pace and expressions, making it an integral part of the festival's social and cultural fabric.

Through its movement-driven rhythm, structured pace and inclusive participation, Kummi exemplifies how folk dances use embodied rhythm to create both musicality and communal cohesion, transforming simple gestures into a shared celebratory experience during Pongal.

Kolattam :

Kolattam is a prominent folk dance of Tamil Nadu, often performed during Pongal to celebrate the harvest and strengthen communal bonds. Unlike Kummi, which relies solely on clapping, Kolattam uses pairs of wooden sticks as the primary source of rhythm, producing both percussive sound and visual pattern. Dancers strike the sticks in coordinated sequences, creating a clear, audible rhythm that establishes the pace and flow of the performance. The rhythm generated through stick striking dictates not only the tempo of individual movements but also the timing of group formations, crossing patterns, and synchronised steps, ensuring cohesion among all participants.

The rhythmic patterns in Kolattam are typically organized into four-beat and eight-beat cycles, which allow for repetition while providing space for improvisation. Each strike of the stick produces a distinct accent that guides dancers' steps, hand gestures, and footwork. By alternating stronger and lighter strikes, the rhythm creates dynamic variation, marking transitions between slower and faster movements and giving the dance a sense of progression and vitality. This movement-rhythm interaction energizes participants and visually amplifies the celebratory mood, making the percussive element a central driver of the dance.

Kolattam is performed in groups arranged in circles or lines, with dancers often

facing each other to strike sticks in synchrony. This coordinated striking emphasizes collective timing and mutual responsiveness, fostering inclusivity and teamwork. The rhythm enables participants of varying skill levels to join the dance, as the sound of the sticks naturally cues the steps and pacing. Such inclusivity reflects the social dimension of Pongal, where the festival functions not only as a harvest celebration but also as a space for communal participation, cooperation and cultural reaffirmation.

The dance also carries symbolic significance. The percussive strikes mimic the energy and labor of agricultural work, echoing the efforts of planting and harvesting. During Pongal, performing Kolattam with rhythmic stick patterns becomes a ritualistic expression of gratitude for the harvest, connecting participants with the land and the cycles of agriculture. The combination of movement, sound and group coordination demonstrates how rhythm can structure the dance, enhance aesthetic appeal and reinforce the communal spirit of the festival.

Through its movement-driven stick rhythms, pacing and collective coordination, Kolattam exemplifies how folk dances of Tamil Nadu transform percussive action into musical and social expression, creating both rhythm and shared cultural identity during Pongal celebrations.

Oyilattam :

Oyilattam, meaning “dance of grace,” is a vibrant folk dance of Tamil Nadu, performed during Pongal and other seasonal festivals. Traditionally associated with southern districts, it is distinguished by energetic foot stamping, dynamic movements, and coordinated gestures, all of

which generate rhythm intrinsically. Unlike Kummi, which relies on clapping or Kolattam, which uses sticks, Oyilattam combines bodily percussive action with the Parai, a traditional frame drum. The Parai produces a resonant beat that guides steps and amplifies foot stamping, making the rhythm both audible and felt.

The rhythmic patterns are predominantly four-beat and eight-beat cycles, structuring the dance while allowing tempo variation. The Parai accentuates key beats as dancers’ movements mirror and reinforce them, coordinating group formations and maintaining momentum. The tempo often increases gradually, producing a crescendo effect that enhances the celebratory atmosphere.

Performed in open spaces in linear or semi-circular formations, Oyilattam fosters inclusiveness, enabling participants of all ages and abilities to follow the beat. The drum provides an intuitive cue, enhancing collective engagement and social cohesion, central to Pongal celebrations. The dance also holds symbolic significance, reflecting agricultural labor and expressing gratitude for the harvest. Stamping, leaps, and circular movements synchronize with drum beats, transforming agricultural rhythms into a musical and social performance.

Additionally, Oyilattam integrates storytelling and expressive gestures, with arm swings, head tilts, and nuanced movements timed to footwork and Parai beats, creating multi-layered rhythm. Through its embodied rhythm, percussive accompaniment and communal participation, Oyilattam demonstrates how rhythm structures dance, energizes participants, and reinforces cultural expression and social identity during harvest celebrations.

Comparative Insights :

The three Pongal folk dances of Tamil Nadu-Kummi, Kolattam, and Oyilattam-demonstrate the diverse ways in which rhythm is generated, structured and experienced through movement and percussion within communal folk traditions. While each dance possesses unique characteristics, they share the fundamental principle of movement-driven rhythm that reinforces collective participation and cultural identity.

Kummi relies entirely on hand clapping, producing simple four-beat and eight-beat cycles that structure the dance and guide circular formations. The rhythmic clapping sets the pace of swaying steps, weight shifts, and gestural movements, creating an inclusive environment where participants of all ages can join. The repetition of these cycles fosters cohesion, energy, and a shared celebratory experience, while symbolically reflecting agricultural life and gratitude during Pongal.

Kolattam, by contrast, employs sticks as the primary percussive tool, producing rhythmic accents that coordinate steps, hand movements and formation changes. The alternating strong and light strikes provide both auditory and visual rhythm, shaping the tempo, flow and dynamics of the group performance. The stick rhythms guide dancers through more intricate patterns than Kummi, while still maintaining accessibility and encouraging communal engagement. The physicality of stick striking reinforces the energetic and cooperative spirit of Pongal celebrations, symbolizing both work and festivity.

Oyilattam combines foot stamping, vigorous body movements, and Parai drum accompaniment to generate multi-layered rhythm. The beats of the Parai, together with the dancers' steps and jumps,

create a powerful auditory and kinetic experience, structuring the dance and amplifying its celebratory intensity. The rhythmic cycles dictate tempo, transitions, and momentum, while fostering inclusivity by enabling participants to follow the beat intuitively. The embodied rhythm of Oyilattam, coupled with its open spatial formations and expressive gestures, enhances both the aesthetic appeal and the social cohesion of Pongal performances.

Comparatively, all three dances illustrate the interdependence of rhythm, movement, and social function in Tamil folk traditions. Kummi emphasizes simplicity and accessibility through clapping, Kolattam introduces percussive complexity with sticks, and Oyilattam combines embodied movement with instrumental accompaniment to produce a vibrant and layered rhythmic experience. Across these dances, rhythm not only guides movement and pace but also connects participants to cultural heritage, agricultural cycles and communal celebration, making it central to the expressive and participatory nature of Pongal folk performances.

Conclusion :

This study demonstrates that rhythm is the core element of Tamil Nadu's folk dances, shaping movements, guiding pacing and reinforcing collective participation. In Kummi, rhythmic clapping structures the circular formations and swaying steps, producing a communal pulse that unites participants. In Kolattam, stick striking generates dynamic auditory patterns that direct steps, hand gestures, and group formations, while in Oyilattam, the combination of foot stamping and Parai beats creates a layered, immersive rhythmic experience. Across all three dances, rhythm is not merely a musical accompaniment-

it is embodied, participatory and inseparable from movement, forming the structural and expressive backbone of performance.

The rhythmic cycles-predominantly four-beat and eight-beat-determine the tempo, flow, and intensity of each dance. These cycles enable dancers to synchronize, improvise within structured patterns, and sustain engagement over extended performances, while also enhancing visual symmetry and collective energy. Rhythm facilitates inclusivity, allowing participants of varying ages and abilities to join seamlessly, ensuring that folk dances remain communal, accessible and socially cohesive. By connecting movement and beat, these dances exemplify the interdependence of rhythm and folk tradition in shaping both artistic and social dimensions.

Moreover, rhythm in these dances carries symbolic and cultural significance. Clapping, stick striking and Parai accompaniment mirror agricultural practices-planting, harvesting and communal labor-while providing a shared temporal framework for celebration. During Pongal, the rhythmic patterns not only structure the dance but also express gratitude for the harvest, reinforce community bonds and transmit cultural knowledge across generations. Rhythm, therefore, functions as a performative, social, and cultural force, linking folk tradition with lived experience, collective memory and festive expression.

In conclusion, Kummi, Kolattam and Oyilattam illustrate how movement, rhythm and folk tradition are inseparably intertwined. Rhythm organizes action, energizes participants and maintains cohesion, while the folk traditions embedded in these dances ensure cultural continuity, inclusivity, and a vibrant celebration of Pongal. By examining these dances, this study underscores that rhythm is not only a musical or temporal element but also a central medium through which folk heritage, social identity and collective expression are enacted, highlighting the enduring vitality of Tamil Nadu's folk dance traditions.

Reference :

1. D, R. (2022). *Social Worship Tradition and Oyilattam in Field Study*. *International Research Journal of Tamil*, 4 (S-22), 392–401. <https://doi.org/10.34256/irjt224s-22260>.
2. *Role of South Indian Pongal Festival in Developing Environmental Sustainability*. (2024). *Asian Research Association Journal*.
3. *The Rhythm of Rituals of Tamil Nadu*. (2023). *Granthaalayah: International Journal of Arts, Humanities & Social Sciences*, 11(36).
4. IndiaICH-SNA. (2023). *Safeguarding the Pinnal Kolattam — Project Report* (safeguarding/heritage report). IndiaICH-SNA.
5. Padma, V. (2000). Re-presenting Protest and Resistance on Stage: *Avvai*. [*Theatre/Performance Journal — SAGE*].
6. *Folk Songs as a Window to India's Oral Cultural Heritage: With Special Reference to Tamil Nadu's Culture*. (2025).



Echoes of the Hills : Folk Culture and Identity in the works of Temsula Ao

Shiju R. Das

*Ph.D. Research Scholar,
Madurai Kamaraj University,
Madurai*

Dr. N. Lakshmi Priya

*Research Supervisor &
Asst. Prof of English,
GTN Arts College, Dindigul*

Abstract :

Mythical elements in a tale can be seen in characters, supernatural helpers, settings, objects, plots and sub-plots that discover their method into folktale and fiction, traversing a broad range of cultural and historical settings. The myths establish and assert the identity of a particular tribe against the backdrop of cultural hegemony, neo-colonialism and violence of the region. Myths affirm oral tradition and what is lost amidst cultural colonisation is restored and recovered by the very use of it. Use of myths also has the capacity to interrogate and resist the meanings imposed on a particular culture and the above discussed poems of Temsula Ao have well reflected this idea. Most prominently myths also draw oneness with nature as was practiced in our ancient traditions. Through her poems, she attempts to tell the tale of her people's past, so that they are recorded for ever. Ao has a voice of the North-eastern and she has lend her writings on the present scenario of North-eastern people especially Nagaland where she originated from. As a land of myths, Legends and folktales Ao writes that the people of the hills so called home is greatly influence by their Myth and which originally the natives believed in their customs before their conversion.

Keywords :

Myth, Folklore, Tradition, Tales, Orality.

Introduction :

There is no better approach to comprehend a society, history and character and brain science profoundly than to know and admire its mythos, its stories and its fantasies. With this significance, the study attempts to highpoint the prominence of mythology and its elements in literature. As a conceptual theory, this paper will enhance the outlook of myth and the workings of mythical elements from a tale

to fiction in a modern format such as the works of Friedrich de la Motte Fouque's *Undine* and Temsula Ao's *Laburnum for My Head and Stories*. The examination focused on the explanation and prediction such as formal hypothesis and also in working as it explores cultural responses in the corresponding myth. The exploration will add to the scholarship of mythical elements in literature in contrast to diffe-

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

350

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

rent shared cultures with special references to Indian-Asian mythology and Western mythology that shares the trait with the sirens of Greeks, Roman and other corresponding mythology.

Mythical elements in a tale can be seen in characters, supernatural helpers, settings, objects, plots and sub-plots that discover their method into folktale and fiction, traversing a broad range of cultural and historical settings. And in some way convince a reader to acknowledge self-evident facts. Mythical characters have references to corresponding myth and cultural-historical references that actually present a global concept and moral. The character emerges as an epitome in an adapted story. In traditional literature, whether mythic or romantic, Supernatural helpers tend to manifest supernatural or otherworld traits; while they sometimes seem to personify the natural world, perhaps they imply sweetness or benevolence of earthly life; sometimes they suggest transcendental or a temporal reality, perhaps invoking the ideal world, or perhaps the illusoriness of worldly suffering.

A reading of myths of different will show that myths are for the most part religious narratives which transcend the possibilities of common experience and express any given culture's literal or metaphorical understanding of various aspects of reality.

Mythic narratives are the sacred stories that central to cultural identity because, for the cultures to which they belong, these religious myths convey some significant truth about the relationship between human beings and the source of being. Just as myths are literally or symbolically true to such cultures, they may also contain elements in which outsiders can discern some kind of truth.

During the Renaissance, myths were seen as a symbolic representation of profound truth. Twentieth century writers such as Eliot, Joyce, Lawrence, Graves and Yeats have used myths extensively and their works in different ways fulfilled the philosophical ambition invested in myth by German Romantic and idealist thinkers. Whether in literature or anthropology, myths received varying evaluation as a model of psychological wholeness in to the self and the world, than as a scientific truth.

Myth, Folklore and Culture in Tamsula Ao :

The study of Dr. Tamsula Ao's heart-rending collection *Laburnum for My Head* carries along mythical elements intertwined in culture, religion and social myth. Her literature deeply focuses on the intensity of human understanding and subtly lingers with her mythical influence. This mythical theme of her beckons the present human condition. Ao has a voice of the North-eastern and she has lend her writings on the present scenario of North-eastern people especially Nagaland where she originated from. As a land of myths, Legends and folktales Ao writes that the people of the hills so called home is greatly influence by their Myth and which originally the natives believed in their customs before conversion to Christianity. Though she presents the contemporary issue of North-Eastern states especially a troubled region like Nagaland which is under conflict of internal and external government and in the case of insurgency, in the same string she attaches the mythical influence in a story with her characters and plots in order to give a mythical consequences usually in which she presents the notion in her mythical elements of the stories.

These mythical elements immensely influence the characters of the study and their lives in it have connoted the psycho-analysis and cultural studies of the characters in the collection. Such Mythical elements are present in characters, objects, rituals, settings, supernatural phenomenon, plots and sub-plots, deaths and spirits. These elements are present in natural and supernatural force. Here, the effects of five main primal elements viz, either air, fire, water and earth can be seen so beautifully intertwined in the myths and customs of the natives. Speaking mythically, the cultural milieu of Nagaland has influenced such a writing where fiction meets mythic and reality that is based on deep understanding of human body and soul. This mythic fiction underlines the reality of the lives of natives especially the common humans of the hills who survived the world war that disturbed the solitude muse of the land. And the literature crafts out those voices of the ancients from the history of the rock that of race, the spirits of the woods and nature, relationship of man and animals and the aftermath of the war where people still dream of the dreamland that once sang on their hills. Ao has beautifully crafted her stories inclined in the mythical elements that perk in and out her stories.

The first story *Laburnum for My Head* begins with a mythical cue. Every may, something extraordinary happens in the new cemetery of the sleepy little town. (Ao, 1) This picturesque detail simply presents the supernatural force in the story. When Lentina, a woman protagonist with a peculiar obsession of Laburnum blossoms is led to the extraordinary occurrence in the sleepy little town cemetery, It sets 'make-beliefs' into the mind of the dwellers

of the sleepy little town that every May something supernatural happens on account of her death. The setting connotes to the mythical elements in a way it deliver us a sense of loss. So, thus the Indian Laburnum has a myth beneath its root.

Considering the Ramayan, flora of the Indian epic mentions that dreaming of Laburnum tree in bloom predicts that the person will overcome the adverse influence around him/her by vigorous application of intelligent effort. The flower means forsaken, pensive beauty. This effect is shown on Lentina's peculiar obsession and can be depicted as her to the blossom. Another mythical elements lies on the mysterious death of the protagonist Lentina after her achievement of yellow wonders. The author leaves no such explanation to the death of the character other than a set of old age but in between Temsula Ao has indeed relates to the contentment of the departed soul from the obsession of earthly wonders. Lentina thus slumbers away in an unquiet earth with her sounding obsession.

In *Death of a Hunter*, Imchanok, a famous hunter could get rid of any menace till he encounter with the ghost of his prey. A strange phenomenon starts to unfold in his life as he began to hallucinate and consequently kills his own mental piece. There are mythical representatives as seen in the haunted forest where the hunters haunt his prey and the appearance of the wild boar gave way to this sense. There was full of awe and wonder at the mystery surrounding the killing of the beast. The wild Boar with its swift feet and sharp tusks is a surprisingly shy animal and generally tries to avoid humans. However, it can be a formidable beast if cornered and has come to symbolize courage and

ferocity in many cultures. Once native to Britain, these wild ancestors of the pig were hunted to extinction, probably the 13th century. In the Naga culture, warriors head gears bears the sharp and strong tusks of a wild boar in order to symbolize power and mighty. The myth of boar hunts prevails in Celtic and Arthurian literature where the tusks of a wild boar are hunted to cut the hair. Such indication of the mythical creatures is also indented by the author in *Death of a Hunter* where Imchanok encounter with the mythical creature and kills the hunter inside him.

Imchanok stood on the very spot from where he had fired the fatal shot and did a strange thing. He tore out a tuft of his hair and blew it towards the haunted forest and without a backward glance retraced his steps towards the village. (Ao, 39).

This action or strange ritual indicates the practice or sharing some or all of the hair on the scalp as a sign of religious devotion or humanity. Here in the story, Imchanok offers a tuft of his hair as a prayer for forgiveness to his prey. The mythical elements focused here are the spirits of the woods and the animals. The strange degradation of the famous hunter itself resolves to a mystery occurrence in a story. In this way Ao commence the death of a brave hunter in a mythical consequence by bringing mythical elements that of wild Boar, spirits of the woods, strange rituals that all assumes the influence of the characters in unnatural belief so as to present the mythic sense of the fiction. Imchanok indeed buries his image, mental being and his skills in the wound of the earth and surrender himself to the unnatural force of his belief.

The last collection *Flight* relates about a caterpillar who finds wings. This caterpillar can be related to the very humanity of the trouble land where Ao hopes to see a bright future for the sufferings, identity loses and displacement of the natives in the present scenario of the hills called home. Here, the mythical influences are laid on the description of the Dragon where Johnny, a young lad transports the caterpillar to another world and the end the Dragon gets its wings and flies away leaving behind Johnny's dying universe.

Folklore and tradition go hand in hand. According to Bascom (1953), all folklore is tradition, but not all tradition is folklore. Folklore denotes a wide-ranging viewpoint. The phrase, however, shares similarities, including culture, tradition, traditional cultural expressions, indigenous expressions and others. Folklore is indispensable to the identity, behaviour and other characteristics of any person, group or society. They consistently place a focus on their diverse folkloric expressions, such as folk traditions, traditional attire and ornamentation, eating and drinking customs, music and dances, as well as traditional knowledge of biodiversity and oral literature. Moreover, they try to improve their native literature and promote the expansion of indigenous languages and dialects. The different ethnic groups in Northeast India have built their indigenous identities on folklore.

Temsula is passionate about preserving the folklore heritage and is extremely proud of her ancestors' legacy of storytelling. Her exposure to Native American oral traditions motivated her to revitalize the Ao Naga, her own oral heritage. The poem, A Tiger-Woman's Prayer is based on the Ao Naga idea that humans have tigers as spirit companions. The tiger woman

describes how the tiger-soul of her grandfather came to possess her. She hoped that like the others, she would be able to cross the region beyond the sun so that she could raise a rainbow there/ Against our composite tears (Songs from the Other Life; 21)

In the poem Stone-People from Lungterok, the poet continues by describing the characteristics of the stone people, just as in folklore. They were sculptors, singers, lovers, farmers, planters, weavers, potters and potters. They were multilingual and spoke animal and bird languages. They were also romantic individuals who were aware of the moon's and sun's moods. They worshipped unidentified spirits out of religious fervor.

Conclusion :

Therefore, one identify that there is a permeating presence of myth in Temsula Ao's poems. Retaining the otherwise orally transmitted folklores and myths via the use of words, these myths counter the preconceptions of mainstream poetry of Indian English poetry regarding Northeast poetry. The myths establish and assert the identity of a particular tribe against the backdrop of cultural hegemony, neo-colonialism and violence of the region. Myths affirm oral tradition and what is lost amidst cultural colonisation is restored and recovered by the very use of it. Use of myths also has the capacity to interro-

gate and resist the meanings imposed on a particular culture and the above discussed poems of Temsula Ao have well reflected this idea. Most prominently myths also draw oneness with nature as was practiced in our ancient traditions. Through her poems, she attempts to tell the tale of her people's past, so that they are recorded for ever. That she recounts and revives her people's many folklores and beliefs in her poems ensures that she fulfills the shamanic role to perfection. A history which rests on an oral tradition may appear flimsy but as long as poets like Temsula Ao, shoulder the responsibility of transmitting their tribe's rich and ancient lore through poetry, there is confidence that all lost tradition will be regained through poetry.

References :

1. Ao, Temsula. *Book of Songs: Collected Poems 1988-2007*. Dimapur: Heritage Publishing House, 2013.
2. Ao, Temsula. *Songs Along the Way Home: Sixth Book of Poems*. Dimapur: Heritage Publishing House, 2017.
3. Ao, Temsula. *The Ao-Naga Oral Tradition*. Bhasha Publications, 1999.
4. Ao, Temsula. *The Tombstone in My Garden : Stories From Nagaland*. New Delhi: Speaking Tiger Books LLP, 2022.
5. Ao, Temsula. *These Hills Called Home: Stories From a War Zone*. Penguin Books, 2006.



From Oral Traditions to Modern Narratives : The Folkloric Fabric of Sudha Murty's Literature

Shinu R. Das

*Ph.D Research Scholar (Part time),
Department of English,
VHNSN College (Autonomous),
Affiliated to Madurai Kamaraj University,
Virudhunagar*

Dr. Y. Vidya

*Asst. Professor of English,
VHNSN College (Autonomous),
Affiliated to Madurai Kamaraj University
Virudhunagar*

Abstract :

Sudha Murty's stories, rich in myth and folklore, highlight essential human standards that reverberate intensely with readers. For Sudha Murty the complexity of Indian mythologies are shrouded in magical mysteries, yet revealing those treasures in a simple way is equally difficult. Her mythological narratives are not just tales but metaphors- metaphors of change across cultures. As a myth reteller, she is interested to write about some of the powerful women who changed the fate of dynasties, who could take decisions on par with men. In the process of recreating these myths, she weaves into her stories the unbelievable, the ahistorical and the unknown as plausible. The word mythological implicates the narrative rooted in belief or legend. Historical specificity is tempered with the tentativeness of the mythical so that the ahistorical co-exists with the historical. The evidentiary traces that bear testimony to myth exist are painstakingly pointed out in her writings to provide a basis for myth as knowledge about religion, history and culture. Murty seamlessly blend tradition and modernity, combines myth and folklore with timeless wisdom while ensuring it remains appealing and enlightening in the 21st century.

Keywords :

Myth, Folklore, Tradition, Tales, Orality.

Introduction :

The unwritten forms of literature such as tales, songs and folklore and other oral traditions are influential message riggings that contribute significantly to cultural narratives and heritage. Including both written

and unwritten forms allows a fuller appreciation of the diverse ways stories and values are shared across generations. The confluence of tales, myths and culture in literature highlights the timeless power of

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

355

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

storytelling. Literature, while evolving with contemporary influences, continues to draw from its ancient roots, making it an enduring medium for exploring the complexities of human experience and celebrating the rich diversity of global heritage. As readers and writers, people are part of this ongoing narrative that links them to the past, shapes the present and inspires the forthcoming events. Through literature, one finds a shared history, uniting us in a journey that transcends time and culture.

Sudha Murty's stories, rich in simplicity and profound insights, highlight essential human standards that reverberate intensely with readers. Defined as shorter, simpler narratives often shared through oral tradition, tales such as Murty's bring to life the enduring qualities of honesty, humility, gratitude and compassion. Her works, including *Wise and Otherwise*, *The Old Man and His God*, *The Day I Stopped Drinking Milk* and *How I Taught My Grandmother to Read*, depict relatable characters- ordinary people reflecting society's core values. For example, in *The Deserving Candidate*, a protagonist's dedication to honesty and altruism shines through as he donates his earnings to support a student trust. In *In Sahyadri Hill*, Murty teaches the grace of accepting gifts with humility, while *Too Many Questions* encourages readers to value a gift's thoughtfulness over its monetary worth. Her stories also emphasize gratitude, as seen in *Three Bright Young Men* and *Oh Teacher, I Salute Thee*, where a student reveres a teacher devoted to knowledge, untainted by material pursuits. Themes of selflessness continue in *No Man's Garden*, about a community

garden grown solely to help the poor and *Rahman's Avva*, a tale of kinship beyond religious differences. Murty's tales often spotlight dignity, such as in *Treat Me as a Human*, where a poor couple declines financial aid for their son's birthday, reflecting their self-respect. Furthermore, she addresses societal concerns; *May You Be the Mother of a Hundred Children* portrays Ambakka's selfless work aiding women in her village and *A Tale of Two Brothers* highlights how prosperity can gulf people relatively than bond them together. Narratives like *Each Mop Counts* depict dedication and responsibility through the diligence of a nurse, while *An Old Man's Ageless Wisdom* imparts a timeless perspective on life's blessings as communal gifts rather than possessions. Finally, Murty reminds readers of the significance of patriotism and integrity in *Forgetting Our Own History*, encouraging unity and national pride. Her stories collectively reinforce optimism, reminding us that life is a gift to be cherished and lived with compassion, resilience and generosity. Sudha Murty's tales, shining with values like humility, kindness and authenticity, continue to offer timeless lessons that inspire and uplift, urging readers to lead lives of purpose and humanity.

Myth, Mystery and Folklore in Murty's Literature :

For Sudha Murty the complexity of Indian mythologies are shrouded in magical mysteries, yet revealing those treasures in a simple way is equally difficult. Sudha Murty depicts womenfolk who are loyal and courageous. They are resilient and have the power to bring transformation. Her mythological narratives are not just tales

but metaphors-metaphors of change across cultures. As a myth reteller, she is interested to write about some of the powerful women who changed the fate of dynasties, who could take decisions on par with men. In the process of recreating these myths, she weaves into her stories the unbelievable, the ahistorical and the unknown as plausible.

In *Unusual Tales from Indian Mythology*, Murty focuses on myth as knowledge system implying that these tales are worth knowing about and worth remembering. Through strong women characters, Sudha Murty's assemblage of stories explores feisty women who redesigned their purpose. She challenges the status quo by offering fresh perspectives about women characters. She reimagines the well-known characters and events from Indian mythology to reinvent a spectrum of human experiences, especially women, within these tales. She employs conventional retellings in the *The Daughter from a Wishing Tree: Unusual Tales about Women in Mythology* by including the myths of unheard women voices such as Ravana's sister Surpanakha and his wife Mandodari. Unlike the existing versions of Surpanakha's tale who is usually depicted as a catalyst in the war, Sudha Murty presents her as someone who refuses patriarchy and seeks revenge. In *Unusual Tales*, Murty combats the representation of women as meek individuals through these characters. For instance, in one of the stories, Goddess Lakshmi is portrayed as an independent, decisive woman who questions her husband Lord Vishnu for mocking at one of her brothers. Sudha Murty clearly places the 'mythological' as a narrative rooted in beliefs and traditions. In *Unusual Tales* she refers to the mytho-

logical story of Ganges, the mother Ganga in which Lord Vishnu appears in the procedure of a dwarf named Vamana. She tries to reinterpret the received versions of stories thereby compelling the reader to rethink and value the significance of these myths.

The evidentiary traces that bear testimony to myth exist are painstakingly pointed out in *Unusual Tales* to provide a basis for myth as knowledge about religion, history and culture. These evidentiary traces could be seen to function as 'normative defeaters,' one of the two types of defeaters that can make propositions of true belief be accepted as knowledge (Lackey, 2005). This could be why *Unusual Tales* provides evidentiary traces of myth as 'normative defeaters' in anticipation of the fact that even children, young as they are, may not be so naïve as to blindly believe the mythic without adequate 'evidence.'

As Karl Mannheim argues, past experience is only relevant when it exists concretely incorporated in the present. Drawing attention to the evidentiary traces of myth in the here and now, enables the myth reteller to close the gap that separates the past and the present, the sacred and the secular, the imaginary and the real. Examples of evidentiary traces in *Unusual Tales* are relentless. Readers are told that the temple of Lord Shiva is still around in Srikalahasti, a town in the state of Andhra Pradesh (Murty, 2017, p. 65); that the Nag (Snake) Temple, where Karkotaka and Nala from the story The Princess and the Ugly Dwarf were supposed to have met, still exists in today's state of Uttarakhand (Murty, 2019, p. 89); and that the statue of Ajji (she was actually Goddess Yakshi

in disguise) clutching a pot of milk still stands in what is present day Shravanbelagola (Murty, 2019, p. 72).

Myth is further historicized when the descent and lineage of the mythic characters is traced down to the present, as Lord Ram's is for example, when he is identified as a descendant of the Suryavamshi or Ishvaku dynasty that included legendary figures such as King Harishchandra (Murty, 2018, p. 3). To the extent that such information construes myth as history and thus as knowledge, it helps deflect the skepticism that modern readers might bring to their reading of myth. Skepticism is the enemy of myth and myth memory can only sustain itself in relative to it: the more one believes the better the desire to remember. In *Unusual Tales*, myth is proffered as legend and belief but equally as history, knowledge and truth to establish, to whatever degree possible, the facticity of the mythic narratives. Such an exercise in reification to mitigate the abstractionism of myth transfigures myth into something that is at least possible if not entirely knowable or believable.

The word mythological implicates the narrative rooted in belief or legend. Historical specificity is tempered with the tentativeness of the mythical so that the ahistorical co-exists with the historical. As Murty admits in the outline to *The Serpent's Revenge: Unusual Tales* from the Mahabharata, the Puranas are less accurate than history (2016, p. xi). She goes on to highlight the fictionality of myth in these words, 'Don't ever forget that these are not practical or real – they are simply stories' (p. xii). The pendulum swings between the fictionality and reality

of myth, never quite settling on one for too long.

Sudha Murty has also made significant contributions to Indian children's literature through her retellings of folktales and mythological stories. Her collections, such as *The Magic of the Lost Temple* and *The Magic Drum and Other Favourite Stories*, bridge generational gaps, safeguarding the broadcast of traditional narratives with enthusiasm and understanding.

Murty's *The Magic of the Lost Temple* explores a young girl's adventure in a Karnataka village, instilling a deep connection to regional values and customs. The book provides a window into the lives of rural children and the beauty of Indian village life. The protagonist, Nooni, is a relatable and strong character who embarks on a quest of self-discovery. She is a young girl curious about the world, which resonates with young readers, especially girls, encouraging them to explore and learn. The story imparts valuable moral and ethical lessons about honesty, responsibility and respect for one's cultural heritage. These lessons are subtly woven into the narrative, making them accessible to children. *The Magic of the Lost Temple* plays an essential role in preserving and celebrating the cultural diversity and richness of India. It introduces young readers to the significance of historical temples and the prominence of conserving tradition and legacy.

The tales in *The Magic Drum and Other Favourite Stories* offers a varied array of tales that appeal to a wide audience. Murty's storytelling extends beyond mythology and includes modern leitmotifs that reverberate with contemporary child-

ren. The stories often focus on individual characters, portraying their trials, tribulations and triumphs. This character-centric approach helps young readers relate to the understandings and feelings of the characters. They contain moral and social messages that encourage empathy, kindness and understanding. They also address relevant issues, such as environmental conservation and gender equality, making them thought-provoking for young minds. Sudha Murty's stories are culturally sensitive, embracing the traditions and values of different regions of India. This sensitivity ensures that her narratives are accessible and inclusive to a diverse audience.

In both *The Magic of the Lost Temple* and *The Magic Drum and Other Favourite Stories*, Sudha Murty skillfully blends regional storytelling with universal themes, imparting treasured ethical and just standards to young readers. Her works celebrate the multiplicity and legacy of India while addressing contemporary issues, making her a noticeable author in children's literature. With her attractive stories, she encourages the younger generation to embrace cultural multiplicity, empathy and social responsibility, making her stories enriching for children.

The study of *Unusual Tales* set out to evaluate the unusual component of its retellings. It concludes that *Unusual Tales* is unusual for the manner in which the retold myths interweave memory, myth, geography, history and religion into a rich tapestry whose design is framed and supported with evidentiary traces of the presence of myth in the here and now. Directing the reader's attention to the visible traces that the mythic past has left

behind does make the mythic more believable. The claim to be unusual, however, is somewhat problematic because it does not completely achieve its promise of newness. In one interview, Murty declared that writing mythological stories is challenging: Because the results are known, the end is known. Somebody has created that limit and you have to play within that limit. Contrary to Murty's claim, however, *Unusual Tales* flinches from stretching its limits to be more playful with the myths it retells.

Conclusion :

It is perhaps worth stressing that unusual critiques of myth retellings are as valuable as the retold myths themselves. Critical engagements with myth revisionings have scope to examine the many inversions and subversions that frame the surface and deeper structure of the reimagined myths. Of greater import than writers and critics of myth retellings for children, however, is the child consumer of myth. The frame of reference of the reading child has the potential to animate and render truly unusual, the drollest of conversations on myths and their reversions. Sudha Murty's adaptations often draw from her own experiences, making them relatable to the readers. Her stories emphasize values, ethics and the importance of empathy, nurturing the moral compass of young minds. Murty seamlessly blend tradition and modernity, combines myth and folklore with timeless wisdom while ensuring it remains appealing and enlightening in the 21st century.

References :

1. Sudha Murty (2006), *The Old Man and His God*. New Delhi: Penguin Books.

2. Sudha Murty (2002), *Wise and Otherwise: A Salute to Life*. Penguin Books.
3. Sudha Murty (2004), *How I Taught My Grandmother to Read and Other Stories*. Penguin Books.
4. Sudha Murty (2012), *The Day I Stopped Drinking Milk*. New Delhi: Penguin Books.
5. Murty, S. (2016). *The Serpent's Revenge: Unusual Tales from the Mahabharata*. Puffin Books
6. Murty, S. (2017). *The Man from the Egg: Unusual Tales about the Trinity*. Puffin Books.
7. Murty, S. (2018). *The Upside Down King: Unusual Tales about Rama and Krishna*. Puffin Books.
8. Murty, S. (2019). *The Daughter from a Wishing Tree: Unusual tales about Women in Mythology*. Puffin Books.
9. Murty, S. (2021). *The Sage with Two Horns: Unusual Tales from Mythology*. Puffin Books.



पारम्परिक भारतीय कलालोक से नवीन सृजन लोक में मनोवैज्ञानिक संवेगो की यात्रा

शिवा देवी

चित्रकला विभाग, डी. जी. पी. जी. कालेज
छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय,
कानपुर (उ.प्र.)

सारांश :

परम्परा शब्द जब कला के अर्थ में प्रयुक्त होता है, तो इसका तात्पर्य दीर्घकाल से पीढ़ी दर पीढ़ी या गुरु शिष्य से होते हुए लगातार प्रचलन में रही कला शैलियों से होता है। भारतीय कला ऐसी पारम्परिक कलाओं से समृद्ध रही है। यदि उन्हें उदाहरणार्थ रेखांकित करना हो तो पटचित्र, नाथद्वारा, मधुबनी सहित विभिन्न कला शैलियाँ प्रत्यक्ष उपस्थित हैं। वहीं कला के 'नवीन सृजन लोक' से अर्थ वर्तमान भारतीय कला परिदृश्य में प्रयुक्त नवीन विषयों तथा नवीन प्रयोगों से है। शास्त्रीयता से मुक्त होने की कोशिश तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पाने की कोशिश में कला कुछ सहज भी हुई कुछ कठिन भी। तथापि कला का नवीन स्वरूप परिवर्तित होकर अभिव्यक्ति का सहज माध्यम बन गया है। नवीन परिदृश्य में अलग-अलग कलाकार अपने कैनवास या कला के अन्य उपकरणों से माध्यम से अपने आन्तरिक मनोभावों को व्यक्त कर रहा है। मनोविज्ञान के अनुसार संवेग मानव मस्तिष्क या मन में उद्वेलन की अवस्था है। जिसमें मानव मन सहज ना होकर अभिव्यक्ति के लिए बेचैन हो जाता है।

मनोविज्ञान की दृष्टि से संवेग को समझने पर पता चलता है की संवेगों का कला तथा साहित्य में वर्णित रस के साथ साम्य स्थापित होता है। जैसे विशेष स्थाई भाव रस के मूल में निहित होता है ठीक है वैसे ही एक विशेष स्थाई किंतु उतावलेपन की स्थिति मानवीय मस्तिष्क में संवेग को जन्म देती है। जैसे रस की अभिव्यक्ति का माध्यम विभिन्न कलाएं होती हैं, वैसे ही मानवीय संवेगों की अभिव्यक्ति का माध्यम कला है। ऐसा कह सकते हैं एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। एक पहलू यदि रस है, तो दूसरा मानवीय संवेग होता है।

बीज शब्द :

पारम्परिक कला, मनोविज्ञान, संवेग, भाव, रस, समकालीनकला, आधुनिककला।

भूमिका :

भारतीय कला की भूमि आरंभिक काल से ही तो जड़ें मजबूत होती हैं और वृक्ष अनंत काल तक अत्यंत समृद्ध रही है। कहते हैं कि जब बीज पुष्ट हो धरती को लाभान्वित करता है। भारतीय कला की

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

361

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

बीज निश्चित ही अत्यंत पुष्ट था, जो प्रागैतिहासिक काल में धरती की कोख में गिरा, वैदिक काल में अंकुरित हुआ, मध्यकाल में विकसित हुआ और आधुनिक काल से लेकर दूरस्थ भविष्य तक पल्लवित होता रहेगा। हमारे शोध पत्र का विषय पारम्परिक भारतीय कला लोक और नवीन कला परिदृश्य के मध्य मानवीय संवेगों की दृष्टि से अवलोकन है। विषय के तीनों चरों को समझते हुए सर्वप्रथम पारम्परिक तात्पर्य समझने की आवश्यकता है। पारम्परिक का अर्थ एक लंबे समय से चली आ रही जीवनशैली से होता है, जिसे विशेष रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में अंग्रेषित किया जाता है। यह प्रथाओं के अनुशासन जैसा कहा जा सकता है। इस भाव में अपने से पिछली पीढ़ियों में प्रचलित नियमों व मान्यताओं को स्वयं मानते हुए उन्हें भविष्यगत पीढ़ी तक प्रेषित करने की भावना निहित होती है। यह भावना ही नियमों को, क्रियाकलापों को परम्परा बनाते हैं। यही परम्परा शब्द जब कला के अर्थ में प्रयुक्त होता है, तो इसका तात्पर्य दीर्घकाल से पीढ़ी दर पीढ़ी या गुरु शिष्य से होते हुए लगातार प्रचलन में रही कला शैलियों से होता है। भारतीय कला ऐसी पारम्परिक कलाओं से समृद्ध रही है। यदि उन्हें उदाहरणार्थ रेखांकित करना हो तो पटचित्र, नाथद्वारा, मधुबनी सहित विभिन्न कला शैलियाँ प्रत्यक्ष उपस्थित हैं।

वहीं कला के 'नवीन सृजन लोक' से अर्थ वर्तमान भारतीय कला परिदृश्य में प्रयुक्त नवीन विषयों तथा नवीन प्रयोगों से है। शास्त्रीयता से मुक्त होने की कोशिश तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पाने की कोशिश में कला कुछ सहज भी हुई कुछ कठिन भी। तथापि कला का नवीन स्वरूप परिवर्तित होकर अभिव्यक्ति का सहज माध्यम बन गया है। नवीन परिदृश्य में अलग-अलग कलाकार अपने कैनवास या कला के अन्य उपकरणों के माध्यम से अपने आन्तरिक मनोभावों को व्यक्त कर रहा है। जहाँ प्राचीन पारम्परिक कला संसार में कला का ध्येय इष्ट को प्रसन्न करना था।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

महाकाव्य गाथाओं पौराणिक कथाओं को दृश्य रूप देना तथा मोक्ष प्राप्त करना था वहीं नवीन कला लोक में कला का उद्देश्य माध्यमों, उपकरणों की सीमा से परे जाकर विषय की बाध्यताओं से मुक्त होकर अपने तथा विश्व के अंतरमन की अभिव्यक्ति हो चुका है। इस अभिव्यक्ति की कोशिश में ही अपने आत्म के मोक्ष की कामना भी कहीं ना कहीं निहित है। शोध पत्र का तीसरा चरण मनोवैज्ञानिक संवेग है। मनोविज्ञान अर्थात् मानव मन का अध्ययन करने वाला विज्ञान।

मनोविज्ञान के अनुसार संवेग मानव मस्तिष्क या मन में उद्वेलन की अवस्था है। जिसमें मानव मन सहज ना होकर अभिव्यक्ति के लिए बेचैन हो जाता है। संवेग को अंग्रेजी में Emotion इमोशन कहते हैं। Emotion मूलतः लैटिन भाषा के शब्द Emovere से बना है। जिसका अर्थ है - तेज हलचल होना, या उत्तेजित हो जाना। यदि Emovere का संधि विच्छेद करें तो कुछ इस तरह का पक्ष दृष्टिगोचर होता है :

(i) E-OUT (बाहर)

(ii) MOVER-MOVE (निकलना, घूमना)

(iii) EMOVERE-MOVE OUT (बाहर निकलना)

उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट है, कि नियन्त्रित या सामान्य शारीरिक स्थिति से निकलना ही संवेगों की सक्रियता है। इस तरह भी इमोशन का मतलब सामान्य स्थिति से बाहर निकलना ही है।

संवेग को समझने के लिए मनोवैज्ञानिकों द्वारा कुछ परिभाषाएं प्रतिपादित हैं। एक परिभाषा दृष्टांकित हैं:

“संवेग व्यवहारिक रूप से अनुभव के एक विशिष्ट वर्ग से संबंधित हैं, अधिकांश मनोवैज्ञानिकों के अनुसार संवेग एक जटिल अवस्था है, जिस में व्यक्ति किसी वस्तु या परिस्थिति को अधिक बढ़े हुए रूप में प्रत्यक्षीकरण करता है। इसमें बड़े स्तर पर शारीरिक परिवर्तन होते हैं। व्यक्ति का व्यवहार पहुंच या वापसी की ओर संगठित होता है तथा अनुभूत आकर्षण या विकर्षण की सूचना प्रदान करता है। -आइज़ैक (1972)

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

मनोविज्ञान की दृष्टि से संवेग को समझने पर पता चलता है की संवेगों का कला तथा साहित्य में वर्णित रस के साथ साम्य स्थापित होता है। जैसे विशेष स्थाई भाव रस के मूल में निहित होता है ठीक है वैसे ही एक विशेष स्थाई किंतु उतावलेपन की स्थिति मानवीय मस्तिष्क में संवेग को जन्म देती है। जैसे रस की अभिव्यक्ति का माध्यम विभिन्न कलाएं होती हैं, वैसे ही मानवीय संवेगों की अभिव्यक्ति का माध्यम कला है। ऐसा कह सकते हैं एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। एक पहलू यदि रस है, तो दूसरा मानवीय संवेग होता है।

इस शोध पत्र में हम इन्हीं मानवीय संवेगों के नजरिए से पारम्परिक भारतीय कला तथा नवीन कला परिवेश को परखने की जानने और समझने की कोशिश करेंगे।

विषयवस्तु :

विविधताओं से भरी भारतीय सभ्यता प्रत्येक प्रदेश, प्रत्येक गांव, शहर अपनी अलग-अलग विशेषताओं से समृद्ध है। हर प्रदेश में धार्मिक क्रिया व सामाजिक प्रेरणा स्वरूप जन्मी कोई ना कोई पारम्परिक कला अवश्य है। जिसने अपनी अलहदा पहचान बना रखी है। इन कलाओं का अपना श्रेष्ठता बोध है और अपना साम्यभाव। प्रत्येक कला की निजी चित्रण शैली है, नजी चित्रण विषय, और बरसों से उसे साधने वाले साधक कलाकार। अब चाहे यह महाराष्ट्र की वरली चित्रकला हो, पारम्परिक मिनिअचर पेंटिंग हो, लघु चित्रण शैली हो, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के पट चित्र हो, या मिथिला क्षेत्र की मधुबनी। जैन, बौद्ध तथा मध्यकालीन स्थापत्य हो, या विभिन्न तरह के हस्तशिल्प, बनारसी साड़ियां हों, चिकनकारी, बाँधनी, या कश्मीरी शॉल हों, टेराकोटा के बर्तन हों मूर्तियाँ, मीनाकारी, कुंदन, पारम्परिक आभूषण तथा अन्य भारतीय कलाएं अपनी विशिष्ट पहचान के साथ शामिल हैं। यह समस्त पारम्परिक कला शैलियां स्वयं में विशेष हैं। इन सभी की अपनी अलग-अलग

पहचान है। अलग-अलग उपकरण प्रयुक्त होते हैं, विषयों की विभिन्नताएं हैं, और स्थान तो अलग-अलग हैं ही। अगर मनोवैज्ञानिक संवेगों की दृष्टि से इन कलाओं को देखें तो पता चलता है, कि इनमें कितना भेद है। प्राचीन भारत के मंदिर, गुफाचित्र, शिलाचित्र अधिकतर धर्म या राज्य प्रचार के लिए बनाए गए। आंशिक ही था इन चित्रों में भावनाओं का पुट मिलना, किन्तु फिर भी हम देखते हैं, कि अजंता के चित्रों में आकृतियों के चेहरे के भाव स्वयं ही कथानक को व्यक्त करते हैं। फिर चाहे वह मरणासन्न राजकुमारी का चित्र हो, छदन्तजातक, या फिर पद्मपाणि बोधिसत्व के चेहरे के लावण्य पूर्ण भाव। मंदिरों की भित्ति पर निर्मित चित्र पौराणिक आख्यान, शिक्षा-दीक्षा की दृष्टि से बनाए जाते हैं। चित्र का उद्देश्य कोई भी हो सम्प्रेषण के लिए सर्वाधिक आवश्यक तत्व होता है, आकृतियों के चेहरों पर प्रकट भाव। यह भावात्मक अवस्था मानव मन की सांवेगिक अवस्था ही है। मध्यकालीन लघुचित्रण शैली जिसमें विभिन्न प्रकार के भाव राग-रागिनियों के माध्यम से प्रतिकों में व्यक्त करते थे। वहीं नायिका भेद के चित्रों को देखा जाए, तो यह प्रेमिल स्त्री मन की विभिन्न सांवेगिक अवस्थाओं का वर्णन होता है। इन चित्रों में कभी रात्रि के सन्नाटे कभी पशु-पक्षियों की मुद्राओं, नायिका के चेहरे, हस्त मुद्राएं, वस्त्र-परिधान के रंग आदि विभिन्न तत्व मिलकर प्रतीकात्मक रूप से उसके हृदय की स्थिति का पता देते हैं। उस समय का कलाकार भले ही स्पष्ट तौर पर भले ही मानसिक अभिव्यक्ति का परचम लेकर ना घूमता हो, किंतु फिर भी उसके चित्रों में संवेग सहज रूप से प्रकट होते थे। क्योंकि कलाकार जिस साहित्य या कथा के आधार पर चित्र बनाते थे वह कथाएं भी मानवीय भावनाओं के उतार-चढ़ाव पर केंद्रित होती थीं।

अन्य पारंपरिक कलाओं की बात करें तो उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के पटचित्र जो कपड़े और कागज पर प्राकृतिक रंगों से उकेरे जाते हैं। इन चित्रों

का विषय हमेशा भक्ति होता है। पौराणिक कथाओं के आधार पर चित्रित किए जाने वाले यह चित्र अपनी रेखाओं के माध्यम से चित्र कथाओं के भाव व्यक्त करते हैं। हां यह अन्य शैलियों के चित्र विषय से सर्वथा विपरीत होते हैं इनमें समर्पण का भाव अवश्य निहित होता है, किन्तु अन्य संवेग मौन रहते हैं। मिथिला क्षेत्र की प्रसिद्ध मधुबनी शैली जो प्राकृतिक रंगों, ज्यामितीय आकारों के माध्यम से धार्मिक विषयों का चित्रण करती रही है, वर्तमान में अत्यधिक प्रासंगिक होकर विषयों की सीमा से परे जाकर चित्रण कर रही है। आधुनिक कलाकार मधुबनी चित्रशैली के माध्यम से नवीनतम विषयों का सृजन करने लगे हैं। जैसे कभी अंतरिक्ष यात्रा के रोमांच का चित्रण कभी बचपन के निश्छल मन का चित्रण। इसी तरह महाराष्ट्र की वर्ली चित्रकला तथा विभिन्न हस्तशिल्प के माध्यम से भारतीय समाज और कलाकार पारंपरिक तौर पर अपनी अभिव्यक्ति करते रहे हैं। कलाकार इनका आश्रय लेकर जीवकोपार्जन भी करते रहे हैं। पारंपरिक कला में विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित लोककलाएं भी आती हैं। जो स्वार्थ परे हैं इनका उद्देश्य मात्र अपने आत्म तथा रीति-रिवाजों व परंपराओं की अभिव्यक्ति है।

वर्तमान काल के स्वरूप की चर्चा करें तो वर्तमान काल माध्यमों तथा किसी वाद के अनुकरण के प्रवृत्ति से मुक्त होकर स्वतंत्र भाव से गतिमान है। पुनर्जागरण काल के समय जब अवनीन्द्र नाथ और उनके शिष्यमंडल के विभिन्न कलाकार कला विषयों में सामाजिक संदर्भों को जोड़ रहे थे, तब प्रौढ़ावस्था में अचानक चित्रांकन शुरू करने वाले रवींद्रनाथ ठाकुर संभवतः प्रथम ऐसे चित्रकार हुए जिन्होंने सिर्फ अपने मानसिक संवेगों को अभिव्यक्त किया। उनकी साहित्यिक रचनाओं में भले ही देशज, सामाजिक तथा अन्य सरोकार परिलक्षित होते हैं। किंतु उनके चित्रांकन में मात्र आंतरिक मनोभाव, अचेतन और संवेग की छाया दिखाई पड़ती है। उसके बाद तो जैसे एक सिलसिला ही चल निकला, कलाकारों ने पारम्परिक प्रभाव से

मुक्त होकर अपने व्यक्तित्व की ही भांति निजी मौलिक कार्यशैली विकसित की। इसमें यामिनी राय, गगनेन्द्रनाथ टैगोर, भूपेंद्र खक्कर, अमृता शेरगिल, एम. एफ. हुसैन, एस. एच. रजा सहित वर्तमान समय में कार्य करने वाले विभिन्न कलाकार शामिल हैं। जिनमें रेखा रोडवितिया, अंजू डोडिया, एन. एस. हर्षा, शिल्पा गुप्ता, लाल रत्नाकर, सहित अन्य कई कलाकार सम्मिलित हैं। इन कलाकारों की कलाकृतियों में उनके भाव-अनुभूति सांवेगिक दशाओं का चित्रण है। जहाँ प्राचीन कला धर्म, मोक्ष, पुराण आधारित थी वहीं वर्तमान कला कलाकारों के अंतरमन के उतार-चढ़ावों पर आधारित है। इस विषय को और अधिक अच्छी तरह समझने के लिए इन चित्रकारों के चित्रों का अध्ययन किया जाना चाहिए, जो अपने आप में एक वृहद विषय है।

विषयवस्तु विश्लेषण :

यदि हम अपने विषय के अनुरूप शोध के दोनों चर पारम्परिक कला और नवीन कलालोक का अवलोकन करें तो पाते हैं कि जैसे-जैसे मानव मन इहलोक से परलोक या यूँ कहें कि पशुत्व से मानवत्व की ओर बढ़ रहा है वैसे-वैसे कला और संवेदनशील होती जा रही है। प्राचीन समय में जब मानव के लिए श्रद्धा और भक्ति का आलम्बन था तब उनकी कला ईश्वर पर आरोपित थी। उनके चित्रांकन विषय भी धर्म पुराण संबंधी ही थे, किंतु जैसे-जैसे समय व्यतीत हुआ कला, साहित्य, चिंतन, वैचारिकी से संपन्न होता गया। वर्तमान और पारंपरिक के संधिकाल पुनर्जागरण तथा आधुनिक काल में भी धीरे-धीरे व्यक्ति अपने मानसिक द्वन्द और आंतरिक चेतना की अभिव्यक्ति की ओर अग्रसर हो रहा है। कला में यह प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है। वर्तमान कलाकारों ने न सिर्फ कला की तकनीक में कुशलता हासिल की है, वरन् मानसिक चेतना को, सामाजिक मनोविज्ञान को समझते हुए चित्र बनाए।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि प्रत्येक समय की अपनी विकास यात्रा होती है। प्रत्येक युग की अपनी परम्परा होती हैं और प्रत्येक परम्परा का एक आरम्भ और एक अंत होता ही है। यह कहना बिल्कुल भी अतिशयोक्ति नहीं होगा की वर्तमान समय परम्पराओं के पीपल में उगे नवीनता के नीम जैसा है। इस तथ्य को बिल्कुल भी नकारा नहीं किया जा सकता कि, पारम्परिक भारतीय कलाएँ पीढ़ी दर पीढ़ी कलाकार के चेतन मन में बैठकर उसकी भावी पीढ़ियों को भी कला की सृजनात्मक से सींचा। संभवतः इसीलिए कला निरंतर गुणनखंड में बढ़ती रही। समय-काल, परिस्थितियों के अनुसार कलाकारों ने अपनी कलाकृतियों के विषय चुने। जैसे

हिंदी साहित्य में दरबारी काल आता है, वैसे ही कला इतिहास में भी कलाकारों का दरबारी काल आता है। किंतु विषय की दृष्टि से कला सृजन का उद्देश्य चाहे जो भी हो, तैयार होने के बाद दर्शक के हृदय पर कोई ना कोई प्रभाव छोड़ती ही है। इस प्रभाव का नाम ही रस है। कलाकृति के आलम्बन से दर्शक के मन में उद्दीप्त भाव संवेग है। कलाकृति के सृजन के पीछे प्रेरणा के रूप में कार्य करने वाले सक्रिय तत्व संवेग ही होते हैं।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि, भारतीय कला में कभी प्रतीकों तो कभी स्पष्टवादी रेखांकन द्वारा मानवीय संवेगों का निरंतर चित्रांकन किया जाता रहा है, जो अपने आप में विशेष है।



अष्टछापिय भक्त कवि सूरदास का संगीत चिन्तन : एक विवेचनात्मक अध्ययन

स्नेहा

शोधार्थिनी, संगीत विभाग
इस्माईल नेशनल गर्ल्स पी. जी. कॉलेज,
मेरठ

प्रो० (डॉ०) रीना गुप्ता

शोध निर्देशिका (संगीत विभाग)
अध्यक्ष - नेशनल इस्माईल पी. जी. कॉलेज,
मेरठ

सारांश :

भारतीय संगीत एवं काव्य की दृष्टि से सोलहवीं शताब्दी का समय अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। इस काल में सूरदास नन्ददास, तुलसीदास, स्वामी हरिदास, तानसेन, रामदास इत्यादि उच्चकोटि के संगीतज्ञ एवं कवि हुए हैं। इस काल में अष्टछाप कवियों का स्थान संगीत और कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है। अष्टछाप भक्त कवियों को पुष्टि-मार्गीय और वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत माना गया है जिन्होंने भक्ति की धारा कीर्तनों के माध्यम से प्रवाहित की। चौदहवीं शताब्दी से लेकर अठ्ठाहरवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक का समय साहित्य एवं भक्ति संगीत की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। इस कालखण्ड में भक्ति संगीत का प्रचलन अपनी सर्वोच्चावस्था पर था, जिसमें प्रमुखतः तुलसीदास, मीराबाई, कबीरदास के साथ ही अष्टछाप के भक्त कवियों सूरदास, नन्ददास, कुम्भनदास, कृष्णदास, चतुर्भुजास, परमानन्ददास, छीतस्वामी और गोविन्द स्वामी जैसे संत कवियों एवं संगीतज्ञों का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। अष्टछाप के इन भक्त कवि एवं संगीतज्ञों ने कृष्ण नाम के पद और कीर्तनों के माध्यम से भक्ति संगीत का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। वैष्णव सम्प्रदाय या पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय के आद्य प्रवर्तक बल्लभाचार्य जी और उनके शिष्य श्री विट्ठलनाथ जी थे। वैसे तो इन दोनों के अनेक शिष्य हुए किन्तु इनके आठ शिष्यों ने अत्यधिक प्रसिद्धि पाई जिन्हें अष्टछाप भक्त कवियों के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। इनमें से श्री बल्लभाचार्य जी के चार शिष्यों में कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्ददास, एवं कृष्णदास और श्री विट्ठलनाथ के चार शिष्यों में गोविन्द स्वामी, नन्ददास, छीतस्वामी तथा चतुर्भुज दास थे। इस आठों कवियों ने भगवान कृष्ण की नित्य लीलाओं का गायन सुर, ताल, लय और राग-रागिनियों में निबद्ध कर बड़े ही भावपूर्ण ढंग से किया। कृष्ण लीला के इन पदों में जहाँ एक ओर भक्ति संगीत और लोकसंगीत के गुण विद्यमान थे वहीं तत्कालीन समय में प्रचलित राग-रागिनियों का सुन्दर संयोजन था।

बीज शब्द :

अष्टछाप, संगीत, चिन्तन, राग, वाद्य।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

366

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

अष्टछाप भक्त कवियों की इस लम्बी शृंखला में भक्त कवि सूरदास का नाम परमोल्लेखनीय रहा है। विद्वानों के मतानुसार श्री बल्लभाचार्य जी सूरदास जी को भक्ति व्रका समुद्र तथा गोविन्द विट्ठल नाथ जी 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहते थे। सूरदास जी ने अपने काव्य में संगीत के विभिन्न तत्वों का संयोजन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है।

सूरदास जी का जन्म कहाँ हुआ था यह अभी भी शोध का विषय है, किन्तु जनश्रुतियों में इनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में दिल्ली के निकट सीही और आगरा के निकट रुनकता ग्राम का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार इनकी जन्मतिथि के सम्बन्ध में भी कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है। भक्तमाल, आइने अकबरी और चौरासी वैष्णवन की वार्ता में सूरदास के जीवन से सम्बन्धित तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनका जन्म संवत् 1483 और मृत्यु 1525 के लगभग हुई। सूरदास जी हिन्दी भक्ति-काव्य के शिरोमणि तो थे ही साथ ही साथ वे उच्चकोटि के संगीत ज्ञाता भी थे। सूरदास जी की प्रमुख रचनाओं में सूरसागर, साहित्य लहरी और सूरसारावली विशेष प्रसिद्ध हैं। इनमें सूरसागर का संगीत एवं काव्य की दृष्टि से विशेष महत्व है। सूरसागर में गीत, संगीत और काव्य का अथाह सागर है जिसने भारतीय संगीत के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। सूरदास जी की संगीत-सम्बन्धि विद्वता का भान उनके सूर सागर में संकलित पदों से सहज ही हो जाता है। सूरसागर के पदों को किसी विशेष राग या ताल में निबद्ध किया गया है। रागों में नट, आसावरी, सोरठ, बिलावल, भूपाली, कल्याण, बसन्त आदि और तालों में रूपक, त्रिताल, जतताल, एकताल आदि का प्रयोग पदों को निबद्ध करने के लिए किया गया है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के वाद्यो जैसे मृदंग, जत्र, बीन, सारंगी, सुरज, झांझ, उपांग, बाँसुरी, पखावज, झालरी, शहनाई आदि का उल्लेख मिलता है। वैसे तो अष्टछाप के

सभी सन्त उच्चकोटि के संगीतज्ञ तथा कवि थे किन्तु उन सभी में सूरदास जी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। विद्वानों के मतानुसार उन्होंने बादशाह अकबर को अपनी एक राग बिलावल में निबद्ध रचना मना रे तु कर माधौ सौ प्रीति के गायन से प्रभावित किया। इससे यह सिद्ध होता है कि सूरदास जी एक कवि के साथ ही संगीत के भी प्रकाण्ड विद्वान थे। गायन-वादन के साथ ही सूरदास जी को नृत्य का भी ज्ञान था, उनकी रचनाओं में तीन प्रकार के नृत्यों ब्रज का रास, चाचरी और राजस्थानी झूमर का उल्लेख मिलता है। सूरदास जी का संगीत चिन्तन उच्चकोटि का था। संगीत की तीनों ही विधाओं गायन, वादन तथा नृत्य का उल्लेख उनके पदों में व्यवस्थित रूप में दिखाई देता है।

संगीत की विभिन्न शब्दावलियों का पदों में प्रयोग :

सूरदास जी ने अपने पदों में संगीत में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न शब्दावलियों का प्रयोग किया है।

श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना तथा तान के सम्बन्ध में पद :

तीन ग्राम इकईस मूर्च्छना कोटि उन्चास तान।

स्वर की मह्या के सम्बन्ध में सूरदास जी द्वारा रचित पद :

एक ही सुर सकल मोहे, मुरली सुधा पकास।

सरगम से सम्बन्धित सूरदास जी द्वारा रचित पद :

सरगम सुनि के साधि सप्त सुरिन गई।

सूरदास जी ने तत्कालीन समय में प्रचलित गायन-शैलियों का भी उल्लेख अपने पदों में किया है। यद्यपि सूरदास जी के समय में अन्य गायन-शैलियों का भी प्रचलन था किन्तु ध्रुपद उस समय की अत्यधिक लोकप्रिय गायन शैली मानी जाती है। बल्लभ सम्प्रदाय की कीर्तन सेवा में भी ध्रुपद शैली का प्रयोग किया जाता था। सूरदास जी ने अपने कुछ पदों में ध्रुपद तथा धमार शब्दों का प्रयोग भी किया है। ध्रुपद-उल्लेख सम्बन्धी पद :

‘ध्रुपद जस हरि को हरि हौं गई सुनावति’

इसी प्रकार सूरदास जी ने एक पद में ध्रुपद के छन्द भेद के महत्व को बताने के साथ ही झपताल में उसका गायन करने का उल्लेख किया है- 'छन्द ध्रुवनि के भेद उपार। नाचति कुँवरि मिलै झपताल'

धमार-उल्लेख सम्बन्धी पद :

‘इक गावत है ‘धमारी’ इक इकनि दैत गारि दई
सबनि लाज डारि बाल पुरुष तौरी’

सूरदास जी एक प्रतिभाशाली कवि होने के साथ ही वे उच्चकोटि के संगीतज्ञ भी थे। उनकी काव्य रचनाओं में संगीत के प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि उन्हें संगीत की गायन, वादन तथा नृत्य तीनों विधाओं की सूक्ष्मतम जानकारी थी। उन्होंने भक्ति के आध्यात्मिक लोक में संगीत का प्रवेश कराया। सूरदास जी ने अपने कीर्तनों के अन्तर्गत ईश्वर के गुण, लीला और नाम का गुणगान अनियमित स्वर से नहीं किया अपितु उन्होंने उसको शास्त्रीय संगीत का आधार लेकर रचा।

पदों में रागोल्लेख : सूरदासजी जी ने अपने विभिन्न पदों में स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, सरगम, तान के साथ ही अनेक रागों के नामों का उल्लेख भी किया है।

‘सुर सावंत ‘भूपाली’ ‘इमन’ करत कान्हरो गान’
‘सुही, सारंग, टोड़ी, भैरव, सोरठी, केदार’
‘सारंग, गोड़ी, नटनाराइन, गौरी, सुरहि सुनावत’
‘मन्द मन्द सुर पूरत मोहन राग ‘मलार’ बजावत’
‘राग रागिनी संचि मिलाई गावें गुंड मलार’
‘काफी राग गावै, मुरली बजाई री’

‘अधर अपून मुरली सुर पूरत ‘गौरी’ राग अलापि बजावत’
‘जैवत गांवत है ‘सारंग’ की तान कान्ह सखिन के
मध्य लेत करछीने’

‘कैकि पच्छ मुकुट सिर भ्राजत ‘गौरी’ राग मिलै
सुर गावत’

‘बैनुपति गहि मौको सिखावत मोहन गावत ‘गौरी’

सूरदास जी रचित इन पदों में भूपाली, इमन, कान्हरो, सुही, सारंग, टोड़ी, भैरव, सोरठी, केदार, गोड़ी, नटनाराइन, गौरी, मलार, गुंड मलार, काफी रागों का उल्लेख मिलता है।

संगीत की मध्यकालीन राग वर्गीकरण परम्परा 6 राग- 36 रागिनी की पद रूप में रचना :

छहोराग छद्दीस रागिनी, इक-इक नीके गाबैरी।

इसके अतिरिक्त सूरदास जी द्वारा रचित सूर सारावली में छद्दीस रागिनीयों के नाम पद रूप में उल्लेखित किये गये हैं। जो सूरदास जी की संगीत विद्वत्ता को प्रमाणित करता है।

ललिता ललित बजाय रिझावति मधुर बीन कर लीने।

जानि प्रभात राग पंचम षट मालकोस रस भीने।

सुर हिंडोल मेघ मालव पुनि सारंग सुर नट जान।

सुर साँवत भूपाली ईमन करत कान्हरो गान।

ऊँछ अड़ाने के सुर सुनियत निपट नायकी लीन।

करत बिहाग मधुर केदारो सकल सुरनि सुखदीन।

सोरठ गौड़ मलार सोहिनी भैरव ललित बजायो।

मधुर बिभास सुनत बेलावल दंपति अति सुख पायो।

देवगिरी देसाख देव पुनि सुख गौरी श्री सुखरास।

जैतसिरी अरु पूर्वी टोड़ी आसावरि सुखरास।

रामकली, गुनकली केतुकी सुर सुघराई गाये।

जैजैवन्ती जगत मोहिनी सुर सौं बीन बजाये।

सुआ सरस मिलत प्रीतम सुख सिंधु वीर रस

मान्यो। जानि प्रभात प्रभाती गायों भोर भयो दोरु जान्यो।

सूरदास जी ने इस पद में मालकोस, षट, ललित, पंचम, मेघ, मालव, हिंडोल, सारंग, भूपाली, नट कान्हरो, ईमन, नायकी, अड़ाना, केदारो, बिहाग, गौड़मलहार, सोरठ, सोहिनी, भैरव, विभास, बेलावल, देसाख, देवगिरि, श्री, गौरी, पूर्वी, आसावरी, जैतसिरी, टोड़ी, गुनकली, रामकली, सुघराई, जैजैवन्ती, प्रभाती, सुआ (सूहा), का उल्लेख किया है।

सूरदास जी द्वारा रचित सूरसागर ग्रन्थ संगीत की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। इस ग्रन्थ में अनेक रागों का उल्लेख दिया गया है जिनमें आसावरी, सोरठ, अहीरी, मलार कामोद, गौड़, अलहिया बिलावल, वैराठी, मारू, गौड़ मलार, गांधार, नटनारायनी, रामकली, जैतश्री, नायकी, गुनकली, मुलतानी, परज, सूहा, बिलावल रामकली, खम्बावती, कल्याण, सूहो, देवसाख, श्री, गुन सारंग, सुघरई, नट नारायन, कान्हरो, श्री हठी, भूपाली, झिंझोटी, गौरी, जैजैवन्ती, विभास, सूहा बिलावल, मलार, शंकरामरण, देसकार, भैरव, कामोद, गूजरी, धनाश्री, तोड़ी, केदार, बिहागरो, सानुत, पुरिया, मालकोंस, कर्नाट, देसाख, हमीर, अलहिया, कुरंग, गांधारी, ईमन, अड़ाना, श्रीमलार, होरी, सोरठ, वसन्ती, राज्ञी हठीली, राज्ञी रायगिरी, भोपाल, धमार, रायगिरी, मेघमल्हार, देवगिरी, षटपदी, बिहागड़ा, पूर्वी, गुंड, काफी, ललित, गुंडमलार, बसंत, जंगला, मुलतानी धनाश्री, बिहाग, केदारो, देवगंधार, नट, भैरवी, और बिलावल रागों का उल्लेख प्राप्त होता है।

राग के रस-भाव प्रकृति तथा समय-सिद्धान्त के अनुकूल पद रचना :

सूरदास जी शास्त्रीय संगीत के मर्मज्ञ थे। उनकी अनेक रचनाओं का साहित्य राग के रस, भाव, प्रकृति तथा गायन-समय के अनुकूल होता था। उपयुक्त वातावरण की सृष्टि के लिए वे रागों की प्रकृति के अनुकूल पदों की रचना करते थे अथवा भाव के अनुकूल पदों में उनका गायन करते थे। रस, भाव और प्रकृति के साथ ही सूरदास जी अपनी पद-रचना में भारतीय शास्त्रीय संगीत के समय-सिद्धान्त का पालन भी विशेष युक्ति से करते थे। प्रातः काल का वर्णन तथा प्रातः काल गाये जाने वाले पदों की रचना सूरदास जी ने उसी समय गाये जाने वाले रागों में की है। इसी प्रकार सायंकाल के समय गाये जाने वाले पदों में सायंकालीन रागों का तथा रात्रिकाल में गाये जाने वाले पदों में रात्रिकालीन रागों का प्रयोग किया है।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

प्रातः काल में कन्हैया को नींद से जगाने के लिए सूरदास जी ने प्रातःकालीन राग बिलावल का प्रयोग किया है :

जागिये ब्रजराज कुँवर कमल कुसुम फूले।
कुमुद वृंद सँकुचित भए, भृगलता भूले।
तमचुर खग रोर सुनहु, बोलत बनराई।
रांभति गो खरिकनि में बछरा हित धाई।
विधु मलीन रवि प्रकास गावत नर नारी।
सूर स्याम उठौ, अंबुज-कर-धारी॥

इसी प्रकार प्रातःकालीन कलेवा का वर्णन सूरदास जी ने प्रातःकाल गाये जाने वाले राग भैरव तथा बिलावल में किया है :

राग भैरव : उठिए स्याम कलेऊ कीजै। मनमोहन मुख निरखत जीजै।

राग बिलावल : कमल नैन हरि करौ कलेवा।
माखन रोटी, सद्य जम्यौ दधि, भाँति-भाँति के मेवा॥

प्रातः काल में दही मंथन के वर्णन के लिए प्रातःकालीन राग आसावरी का प्रयोग किया है :

(एरी) आनंद सौ दधि मथति जसौदा धमकि
मथनियाँ धूमै।

सूरदास जी ने कृष्ण की बाल-क्रीडाओं में भी समयानुकूल रागों का सुन्दर समन्वय किया है। दोपहर के समय के छाक-वर्णन के लिए दोपहर में गाये जाने वाले राग सारंग का प्रयोग किया है। इस पद में यह पता चलता है कि कृष्ण खाते-खाते राग सारंग भी गा रहे हैं :

“ग्वाल मंडली में बैठे मोहन वट की छाँह,
दुपहर बेरिया रखानि संग लीनै।

एक दूध, फल, एक झगरि चवेना,
निज निज कामरी के आसननि कीने॥

जेंवतऽरू गावत हैं साँरंग की तान कान्ह,
सखनि के मध्य छाक लेत कर छीने।

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

सूरदास प्रभु कों निरखि, सुख रीझिरीझि,
सुर सुमननि वरषत रस भीने।

इसी प्रकार सायं के समय गाय चराकर लौटते समय गौ-पद-रज से मडित आनन लिए कृष्ण की सुषमा का वर्णन गौरी राग में किया गया है। चूँकि गौरी का गायन समय भी सायंकाल है।

वनत तैं आवत धेनु चराए, संध्या समय साँवरे
मुख पर गोपद रज लपटाए।

सूरदास जी ने जिस प्रकार कलेवा का वर्णन भैरव तथा बिलावल आदि प्रातःकाल गाये जाने वाले रागों में किया है उसी प्रकार रात्रि के समय बियारी के वर्णन में रात्रि के समय गाये जाने वाले रागों केदारौ, कान्हरा तथा विहागरौ का प्रयोग किया है।

कान्हरो : सूर स्याम कछु करौ बियारी पुनि
राखौ पौढ़ाई।

केदारौ : चलौ लाल कछु करौ बियारी। रुचि
नाहीं काहू पर मेरी तू कहि भोजन करौ कहारी॥

बिहारगौ : कमल नैन हरि करौ बियारो। लुचुई
लाचसी, सद्य जलेगी, सोई जेबहु जो लगै पियारी॥

इसी प्रकार जब रात्रि कालीन प्रसंग में कृष्ण चन्द्रमा को खिलौना समझकर उसको पाने को मचल उठते हैं। तब सूरदास जी इस बाल छवि पर मुग्ध होकर कृष्ण की हट को रात्रिकालीन राग केदारौ में वर्णित किया है :

मैया, मै तो चंद खिलौना लैहों।

जैहों लोटि धरनि पर अबही तेरी गोद न एहों॥

पदों में संगीत वाद्यों का उल्लेख :

सूरदास के पदों में तत्कालीन समय के संगीत वाद्यों का उल्लेख भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। चूँकि काव्य और संगीत दोनों ही भागवत अनुभूतियों के विस्तारक होते हैं इसलिए सूरदास जी के काव्य में वाद्यों का प्रयोग भी विशिष्ट ढंग से हुआ है। जिस प्रकार सूरदास जी ने पद साहित्य के भाव के अनुकूल

रागों का प्रयोग किया है उसी प्रकार वाद्यों का प्रयोग भी विशेष अवसरों के अनुकूल तथा रसात्मक स्थितियों के अनुसार किया गया है जैसे जन्म के अवसर पर सूरदास जी ने तत और घन वाद्यों की अपेक्षा सुषिर एवं वितत वर्ग के वाद्यों को सर्वाधिक महत्व दिया है। जन्मोत्सव के प्रसंग में अधिकांशतः बेनु, महुवरि, संख, विषाद, तूर, मुरज, रंज, सहनाई, पखावज, भेरि, डफ, झांझ, मंजीरा, उपंग, दुंदभि आदि वाद्यों का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार होली के प्रसंग में डफ वाद्य का विशेष प्रयोग सूरदास जी के साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। इसके साथ ही अन्य वाद्यों में मृदंग, पखावज, बांसुरी, बेनु, चंग, ताल, आनक, अघोटी, झांझ, ढोल, निसान, मुरज, दमामा, रंज, बीना, खंजरि, श्रीमण्डल, दुंदभि, मुखचंग, भेरी, गौमुख, नगाड़ा, झालर, पटह, महुवरि, रबाव, जंत्र, सारंगी, किन्नरी, घोंसा, वेना, कठताल, अमृतकुण्डली, सहनाई, मदनभेरी, मुरली, रायगिरिगिरी, घंटा, सुरबीन, पिनाक, संख, नुपुर, बंस, तुंबुर, झिमझिमी आदि का वर्णन मिलता है। सूरदास जी रचित होली सम्बन्धी पद जिसमें विभिन्न वाद्यों का उल्लेख किया गया है :

सुनि पग-पग डफ डिमडिमी, हरि होरी है।

ढोल, भेरी डफ बांसुरि हरि होरी है।

बाजै पटह निसान अहो हरि होरी है।

धरे यंत्र हतियार अहो हरि होरी है।

इक गवात इक भावत, इक नाचत इक राचत।

इक कर मिरदंग ताल, गति-गति उपजावै।

इक बीना, इक किन्नरी, इक मुरली इक उपंग।

इक तुंबुर इक रबाव, भांति सौ बजावै।

इक पटह इक गौमुख, इक आउझ इक झल्लरि।

इक अमृत कुण्डली, इक डफ कर धारै।

इस पद में सूरदास जी ने डफ, डिमडिमी, ढोल, भेरी, बांसुरी, पटह, निसान, मिरदंग, ताल, बीना, किन्नरी, मुरली, उपंग, तुंबुर, रबाव, झल्लरि तथा अमृत कुण्डली का उल्लेख किया है।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

370

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

इसी प्रकार सूरदास जी ने वाद्यों के नाम एवं उनसे उत्पन्न ध्वनियों की विशेषताओं को पद रूप में इस प्रकार वर्णित किया है :

पंचमि पंच शब्द करि साजै साजि वादित्र अपार,
अज मुरज ढफताल बाँसुरी झालर की झँकार
बाजत बीन रबाब किन्नरी अमृत कुण्डली यंत्र, सुर
सुरमण्डल जलतरंग मिल करत मोहनी मंत्र
बिच बिच पखावज आवज संचित विच विच मधुर
उपंग, सुर सहनाई सारंगी उपजत तान तरंग
कंसताल कटताल बजावत श्रृंग मधुर महुचंग,
मधुरी खंजरी पटह पणव मिल सुख पावत रतभंग
निपट केरी श्रवणन धुनि सुनि धीर न रहें ब्रजबाल,
मधुर नाद मुरली कौ सुनके मेटे श्याम तमाल।

सूरदास जी ने इस पद में तत, अवनद्ध, घन तथा सुषिर चारों प्रकार के वाद्यों का उल्लेख किया है तथा उनकी ध्वनि सम्बन्धी विशेषताओं का वर्णन किया है। इस पद में उन्होंने मुरज, ढफ, ताल, बाँसुरी, बान, रबाब, किन्नरी, अमृत कुण्डली पंच शब्द (शंख, झाँझ, पखावज, नगाड़ा), सुर मण्डल, जलतरंग, पखावज, आवज, उपंग, सहनाई, सारेगी, कंसताल, कंठताल, महुचंग, खंजरी, पटह, पणव, तथा मुरली वाद्यों का नामोल्लेख किया है।

पदों में नृत्य सम्बन्धी उल्लेख :

सूरदास जी के पदों में पारम्परिक और शास्त्रीय नृत्यों का प्रयोग रास प्रकरण में दिखाई देता है। ब्रज में प्रचलित रास परम्परा में मध्यकाल में प्रचलित नृत्य कला के दर्शन सहज ही हो जाते हैं। रास परम्परा तथा कथक नृत्य परम्परा में पर्याप्त समानता दिखाई देती है। अष्टछाप के राग का उत्सव मूलतः भगवान प्रेरित है। रास-नृत्य सम्बन्धी वर्णन में भक्त कवियों द्वारा नृत्य के सभी भाव संचालन, हस्त मुद्राओं, पद-संचालन, कटि-संचालन, भ्रूविलास, तथा कुण्डली का कम्पन आदि का वर्णन किया गया है।

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

सूरदास जी द्वारा रचित नृत्य सम्बन्धी पद :

1. 'ताता थैई थैई उघटत हैं हरसि मन।'
2. 'ततथैई ताता थैई गिरधर नागर, गौरै श्याम अंग कान्ति हौ'

इसी प्रकार रास नृत्य के एक पद में सूरदास जी ने रास मण्डल के मध्य भगवान श्री कृष्ण द्वारा पैरों से भिन्न-भिन्न लयकारी की थाप देने तथा नृत्य के विभिन्न बोलों के बीच हाथ से हाथ पकड़ कर श्री के गायन के साथ नृत्य करने का वर्णन किया है :

“घौघ नागरी रास मण्डल मध्य नाचत गिरधारी
लाल लैत गीत अनेक भाँति चरन पटकनी
गिड़गिड़ता गिड़गिड़ता ताता तततततत थैई थैई थैई
बीच-बीच अधर मुरलिका भटकनी।

भुज सौं भुज जोर जोर लैत तान नवल किशोर
गावत श्री राग मिल ग्रीवा लटकनी।”

सूरदास जी ने अपने एक पद में भगवान श्री कृष्ण को स्वर, ताल तथा नृत्य शास्त्र में पारंगत तथा, उनके द्वारा मृदंग का वादन लघु, गुरु मात्राओं के भेद सहित करने का वर्णन किया है :

“नन्द नन्दन सुघर राय मोहन बंसी बजाई सारी
गमपधनी सप्त सुरनि मिलि गावै

अति अनाघाति संगीत सरस सुरनि के अवधर तान मिलावै।

सुरध्याय ताल ध्याय, नृत्य ध्याय निपुन लघु गुरु
तरजति भेद मृदंग बजावै।”

निष्कर्ष :

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सूरदास जी का संगीत चिंतन उच्चकोटि का था। उनके पदों में संगीत के तत्वों का प्रयोग उच्च रीति से किया गया है जिसमें पूर्णतः परिपक्वता दृष्टिगोचर होती है। रागों के रस-भाव के अनुकूल साहित्य का चयन, पदों में शास्त्रोक्त गायन की सीमाओं का भावानुकूल निर्वाह, पदों में राग-रागिनी, लय, ताल, मृदंग के बोल के अतिरिक्त नृत्य सम्बन्धी पदों की रचना भी की है।

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. गुप्त, डॉ. दीनदयालु, अष्टछाप और बल्लभ-समप्रदाय प्रथम भाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वितीय संस्करण 1970, पृष्ठ-198
2. शर्मा, डॉ. मुंशीराम, भक्ति का विकास, चौखम्बा विधा भवन, वाराणसी 1958, पृष्ठ-617
3. टंडन, डॉ. मायारानी, अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन, हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ, 1960, पृष्ठ-599,600
4. गुप्ता, उषा, हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत, प्रकाशन , लखनऊ विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-231,232
5. शर्मा, डॉ. नीरा, अष्टछाप संगीत, नवजीवन पब्लिकेशन प्रथम संस्करण 2004, पृष्ठ-139
6. शर्मा, सत्यभान, पुष्टिमार्गीय मन्दिरों की संगीत-परम्परा, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1999, पृष्ठ-50
7. वालिया, डेजी, सूर काव्य में नृत्य भंगिमा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1985, पृष्ठ-84,85
8. सिन्हा, डॉ. सुरेखा, मध्ययुगीन शास्त्रीय संगीत के आधार स्तम्भ अष्टसखा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ-7-11
9. सूरसागर (भाग-1) पृष्ठ- 735, 693, 420, 879, 436, 734, 653, 672, 738, 655, 731, 489,634
10. साहित्य लहरी, पद संख्या, 1531, 2887, 3328, 2873
11. सुरसारावली (श्री वेंकटेश्वर प्रेस से मुद्रित) पृष्ठ-306,



भारतीय चित्रकलाओं में लोक संस्कृति

डॉ. पूनम

प्रोफेसर व विभागाध्यक्षा, चित्रकला विभाग
महात्मा गांधी बालिका विद्यालय (पी. जी.) कॉलेज,
फिरोजाबाद

सारांश :

कला आत्मा की अभिव्यक्ति है। वह मानव हृदय के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन भी है। मानव के चेतनशील हृदय पर बाह्य प्रकृति का जो प्रभाव पड़ता है, उसी से कला का प्रस्फुटन होता है। इसलिए मनोभावों को व्यक्त करने का शाश्वत एवम् उत्कट भावना को कला की जननी माना गया है।

चित्रण की प्रवृत्ति मनुष्य में आदिम युग से है। भाषा के आविर्भाव से बहुत पूर्व, चित्र अवस्तु होकर वस्तु का मानसिक साक्षात्कार कराने में सक्षम होता था। इसी प्रक्रिया से आगे चलकर देवताओं की मूर्तियां निर्मित हुईं जिनमें आभा मंडल के विकास के साथ मंत्र-तंत्र के द्वारा प्राण प्रतिष्ठा का विधान लोक में आज तक प्रचलित है।

संस्कृति शब्द का अर्थ अपने आप में बहुत व्यापक है। संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र रूप का नाम है, जो सोचने विचारने, खाने-पीने, बोलने तथा अन्य कलाओं में परिलक्षित होती है। मनुष्य का हर एक तत्व संस्कृति का ही अंश है। मनुष्य ही संस्कृति का निर्माता है, उसका सृष्टा और उसका वाहक भी है। भिन्न-भिन्न जातियों में विभक्त समाज के प्रत्येक वर्ग की अपनी संस्कृति होती है। संस्कृति पर लोक का व्यापक प्रभाव है, बल्कि लोक ही संस्कृति को प्राणवान बनाता है। संस्कृति केवल कला, नृत्य, गायन तथा रंगों द्वारा ही दृष्टिगोचर नहीं होती अपितु मनुष्य के जीने का ढंग भी बताती है। किसी भी देश, प्रांत की संस्कृति मनुष्य के अस्तित्व का प्रतिमान है, जो मनुष्य की जीवन पद्धति रहन-सहन, बोल-चाल, भाषा, रीति रिवाज, खान पान, शिक्षा में दृष्टिगोचर होता है। भारतीय कला व संस्कृति विश्व प्रसिद्ध है। उसमें भी भारत अपने शिल्प, वास्तु तथा चित्रकला के लिए दुनिया भर में जाना जाता है। भारत में विभिन्न प्रकार की लोक चित्रकला शैली प्रसिद्ध है।

लोक कला और लोक संस्कृति का यह मूलतः स्वभाव होता है कि उसे दस्तावेज की तरह आलेख नहीं किया जाता और सिर्फ मौखिक रूप में वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचती है। लोक संस्कृति को और उस संस्कृति के हिस्से लोक कथा, लोकगीत और लोक कला को अगर संशोधन के बाद संपादित किया जा सके तो लोक संस्कृति सदियों-सदियों तक लोगों के बीच रह सकती है।

बीज शब्द :

संस्कृति, मानसिक साक्षात्कार, प्राण प्रतिष्ठा, चित्रण, आदिम युग
*Culture, Mental Interview, Establishment of The Image In Its Vital Breath,
Illustration, Primal Age.*

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

373

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

चित्रकला अनिवार्य रूप से आत्मभिव्यक्ति का माध्यम है। आत्म में स्थित आत्म की अभिव्यक्ति। चित्रकला की भाषा प्रतीकात्मक नहीं, सहजीवी है। यह दोनों है-प्रतीक और उसका अभिव्यक्त अर्थ। यदि उसे समझने की कोशिश की जाए, तब वह एक नहीं, अनंत अर्थ देगी। कला के बिना न तो भावनाओं की अभिव्यक्ति हो सकती है और न ही वैचारिक आदान प्रदान की। सांस्कृतिक जीवन को समृद्ध तथा प्रेरक बनाने के लिए दर्शन से अधिक कला हमारा साथ देती है।

मानव सभ्यता के विकास क्रम में जो सबसे महत्वपूर्ण आयाम है वह है संस्कृति, जो मनुष्य होने का एहसास कराती है और साथ ही उसे श्रेष्ठ बनने की प्रेरणा देती है। भारतीय संस्कृति में चित्रकारी का महत्वपूर्ण स्थान है। घर का आंगन रंगोली से सजाना हो या महलों की दीवारें या बर्तन हों या हथियार सभी पर भारत में अलग-अलग चित्रकारी देखने को मिलती है। संस्कृति ब्रह्म की भांति अवर्णनीय है। लोक संस्कृति का एक रूप हमें भावाभिव्यक्तियों की शैली में भी मिलता है।

मानव एक सामाजिक प्राणी है जो अपने मनोभावों को प्रकट करने के लिए विविध लोक कलाओं को माध्यम बनाता है। चित्रकला मानव मन की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है जो सदियों से परंपरा के रूप में हमारे जीवन का अभिन्न हिस्सा रहा है। लोक चित्रों के कारण ही मानव स्वयं को प्रकृति, धर्म, समाज, संस्कृति के अधिक निकट पाता है। लोक हमारे जीवन का महासमुद्र हैं, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है।¹

भारतीय कला में लोक संस्कृति का सार विभिन्न क्षेत्रों की स्थानीय परंपराओं, मिथकों, रीति-रिवाजों और धार्मिक विश्वासों का चित्रण है, जो प्राकृतिक रंगों, सरल आकृतियों और प्रतीकात्मक डिजाइनों के उपयोग से व्यक्त होता है। प्राचीन ग्रंथों में लोक और वेद या

लोक या शस्त्र का भेद तो स्वीकार किया गया था, परंतु लोक की किसी अलग संस्कृति और उसके किसी पृथक साहित्य का कोई उल्लेख नहीं मिलता। श्लोक साहित्य और श्लोक संस्कृति जैसे शब्द बहुत हाल में प्रचलित हुए हैं।² यह कला रूप ग्रामीण समुदायों की अभिव्यक्ति है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी कहानियाँ सुनाता है और दर्शाता है कि कैसे एक राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत जीवित रहती है। मधुबनी, बली और पट्टचित्र जैसी कलाएँ भारत की जीवंत और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की झलक देती हैं। हमारा सहज सौन्दर्य-बोध संस्कृति की बनावट-कसावट-सजावट प्रवृत्तियों से आच्छादित हो जाता है, जिसके प्रभाव से संस्कृत लोग रूप और लय की सहजता को अपने अर्थों, अभिप्रायों, गहराइयों, ऊंचाइयों के नीचे दबा देते हैं। रंगों की चटक-तड़क-भड़क, नृत्य गीत में लय का समस्त वैभव, नैतिक-सामाजिक मूल्यों के भर से उन्मुक्त उल्लास की अभिव्यक्ति, भाववेग जब तन-मन में तूफान की तरह उड़कर नाच उठता है तो सांस्कृतिक भेद-बोध बह जाता है, और रह जाता है केवल आनन्द और आह्लाद।³

भारतवर्ष में कई राज्य हैं। सबकी अपनी-अपनी एक पृथक शैली है, जिस पर आधारित उसकी लोककलाएं निर्मित हुई हैं। लोकचित्रों का भी भारतीय जन-जीवन में अत्यधिक महत्व रहा है। प्रागैतिहासिक काल की लोक संस्कृति का परिचय हमें भित्ति चित्रों द्वारा ही प्राप्त होता है। सिन्धु घाटी की सभ्यता के अंश हमें प्रस्तर पर खुदे हुए चित्रों में मिलते हैं। भारत में विवाह के समय पर अलग-अलग प्रांतों में अपने घरों में भिन्न-भिन्न प्रकार की चित्रकारी करने की परम्परा है। दीपावली, दशहरा, नागपंचमी एवं अन्य कलदेवी-देवताओं की हैं और प्रत्येक का अपना एक चित्र व उसके पीछे छिपी हुई कथा है। पूजा करते समय भांति-भांति के चित्र पूजा घरों में बनाये जाते हैं। भारतीय कला का जन-जीवन से गाढ़ा संबंध है।⁴

लोक संस्कृति कभी भी शिष्ट समाज की आश्रित नहीं रही है, उल्टे शिष्ट समाज लोक संस्कृति से प्रेरणा प्राप्त करता रहा है। लोक संस्कृति का एक रूप हमें भावाभिव्यक्तियों की शैली में भी मिलता है, जिसके द्वारा लोक-मानस की मांगलिक भावना से ओत प्रोत होना सिद्ध होता है। भारतीय कला सदा जीवन को साथ लेकर चली है।⁵

चौक पूरना लोक कलारू एक पारंपरिक विरासत :

चौक पूरना लोक कला बिहार और उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्सों में प्रचलित एक पारंपरिक कला है, जो विशेष रूप से नवरात्रि और अन्य त्योहारों के दौरान प्रदर्शित की जाती है। यह कला अपने आप में एक अलग पहचान रखती है और इस क्षेत्र की सांस्कृतिक धरोहर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

चौक पूरना कला की उत्पत्ति इस क्षेत्र की प्राचीन परंपराओं और संस्कृति से हुई है। चौक पूरना कला में विभिन्न ज्यामितीय आकारों और डिजाइनों का उपयोग किया जाता है, जो आकर्षक और अर्थपूर्ण होते हैं।

चौक पूरना कला की कुछ विशेषताएं हैं :

- **ज्यामितीय आकार और डिजाइन :** चौक पूरना कला में विभिन्न ज्यामितीय आकारों और डिजाइनों का उपयोग किया जाता है, जैसे कि त्रिभुज, वर्ग, वृत्त और फूल-पत्ती के डिजाइन।
- **रंगों का महत्व :** चौक पूरना कला में रंगों का विशेष महत्व है। विभिन्न रंगों का उपयोग करके आकर्षक और अर्थपूर्ण डिजाइन बनाए जाते हैं।
- **धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व :** चौक पूरना कला का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व है। यह कला मातृ शक्ति की पूजा और त्योहारों के दौरान विशेष रूप से प्रदर्शित की जाती है।

चौक पूरना कला का महत्व न केवल इसकी सौंदर्यपरक अपील में है, बल्कि यह इस क्षेत्र की

सांस्कृतिक धरोहर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा भी है। यह कला पारंपरिक मूल्यों और परंपराओं को संरक्षित करने में मदद करती है और हमें हमारे सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ने का अवसर प्रदान करती है।

चौक पूरना लोक कला एक पारंपरिक और विशिष्ट कला है जो बिहार और उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्सों में प्रचलित है। इसकी ज्यामितीय आकारों और डिजाइनों की विशेषता, रंगों का महत्व और धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व इसे एक अद्वितीय कला रूप बनाते हैं। चौक पूरना कला का महत्व न केवल इसकी सौंदर्यपरक अपील में है, बल्कि यह पारंपरिक मूल्यों और परंपराओं को संरक्षित करने में मदद करती है और हमें हमारे सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ने का अवसर प्रदान करती है। लोक कला अपने में पूर्ण स्वच्छन्द है इसके अतिरिक्त लोक कला परजन सुखाय भी है।

माण्डना लोक कलारू एक पारंपरिक विरासत :

मालवा भूमि के हिन्दू परिवारों में मांडने बनाने की रीति है। घर, दालन एवम् जमीन के खुले वातावरण में किसी पर्व अथवा खुशी के समय खड़िया तथा गेरू के द्वारा बनाई जाने वाली सभी आकृतियों को माण्डना कहते हैं। मांडने का अर्थ अंकित करना होता है।⁶ मालवा क्षेत्र की एक पारंपरिक लोक कला है, जो विभिन्न शुभ अवसरों और धार्मिक पर्वों पर बनाई जाती है। यह कला अपने विशिष्ट रंगों और आकृतियों के लिए जानी जाती है, जो इसे एक अनोखा और आकर्षक रूप देती हैं।

माण्डना बनाने के लिए गेरू और खड़िया मिट्टी या चाक का उपयोग किया जाता है, जो क्रमशः लाल और सफेद रंग के होते हैं। इन रंगों का विशेष महत्व है और ये शुभता और पवित्रता का प्रतीक हैं। भारत में धार्मिक त्योहारों की बाहुल्यता है। प्रत्येक त्योहार पर ग्रामीण एवम् नगरीय अंचलों में मकानों को साफ-सुथरा करके मांडने बनाने की परम्परा रही

है। इन माण्डनों में आलेखन के अलावा दोपद्मांत, बेलपात, फूलपांत तथा प्रतीकों के आकार बनाये जाते हैं।⁷

माण्डना दो प्रकार के होते हैं :

- **गोलाकार माण्डना :** इसमें कलश, पगल्या, आठ पंखुड़ी का फूल आदि आकृतियां बनाई जाती हैं।
- **चौकोर माण्डना :** इसमें दिवार, फूल पत्तियों के साथ दीपमाला, केले का पेड़, मोर, कमल का फूल आदि आकृतियां बनाई जाती हैं।

इन मांडनों में आलेखन के अलावा बेलपात, फूलपांत तथा प्रतीकों के आकार बनाये जाते हैं। दीपावली पर्व पर फूल चौक (आठ पंखुड़ी का फूल) बारह का बाजार (चौक), सारचे की जोड़ आदि अनेक आकृतियां बनाई जाती हैं। खड़ी (खाड़िया) तथा गेरू को पानी एवं गोंद के घोल से कपड़े की चिन्दी अथवा बालों की गुच्छी व रूई के फौहे को अंगुलियों में रखकर अंगुठे से दबाकर फर्श पर मुख्य आकार की रेखाएं बनाते हैं। प्रथम गेरू के पश्चात् खड़िया से मांडने को भरते हैं। मांडने में प्रयुक्त समानान्तर और वक्र रेखाओं ने आधुनिक चित्रकला में ज्यामितिक आलेखन शैली को आगे बढ़ने में सहयोग दिया है।

इन्हीं माण्डनों में चौक माण्डना अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। चौक किसी एक ही प्रकार की बनाई आकृति से ही भरा जाता है ऐसा नहीं किन्तु इसे बनाने में पर्व अपनी प्रधानता रखता है, उसी के अनुसार परम्परागत आकारों का आकार बनाकर महिलाएँ इसे बनाती हैं। माण्डना निम्न विषयों के आधार पर बनाये जाते हैं- सातिये का चौक, दीवा की जोड़, केरी का चौक, होली का कपड़ा का चौक, चार सातियों का चौक, नारियल का चौक, पांच बावड़ी आदि।

चौक आंगन के मध्य भाग में बनाया जाता है। माण्डना बनाने से पूर्व विधिवत लीप लिया जाता है। फर्श के मध्य भाग में बनाये गये माण्डने में विभिन्न रंगों का उपयोग करके सजाते हैं।

सातिये की आकृति का अंकन धार्मिक, मांगलिक कार्यो हेतु किया जाता है किन्तु आंगनों में, मांडने के रूप में, खड़ी एवं गेरू रंग से भी बनाया जाता है। प्रायः कच्चे मकानों के आंगन, चौक को गोबर से लीपकर उपरोक्त रंगों से बिना स्केल, पेंसिल, कलम के उपयोग से स्वस्तिक आकृति सरलता से बना दी जाती है। आकृतियों में रेखा गणित का समावेश रहता है। एक स्थान से मांडना प्रारम्भ होता है और सम्पूर्ण आंगन भर जाता है। कच्चे मकानों की फर्श पर मांडने मांडे जाते हैं किन्तु इन मांडनों का आधुनिकीकरण भी हो गया है।

यह चौक हमेशा पर्व पर प्रायः बनाया जाता है। इसे दीपावली पर्व पर भी बनाया जाता है। पाँच बावड़ी का अर्थ वह बावड़ी जिसमें पगलिये होते हैं। मांडने के मध्य एक एवं आस-पास चार बावड़ी बनाते हैं। इन बावड़ी को चार किनार से जोड़ दिया जाता है तथा प्रत्येक किनार छोटे कलश आड़े बना दिये जाते हैं। इस बड़े और चार छोटे कलश के आपस में एक-दूसरे से जुड़ जाने पर आकर्षक माण्डना बन जाता है। यह माण्डना यहीं तक सीमित नहीं रहता है, इस पांच बावड़ी चौक को सफेद लड़ी एवं गेरू रंग से बनाते हैं किन्तु आधुनिक रंग सज्जा से भी इसका निर्माण किया जाता है।

यह चौक दीपावली पर्व पर तथा अन्य किसी भी मांगलिक पर्व पर बनाया जाता है। आंगन के मध्य भाग से इसे बनाया जाता है। पूर्ण बन जाने पर आंगन का अधिकांश भाग इससे भर दिया जाता है। माण्डने के मध्य में आठ पंखुड़ीदार फूल बड़े पैमाने पर बनाते हैं तथा प्रत्येक पंखुड़ियों के सिरे पर से वक्र रेखा पर केरी की आकृति बनाकर एक-दूसरे से जोड़

दी जाती है। इन केरियों को दो वक्र रेखा जोड़ती हैं। वक्र रेखा से जुड़े हुए भाग पर, मुंदड़ी की तीन आकृति बनायी जाती है जिससे इस माण्डने का सम्पूर्ण भाग ज्यामितीय आकार ग्रहण कर लेता है। प्रत्येक पंखुड़ी के भीतरी भाग में भरत भर दी जाती है जिससे इसकी सुन्दरता निखर उठती है।

यह साधारण चौक है किन्तु इसका ज्यामितिक आकार सम्पूर्ण चौक को बहुत ही सुन्दर बना देता है। यह आकार में छोटा और बड़े से बड़ा भी बनाया जाता है। इस चौक को सर्वप्रथम वृत्त बनाकर छः दोहरी रेखाओं का घेरा बना देते हैं। इन रेखाओं के मध्य भाग और वृत्त बिन्दु तक शकरपारे के समान छः आकार बनाकर एक दूसरे को आपस में जोड़ देते हैं इनके जोड़ने से छः पंखुड़ीनुमा फूल का आकार बन जाता है। इन प्रत्येक आकार के बीच में एक-एक शकरपारेनुमा आकार बना दिया जाता है जिससे पंखुड़ी का खालीपन दूर हो जाता है और इसकी सुन्दरता के निखार में सहयोग मिलता है।

दीपावली पर्व पर बनाये जाने वाला यह चौक बारह का बाजार नाम से पुकारा जाता है। मालवा की भूमि पर इसका बनाया जाना इसकी लोकप्रियता और महत्व का प्रमाण है किन्तु थोड़े-थोड़े अन्तर पर इसकी बनावट में भिन्नता पाई जाती है। जिस प्रकार बारह कोस जाने पर बोली एक होने पर भी बदल जाती है उसी प्रकार माण्डने का मूल आकार तो वही होता है, स्थान के साथ-साथ किन्तु उसकी साज-सज्जा बदलती जाती है।

नारियल का यह चौक किसी भी मांगलिक कार्य एवम् उत्सव या त्यौहार पर बनाया जाता है। इसके मध्य भाग में सीधा छोटा चौकोर दुहरी रेखाओं में बनाकर चारों कोनों पर चार बड़े नारियल-सा आकार

बनाकर व चौकोर की सरल रेखा पर भी चारों ओर छोटा शकरपारा-सा नारियल आकार बनाकर आपस में जोड़ दिया जाता है। ये आकार में छोटे होते हैं। प्रत्येक छोटे एवं बड़े नारियल आकार के सिरे पर एक-दूसरे के विपरीत मुंदड़ी बनाकर दो आड़ी छोटी रेखाओं के मध्य में खड़ी सरलरेखा बना दी जाती है। खड़ी रेखा के सिरे पर छोटा शकरपारा व बिन्दुओं का आकार बना कर दिया जाता है।

माण्डना न केवल एक कला है, बल्कि यह मालवा की संस्कृति और परंपरा का भी हिस्सा है। आजकल माण्डना कला को संरक्षित और संवर्धित करने के प्रयास किए जा रहे हैं ताकि यह पारंपरिक कला आने वाली पीढ़ियों के लिए भी सुरक्षित रह सके। माण्डना कला का संबंध मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र से है, जो अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के लिए जाना जाता है।

संदर्भ-सूची :

1. अग्रवाल, डॉ. वासुदेव शरण, मानक, अंग्रेजी हिन्दी कोशरू हिन्दी साहित्य सम्मेलनय प्रयाग 1971 पृष्ठ-533
2. द्विवेदी, हजारी प्रसादय लोक साहित्य विशेषांक (नया पथ), पृष्ठ-97
3. शर्मा, डॉ. हरद्वारीलाल, लोककला, बृज लोक कलाय पृष्ठ-23
4. चन्द्र, डॉ. मोती, सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति-अंक), पृष्ठ-321
5. अग्रवाल, वासुदेव शरणय भारतीय कलाय पृष्ठ-6
6. सम्मेलन पत्रिका, श्री श्याम परमार, पृष्ठ-4011
7. संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर रामचन्द्र वर्मा नागरी प्रचारिणी सभा गष्ठ सं. 2014 वि. पृष्ठ-2761



लोक संस्कृति एवं साहित्य

डॉ. अशोक कुमार

संगीत शिक्षक + 2

उत्कर्मित उच्च माध्यमिक विद्यालय हिरामनपुर

पकड़ी, बिहटा, पटना

सारांश :

लोक संस्कृति एवं साहित्य एक दूसरे के पूरक हैं संस्कृति समस्त सीखे हुए व्यवहार का नाम है जो सामाजिक परम्पराओं मान्यताओं के आधार पर बनता है। अनेक प्रकार के आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज, पूवेन्मिव और संस्कार आदि के विधि-विधान और अनुष्ठान आदि ही संस्कृति के प्रकाशित रूप हैं जिनके कारण संस्कृति निर्मित होती है और सूक्ष्म रूप से समयानुसार वैयक्तिक, परिवारिक और सामाजिक परिवेशों के अनुरूप प्रारम्भ में शिक्षण, संस्कार और अभ्यास के जो बीज मानव जीवन में बोए जाते हैं वही संस्कृति की प्रारम्भिक अवस्था है। इन्हीं बीजों के प्रतिफलित होने पर वह लोक संस्कृति का निर्माण होता है तथा मानव जीवन के विषिष्ट विकास व आनन्द का कारण बन कर अन्तिम अवस्था को प्राप्त होती है।

संस्कृति के दो पक्ष हैं : (i) लोक संस्कृति व (ii) शिष्ट संस्कृति।

लोक शब्द का प्रयोग ग्रामों में रहने वाली उस जनता से है जिसका व्यावहारिक ज्ञान पुस्तक और ग्रन्थों पर आधारित न होकर अपने दैनिक कार्यों व सम्मान जन-जीवन के आधार पर प्राप्त होता है। वे शिष्ट संस्कृति से तात्पर्य समान को उस श्रेणी के लोगों की संस्कृति से है जो अपने बौद्धिक विकास व प्रतिभा के कारण वेद आदि शास्त्रों को अपनी संस्कृति का स्रोत मानते हैं और शास्त्रों को ही आधार मानकर आगे चलते हैं। इन दोनों प्रकार के संस्कृतियों का उल्लेख अथर्ववेद और ऋग्वेद में दृष्टिगोचर होता है।

बीज शब्द :

संस्कृति, पूवेन्मिव, अनुष्ठान, वैयक्तिक, शिष्ट संस्कृति।

भूमिका :

किसी भी शब्द की व्याख्या से पूर्व उसका सूक्ष्म अर्थ जान लेना अति आवश्यक होता है। संस्कृति का शाब्दिक अर्थ शुद्धि अथवा सफाई है। किसी व्यक्ति अथवा जाति, राष्ट्र आदि को वे सब बातें जो उसके मन, रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल व सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास का सूचक हो, संस्कृति कहलाती है। “जिस प्रकार एक कृषक बीज बोने से

पूर्व अपनी धरती को शुद्ध करता है उसी प्रकार ‘संस्कार’ जो संस्कृति का बीज रूप है मानव के जन्म के समय उसके माता-पिता द्वारा आरोपित किये जाते हैं।”

संस्कारों के माध्यम से प्रमाणीमात्र संस्कृति का अर्जन, व्यवहार व्यक्तित्व, विशिष्ट अनुभव तथा समान में उन्नति व विकास करता है। जन्म के समय उसमें मानवता के गुणों का पूर्ण विकास नहीं होता, किन्तु

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

378

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

समायोजन सम्पर्क के साथ-साथ वह संस्कृति वह संस्कृति के गुणों को मृत्युपर्यन्त अर्जित करता रहता है। मानव मात्र के व्यक्तित्व के विकास में 'संस्कारों' का महत्वपूर्ण स्थान है। ये मनुष्य के जीवन के विकास पथ पर सोपान (सीढ़ी) का कार्य करते हैं।

संस्कृति के विषय में डा. श्याम परमार लिखते हैं- "संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा का है। इसकी निष्पत्ति संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'सम' उपसर्ग 'पूर्वक' दुकृन् कारण धातु से 'कितन' प्रत्यय करने पर हुई है। अतः (सम+कृति) सम्यक् कृतियाँ ही संस्कृति है। संस्कृति शब्द सम्बन्ध संस्कार शब्द से माना जाता है। 'संस्कार' का अर्थ है- शुद्ध करने की क्रिया। अस्तु 'संस्कृति' एवं 'संस्कार' ये दोनों शब्द समानार्थक हैं।

लोकगीत शब्द के तीन अर्थ हो सकते हैं :

1. लोक में प्रचलित गीत
2. लोक निर्मित गीत
3. लोक विषयक गीत

लोकगीत, लोक विषयक ही होते हैं उसमें लोक जीवन की झांकियाँ होती हैं। जन साधारण में भाव और संवेदनायें विभिन्न प्रसंगों और परिस्थितियों में निर्मित होते हैं।

इसीलिए जीवन के विविध पक्षों के विभिन्न रूपों का स्वरूप गीतों में प्रतिबिम्बित होता है।

लोकगीत ग्राम संस्कृति के जागरूक प्रहरी कहे जा सकते हैं। ग्रामीण परिवेश से जुड़ी वे तमाम बातें जो उन्हें सुख-दुःख देती हैं। दैनन्दिन जीवन में जिन-जिन परिस्थितियों से उनका साबका पड़ता है और उसमें दिल से जो भाव निकलते हैं उन्हीं को शब्दों से सजाया और संवारा है लोक ने अपने जीवन में।

श्री राम नरेश त्रिपाठी जो कि लोकगीतों के गहन अध्येता हैं और स्थान-स्थान पर स्वयं भ्रमण कर उन्होंने ग्राम्य गीतों को जिस प्रकार समझा है और प्रस्तुत किया है वह विलक्षण है। उनके अनुसार "ग्राम्य गीत प्रकृति के उद्गार हैं। उनमें अलंकार नहीं केवल रस है, छन्द नहीं केवल लय है।"

अनहद-लोक ISSN : 2349-137X
(जुलाई-दिसम्बर)

देवेन्द्र सत्यार्थी जो का कहना है कि "लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।"

सच तो यह है कि लोकगीत निष्छल मानव हृदय की अभिव्यक्ति है। जहाँ भावों को व्यक्त करने के लिए वाणी को खूबसूरत रूप से लयात्मक बनाने का भी प्रयास है। किसी किस्म की विद्धता या शास्त्रीयता यहाँ आधार नहीं है, जो कुछ है वह है भावों का निष्छल अभिव्यक्ति। प्रायः लोकगीतों में सामूहिकता एवं लोकरंजन का भाव भी निहित है।³

हिन्दु संस्कृति में संस्कारों का बहुत महत्व है। "वेदों में 'संस्कार' शब्द उपलब्ध नहीं होता है। सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से निष्पन्न 'संस्कृत' अर्थ भली प्रकार निष्पादित है। 'संस्कारोति' शब्द बनाने या चकमा देने के अर्थ में उपनिषदों में प्रयुक्त हुआ है। जैमिनी के सूत्रों के संस्कार शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है। जैमिनी सूत्र को शबर टीका में- संस्कार वह है जिसके हो जाने पर पदार्थ (या व्यक्ति) किसी कार्य के योग्य हो जाता है। संस्कार किए जाने से उत्पन्न योग्यता दो प्रकार की मानी जाती है- प्रथमतः संस्कार किये जाने से व्यक्ति वेदाध्ययन या गृहस्थाश्रम में प्रवेश आदि क्रियाओं के योग्य हो जाता था। द्वितीयः संस्कार करने से वीर्य अथवा गर्भादि के विभिन्न दोषों का परिग्रहण हो जाता था। इन दोनों योग्यताओं पर बल दिए जाने के कारण धीरे-धीरे भारत के जीवन में संस्कारों की आनिवार्यता इतनी बढ़ी कि संस्कार (उपनयन) दोनों से ही द्विजत्व सिद्ध होने लगा संस्कारात द्विज उच्यते।

इन संस्कारों की संख्या 16 बताई गई है।

षोडश संस्कार :

1. गर्भाधान संस्कार
2. प्रसव संस्कार
3. सीमन्तोन्नयन संस्कार
4. जातकर्म संस्कार
5. नामकरण संस्कार
6. निष्क्रमण संस्कार

लोक संस्कृति-1 (वर्ष-11, 2025)
Peer-Reviewed Journal

7. अन्नप्राशन संस्कार
8. चुड़ाकम संस्कार
9. कर्णवेध संस्कार
10. विद्यारम्भ संस्कार
11. उपनयन संस्कार
12. वेदारम्भ संस्कार
13. केषान्त अथवा गोदान संस्कार
14. समावर्तन संस्कार
15. विवाह संस्कार
16. अन्त्योष्टि⁴

संगीत प्रारम्भ से ही समाज व संस्कृति का दर्पण है और संस्कृति के स्तर पर ही निर्भर करता है। संगीत के माध्यम से किसी भी देश, स्थान, जीवन, व्यापार, रहन-सहन और खान-पान आदि का पूर्व विवरण मिल जाता है, क्योंकि प्रत्येक देश के संगीत में वहाँ के रहन-सहन, रीति-रिवाज व जीवन चरित्र की झांकी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है भाषा के माध्यम से हम उतनी सरलता से किसी देश की परिस्थितियों को नहीं जान सकते जितना कि संगीत के द्वारा मानव जाति के समान ही संगीत भी अत्यन्त प्राचीन है। कहते हैं कि जब भाषा का जन्म भी नहीं हुआ था संगीत का जन्म तब हो चुका था। मनुष्य (आदिमानव) को अपनी बात दूसरे तक पहुँचाने का माध्यम शब्द नहीं अपितु संगीत था। संगीत ही एक ऐसी भाषा थी जिसके माध्यम से आदिमानव हास-परिहास, प्रसन्नता, शोक, विलाप आदि भावनाओं का प्रकटीकरण कर सकता था।

आधुनिक काल में किए जाने वाले संस्कारों में इसके उपरान्त विवाह संस्कार आता है। वैदिक काल से आधुनिक काल तक यह संस्कार अधिकतर असीम हर्षोल्लास के साथ किया जाता है। यद्यपि आज कल कोर्ट मैरिज (Court Marriages) बहुत होनी लगीं तथापि अधिकतर विवाह सम्पूर्ण रीति-रिवाज से ही किए जाते हैं, जैसे- दुल्हा, दुल्हन को तेल चढ़ना, हल्दी लगाना, मेंहदी लगाना और जाने कितनी ही

अन्य रस्में की जाती हैं। प्रत्येक रस्म को करते समय लोकगीतों को गाती हुई स्त्रियों को हम श्रवण कर सकते हैं पुत्री विवाह पर स्त्रियाँ 'सुहाग' या 'बन्नीया' गीत गाती हैं और पुत्र के विवाह पर 'बन्ने' घोड़ियाँ गाने का प्रचलन है।

विवाह गीत :

पुत्री के विवाह पर :

स्थाई - काले बादलों से नीर बरसता है, बन्नी तेरे लिए बन्ना तरसता है।-2

अन्तरा - सीस बन्नी के तोरा सोहे, झूमर से मीना तरसता है काले बादलों

और पुत्र विवाह पर :

स्थाई - रंगीली घोड़ियाँ तुमकारों से चलती-2

अन्तरा - तेरे बाबा लाए सजा-सजा के घोड़ी-
तेरे नैना लाए सजा-सजा के घोड़ी
दीदी के प्यारे चढ़ों करो मत देरी
नानी के प्यारे चढ़ें करो मत देरी
समय अब हो गया सजनी घर-जाने का

इस प्रकार गीत में ही पूरे परिवार के रिश्तों का नाम आ जाता है। इसी प्रकार पुत्री, की विदा के समय भी गीत गाए जाते हैं। जिन्हें विदाई गीत कहा जाता है। इन गीतों को सुन कर स्वतः ही रूलाई फूट पड़ती है। जैसे -

स्थाई : बाबुल की दुआएँ लेती जा, जा तुझको सुख संसार मिलें। मैके की कभी न याद आए-
ससुराल में इतना प्यार मिले अन्तर,- नाजो से तुझे पाला मैंने, कलियों की तरह फूलों की तरह -तरह मेरे बाग को ए नाजुक डालि तुझे हर पल नई बहार मिले।

मैके

इसी प्रकार एक गीत और जिसमें स्त्रियाँ पुत्री या कन्या की विदाई पर गीत के माध्यम से उसे शिक्षा देती हैं-

स्थाई : सास के घर जाना है सो लाड़ो मेरी....
देवरानी जेठानी रल मिल रहयू ननद से कहना
प्रीति-सो लाड़ो मेरी

तुम सबसे पहले उठना है सो लोड़ो मेरी
तुम सबसे पीछे से सोच है सो, लोड़ो मेरी
तुम सबसे पहले नहाना है, सो लाड़ो मेरी
तुम सबसे पीछे खाना है सो लाड़ो मेरी

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समस्त संस्कारों में विवाह संस्कार ऐसा संस्कार है जिसमें संगीत का अत्याधिक समावेश रहता है।⁶

लोक कथाओं में गंगा तट पर आने से हुए पुण्य उदय हो गंगा पुत्र का बहुत ही सुन्दर वर्णन हुआ है। यह कथा गंगा दशहरा को कभी सुनी जाती है और गंगा स्थान के बाद भी।

एक बार शिव पार्वती कैलास पर्वत पर बैठे थे। पार्वती ने कहा कलियुग में कौन सा पुण्य करने पर मनुष्य का जीवन सुखी हो जाता है? महादेव बोले कि गंगा स्थान का पुण्य सबसे महत्पूर्ण है। यही नहीं जो व्यक्ति गंगा स्थान के संकल्प से घर से चलता है उसके एक एक पग रखने से सौ-सौ अश्वमेध यज्ञ का पुण्य उसे मिलता है।

पार्वती ने कहा कि इसका क्या प्रमाण है?

शिव ने कहा तुम खुद जाकर देख लेना।

दूसरे दिन पार्वती जी गंगा तट पर पहुँच गयी। वहाँ एक कुष्ठ रोगी गलित कुष्ठ को पीड़ा और दुर्गन्ध से व्याकुल था।

वह आते जाते व्यक्तियों से कहता था कि मुझे दान में अपना पुण्य दे दो। मुझे एक महात्मा ने कहा है कि यदि कोई गंगा यात्री तुम्हें अपना पुण्य दान कर दे तो तुम ठीक हो जाओगे। दूसरा उपाय बताया है कि मैं सो अश्वमेध यज्ञ करूँ। पर मैं दरिद्र कैसे कर सकता हूँ भला? मुझ पर दया करो। लोग उसकी ओर देखते दया दिखाते फिर आगे बढ़ जाते। एक व्यक्ति जो पैदल चलकर नित्य गंगा स्नान को आता

था उससे नहीं रहा गया। उसने कहा मैंने और कोई पुण्य तो नहीं किया है गंगा स्नान करने नित्य आता हूँ मैं यह पुण्य तुम्हें देता हूँ। कहकर उसने कुष्ठ रोगी का स्पर्श किया। उसके स्पर्श करते ही रोगी का कायाकल्प हो गया। उसके शरीर से दिव्य ज्योति निकलने लगी। पार्वती यह दृष्य देखकर विस्मय विमुग्ध हो गयी।

प्रत्येक पुराण में गंगा का माहात्म्य मिलता है। यह स्वर्ग से पृथ्वी पर आई। इन्होंने पृथ्वी के प्राणियों का कल्याण किया, उनकी मृत्यु के बाद उन्हें स्वर्ग प्रदान किया। महाकवि कालिदास ने गंगा को स्वर्ग की सीढ़ी कहा है।

जह्नु : कन्या सगर-तनया स्वर्ग सोपान पक्ति में
(कालिदास- मेघदूत पूर्वमेघ-54)

गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है कि -

“नदियों में मैं गंगा हूँ।”

“स्रोतसामडिस्म जाह्नवी।”

गंगा की इस महिमा का बखान करते हैं लोकगीत :

भौरै मन बीस गै भगवतगीता।

सब देवतन माँ ब्रह्म बड़े है।

सब नदियन मा गंगा पुनीता।⁷

भजन :

भारतीय जीवन के दृष्टा इन लोकगीतों में उन्हीं तालों का ताल-मेल है जो नैसर्गिक रूप से ग्रामीण जनता को आंगिक थिरकन में और उन गीतों की अभिव्यक्ति में दैनिक रूप से प्रदत्त है।

अतएव इन लोकगीतों में स्वयंघात के आधार पर इकाई से लेकर सात तक की गिनती का प्रयोग ही किसी न किसी रूप में हुआ है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि भारतीय तालों के रूप में भी इन्हीं सात गिनतियों का योगफल ही है। पर ये धुने हैं, इनका संबंध शास्त्रीय तालों से नहीं है। यद्यपि आज के तालवादक इन्हें शास्त्रीय ताल की परिधि में रखने का प्रयत्न करते हैं, पर ग्रामीण निरक्षर नर-नारी इन

तालो ससे परिचित नहीं है। उनकी ढोलक, डफ, झाँझ, करताल आदि का संबंध धुन के साथ आघात के मिलने और धुन की परिधि के साथ नय संबंधी वालो के मिलने से है। इन धुनों में स्वराघात के आधार पर सात मात्राओं के ही तालों का रूप हम पाते हैं, जिसे आज की भाषा में दादरा, कहरवा, झपताल, खेमटा, रूपक और दीपचंदी कहते हैं।

कहीं-कहीं पर गीत के चलन के अनुसार निश्चित मात्राओं के बोल विभिन्न वाद्य-यंत्रों पर भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। अतएवं ढोलक, डफ, झाँझ और करनाल पर मात्रिक रूप एक होते हुए भी बजाने का ढंग भिन्न-भिन्न हो जाता है।

अंत में निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि इन धुनों की रचना में कंठ परिधि की स्वाभाविकता स्वरों के क्रमिक रूप में सहजता और सुगमता का रमणीक संगम है। इन रचनाओं में सीमित स्वरों में तीव्रतम भावों की अभिव्यक्ति की क्षमता है। एक-एक स्वर में निहित भाव और रस से आदिकाल से ही ग्रामीण जनता भिन्न थी।

स्वरो को सजाने में स्वर संवाद अर्थात् षडज, पंचम भाव और षडज मध्यम भाव का कितना सुंदर संयोग हुआ है, यह देखते ही बनता है। कहीं-कहीं पर स्वरों का न्यास इतना हृदयस्पर्शी होता है जैसे उस एक स्वर के लगने से संपूर्ण रचना में रस-वृष्टि होने लगती है।⁸

निष्कर्ष:

भारतीय परम्परा व लोक संस्कृति एवं साहित्य विषय पर मैंने लोक संस्कृति का निष्कर्ष यह कह सकते हैं कि लोक संस्कृति या लोगों को संस्कृति में 16 संस्कारों का वर्णन किया है। हमारी भारतीय

संस्कृति में लोगों के अन्दर जो उत्साह भरा हुआ है, वो आज से नहीं आदिकाल रहा होगा। संस्कृति त्योहार, संस्कारों से संबंधित लोकगीतों में जो साहित्य की संबन्ध है। साहित्य के बिना लोक संस्कृति अधुरी है।

निष्कर्ष में हम यह कह सकते हैं कि हमारा भारतीय संगीत वाणी यानी बोली पर टिका है लोक यानी जनता के समाज में अपना विशेष स्थान रखता है क्योंकि गाने बजाने ताल का बहुत योगदान रहता है। अगर ताल न हो तो संगीत लोक- गीत, शा0 संगीत, भजन, गजल आदि जितनी भी बैलियाँ हैं, वो सब ताल पर टिकी हुई है अन्त में यह कह सकते हैं कि लोक संस्कृति एवं साहित्य लोकगीतों में विशेष स्थान रखता है।

संदर्भ सूची :

1. संगीत का सांस्कृतिक व सामाजिक पक्ष, डा. प्रभा भारद्वाज, पृ०-49
2. संगीत का संस्कृति व सामाजिक पक्ष, डा. भारद्वाज, पृ०-50
3. अवधी लोक धरोहर, डॉ. अनामिका श्रीवास्तव, पृ०- xi, xii
4. संगीत का सांस्कृतिक व सामाजिक पक्ष, डा. प्रभा भारद्वाज, पृ०-52
5. संगीत का सांस्कृतिक व सामाजिक पक्ष, डा. प्रभा भारद्वाज, पृ०-69
6. संगीत का सांस्कृतिक व सामाजिक पक्ष, डा. प्रभा भारद्वाज, पृ०-74, 75
7. अवधी लोक साहित्य में प्रकृति पूजा, डॉ. विद्या विंदु सिंह, पृ०-98, 99
8. अवधी लोकगीत विरासत, डा. विद्या विंदु सिंह, पृ०-499, 500

